जन्तु-जगत्

अर्थात्

पृथ्वी के स्तनपोषित प्राणियों का
वैज्ञानिक वर्णन

लेखक

श्रीयुत व्रजेशबहादुर, बी० ए०, एल्-एल० बी०

प्रयाग

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त-प्रांत

१९३० ई०

सूचना

हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने अपनी तरफ़ से किताबें लिखने और छपाने के सिवा यह भी तय किया है कि उन लेखकों की रचनायें भी प्रकाशित की जायँ जिन्होंने अपने शौक़ और उत्साह से कुछ लिखने का परिश्रम उठाया है। मन्शा यह है कि स्वतन्त्र लेखकों की किताबों को प्रकाशित करके उन्हें बढ़ावा दिया जाय। इस ग़रज़ से एकेडेमी ने सन् १९२७–२८ में यह तय किया था कि कुछ ऐसे ग्रन्थों को छापने का विज्ञापन दिया जाय और लोगों से उनकी लिखी हुई किताबें माँगी जायँ। इस तरह हिन्दी की जो किताबें छापने के लिए चुनी गई उनमें "जन्तु-जगत्" भी है। इस मज़मून पर हिन्दी में बहुत कम किताबें देखने में आती हैं। यह किताब बहुत अच्छी लिखी हुई जँची।

हिन्दुस्तान में हम लोगों का ध्यान अधिकतर आत्मा परमात्मा की ओर रहा है और हम लोगों ने धर्म और दर्शन के विषयों पर अधिक विचार किया है। बाहरी दुनिया पर हमें बहुत कम ध्यान देने का अवसर मिला है। फल यह हुआ है कि हमारे यहाँ धर्म और दर्शन पर किताबों का तो ढेर है पर प्रकृति से संबंध रखने-वाले विषयों पर बहुत ही कम किताबें देखने में आती हैं। बाहरी जगत् में और उसकी विचित्रता में दिलचस्पी पैदा करने के लिए श्रीयुत व्रजेश बहादुर, बी० ए०, एल-एल० बी०, का यह ग्रंथ हमने प्रकाशित करना उचित समझा।

हमें आशा है कि इस ग्रंथ को देखकर और लेखक भी इस तरह के विषयों की ओर ध्यान देंगे।

ताराचन्द

मन्त्री, हिन्दुस्तानी एकेडेमी

विषय-सूची

विषय			पृ०

भूमिका

यह अद्भुत वैचित्र्यपूर्ण जगत् सहस्रों प्रकार के जीव-जन्तुओं की जीवन-लीला का क्षेत्र है। सब अपने अपने ढंग के निराले हैं। सभी की रचना अनोखी है। भिन्न भिन्न जातियों में कोई पारस्परिक समानता दिखाई नहीं पड़ती। कहीं सूँड़दार सुविशाल हाथी है तो कहीं छोटी सी चुहिया।

परन्तु यदि पृथ्वी के जीव-जन्तुओं को सामने खड़ा कर हम सूक्ष्म दृष्टि से उनकी आन्तरिक रचना की परीक्षा करें तो उनकी पारस्परिक समानता तथा भेदों का वास्तविक ज्ञान हमें हो सकता है। यद्यपि हाथी और चूहा बाह्यरूप में इतने विभिन्न हैं तथापि दोनों में कुछ सम्बन्ध अवश्य दिखाई पड़ जाता है, क्योंकि दोनों ही के शरीरों में पृष्ठवंश अर्थात् रीढ़ की हड्डी विद्यमान है, और यह शरीर का एक महत्त्वपूर्ण अंश है।

इसके प्रतिकूल मक्खी और मकड़ी दोनों के शरीरों में रीढ़ का पता नहीं होता। अतः हाथी और चूहा इन दोनों से स्पष्टतः विभिन्न हैं।

बाह्यरूप पर कुछ ध्यान न देते हुए, हमको ज्ञात होता है कि जीव-जन्तुओं में कुछ तो ऐसे हैं जिनके शरीरों में पृष्ठवंश की हड्डी होती है और उसके सहारे पर बना हुआ एक अस्थिपञ्जर भी होता है। अन्यान्य के शरीरों में पृष्ठवंश और अस्थिपञ्जर विद्यमान नहीं होते। अतः पृथ्वी के जीव-जन्तु दो बड़े "समूहों" (Divisions) में विभाजित किये जा सकते हैं, यथा—

(१) पृष्ठवंशी-समूह (Vertebrates)

(२) अपृष्ठवंशी-समूह (Invertebrates)

अपृष्ठवंशी-समूह के विषय में यहाँ इतना ही कहना यथेष्ट है कि उनके रीढ़ की हड्डी नहीं होती, न उनके शरीर में अस्थिपञ्जर ही होता है। पृथ्वी पर जिन जन्तुओं का प्रादुर्भाव सबसे पहिले हुआ था वे सब अपृष्ठवंशी थे। अपृष्ठवंशी प्राणी क्षुद्र और नीची श्रेणी के जन्तु हैं। इस समूह में नाना प्रकार के कीट आदि का समावेश है। इनमें से कुछ अपना प्राथमिक रूप धारण किये हुए पृथ्वी पर अब भी विद्यमान हैं। अन्यान्य की रचना में परिवर्तन हो गये हैं और बहुत से लुप्त भी हो चुके।

अपृष्ठवंशी प्राणियों ही से क्रमशः पृष्ठवंशी जन्तु विकसित हुए। शारीरिक रचना और इन्द्रियों की शक्तियों में ये अपृष्ठवंशी जन्तुओं की अपेक्षा ऊँची श्रेणी के प्राणी हैं। पृष्ठवंशी-समूह के अंतर्गत सहस्रों ही प्रकार के स्थलचर, जलचर और नभचर प्राणी हैं, जो पाँच समुदायों में विभाजित किये जाते हैं, यथा—

(१) **मत्स्य** (Fish)
(२) **स्थलजलचर** (Amphibians)
(३) **उरंगम** (Reptiles)
(४) **पक्षि** (Birds)
(५) **स्तनपोषित** (Mammals)

पृष्ठवंशी-समूह में सबसे पहिले पृथ्वी पर मछलियों का प्रादुर्भाव हुआ था। ये सबसे पहिले जीव थे जिनके शरीर में रीढ़ की हड्डी विद्यमान थी। इनका जीवन जल में व्यतीत होता था।

युग पर युग बीतते गये, तत्पश्चात् अनेक कारणों से कुछ मछलियाँ किनारे पर भी पहुँचने लगीं। अब स्थल के जीवन के लिए उनके अङ्गों में परिवर्तन होने लगे, और शनैः शनैः स्थल-जलचर जन्तु (Amphibians) उत्पन्न हुए। ये अपना जीवन

जल और स्थल दोनों ही में व्यतीत करते हैं। मेंडक से सभी परिचित हैं। वह पक्का स्थल-जल-चर जीव है। जीवन के पहिले भाग में वह जल का प्राणी होता है। मछली ही के समान उसका शरीर होता है और मछली ही के समान जल के भीतर साँस लेने की शक्ति उसमें होती है। फिर उसके शरीर में क्रमशः परिवर्तन होने लगते हैं। उसके मछली से शरीर में से टाँगों के चिह्न प्रकट होते हैं और वे बढ़ कर हाथ पैर बन जाते हैं। तब वह अपना समय स्थल पर व्यतीत करने लगता है। हाथ पैरों का निकल आना बड़े महत्त्व का परिवर्तन है।

स्थलजलचर प्राणियों से उरंगम समुदाय के जन्तुओं का विकास हुआ। इनके शरीर में टाँगें तो निकलीं किन्तु वे अत्यंत छोटी छोटी होती हैं और इन जीवों को देख के ऐसा प्रतीत होता है मानो वे पेट के बल रेंगते हों। इसी से उनको उरंगम कहते हैं।

उरङ्गम-समुदाय में कुछ जन्तु बिना हाथ पैर के भी दिखाई पड़ते हैं, जैसे साँप। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि साँप की उत्पत्ति भी ऐसे प्राणियों से हुई जिनके हाथ पैर थे। साँप के हाथ-पैरों के लुप्त हो जाने का कारण यह हुआ कि उसने उनसे काम लेना छोड़ दिया। कुछ बड़े साँपों के शरीर में (उदाहरणार्थ पाइथन या अजगर) अब भी टाँगों के छोटे छोटे चिह्न अवशिष्ट हैं।

प्रकृति का यही नियम है। जिस अङ्ग से काम लिया जाता है उसकी उन्नति और वृद्धि होती है, और जिस अङ्ग से काम नहीं लिया जाता वह शनैः शनैः क्षीण होकर अन्त में लुप्त हो जाता है।

वर्तमान समय में पृथ्वी पर अनेक उरङ्गम जन्तु विद्यमान हैं जिनमें से अधिकांश छोटे क़द के प्राणी हैं। कछुआ, गिरगिट,

नक्र (नाका), सब उरङ्गम जन्तु हैं। कभी एक ऐसा युग था जब पृथ्वी पर उरङ्गम प्राणिया का राज्य था। कतिपय विकटाकार उरङ्गमों के शरीर ४०-५० फुट लम्बे होते थे। वे पृथ्वी पर प्रभु और अधिपति बने घूमते थे और भयानक आकृतिवाले तथा भीषण स्वभाव के जन्तु थे।

स्मरण रहे कि पूर्वोक्त तीनों समुदायों (अर्थात् मत्स्य, स्थलजलचर और उरङ्गम) के जन्तु ठंढे रक्तवाले (Cold-blooded) प्राणी हैं। इनके पश्चात् जो जन्तु उत्पन्न हुए वे सब गरम रक्तवाले प्राणी हुए। अस्तु।

उरङ्गम जन्तुओं के अनन्तर पृथ्वी पर पक्षियों का विकास हुआ। प्राथमिक पक्षियों की रचना में उनके उरङ्गम पूर्वजों के बहुत से चिह्न विद्यमान थे। आदि में ये नवविकसित पक्षी हमारे वर्तमान पक्षियों के समान नहीं होते थे। उनके पंखों का निर्माण परों से नहीं होता था, प्रत्युत उनके उड़ने का अङ्ग झिल्ली का होता था, जैसा कि हम चमगादड़ के शरीर पर देखते हैं। उनके जबड़ों में बड़े बड़े दाँत होते थे और दुम लम्बी गिरगिट की दुम के समान हुआ करती थी।

पक्षि-समुदाय के जन्तुओं के पश्चात् स्तनपोषित समुदाय के प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ। भूगर्भशास्त्र के अनुसार तृतीय युग (Tertiary) में पृथ्वी के जन्तु-जगत् में अनेक स्तनपोषित जन्तु उत्पन्न हो चुके थे। तृतीय युग को आरम्भ हुए ४०,००,००० वर्ष से भी अधिक हो चुके।

स्तनपोषित-समुदाय के प्राणियों का किस समुदाय के प्राणियों से विकास हुआ, यह प्रश्न उतना सहज नहीं है जितना कि अन्य समुदायों के विकास का। विज्ञान के द्वारा सिद्ध होता है कि स्तनपोषित जन्तुओं का विकास पक्षियों से नहीं हुआ।

स्तनपोषित जन्तुओं की उत्पत्ति के लिए हमें पुनः स्थल-जल-चर प्राणियों तक जाना पड़ता है। स्थलजलचर जन्तुओं की दो शाखायें हो गई थीं। एक शाखा से, विकसित होकर, उरङ्गम और पक्षी उत्पन्न हुए। दूसरी शाखा विकास के पथ पर किसी दूसरे ही प्रकार अग्रसर हुई और कालान्तर में इस शाखा से स्तनपोषित जन्तुओं की उत्पत्ति हुई।

सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्रवेत्ता कुवे (Cuvier) का कथन है कि स्तनपोषित-समुदाय के जन्तु पशु-संसार के शिरोमणि हैं। मनुष्य स्वयं इसी समुदाय का प्राणी है। शरीर की गठन, अङ्गों की रचना, और इन्द्रियों की शक्तियों में वह सब से श्रेष्ठ है। सृष्टि के अधिकांश बड़े और मनुष्योपयोगी जन्तु इसी समुदाय के अन्तर्गत हैं। गाय, बैल, ऊँट, घोड़ा, बकरी इत्यादि सभी स्तन-पोषित प्राणी हैं। मनुष्य को उनसे भोजन के लिए दूध, मांस आदि प्राप्त होता है, वस्त्रों के लिए ऊन, बाल, और खालें मिलती हैं और सहस्रों उपयोगी वस्तुओं के लिए चमड़ा। कृषकों का उन्हीं पर सहारा है। बोझ लादने और सवारी के कार्य्यों के लिए हम उन्हीं पर निर्भर हैं। अतएव स्तनपोषित-समुदाय के प्राणियों का वृत्तान्त हमारे लिए रोचक और उपयोगी होना स्वाभाविक है।

स्तनपोषित-समुदाय (Mammals) के प्राणियों की विशेषता क्या है? उनकी मुख्य पहिचान, जिसके द्वारा ये अन्य समुदायों के प्राणियों से अलग किये जा सकते हैं, यह है कि स्तनपोषित-समुदाय के जन्तुओं की सब मादाओं के स्तन होते हैं, जिनके द्वारा दूध पिला कर वे अपने बच्चों का पालन-पोषण करती हैं। अन्य किसी समुदाय के जन्तुओं का पोषण स्तनों के द्वारा नहीं होता। स्तनपोषित-समुदाय के लिए अँगरेज़ी भाषा का शब्द

"मैमल्स" (Mammals) है जो लैटिन भाषा के "मैमी" (Mammœ) शब्द से निकला है। "मैमी" का अर्थ है "स्तन"।

स्तनपोषित-समुदाय के जन्तु गरमरक्तवाले (Warm-blooded) प्राणी हैं। मत्स्य, स्थलजलचर तथा उरङ्गम-समुदायों के प्राणियों के समान उनका रक्त ठंढा नहीं होता। जो स्तनपोषित जन्तु अपना जीवन जल में व्यतीत करते हैं उनको भी गरम रखने का प्रयत्न प्रकृति ने कर दिया है। बहुधा उनके शरीर पर एक मोटी तह चर्बी की चढ़ी रहती है जिसके कारण जल की शीतलता का प्रभाव उनके रक्त पर नहीं पड़ता, और ताप की आवश्यक मात्रा उनके शरीर में रक्षित रहती है।

स्तनपोषित-समुदाय के जन्तु "जरायुज" (Viviparous) हैं, अर्थात् उनके बच्चे पैदा होते हैं। वे "अण्डज" (Oviparous) नहीं हैं, उनके अण्डे नहीं होते।

इस समुदाय के सभी जन्तुओं के शरीर पर बाल होते हैं। पृष्ठवंशी-समूह के अन्य किसी समुदाय के प्राणियों के शरीर पर बाल नहीं होते। शरीर पर बालों का होना भी इन जन्तुओं की एक उत्तम पहिचान है। जिन स्तनपोषित जन्तुओं के शरीर लोमहीन होते हैं, जैसे ह्वेल का, उनके भी मुख पर दो चार बाल अवश्य मिलेंगे।

बालों का मुख्य प्रयोजन यह है कि शरीर की गर्मी रक्षित रहे। कुछ स्तनपोषित जन्तुओं के शरीर पर केवल बाल होते हैं, ऊन नहीं होता, जैसे बन्दर और चमगादड़ के शरीर पर।

अन्यान्य के शरीर पर बाल और ऊन दोनों ही पाये जाते हैं। ऊन भी एक प्रकार के बाल ही हैं। बाल और ऊन में मुख्य भेद यह है कि ऊन के किनारे दाँतेदार (Serrated edges) होते हैं, किन्तु बालों के सीधे होते हैं। अनुवीक्षण-यन्त्र (Microscope)

के द्वारा यह भेद प्रत्यक्षरूप से दिखाई पड़ जाता है। ऊन बहुधा उन जन्तुओं के शरीर पर बहुत होता है जो ठण्ढे भूभागों में रहते हैं, क्योंकि इनके कारण शरीर की गरमी रक्षित रहती है।

बाल दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के बाल कभी गिरते नहीं वरन् आजीवन बढ़ते रहते हैं, जैसे घोड़े की गरदन पर के अयाल। दूसरे प्रकार के बाल वे हैं जो किसी विशेष अवधि पर झड़ जाते हैं और उनके स्थान पर नये निकल आते हैं। स्तन-पोषित-समुदाय में अधिकतर जन्तुओं के शरीर पर इस दूसरे प्रकार के बाल होते हैं।

किसी किसी के शरीर पर बालों की जगह मोटे मोटे काँटे होते हैं, जैसे साही के। और किसी के शरीर पर कड़े छिलके की तहें या प्लेटें (तवे) चढ़ी होती हैं, जैसे आर्माडिलो (Armadillo) अथवा साल (Pangolin) के शरीर पर। इन काँटों और छिलकों (चव्यँटों) की रचना भी उसी पदार्थ की होती है जैसे बालों की। बाल, काँटे, और छिलके सब एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न रूप हैं।

बाल और ऊन की लम्बाई, मोटाई, कोमलता आदि में भेद होते हैं किन्तु सबकी रचना में समानता है। भेड़ का ऊन, सुअर के मोटे बाल, अर्मिन (Ermine) का कोमल समूर (Fur) और साही के काँटे सब एक ही पदार्थ के रचे हुए हैं। उनमें परस्पर वैसा ही भेद है जैसा कि पतली मलमल, मोटे खद्दर, या बालों के नमदे में।

स्तनपोषित-समुदाय के कतिपय जन्तुओं के सिर पर सींग होते हैं जो बहुधा हड्डी के बने होते हैं।

किसी किसी के सींग प्रति वर्ष गिर कर नये निकला करते हैं, जैसे बारहसिंगे के। ये "पतनशील सींग" (Antlers) कहलाते हैं किसी के "स्थायी सींग" (Horns) होते हैं। स्थायी सींग एक बार निकलने पर जीवन भर रहते हैं और सर्वथा दोहरे होते हैं,

अर्थात् उनके भीतर हड्डी होती है, जिसके ऊपर एक खोखला ख़ोल चढ़ा होता है। यह ख़ोल भी उसी पदार्थ का होता है जिसके बाल होते हैं। गाय और बकरी के सींग दोहरे और स्थायी हैं।

गैंडे की नाक पर एक अथवा दो सींग हुआ करते हैं। गैंडे के सींगों में हड्डी नहीं होती, वरन् वे बालों के बने होते हैं। बाल एक लसदार पदार्थ से चिपक कर अत्यन्त कड़े सींग का रूप धारण कर लेते हैं। गैंडे का सींग नाक की हड्डी से पृथक् होता है और दोनों के बीच में मोटी खाल होती है।

स्तनपोषित जन्तुओं के मुँह में बहुधा किसी न किसी प्रकार के दाँत अवश्य होते हैं। केवल "दंतविहीन श्रेणी" (Edentates) के कुछ जीव हैं जिनके मुँह में किसी प्रकार के दाँत नहीं होते।

प्राणिशास्त्र में जीव-जन्तुओं के दाँत शरीर के बड़े महत्त्वपूर्ण अंग समझे जाते हैं, कारण उनकी संख्या, आकार, स्थान आदि से जन्तुओं के वंश (Family), जाति (Genus) आदि के निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलती है। भिन्न भिन्न वंशों (Families), जातियों (Genera) और कभी कभी उपजातियों (Species) के दाँतों में भी भेद पाये जाते हैं। दाँतों के द्वारा भिन्न भिन्न जन्तुओं की पारस्परिक समानता, तथा भेद, बड़ी सुगमता से प्रकट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जन्तुओं के दाँतों की रचना, अपने अपने आहार के अनुसार, भिन्न भिन्न होती है। अत: दाँतों पर विचार करने से प्रत्येक जन्तु की जाति आदि ही का नहीं वरन् उसके आहार का भी, और आहार के द्वारा उसके स्वभावों का भी बहुत कुछ पता चल जाता है।

दाँत चार प्रकार के होते हैं। अर्थात्—

(१) कृंतक दंत (Incisors)

(२) कीलें (Canines)

(३) दूध की डाढ़ें (Pre-molars)

(४) डाढ़ें (Molars)

कृंतक दंत, अर्थात् काटनेवाले दाँत, दोनों जबड़ों में सामने की ओर होते हैं। ये छेनी के समान तीक्ष्ण धार के होते हैं, और इनका मुख्य कर्तव्य वस्तुओं को काटने का होता है। बहुधा प्रत्येक जबड़े में ये छः से अधिक नहीं होते। केवल थैलीवाले जन्तुओं में (Marsupials) किसी किसी के जबड़े में इनकी संख्या ८ या १० तक होती है।

रोमन्थकर श्रेणी (Ruminants) के ऊपरवाले जबड़े में कृतक दंत नहीं होते। दंतविहीन श्रेणी (Edentates) में अधिकांश जन्तुओं के दोनों जबड़ों में कोई कृंतक दंत नहीं होते।

बहुधा ऊपर और नीचे के जबड़ों में कृंतक दंत समसंख्यक होते हैं। केवल कुछ चमगादड़ों के ऊपर और नीचे के जबड़ों में कृंतक दाँतों की संख्या भिन्न भिन्न होती है।

कीले या कुक्कुरदंत बहुधा नुकीले दाँत (Canines) होते हैं। कृंतक दाँतों की पंक्ति के इधर-उधर एक एक कीला हुआ करता है। अधिकांश जन्तुओं में कीले कृंतक दाँतों की पंक्ति से कुछ हट के हुआ करते हैं। शिकार करनेवाले मांसभोजी जन्तुओं के कीले विशेषरूप से बड़े होते हैं। शिकार की देह में घुस के उसको जकड़ लेना कीलों का मुख्य कर्तव्य है।

कतिपय जन्तुओं के जबड़ों में कीले नहीं होते, उदाहरणार्थ रोमन्थकर कक्षा के कुछ जन्तुओं के जबड़ों में कीले नहीं पाये जाते। किसी किसी जाति में केवल नरों के कीले होते हैं, मादाओं के नहीं। किसी किसी के कीले असाधारण वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं, जैसे सुअर के बृहत् कीले जो बाहर निकले होते हैं।

दूध की डाढ़ें (Premolars)—दाँतों की पंक्ति में, कीलों के पीछे, गालों में दूध की डाढ़ें होती हैं। इनमें और "वास्तविक डाढ़ों"

(Molars or True Molars) में भेद यह होता है कि दूध की डाढ़ें दूध के दाँतों (Milk-teeth) के साथ भी निकलती हैं। दूध के दाँतों में केवल कृंतक दंत, कीले और दूध की डाढ़ें होती हैं, वास्तविक डाढ़ें नहीं होतीं। दूध के दाँतों का समूह गिर कर जब उनके स्थान में नये, स्थायी दाँत निकलते हैं तभी वास्तविक डाढ़ें भी निकलती हैं।

भिन्न भिन्न जन्तुओं की दूध की डाढ़ों के क़द और आकार में भेद होते हैं। किसी के ऊपर एक शिखर और किसी पर दो उठे होते हैं।

सबसे पीछेवाली दूध की डाढ़ को "मांसडाढ़" अथवा "कैंची डाढ़" (Flesh, Scissors, or Carnassial tooth) कहते हैं। यह मांसडाढ़ मांस के टुकड़े करने में अत्युपयोगी होती है, क्योंकि जबड़ों के चलाये जाने पर ऊपर और नीचे की मांसडाढ़ें, कैंची के फलों के समान, एक दूसरे से रगड़ खाती हैं। मांसडाढ़ें विडाल-वंश के जन्तुओं में विशेषरूप से बड़ी होती हैं।

खुतरनेवाले जन्तुओं (Rodents) के दूधडाढ़ें नहीं होतीं।

डाढ़ें (Molars) दाँतों की पंक्ति में सबसे पीछे होती हैं। जबड़े में इनकी संख्या प्रत्येक ओर तीन से अधिक कभी नहीं होती, और इनमें एक, दो, तीन अथवा कभी चार जड़ें तक हुआ करती हैं। इनकी संख्या जन्तुओं के आहार के अनुसार न्यूनाधिक हुआ करती है। जो हरितभोजी हैं, जिनको घासपात की एक बड़ी मात्रा पीसनी पड़ती है, उनके जबड़ों में डाढ़ों की संख्या अधिक होती है और डाढ़ें आकार में भी चौड़ी चकरी होती हैं। प्रत्युत जो जन्तु मांसभोजी हैं उनको डाढ़ों की बहुत आवश्यकता नहीं होती; अतः उनमें डाढ़ों की संख्या कम होती है। उदाहरणार्थ, विडाल-वंश (Felidæ) के जन्तुओं में जबड़े के प्रत्येक ओर केवल एक ही डाढ़ होती है। स्तनपोषित-समुदाय के कुछ ही जन्तु ऐसे हैं जिनके मुँह में डाढ़ें नहीं होतीं।

दूध की डाढ़ों के समान डाढ़ें गिर के नई नहीं निकलतीं। वे एक बार निकल के वृद्धावस्था तक रहती हैं।

स्तनपोषित-समुदाय में इस नियम के प्रतिकूल केवल हाथी की डाढ़ है। उसके जबड़े में प्रत्येक ओर केवल एक डाढ़ होती है। जब वह घिस जाती है तो उसके पीछे एक दूसरी डाढ़ उत्पन्न हो जाती है। क्रमश: घिसी हुई डाढ़ गिर जाती है और उसका स्थान नई डाढ़ ले लेती है।

प्राय: जन्तुओं के मुँह में पूर्वोक्त चारों प्रकार के दाँत होते हैं। परन्तु किसी किसी के एक, दो, या तीन ही प्रकार के दाँत होते हैं।

जन्तुओं के दाँतों का विवरण लिखने की, एक संक्षिप्त विधि है। उदाहरणार्थ बिल्ली के दाँतों का विवरण स प्रकार लिखा जा सकता है:—

कृंतक दंत $\frac{३ - ३}{३ - ३}$, कीलें $\frac{१ - १}{१ - १}$, दूधडाढ़ें $\frac{३ - ३}{२ - २}$, डाढ़ें $\frac{१ - १}{१ - १} = ३०$

लकीरों के ऊपर के अङ्क ऊपरवाले जबड़े के एक एक ओर की संख्या बताते हैं और नीचे के अङ्क नीचेवाले जबड़े के एक एक ओर की संख्या प्रकट करते हैं। इस प्रयत्न से तुरन्त जाना जा सकता है कि बिल्ली के ऊपरवाले जबड़े में प्रत्येक ओर ३ कृंतक दाँत हैं, और इतने ही नीचेवाले जबड़े में भी हैं। ऊपरवाले जबड़े में दूध की डाढ़ों की संख्या प्रत्येक ओर ३ है और नीचेवाले जबड़े में प्रत्येक ओर केवल दो दूध की डाढ़ें हैं। इत्यादि।

स्तनपोषित-समुदाय के जन्तुओं की टाँगें तथा हाथ पैर, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार, भिन्न भिन्न आकारों के रचे गये हैं।

लगभग सभी के चार टाँगें होती हैं। परन्तु जलचर स्तनपोषित जन्तुओं के बहुधा दो ही अगली टाँगें होती हैं और उनने भी नाव के डाँड़ों का रूप धारण कर लिया है। ये डाँड़ों की सदृश टाँगें

उनको जल में तैरने में सहायता देती हैं। इनकी पिछली टाँगें विलीन हो गई हैं, क्योंकि पिछली टाँगों का काम वे अपनी दुम से लिया करते हैं। प्रकृति के नियमानुसार पिछली टाँगें निरर्थक होने के कारण निर्बल और क्षीण होती गई और अन्त में विलुप्त हो गई। किन्तु अब भी किसी किसी जाति में (जैसे ह्वेल में) पिछली टाँगों के स्थान पर, शरीर के भीतर पुट्ठों में गढ़ी हुई, हड्डियाँ मिलती हैं जो पिछली टाँगों के अवशिष्ट भाग हैं। उनसे प्रमाणित होता है कि किसी पुरातन युग में ह्वेल जैसे जन्तुओं के पूर्वजों के भी चार टाँगें होती थीं।

नभचर स्तनपोषित जन्तु (चमगादड़) के हाथों की लम्बी लम्बी उँगलियाँ उनकी उड़नेवाली झिल्ली को साधे रहती हैं और छाते की तीलियों के समान प्रतीत होती हैं।

स्थल के स्तनपोषित जन्तुओं के हाथ-पैरों के अंतिम भाग भिन्न भिन्न आकारों के होते हैं। किसी किसी की उँगलियों पर नख होते हैं, जो कोई लंबे कोई सीधे, कोई मुड़े हुए, कोई तीक्ष्ण वा भुथरे होते हैं।

कुछ जन्तुओं के नखों में, विशेषकर विडाल-वंश में, एक उपयोगी गुण होता है कि उनकी नोकें साधारणतया मांस की गद्दियों पर रक्खी रहती हैं। इस प्रयत्न के द्वारा उनकी नोकें, चलने-फिरने में रगड़ खाके, घिसने नहीं पातीं। शिकार पर पञ्जा चलाते ही, कुछ विशेष पुट्ठों के द्वारा, ये तीक्ष्ण नोकें बाहर को निकल आती हैं। इनको हम "संकुचनशील नख" (Retractile claws) कहेंगे।

अन्यान्य के नख बड़े और पुष्ट, किन्तु भुथरे होते हैं, जैसे भालू के अथवा बिज्जू के। ये विशेषकर खोदाई के काम के लिए उपयुक्त होते हैं और "खनितृ नख" (Fossorial claws) कहलाते हैं।

शाकभोजी जन्तुओं को पञ्जों और नखों की आवश्यकता नहीं होती, अतः उनके हाथ-पैरों के अन्त में खुर होते हैं। सभी खुरदार जन्तु (Ungulate) अपना निर्वाह घास-पात पर करते हैं।

इनमें से कुछ "समसंख्यक खुरवाले जन्तु" (Artiodactyle) हैं, जैसे सुअर, हिपोपोटेमस, हरिण, बारहसिंगे इत्यादि। इनके खुरों की संख्या सम होती है, अर्थात् वे दो या चार भाग में विभक्त होते हैं।

अन्यान्य "विषम संख्यक खुर-वाले जन्तु" (Perissodactyle) हैं। इनके खुरों की संख्या (कम से कम पिछले पैरों में अवश्य ही) विषम होती है, अर्थात् उनमें एक या तीन या पाँच भाग होते हैं। टेपिर (Tapir), गैंडा आदि इसी प्रकार के जन्तु हैं।

घोड़े के ठोस और अविभक्त खुर सुम कहलाते हैं। दौड़ने के लिए यही बनावट सबसे उपयुक्त है।

कतिपय स्तनपोषित प्राणियों की उंगलियाँ फैली हुई होती हैं और सब एक झिल्ली में मढ़ी होती हैं, जैसे बीवर की। ये जन्तु भोजन तथा रक्षा के लिए जल के आश्रित रहा करते हैं। झिल्ली से मढ़े हुए हाथ पैर उनको जल में तैरने में बड़ी सहायता देते हैं।

सभी स्तनपोषित जन्तुओं के मुँह में जिह्वा होती है जिससे स्वाद का ज्ञान होता है। बहुधा जीभ पर कुछ खुरदरापन होता है. बिड़ाल-वंश और सिवेट-वंश के जन्तुओं की जीभ पर तीक्ष्ण काँटे होते हैं जो हड्डियों में लगा लिपटा मांस छुड़ाने में उपयोगी होते हैं। किसी किसी की जीभ में रबड़ के समान बढ़ने की शक्ति होती है। इन जन्तुओं को भोजन की प्राप्ति में जीभ से बहुत सहायता मिलती है। दंतविहीन श्रेणी (Edentates) के 'चींटी खोर' नामक जन्तु की जीभ इसी प्रकार की होती है।

ह्वेल की जीभ मुँह में चिपकी हुई होती है और बाहर नहीं निकल सकती। किसी किसी की जीभ में ग्रासक शक्ति होती

है, उदाहरण-स्वरूप रोमन्थकर श्रेणी के प्राणियों में। वे पत्तियों, घास आदि को जीभ से पकड़ के मुँह में पहुँचा सकते हैं।

स्तनपोषित जन्तुओं के मुँह के आगे बहुधा गुदगुदे ओष्ठ (होंठ) होते हैं और किसी किसी के गालों में भोजन भर लेने के लिए थैलियाँ होती हैं।

स्तनपोषित-समुदाय के सब जन्तु अपने बच्चों का पालन दूध पिला कर करते हैं, अतः सबकी मादाओं के स्तन होते हैं जिनकी संख्या भिन्न भिन्न होती है। कम से कम दो, और अधिक से अधिक १२ स्तन तक होते हैं। अधिकांश के स्तन पेट पर होते हैं, किन्तु किसी किसी के पीछे हट के जाँघों के बीच में, और किसी किसी के वक्षःस्थल पर होते हैं।

गर्भ में भ्रूण का पालन माता के रक्त से नाल के द्वारा होता है। स्तनपोषित-समुदाय में केवल दो वर्ग हैं जिनके भ्रूण का पालन गर्भ में नाल के द्वारा नहीं होता, अर्थात् एकछिद्रीश्रेणी (Monotremata) और थैलीवाले जन्तुओं की श्रेणी (Marsupialia)। एकछिद्री जन्तुओं के सम्बन्ध में तो यह निश्चित हुआ है कि उनकी मादाएँ अण्डे देती हैं और अण्डे में से निकलने पर बच्चे का पालन स्तनों के द्वारा होता है। थैलीवाले जन्तुओं के बच्चे माता के गर्भ से एक अपूर्ण अवस्था में उत्पन्न होकर माता के पेट पर की थैली में स्तनों के दूध से पलते हैं।

कतिपय स्तनपोषित जन्तुओं के बच्चों की आँखें जन्म के समय बन्द होती हैं। अधिकांश जन्तुओं के बच्चे निस्सहाय उत्पन्न होते हैं। किसी किसी के बच्चे जन्म के उपरान्त शीघ्र ही चलने फिरने और अपना उदर स्वयं पोषण करने लगते हैं। अन्य के बच्चे कई वर्षों में अपना पालन करने के योग्य होते हैं।

अधिकांश स्तनपोषित जन्तुओं के नर और मादे की रचना में भेद कम होते हैं, सिवाय इसके कि नर क़द में भी बड़ा होता है और उसका शारीरिक बल भी मादा से अधिक होता है। किसी किसी जाति के नर और मादा के रंग में अन्तर होता है। किसी किसी जाति के नरों की गरदन पर बाल होते हैं जो मादाओं के नहीं पाये जाते। रोमन्थकर श्रेणी के अनेक जन्तुओं के सिर बड़े बड़े सींगों से सुशोभित होते हैं। उनकी मादाओं के या तो सींग होते ही नहीं या बहुत छोटे छोटे होते हैं।

कतिपय जन्तुओं के शरीर के भिन्न भिन्न भाग में कुछ विशेष ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें गन्धमय द्रव उत्पन्न हुआ करता है। बहुत से मांसभोजी जन्तुओं की दुम के नीचे ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें से तीक्ष्ण दुर्गन्धमय द्रव निकलता है। हाथी के गण्डस्थल में ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें से एक मोम-सदृश द्रव निकलता है। रोमन्थकर जन्तुओं की आँखों के नीचे ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें से कीचड़ का-सा एक तरल पदार्थ निकला करता है। कस्तूरी-मृग की नाभि-ग्रन्थि में से कस्तूरी उत्पन्न होती है।

किसी किसी जन्तु की ग्रन्थियों में से उत्पन्न होनेवाले द्रव में ऐसी तीक्ष्ण और असह्य बू होती है कि वह उसकी रक्षा का एक उपयोगी साधन बन जाता है। अमेरिका के स्कंक (Skunk) नामक जन्तु की ग्रन्थियों का द्रव शत्रु को बेकाम कर देता है।

स्तनपोषित-समुदाय के जन्तुओं की चाल पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि उनमें से कुछ उँगलियों की गद्दियों पर चलनेवाले जन्तु हैं। शेर, कुत्ता, बिल्ली सब इसी प्रकार के जन्तु हैं। हम इनको "अंगुलचर" (Digitigrade) कहेंगे। अन्य कुछ जन्तु पैर का पूरा तलवा भूमि पर रखते हैं। ये "पदतलचर" (Plantigrade) कहलाते हैं। भालू पदतलचर जन्तु है।

कुछ जन्तु ऐसे भी हैं जो न उँगलियों पर चलते हैं न पूरे तलवे पर, वरन् तलवे का कुछ भाग ही भूमि पर रखते हैं। बिज्जू, ऊदबिलाव और (Civet-cat) गंधमार्जारों में से प्रायः सभी इस प्रकार चलते हैं।

स्तनपोषित जन्तुओं के क़द में परस्पर बहुत भिन्नता है। चूहा, हाथी और ह्वेल सब स्तनपोषित जन्तु हैं। जल में रहनेवाले स्तनपोषित जन्तुओं के शरीर अत्यन्त भीमकाय रचे गये हैं क्योंकि जल में तैरने के लिए अधिक बल की आवश्यकता नहीं होती। वृक्षों पर रहनेवाले स्तनपोषित जन्तुओं के शरीर बहुधा छोटे छोटे ही रचे गये हैं।

सारे प्राणिवर्ग में स्तनपोषित जन्तुओं का मस्तिष्क सबसे बड़ा होता है और बुद्धि भी सबसे उत्कृष्ट होती है। मनुष्य की बुद्धि से पशु की बुद्धि की तुलना करना अनुचित है। पशुओं की बुद्धि बहुधा कुछ निर्दिष्ट विषयों के सम्बन्ध में ही प्रकट होती है और उन्हीं तक सीमाबद्ध रहती है, जैसे आत्मरक्षा, भोजन की प्राप्ति, वंश-वृद्धि और गृह-निर्माण।

स्तनपोषित-समुदाय में मांसभोजी (Carnivorous), शाकभोजी (Herbivorous), फलाहारी (Frugivorous), कीटभोजी (Insectivorous), एवं सर्वभक्षी (Omnivorous) सब प्रकार के जन्तु विद्यमान हैं।

स्तनपोषित जन्तुओं की सभी इन्द्रियाँ अन्य सब जन्तुओं की अपेक्षा तीक्ष्ण और उत्तम होती हैं।

अधिकांश स्तनपोषित जन्तुओं की घ्राणेन्द्रिय, अर्थात् सूँघने की इन्द्रिय, उत्तम होती है। निर्बल, निस्सहाय जन्तु अपनी रक्षा के लिए घ्राण ही पर निर्भर रहते हैं। रेगिस्तान में मीलों दूर से ऊँट घ्राणेन्द्रिय के द्वारा जल का पता लगा लेता है। हिंसक जन्तु गंध से ही शिकार का पता लगा लेते हैं।

अधिकतर स्तनपोषित जन्तुओं की श्रवणेन्द्रिय भी उत्तम होती है। अधिकांश के कान निकले होते हैं। बहुधा कानों में मुड़ने और हिलने की शक्ति होती है और इससे उनको शब्दों के सुनने में बड़ी सहायता मिलती है, कारण कि जिस ओर से शब्द आता है उसी ओर को कान फेर के जन्तु शब्द की गति का अनुभव कर लेता है। प्रायः देखा जाता है कि छोटे और शक्तिहीन जन्तुओं की श्रवणेन्द्रिय विशेष रूप से तीक्ष्ण होती है।

यद्यपि कुछ पक्षियों की दृष्टि-शक्ति से स्तनपोषित जन्तुओं की दृष्टिशक्ति तुलना नहीं कर सकती तथापि इनकी दृष्टि भी बहुधा अच्छी होती है। चमगादड़ों और कुछ कीटभुक् श्रेणी के प्राणियों की आँखें बहुत छोटी होती हैं और सूर्य्य के प्रकाश में खुल नहीं सकतीं, किन्तु ऐसे जन्तुओं को प्रायः दृष्टिशक्ति के बदले तीक्ष्ण त्वगेन्द्रिय मिली है। मांसभुक् श्रेणी के कुछ जन्तुओं की आँखें इस प्रकार रची गई हैं कि वे रात्रि में भी देख सकते हैं।

बहुधा स्तनपोषित जन्तुओं की त्वगेन्द्रिय तीव्र होती है और सूक्ष्म अनुभव कर सकती है। भिन्न भिन्न जन्तुओं के शरीर के भिन्न भिन्न भाग त्वगेन्द्रिय का काम देते हैं। जैसे मनुष्य की त्वगेन्द्रिय उँगलियाँ हैं वैसे ही घोड़े को अपने ओंठों से स्पर्श का काम लेना पड़ता है। मांसभोजी जन्तुओं के मुँह पर के बड़े बड़े बाल स्पर्श का काम बड़ी उत्तम रीति से करते हैं। हाथी की सूँड़ उसकी त्वगेन्द्रिय है और चमगादड़ की त्वगेन्द्रिय उसकी उड़नेवाली झिल्ली है। सारे प्राणिवर्ग में कदाचित् किसी जन्तु की त्वगेन्द्रिय चमगादड़ की त्वगेन्द्रिय से तुलना नहीं कर सकती।

स्तनपोषित जन्तुओं का आमाशय बहुधा एक सीधी सादी थैली के आकार का होता है। केवल जुगाली करनेवाले जन्तुओं का आमाशय चार भागों में विभक्त होता है। रोमन्थकर जन्तु अपने

भोजन को पहिले नाम-मात्र को कुचल कर निगल लेते हैं और वह आमाशय की सबसे बड़ी थैली में पहुँच जाता है। इस प्रकार जब वह भोजन की एक यथेष्ट मात्रा उदर में पहुँचा के सुविधा से बैठता है तो निगले हुए भोजन की जुगाली करता है। भोजन के गोले अब आमाशय के दूसरे भाग में बन बन के उसके मुँह में पहुँचते जाते हैं। और जन्तु प्रत्येक गोले को पूर्णतया पीसता है। दोबारा पिस के भोजन तब आमाशय के तीसरे भाग में पहुँचता है और उसमें से चौथे भाग में जाके वह जीर्ण करनेवाले रस से मिल जाता है।

स्तनपोषित जन्तुओं का भोजन आमाशय में से आँत में पहुँचता है जहाँ उसके पोषक अंश शरीर के पोषण के निमित्त खिँच जाते हैं।

प्रकृति ने जीव-जन्तुओं को रंग प्रदान करने में शोभा के अतिरिक्त उनके हित पर भी दृष्टि रक्खी है। प्राणों की रक्षा और भोजन की प्राप्ति, यही दो मुख्य चिन्तायें हैं जो प्रत्येक प्राणी को दिन-रात घेरे रहती हैं, और इन दोनों के निवारण में जन्तुओं का रंग उनको अद्भुत रूप से सहायता देता है। कतिपय स्तनपोषित जन्तुओं के वर्ण पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि उनको प्रकृति ने ऐसा रंग प्रदान किया है जो उनके वासस्थान के रंग से मिलता-जुलता होता है। वर्ण की यह समानता जन्तुओं के लिए दो प्रकार से हितकारी होती है। प्रथम तो उसके द्वारा निर्बल, निस्सहाय जन्तुओं की, अपने शत्रुओं से, रक्षा होती है, क्योंकि कुछ दूर पर वे हिंस्र, शिकारी जन्तुओं को दिखाई नहीं पड़ते। विज्ञान में इसको (Protective General Resemblance) कहते हैं। अपनी परिभाषा में हम इसको "रक्षार्थ वर्णसाम्य" कहेंगे।

दूसरे, हिंस्र जन्तुओं का वर्ण-साम्य उनको भोजन की प्राप्ति में सहायक होता है, क्योंकि वे दूर से दिखाई नहीं पड़ते और निर्बल, निस्सहाय जन्तुओं को, भाग कर आत्मरक्षा कर लेने का

अवसर नहीं मिलता। हिंस्र जन्तुओं की वर्ण-समानता (Aggressive General Resemblance) अर्थात् "हिंसक वर्ण-साम्य" कहलाती है।

शेर का रंग भारत के उत्तर-पश्चिम सूखे रेतीले मैदानों के रंग में मिल जाता है। वह अपने शिकार को दूर से दिखाई नहीं पड़ता और भोजन की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक भी है कि शेर शिकार के पास तक बिना दिखाई दिये पहुँच सके। यह हिंसक वर्ण-साम्य का उदाहरण है। इसी प्रकार ज़ेबरा (अफ्रीका का धारीदार घोड़ा) शरीर की धारियों के कारण, अपने देश की लंबी, ऊँची घास, नरकुल, और झाड़ियों में ऐसा मिल जाता है कि हिंस्र जन्तु उसको दूर से देख नहीं पाते। यह रक्षक वर्ण-साम्य का उदाहरण है।

विधाता की अपार महिमा को बुद्धिगत करने में हमारी तुच्छ और परिमित बुद्धि असमर्थ रह जाती है, अतः यदि पहिले-पहिल वर्ण-साम्य का विषय हमको विश्वासयोग्य न जान पड़े तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। किन्तु अनुभव से हमारी शङ्का का समाधान हो सकता है। एक विद्वान् यात्री स्वयं अपने अनुभव से लिखते हैं:—

"बड़े स्तनपोषित जन्तुओं के रंग की, और कुछ कुछ उनके आकारों की भी, उनके वास स्थानों के आकार और रंग से समानता, देख कर अवश्य आश्चर्य होगा। थोड़ी ही दूर पर से निश्चल खड़ा हुआ, हार्टबीस्ट (Hartbeest, एक प्रकार का हरिण), उन लाल मिट्टी के ढेरों में नहीं पहिचाना जाता जो चींटियाँ खोद कर लगा दिया करती हैं और जो चारों ओर बहुत होते हैं। लंबी टाँगों और लंबी गरदनवाले जिराफ़ (Giraffe) में और मिमोसा (Mimosa) नामक वृक्षों के तनों में भेद नहीं करते बनता।

मटमैली भूरे रंग की घास और कटीली झाड़ियों में ज़ेबरा दृष्टिगोचर नहीं होता। और गिरे हुए वृक्षों के तनों में गैंडे का रंग ऐसा मिल जाता है कि वह दिखाई नहीं पड़ता।"*

प्राय: जन्तुओं के शरीर पर धारियाँ या धब्बे होते हैं। यह एक विलक्षण बात सी प्रतीत होती है कि इन धारियों अथवा धब्बों से किसी प्रकार छिपने में सुविधा हो सकती होगी। किन्तु वास्तव में इन धारियों और धब्बों का यही प्रभाव होता है कि जन्तु दूर से दिखाई नहीं पड़ता। एक विद्वान्, प्रोफ़ेसर एवार्ट, ने स्वयं अनुभव करके देखा कि एकरंगा घोड़ा अँधेरी रात में ३०-४० गज़ पर साफ़ दिखाई पड़ जाता है। उसी घोड़े पर यदि फ़ीतों के द्वारा ज़ेबरा की-सी धारियाँ डाल दी जावें तो ३०-४० गज़ के अन्तर पर वह दिखाई नहीं देता। अँधेरी रात्रि में ज़ेबरा १० गज़ के अन्तर पर ही अदृश्य हो जाता है। इसी प्रकार, अपने माथे पर की चौड़ी सफ़ेद धारी के कारण, सामने आता हुआ बिज्जू दृष्टिगोचर नहीं होता। वृक्षों के नीचे खड़े चीतल, बारहसिंगे, और तेंदुए, अपने शरीर के धब्बों के कारण, दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि वृक्ष के पत्तों के कारण भूमि पर पड़े हुए धूप और छाया के धब्बों में इन जन्तुओं का रंग बिलकुल मिल जाता है। बाघ के शरीर पर की धारियों के विषय में एक जन्तुशास्त्रविद् लिखते हैं :—

"बाघ के शरीर की चमकती हुई काली या कत्थई धारियों को देख कर बोध होता है कि उनके कारण वह सहज नहीं छिप सकता होगा। किन्तु जिन्होंने बाघ को उसके वासस्थानों में, सूर्य्य के प्रकाश और छाया में, नरकुलों और ऊँची ऊँची घासों में देखा है, वे विश्वास दिलाते हैं कि वास्तव में अपने रंग के कारण, वह दूर से दिखाई नहीं पड़ता।"

* "Across East African Glaciers," by D. Hans Meyer.

सुविख्यात शिकारी गार्डन कमिंग लिखते हैं कि सृष्टि का सबसे ऊँचे क़द का जन्तु (जिराफ़) जिसके चमकते हुए नारंगी रंग पर काले अथवा धुमैले धब्बे होते हैं, वृक्षों में ऐसा मिल जाता है कि अफ़्रीका-निवासी कुली भी, जो उनके साथ थे, धोखा खा जाते थे। कभी वृक्षों को देख जिराफ़ बतलाते और कभी जिराफ़ को वृक्ष समझ लेते थे।

कतिपय जन्तुओं का वर्ण ऋतु के साथ परिवर्तित हो जाता है। ग्रीष्म काल में उनका रंग उनके वासस्थानों के रङ्ग से मिलता-जुलता है। किन्तु शरत्-काल आते ही, जब बर्फ़ गिरती है और भूमि सफेद हो जाती है, तो उक्त जन्तुओं के बाल भी झड़ जाते हैं और नये बाल निकल आते हैं जिनका रंग एकदम सफ़ेद होता है। अनेक ठण्ढे भूभागों में देखा जाता है कि शरत्-काल में ख़रगोश का रंग श्वेत हो जाता है। किन्तु साथ ही साथ वहाँ लोमड़ी का रंग भी सफ़ेद हो जाता है, क्योंकि वर्ण-साम्य जैसी ख़रगोश को लोमड़ी से बचने के लिए आवश्यक है वैसी ही लोमड़ी को भी भोजन की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। प्रकृति माता तो समान भाव से सब पर एक सी दयालु है।

संसार के बहुसंख्यक प्राणियों को किसी क्रम के अनुसार भेद उपभेदों में विभक्त कर लेना आवश्यक है, अन्यथा वैज्ञानिक दृष्टि से उनका पूरा परिचय प्राप्त करना असंभव होगा। जन्तु-जगत् के भेदोपभेद का क्रम यह है :—

(१) समूह (Division), (२) समुदाय (Class), (३) कक्षा (Order), (४) वंश (Family), (५) जाति (Genus), (६) उपजाति (Species), नसल (Variety).

हम देख चुके हैं कि जन्तु-जगत् प्रथमतः दो बड़े समूहों में विभक्त है, अर्थात् पृष्ठवंशी और अपृष्ठवंशी।

पृष्ठवंशी-समूह तब पाँच समुदायों में विभक्त किया गया है, अर्थात् मत्स्य, जल-स्थल-चर, उरङ्गम, पक्षी और स्तनपोषित।

स्तनपोषित-समुदाय के जन्तु तब किसी प्रधान लक्षण के आधार पर अनेक कक्षाओं में बाँटे जाते हैं। उदाहरणार्थ जितने स्तनपोषित जन्तु जुगाली करते हैं वे सब रोमन्थकर श्रेणी में सम्मिलित किये जाते हैं। इसी प्रकार स्थल के जितने मांस खानेवाले जन्तु हैं उनको मांसभुक्-श्रेणी में स्थान दिया जाता है।

तत्पश्चात् प्रत्येक श्रेणी में अनेक वंश माने जाते हैं। उपरोक्त मांसभुक्-श्रेणी में "बिडाल-वंश", "श्वान-वंश" "भालु-वंश" इत्यादि सम्मिलित हैं। प्रत्येक वंश के अंतर्गत तब कई कई जाति (Genus) के जन्तु माने जाते हैं। बिडाल-वंश में शेर बबर (Lion), बाघ (Tiger), तेंदुआ (Panther) आदि जातियाँ मानी जाती हैं।

प्राय: एक ही जाति के जन्तुओं में रचना आदि में कुछ भेद प्रत्यक्षरूप से दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणार्थ पृथ्वी पर लकड़बघा (Hyæna) जाति के दो प्रकार के जन्तु पाये जाते हैं। एक के शरीर पर धारियाँ होती हैं और वह क़द में छोटा होता है। दूसरे बड़े होते हैं और उनकी देह पर गुल या धब्बे होते हैं। ये धारीदार और धब्बेदार जन्तु लकड़बघा जाति के जातिभेद (Species) माने जाते हैं।

एक ही जातिभेद के जन्तुओं में भी जलवायु, स्वभाव, भोजन की बहुतायत अथवा अभाव इत्यादिक कारणों से रंग, रूप, क़द आदि में थोड़े बहुत भेद हो जाते हैं। इन सूक्ष्म भेदों के आधार पर एक ही जातिभेद (Species) में दो या अधिक नसलें (Varieties) मान ली जाती हैं। घरेलू पालित जन्तुओं की नसलें स्वयं मनुष्य भी उत्पन्न कर लिया करता है। यद्यपि सृष्टि के सभी जन्तु परिवर्तनशील हैं तथापि घरेलू पालित जन्तुओं में नाना प्रकार के परिवर्तन सब से अधिक और शीघ्रता के साथ हो जाया करते हैं क्योंकि उनकी परिस्थिति,

रहन-सहन और जीवन में सर्वत्र बहुत भिन्नता होती है। लीस्टरशायर की भेड़ों के दो गल्लों में, जो प्रथमतः एक सी ही थीं और जिनमें किसी अन्य प्रकार की भेड़ें कभी मिलने नहीं पाईं, केवल ५० वर्ष में ऐसे भेद हो गये कि वे पृथक् पृथक् नसलों के जन्तु प्रतीत होने लगीं।

कभी कभी मनुष्य घरेलू जन्तुओं की, अपनी आवश्यकता के अनुसार, नई नई नसलें उत्पन्न कर लेता है। अरब में एक ही जाति-भेद के ऊँटों में से मोटे और बलवान् छाँट के प्रत्युत्पत्ति कराने से एक प्रकार के मोटे, भारी और मंदगामी ऊँट पैदा कर लिये गये हैं जो बोझ लादने के काम में आते हैं। उसी जातिभेद के लंबे दुर्बल जन्तु छाँट के सन्तान पैदा कराने से द्रुतगामी, छरहरे शरीर के ऊँट उत्पन्न हो गये हैं जो सवारी के काम में आते हैं। ये ऊँट की नसलें इन दोनों प्रकार के जन्तुओं के गुण वंशानुक्रम से परम्परागत हो गये हैं।

यह बात स्मरण रखने योग्य है कि जन्तु-जगत् के ये सारे भागानुभाग प्राकृतिक नहीं हैं वरन् कृत्रिम हैं। प्रकृति ने जीव-जन्तुओं को भिन्न भिन्न कक्षाओं, वंश, जाति अथवा जातिभेदों में नहीं गढ़ा था। इस पृथ्वी पर जब जीव जगत् का प्रादुर्भाव हुआ था तो संभवतः समस्त प्राणी एक ही आकार के अथवा कुछ निर्दिष्ट आकारों के उत्पन्न हुए थे जिनका शारीरिक संगठन अत्यन्त क्षुद्र और सीधा साधा था। तत्पश्चात् कुछ विशेष नियमों के अनुसार उनमें परिवर्तन होते गये। क्षुद्र से क्षुद्र जीव, विकास के द्वारा ऊँची श्रेणी के जन्तु बन गये और अब भी बनते जाते हैं। यह सृष्टि परिवर्तनशील और उन्नतिशील है। परिवर्तन ही के द्वारा नये नये आकारों के, और नये नये संहननों से युक्त, प्राणी उत्पन्न हुए और अब भी होते जाते हैं। प्रत्येक प्राणी में प्रकृति परिवर्तन करके एक अवस्था से उसे दूसरी अवस्था को पहुँचाती है

और इन परिवर्तनों के आधार पर जन्तुशास्त्रवेत्ता जीव-जन्तुओं को वंश, जाति आदि भागानुभागों में विभक्त कर लेते हैं।

जन्तुशास्त्रविशारदों ने जन्तु-जगत् के भागानुभाग करने में शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों का अवलम्बन किया है। अँगरेज़ी प्रोफ़ेसर ओएन (Owen) ने मस्तिष्क की बनावट के आधार पर उसके भागानुभाग किये हैं। स्वीडन के विद्वान् लिनी (Linne) ने हाथ-पैर की रचना का आश्रय लिया है। फ्रांसीसी विज्ञानवेत्ता कुवे (Cuvier) ने जन्तु-जगत् के भागानुभाग करने में विशेष कर दाँतों पर ध्यान दिया है।

स्तनपोषित समुदाय को भिन्न भिन्न कक्षाओं में विभाजित करने के लिए जिस प्रणाली का हमने अनुसरण किया है उसका विस्तार से वर्णन नीचे दिया जाता है। उससे प्रकाशित होगा कि स्तनपोषित जन्तु किन आधारों पर कक्षाओं (Orders) में विभक्त किये गये हैं और स्तनपोषित जगत् में प्रत्येक कक्षा के जन्तुओं का स्थान कहाँ पर है।

इस प्रणाली के अनुसार स्तनपोषित जन्तु पहिले दो खण्डों में विभक्त किये गये हैं, अर्थात्—

(१) प्लेसेण्टल (Placental), और (२) इम्प्लेसेण्टल (Implacental)।

ये दोनों शब्द प्लेसेण्टा शब्द से बने हैं जिसका अर्थ है नाल। इम्प्लेसेण्टल खण्ड में वे जन्तु हैं जिनके बच्चे गर्भ में नाल के द्वारा नहीं पलते। वे अपूर्ण अवस्था में उत्पन्न होते हैं और जन्म के पश्चात् माता के दूध से पलते हैं। इस खण्ड में केवल दो कक्षायें हैं, अर्थात्

(१) मोनोट्रिमेटा (Monotremata) जिनको "एकछिद्री कक्षा" का नाम दिया गया है, और

(२) मार्स्युपेलिया (Marsupialia) जिनको "थैलीवाली कक्षा" का नाम दिया गया है।

इम्प्लेसेण्टल खण्ड के जन्तुओं को इस प्रकार अलग करके जब शेष जन्तुओं की दंत-रचना पर हम ध्यान देते हैं तो विदित होता है कि कुछ जन्तु ऐसे हैं जिनके मुँह में चारों प्रकार के दाँत विद्यमान होते हैं। जन्तु-शास्त्रवित् ब्लाइथ ने इनको टाइपोडानशिया (Typodontia) का नाम दिया है। इनको यह नाम दिया जाने का कारण यह है कि इनकी दंतरचना "स्थितिदर्शक" ढंग की है। दाँतों की रचना जिस प्रकार की होनी चाहिए वैसी ही इनकी है। इस भाग में बन्दर, चमगादड़, मांसभुक् जन्तु इत्यादि सम्मिलित हैं जिनकी शारीरिक रचना स्तनपोषित जन्तुओं में सर्वश्रेष्ठ है। यह जानना भी पाठकों के लिए रोचक होगा कि मनुष्य भी इसी टाइपो-डानशिया भाग का एक स्तनपोषित जन्तु है।

नालपालित श्रेणी में फिर बहुत से जन्तु ऐसे हैं जिनके मुँह में बहुधा दो प्रकार के दाँत होते हैं, तीन प्रकार के दाँत शायद ही किसी के मुँह में होते हैं। इस भाग को ब्लाइथ ने "डिप्लोडानशिया" (Diplodontia) का नाम दिया है। इस भाग के जन्तुओं की शारी-रिक रचना उतनी उत्तम नहीं होती जितनी कि पहले भाग के प्राणियों की होती है। डिप्लोडानशिया भाग में चूहे, गिलहरी, बारहसिंगे, भेड़, गाय, बैल, हाथी, सुअर आदि हैं। ये मुख्यतः शाकभोजी हैं।

तीसरे भाग को ब्लाइथ ने "आइसोडानशिया" (Isodontia) का नाम दिया है। इसमें ह्वेल, पार्पस आदि जल के कुछ प्राणी हैं। इनके मुँह में सब दाँत एक ही आकार के होते हैं।

इस प्रकार नालपालित जन्तुओं को, दंत-रचना के विचार से, तीन भाग में विभक्त करके प्रत्येक समूह श्रेणियों (Orders) में बाँटा गया है।

टाइपोडानशिया समूह के जन्तुओं में से बन्दर और चमगादड़ के शरीर पर केवल एक तह बालों की पाई जाती है, न तो उनके

शरीर पर ऊन होता है, न कोई भातरी तह बालों की होती है। इनकी लिङ्गेन्द्रिय शरीर की खाल से आवृत्त नहीं होती वरन् अलग होती है। मनुष्य के अतिरिक्त यह विशेषता किसी अन्य जन्तु में नहीं पाई जाती। इन जन्तुओं को "प्रधानभागीय" (Primates) के नाम से व्यक्त किया जाता है।

इस समूह में (मनुष्य को छोड़) दो श्रेणियाँ हैं, अर्थात्—

(१) चौदस्ते (Quadrumana)

जिसमें बनमानस, बन्दर, और लीमर की जातियों (Genera) को स्थान दिया जाता है। ये जन्तु अपना अँगूठा झुका के अँगुलियों से मिला सकते हैं (Opposable thumb)। यह शक्ति भी इन जन्तुओं की प्रधानता का द्योतक है, क्योंकि हाथों की उपयोगिता अँगूठे और अँगुलियों के मिल सकने ही पर बहुत कुछ निर्भर है।

(२) चमगादड़ (Cheiroptera)

इस श्रेणी के सब जन्तुओं के हाथ और भुजा एक झिल्ली से मढ़े होते हैं जिसके द्वारा वे उड़ सकते हैं।

टाइपोडानशिया भाग के शेष जन्तुओं के शरीर पर दो प्रकार के बाल होते हैं। उनके शरीर पर बालों की एक भीतरी तह अथवा ऊन भी हुआ करता है। इनको "द्वितीयभागीय" (Secundates) का नाम दिया गया है। इस भाग में भी दो उपभाग हैं, अर्थात्—

(१)

मांसभुक् (Carnivora)

इस श्रेणी के जन्तु स्थल के हिंस्र शिकारी प्राणी हैं। पुष्ट नुकीले कीले और डाढ़ों पर तीक्ष्ण धारें, इनकी दंतरचना

की विशेषताएँ हैं। इनकी डाढ़ों पर नोकें या गाँठें कभी नहीं होतीं।

(२)

कीटभुक् (Insectivora)

इस श्रेणी में कुछ छोटे छोटे स्तनपोषित प्राणी हैं जिनका निर्वाह छोटे छोटे कीड़े-मकोड़ों पर होता है। कीड़ों को कुचलने के लिए इनकी डाढ़ों पर छोटी छोटी नोकें या गाँठें उठी होती हैं। मांसभुक् कक्षा के जन्तुओं की अपेक्षा इनके मुँह में दाँतों की संख्या भी अधिक होती है।

डिप्लोडानशिया भाग के जन्तु बाह्यरूप में तथा आंतरिक रचना में एक दूसरे से बहुत विभिन्न होते हैं। इसको निम्न-लिखित चार कक्षाओं में विभक्त किया जाता है:—

(१) कुतरनेवाले जन्तु (Rodentia)

उपरोक्त कक्षाओं के समान कुतरनेवाले जन्तुओं के भी पञ्जे और नख होते हैं। इनके मुँह में केवल दो प्रकार के दाँत होते हैं, अर्थात् सामने को दो कृंतक दाँत छेनी के समान तीक्ष्ण धार के होते हैं, और गालों में कुछ डाढ़ें होती हैं जो चपटी होती हैं।

(२) दंतविहीन जन्तु (Edentates)

इनके नख बड़े, भुथरे और खनित्र होते हैं। इनकी दंत-रचना की यह विशेषता है कि कृंतक दाँत और कीले कभी नहीं होते और किसी किसी जाति के मुँह में किसी प्रकार के दाँत नहीं होते।

डिप्लोडानशिया भाग की शेष दो श्रेणियों के जन्तुओं के नख और पञ्जे नहीं होते वरन् उनके स्थान पर खुर होते हैं। खुरवाले जन्तु सब दो श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं, अर्थात्—

(१) रोमन्थकार (Ruminants)

इस श्रेणी के सब जन्तु जुगाली करनेवाले प्राणी हैं। इनके खुर दो भागों में विभक्त होते हैं। ऊँट के अतिरिक्त, ऊपरवाले जबड़े में कृंतक दाँत किसी के नहीं होते। डाढ़ें चपटी होती हैं।

(२) मोटी खालवाले (Pachydermata)

जितने खुरवाले जन्तु जुगाली करनेवाले नहीं हैं उन सबको इस श्रेणी में स्थान दिया जाता है। खुरदार होने के अतिरिक्त इस श्रेणी के प्राणियों में एक दूसरे से बहुत कम समानता है। उनकी रचना, रूप, रङ्ग, क़द आदि में बहुत अन्तर है। हाथी, घोड़ा, सुअर, हिपो-पोटेमस, गैंडा आदि सब इसी कक्षा में स्थान पाते हैं। देखने से इन जन्तुओं में कोई ऐसा विशेष जाति-लक्षण नहीं है जिसके आधार पर सबको एक श्रेणी में रखना युक्तिसङ्गत हो।

आइसोडानशिया भाग में जल के स्तनपोषित मांसभुक् जीवों को स्थान दिया जाता है। इनके मुँह में सब दाँत एक ही आकार के होते हैं। इसके अन्तर्गत केवल एक ही वर्ग है।

(१) सिटेशिया (Cetacea)

नोट।—साइरीनिया (Sirenia) वर्ग के जीवों को कोई तो हरितभोजी सिटेशिया मान के उसी में स्थान देते हैं, और कोई मोटी खालवाली श्रेणी में।

इसी प्रकार पिनिपीडिया (Pinnipedia) वर्ग के जीवों को वास्तव में मांसभुक्-श्रेणी में स्थान मिलना चाहिए।

किन्तु बहुधा इन जन्तुओं को भिन्न भिन्न श्रेणियों में स्थान दिया जाता है। जल के स्तनपोषित प्राणियों को स्थल के प्राणियों से अलग रखना ही उचित जान पड़ता है।

उपरोक्त भागानुभागों का दिग्दर्शन

(क) नालपालित जन्तु (Placentals)

१. टाइपोडानशिया (Typodontia)

(चार प्रकार के दाँतवाले)

(१) प्रधान भागीय (Primates)

- चौदस्ते (Quadrumana)
- चमगादड़ (Cheiroptera)

(२) द्वितीय भागीय (Secundates)

- मांसभुक् (Carnivora)
- कीटभुक् (Insectivora)

२. डिप्लोडानशिया (Diplodontia)

(दो प्रकार के दाँतवाले)

(१) पञ्जोंवाले जन्तु (Unguilata)

- कुतरनेवाले जन्तु (Rodentia)
- दंतविहीन जन्तु (Edentata)

(२) खुरदार जन्तु (Ungulata)

- रोमंथकर (Ruminantia,
- मोटी खालवाले (Pachydermata)

३. **आइसोडानशिया** (Isodontia)

(एक प्रकार के दाँतवाले)

सिटेशिया (Cetacea)

(ख) **इम्प्लेसेण्टल** (Implacental)

जिनके बच्चे नाल के द्वारा नहीं पलते

थैलीवाले जन्तु (Marsupialia)

एकछिद्री जन्तु (Monotremata)

इस ग्रन्थ में सबसे पहले हम एक-छिद्री जन्तुओं का वर्णन आरम्भ करेंगे। स्तनपोषित समुदाय में, शारीरिक रचना की दृष्टि से, ये सबसे क्षुद्र जन्तु हैं। तत्पश्चात् रचना की उत्कृष्टता और इन्द्रियों की शक्तियों के विचार से क्रमानुसार अन्यान्य का वर्णन देंगे। यद्यपि बहुत सी दशाओं में यह निर्णय करना कठिन है कि किसी दो निर्दिष्ट श्रेणियों में से किस श्रेणी के जन्तु, रचना आदि में श्रेष्ठ हैं तथापि निम्नाङ्कित क्रम से अध्ययन करने में हमारा उद्देश्य बहुत कुछ सफल होगा:—

(१) **एक-छिद्री जन्तु** Monotremata.
(२) **थैलीवाले जन्तु** Marsupialia.
(३) **सिटेशिया** Cetacea.
(४) **साइरीनिया** Sirenia.
(५) **पिनिपीडिया** Pinnipedia.
(६) **मोटी खालवाले जन्तु** Pachydermata.
(७) **जुगाली करनेवाले जन्तु** Ruminantia.
(८) **दंतविहीन जन्तु** Edentata.
(९) **मांसभुक् जन्तु** Carnivora.

(१०) खुतरनेवाले जन्तु Rodentia.

(११) कीटभुक् जन्तु Insectivora.

(१२) चमगादड़ Cheiroptera.

(१३) चौदस्ते Quadrumana.

हम आशा करते हैं कि जीव-जन्तुओं के वृत्तान्त का अध्ययन करते हुए प्रसंगतः प्रकृति के गूढ़ नियमों और रहस्यों का ज्ञान प्राप्त होने का भी अवसर प्राप्त होगा। सृष्टिसञ्चालन के नियमों का समझना हमारी परिमित बुद्धि से परे है। अस्तित्व के लिए पृथ्वी पर जो संग्राम मचा हुआ है उसका रहस्य समझ में नहीं आता। कीट को पक्षी खा जाता है, बाज़ पक्षी का भक्षण कर लेता है, बिल्ली बाज़ को मार डालती है, कुत्ता बिल्ली का संहार करता है, तेंदुआ कुत्ते को ग्रास बना लेता है, अन्त में मनुष्य तेंदुए को जीवित नहीं छोड़ता। नित्य प्रति ऐसी घटनाएँ देखकर हमें प्रतीत होता है कि इस संसार का सञ्चालन एक दुर्निवार, 'शक्ति'-रूपी नियम पर अवलम्बित है। संसार में बलवान् ही प्रभुत्व को प्राप्त होते दिखाई देते हैं। जो शक्तिशाली हैं, जिनके शरीर में बल है, जिनकी प्रकृति में क्रूरता है वही विजय लाभ करते हैं, निर्बल, अहिंसक एवं नम्रशील का कहीं ठिकाना नहीं।

किन्तु इसे मानने में बुद्धि संकोच करती है कि प्रकृति ने इस सृष्टि को हिंसा, हत्या, व अत्याचार के दारुण क्षेत्र के रूप में रचा है, जिसमें दुर्बल और नम्रशील केवल सताये जाने और बलवानों के पैरों के तले रौंदे जाने ही के लिए उत्पन्न किये गये हैं।

संसार की प्रगति का गाढ़ और विशाल दृष्टि से निरीक्षण करने से हमारे उपरोक्त भ्रम दूर हो जाते हैं और हमको प्रकृति के यथार्थ और स्थिर नियमों का अनुभव होने पर ज्ञात होता है कि अंत में पशुबल का विजय नहीं होता। अस्तित्व-रक्षा के संग्राम में

(Struggle for Existence) क्रूर और बलवान् कुछ थोड़े ही समय के लिए विजयी प्रतीत होते हैं। प्रकृति का दयार्द्र अभिप्राय और मन्तव्य शीघ्र ही प्रकट हो जाता है। यह ज़रूर है कि प्रकृति को अपने दयालु व प्रेमयुक्त आशय के प्राप्त और सिद्ध करने में बहुत समय लगता है। क्योंकि प्रकृति के लिए एक एक युग एक दिवस के बराबर है। किन्तु प्रकृति का संकल्प बिना सफल हुए नहीं रहता। अन्त में अहिंसक और नम्रशील जन्तुओं ही का बोल बाला होता है और क्रूर, हिंसक तथा पशुबल से अत्याचार करनेवाले जन्तुओं का नाश होता है।

जन्तु-जगत् में इस सिद्धान्त के उदाहरणों की कमी नहीं है। कितने एक कठोर, दीर्घ और हिंसक पशुओं का प्रकृति विध्वंस कर चुकी है। विकटकाय और महान् शक्तिवाले उरंगम (the extinct reptiles) जो पृथ्वी पर, पुरातन युगों में, प्रभु और अधिपति बने घूमते थे, और समकालीन छोटे, निस्सहाय प्राणियों के लिए कालस्वरूप थे, इस संसार से नष्ट होगये। वे बाघ भी जिनके खड्गरूपी दाँत (Sabre-toothed tiger) उनकी भयंकरता का प्रमाण देते थे, आज दिखाई नहीं देते। दीर्घ और बलवान् मैमथ (एक प्रकार का हाथी) की आज केवल हड्डियाँ ही मिलती हैं। सौ वर्ष पहले शेर-बबर उत्तरी हिन्द में बनारस के निकट तक मिलता था, किन्तु आज वह सिंध और काठियावाड़ के शुष्क मैदानों में सीमाबद्ध है और दिन प्रतिदिन उसकी संख्या घटती जा रही है।

इसके विरुद्ध अहिंसक घोड़ा लाखों वर्ष से, अपनी उन्नति करता हुआ, संसार में आज भी प्रतिपत्ति लाभ कर रहा है। टेपिर, गैंडे और हिपोपोटेमस अपने भद्दे, लद्धड़ शरीरों को लिये संसार में अब तक अवशेष हैं। नम्रशील ऊँट युगों से सानन्द

जीवन व्यतीत कर रहा है। हरिण और बारहसिंगे, जो हिंस्र जन्तुओं के सदा से शिकार रहे हैं, आज भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं।

विकास-वाद (Theory of Evolution) के अनुसार इन बलवान् हिंसक जन्तुओं का विध्वंस इस कारण होगया कि वे अपने को 'निकटवर्त्ती स्थिति' के अनुकूल बनाने में असमर्थ रहे। ठीक है। किन्तु उनको अपनी निकटवर्त्ती स्थिति के अनुकूल परिणत और परिवर्तित न होने देने में ही तो प्रकृति का दयार्द्र अभिप्राय सिद्ध होता है।

मुखपृष्ठ]   स्तन-पोषित प्राणियों का विकास

एकछिद्री श्रेणी

(ORDER OF MONOTREMATA)

स्तनपोषित-समुदाय में "एकछिद्री श्रेणी" के जन्तु सबसे नीचो श्रेणी के जीव हैं, यहाँ तक कि उनमें कुछ जाति-लक्षण उरंगम और पक्षियों के मौजूद हैं। वे उस पुरातन काल के स्मारक हैं जब पृथ्वी पर उरंगम-समुदाय के प्राणियों का राज्य था। युग पर युग व्यतीत हो गये। बहुतेरे उरंगम जीव पक्षी बन गये और बहुतेरे लुप्त हो गये और पृथ्वी पर उनकी स्मृति-मात्र शेष रह गई। किन्तु एकछिद्री जीव लकीर के फ़क़ीर ही बने रहे। विकास के मार्ग पर उन्होंने बहुत थोड़ी उन्नति की। कुछ जातिलक्षण उन्होंने स्तन-पोषित जीवों के अवश्य प्राप्त कर लिये हैं, किन्तु उरंगम और पक्षियों के कुछ लक्षण अब तक उनकी रचना में विद्यमान हैं। प्राणिशास्त्र के विद्वानों के लिए एकछिद्री जीवों की रचना एक रहस्य-पूर्ण समस्या है।

एकछिद्री श्रेणी के जन्तु आस्ट्रेलिया के निकटवर्ती टापुओं में, एवं टैसमेनिया व न्यूगिनी द्वीपों में मिलते हैं। इस श्रेणी में केवल दो जातियाँ पृथ्वी पर पाई जाती हैं, अर्थात्—

(१) डकबिल (Duckbill)

(२) एकिडना (Echidna)

इस श्रेणी को "एकछिद्री" का नाम दिये जाने का क्या कारण है? स्तनपोषित-समुदाय में इसी श्रेणी के जीवों में यह विचित्रता

पाई जाती है कि मल और मूत्र के निकलने के लिए शरीर में एक ही छिद्र होता है।

डक-बिल (DUCKBILL PLATYPUS)

डक-बिल एकछिद्री श्रेणी की एक जाति (Genus) है। डक-बिल का अर्थ है 'बतक की चोंच'। इस जन्तु को डक-बिल का नाम दिये जाने का कारण यही है कि उसके मुँह से बतक की सी चोंच निकली होती है। डक-बिल छोटा सा जन्तु होता है। शरीर की लंबाई १½ फुट और दुम ६ इंच की होती है। मादा नर से कुछ छोटी होती है। शरीर के ऊपरी भाग का रंग धुमैला-भूरा होता है और निम्न भाग का भूरा। दुम चौड़ी और चपटी होती है। टाँगें छोटी किन्तु पुष्ट, और अगले पंजों में नुकीले सीधे नख होते हैं। अगले पंजे झिल्ली से मढ़े होते हैं और झिल्ली नखों के आगे झालर के समान लटकती है। झिल्ली से मढ़े हुए पंजे और चपटी दुम डक-बिल को जल में तैरने में बड़ी सहायता देते हैं।

पिछले पंजों पर झिल्ली नहीं मढ़ी होती और इनमें मुड़े हुए बड़े बड़े नख होते हैं।

डक-बिल की चोंच काले रंग की कोमल खाल से ढकी होती है। उसके मुँह में कोई दाँत नहीं होता। दाँतों की जगह केवल हड्डी की प्लेटें होती हैं जिनमें से कुछ नोकें निकली होती हैं। ये नोकें दाँतों का काम देती हैं।

नरों की पिछली एड़ियों पर छोटी सी सींग के आकार का एक एक नख होता है। ये खोखले नख पीछे की ओर एक नली में जुड़े होते हैं जो जाँघ तक चली जाती है। नली के अंत पर एक ग्रन्थि होती है जिसमें एक द्रव उत्पन्न होता है। नली में हो कर यह द्रव नखों तक पहुँचता है और डक-बिल उसको वेग से छिड़क सकता है।

यह निश्चित नहीं है कि इस विशेष अंग की क्या उपयोगिता है। संभव है कि ये नख उसके आक्रमण के हथियार हों। आस्ट्रेलिया के आदिनिवासी प्राय: ऐसी घटनाएँ सुनाते हैं कि इस द्रव से मनुष्य का शरीर सूज जाता है।

सबसे विलक्षण बात डकबिल की यह है कि वह अंडज है, अर्थात् उसकी मादा अंडा देती है। प्रश्न यह है कि इस अंडज जीव को स्तनपोषित समुदाय में क्यों स्थान मिला। कारण यह है कि स्तनपोषित-समुदाय का प्रधान जातिलक्षण उसमें उपस्थित है। जब डकबिल के बच्चे अंडे से निकलते हैं तो माता उनका पालन स्तनों से दूध पिला कर करती है।

यूरप के विद्वानों को जब इस विशेषता का पता न था तो आस्ट्रेलिया के आदिमनिवासी बतलाया करते थे कि डकबिल की मादा अंडा तो देती ही है पर बच्चों को दूध भी पिलाती है। जन्तुशास्त्रज्ञ इनको मूढ़ विश्वास समझते थे। किन्तु अंत में इन दोनों बातों की सत्यता प्रमाणित हो गई।

डकबिल के शरीर की कई हड्डियाँ पक्षियों की हड्डियों से बहुत मिलती हैं। शारीरिक रचना में वह उरंगम प्राणियों के समान भी किसी किसी बात में होता है। उरंगम जीवों का रक्त ठंडा होता है। डकबिल के रक्त में नाम-मात्र को थोड़ी सी गर्मी होती है। स्तनपोषित-समुदाय के अन्य जीवों की अपेक्षा उसका रक्त बहुत ठंडा होता है। पक्षी, उरंगम, और स्तनपोषित, तीनों समुदायों से उसका थोड़ा बहुत सम्बन्ध स्पष्ट रूप से देख पड़ता है। यथार्थ में उसकी रचना विचित्र ही है। एक जन्तुशास्त्रवित् ने उसकी विलक्षणता का उल्लेख बड़ी उत्तम भाषा में किया है। आप लिखते हैं कि "आस्ट्रेलिया, जहाँ हर एक बात उल्टी होती है, जहाँ उत्तरी हवा गरम और दक्षिणी ठंढी होती है, जहाँ नासपाती का मोटा भाग

डाल की ओर लगता है, जहाँ बेर की गुठली बाहर होती है, वहीं यह अद्भुत जीव होता है। जब यह विचित्र जन्तु पहले-पहल यूरप लाया गया था तो यह समझा गया था कि किसी मसखरे ने किसी अपरिचित जन्तु के मुँह में चतुराई के साथ बतक की चोंच ठूँस दी है।"

डकबिल अधिकांश समय जल में व्यतीत करता है। नदियों या झीलों के ढालू किनारे पर वह बिल खोद लिया करता है। बिल का मुँह जल के भीतर होता है। मुँह से पहले ऊपर की ओर को खोद के वह एक सुरंग बनाता है और सुरंग के अंत पर एक गोल कमरा। इसी कमरे में मादा अपने अण्डे देती है जिनकी संख्या एक से चार तक हुआ करती है।

डकबिल अपना निर्वाह कीड़े मकोड़ों पर किया करता है।

एकिडना (THE ECHIDNA)

डकबिल के भाई बन्धुओं में पृथ्वी पर केवल एकिडना विद्यमान है। इसका शरीर भारी और टाँगें बहुत छोटी छोटी होती हैं, जिनमें अति पुष्ट खनितृ नख होते हैं। चोंच बहुत लंबी और एक नली के समान होती है। चोंच के भीतर लंबी, पतली जीभ होती है जो बाहर दूर तक निकल आती है।

एकिडना भी स्तनपोषित जीव है। अण्डों से निकल आने पर बच्चों का पालन स्तनों के द्वारा होता है। एकिडना के शरीर पर साही के से काँटे होते हैं।

एकिडना की तीन उपजातियाँ (Species) आस्ट्रेलिया में तथा समीपवर्ती द्वीपों में मिलती हैं।

देशी साही (Echidna Aculeata)—यह उपजाति आस्ट्रेलिया में देशी साही के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि उसके शरीर पर साही

के से काँटे होते हैं, जिनका रंग पीला होता है परन्तु जिनकी नोकें काली होती हैं। उसके शरीर पर मोटे मोटे बाल भी होते हैं किन्तु वे काँटों के कारण दिखाई नहीं पड़ते।

एकिडना में खोदने की अद्वितीय शक्ति होती है। उसके पञ्जे मशीन के समान चलते हैं। उसको खोदते देख के ऐसा प्रतीत होता है मानो वह दलदल में धँसा चला जा रहा हो। आँख झपकते वह बिल खोद भूमि में घुस जाता है। कड़ी से कड़ी धरती को वह बालू के समान खोद डालता है। उसको बन्द रखने के लिए यह आवश्यक है कि नीचे लकड़ी या पत्थर का फ़र्श हो, नहीं तो सवेरा होते ही उसके दर्शन नहीं होते।

एकिडना कीटभुक् है और विशेषकर चींटियों पर निर्वाह करता है। सभी कीटभोजियों के मुँह में लंबी जीभ होती है। एकिडना के मुँह में भी लंबी जीभ होती है जो बाहर दूर तक निकल आती है। जीभ पर चिपकदार लस होता है। प्रकृति ने कैसा उत्तम उपाय कर दिया है! एकिडना ने जीभ निकाली नहीं कि सैकड़ों चींटियाँ उस पर चिपकी चली आती हैं।

शत्रु के सामने एकिडना भी साहो के समान गेंद सा गोल बन कर काँटों को खड़ा कर लेता है।

थैलीवाले जन्तु

(THE MARSUPIALS)

स्तनपोषित-समुदाय की सबसे नीची श्रेणी के प्राणियों से परिचय प्राप्त करने के पश्चात् जब हम ऊपर की ओर बढ़ते हैं तो फिर पृथ्वी के उसी अद्भुत महाप्रदेश का दृश्य मिलता है जहाँ नासपाती डाल में उलटी लगती है और बेर की गुठली फल के ऊपर होती है। थैलीवाले प्राणी भी आस्ट्रेलिया के विस्तृत द्वीप के निवासी हैं जिसकी वनस्पति एवं जन्तु-जगत् पृथ्वी के अन्य सभी भूभागों से निराले हैं और विचित्रता यह है कि वहाँ थैलीवाले जन्तुओं की केवल एक दो जातियाँ ही नहीं, वरन् कुछ थोड़े से जन्तुओं के अतिरिक्त, सारा प्राणिवर्ग ही थैलीवाले जन्तुओं का है। हमारी तरफ़ के स्तनपोषित जन्तुओं में से केवल कुछ थोड़े से कुतरनेवाले जन्तु (Rodents), कुछ चमगादड़ और जंगली कुत्ते तो वहाँ दिखाई पड़ते हैं, शेष सारा प्राणिवर्ग थैलीवाले जन्तुओं का ही है। वहाँ न तो खुरदार जन्तु हैं, न बन्दर, न वह मांसभोजी जिनसे हम परिचित हैं। शेर और बाघ, भेड़िया और सियार, गैंडा और हिपोपोटेमस, हरिण और बारहसिंगों के वहाँ दर्शन नहीं मिलते। इन सबके बदले वहाँ एक नई सृष्टि ही दृष्टिगोचर होती है जिसमें मांसभुक् स्तनपोषित जन्तु हैं तो थैलीवाले, हरितभोजी प्राणी हैं तो थैलीवाले, और कीटभुक् हैं तो थैलीवाले।

अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि किसी पुरातन युग में आस्ट्रेलिया महाद्वीप की भूमि अन्य महाद्वीपों से पृथक् न थी, वरन् पृथ्वी के दक्षिण में एक सुविशाल महाद्वीप था जो आस्ट्रेलिया को दक्षिणी अमेरिका से मिलाता था। उस पूर्व ऐतिहासिक युग में थैलीवाले जन्तु प्राय: सभी महाद्वीपों में विद्यमान थे। इँग्लेंड एवं फ्रान्स में थैलीवाले जन्तुओं के "प्रस्तरविकल्प" (Fossils) मिले हैं। दक्षिणी अमेरिका में थैलीवाले ओपोसम (Opossum) जाति के प्राणी अब भी विद्यमान हैं। इससे निश्चित प्रमाण मिलता है कि किसी युग में आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरिका की भूमि अवश्य मिली हुई होगी।

फिर एक ऐसा समय आया जब आस्ट्रेलिया की भूमि, विस्तीर्ण महासागरों के द्वारा सभी अन्य भूभागों से अलग हो गई। क्रमश: पृथ्वी के अनेक भूभागों में कतिपय महान्, सुगठित, और भीषण स्तनपोषित जन्तुओं का आविर्भाव हुआ। अस्तित्व रक्षा का संग्राम दिन दिन घोर से घोरतर होता गया। उत्तरी महाद्वीपों पर से थैलीवाले जन्तु सब लुप्त हो गये। किन्तु आस्ट्रेलिया की सारी भूमि थैलीवालों के अधिकार में ही रही। स्तनपोषितसमुदाय की सबसे नीची श्रेणियों के जीव, अपने प्राथमिक आकार धारण किये हुए अब भी वहाँ विद्यमान हैं। एकछिद्री जन्तु और थैलीवाले प्राणी पृथ्वी के सबसे पुराने स्तनपोषित जन्तु हैं।

यह एक रोचक बात है कि आस्ट्रेलिया और एशिया के बीच में एक रेखा खींची जा सकती है जो उक्त दोनों महाद्वीपों के जन्तु-जगत् को अलग करती है। इसको 'वालेस लाइन' कहते हैं। वालेस लाइन के एक ओर एशियाई पशु-संसार है और दूसरी ओर आस्ट्रेलिया का। इस रेखा के पास ही एक ओर बाली नामक

एक छोटा सा द्वीप है और दूसरी ओर रेखा से मिला हुआ लोम्बक द्वीप है। यद्यपि बाली और लोम्बक एक दूसरे के समीप हैं तथापि दोनों के जन्तु-जगत् में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है। बाली में सब एशियाई जन्तु मिलते हैं किन्तु लोम्बक में थैलीवाले जन्तुओं का राज्य है। थैलीवालों के अतिरिक्त वहाँ हमको अन्य स्तनपोषित जन्तुओं के दर्शन नहीं मिलते।

मार्स्यूपियल अर्थात् थैलीवाली कक्षा के प्राणियों में मुख्य विशेषता यह है कि उनके बस्तिदेश में दो विशेष लम्बी लम्बी और पतली हड्डियाँ होती हैं और मादाओं में उक्त हड्डियों पर सधी हुई पेट के ऊपर खाल की एक थैली होती है। इसी थैली के कारण इस श्रेणी को मार्स्यूपियल का नाम दिया गया है। मार्स्यूपियम (Marsupiam) का अर्थ है 'थैली' और उसी से मार्स्यूपियल शब्द बना है।

ये विशेष हड्डियाँ मादाओं ही में नहीं वरन् नरों के शरीर में भी होती हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि इस श्रेणी में कुछ जन्तु ऐसे भी हैं जिनके थैली नहीं होती।

थैलीवाले जन्तु इतनी नीची अवस्था में तो नहीं हैं कि उनके अण्डे हों किन्तु उनके बच्चे एक अति क्षुद्र और अपूर्ण अवस्था में माता के गर्भ से जन्म पाते हैं। इनके बच्चे 'द्विज' कहे जा सकते हैं। माता के गर्भ से जब वे बाहर आते हैं तो उनके अंगों की रचना अपूर्ण होती है। वे बहुत ही छोटे, और निस्सहाय अवस्था में मांस के लोथड़ों के समान पैदा होते हैं जो न हाथ हिलाते हैं न पैर। भेड़ की बराबर काँगरू का बच्चा जन्म के समय कोई एक इंच का होता है। बड़ी जाति के काँगरू के बच्चे गर्भ में केवल ४-५ सप्ताह रहते हैं तत्पश्चात् ७-८ मास तक उनका पालन पेट पर की थैली में हुआ करता है।

मारस्यूपियल की मादाओं के स्तन थैली के भीतर ही होते हैं। बच्चों के उत्पन्न होते ही माँ अगले पञ्जों से थैली की खाल को दोनों ओर खींच के फैलाती है और एक एक बच्चे को मुँह में दबा के थैली के भीतर पहुँचा, उसका मुँह एक स्तन से लगा देती है। बच्चे में उतनी सामर्थ्य और चैतन्यता नहीं होती कि वह स्वयं स्तन को ओठों से दबा ले। अतः प्रकृति ने काँगरू की मादा के स्तनों की नोकें कड़ी रची हैं। बच्चों के मुँह में वे सहज से घुस जाती हैं और तब फूल जाती हैं। फूल जाने पर फिर वे बच्चों के मुँह में से नहीं निकलतीं। जब तक बच्चों के अंगों की वृद्धि पूरी नहीं हो जाती तब तक वे स्तनों को मुँह में दाबे रहते हैं। यदि कभी बलात् कोई बच्चा खींच के अलग कर दिया जाय तो वह जीवित नहीं रहता।

जन्म के समय बच्चों में इतनी शक्ति भी नहीं होती कि वे स्तनों से दूध खींच सकें। माँ के स्तनों के भीतर प्रकृति ने कुछ ऐसी पेशियाँ रची हैं कि उनके सञ्चालन से दूध बच्चों के मुँह में अपने आप टपकने लगता है। शनैः शनैः बच्चे थैली में बढ़ने लगते हैं और कुछ मास में उनमें इतना सामर्थ्य आ जाता है कि वे दूध को स्वयं खींचने लगते हैं और स्तन से मुँह हटा कर उसको फिर दबा सकते हैं। आठवें मास में वे थैली के बाहर सिर निकाल निकाल कर चारों ओर का दृश्य देखने लगते हैं। शीघ्र ही थैली से बाहर कूद आने का भी साहस करने योग्य हो जाते हैं। बाहर निकल कर खेलते कूदते और घास चरते रहते हैं। किन्तु माँ से दूर कभी नहीं जाते और ज़रा सा भी आहट होते ही कूद कूद के फिर माँ की थैली में घुस जाते हैं।

मारस्यूपियल वर्ग के जिन जन्तुओं के पेट पर थैली नहीं होती उनके बच्चे भी क्षुद्र और अपूर्ण अवस्था में जन्म पाते हैं

किन्तु थैली की जगह वे माँ के पेट पर के बालों में छिपे स्तनों से लटके रहते हैं।

आस्ट्रेलिया और निकटवर्ती द्वीपों के बाहर थैलीवाले जन्तुओं की केवल एक जाति पाई जाती है अर्थात् आपोसम (Opossum) जो अमेरिका का निवासी है।

मारस्यूपियल श्रेणी पाँच भागों में विभक्त की जाती है, अर्थात्—

(१) काँगरू-वंश (Macropodidœ)
(२) डेस्यूरिडे-वंश (Dasyuridœ)
(३) पिरामिलिडे-वंश (Peramelidœ)
(४) डाईडेल्फ़िडे-वंश (Didelphidœ)
(५) फ़लेन्जर-वंश (Philangastidœ)

काँगरू-वंश

साधारण विवरण

इस वंश में काँगरू की तीन जातियों को स्थान दिया जाता है अर्थात्—

(१) मेक्रोपस (Macropus)—इस जाति के सब जातिभेद भूमि पर रहनेवाले हैं। इनकी अगली टाँगें बहुत छोटी और पिछली बहुत लम्बी होती हैं।

(२) डेंड्रोलेगस (Dendrolagus)—इसमें भी कई जातिभेद हैं जो पेड़ों पर रहा करते हैं। इनकी अगली पिछली टाँगों की लम्बाई में बहुत अन्तर नहीं होता।

(३) पोटोरूस (Potoroos)—यह छोटे छोटे जन्तु चूहे-काँगरू कहलाते हैं।

डकबिल (Duckbill) पृष्ठ ३६

कांगरू (Macropus) पृष्ठ ५०

डेस्यूरस (Dasyurus) पृष्ठ ५२

टेस्मेनिया का पिशाच (Dasyurus urinus) पृष्ठ ५४

थाईलेसीनस (Thylacenus) पृष्ठ ५४

वर्जीनिया का आपोसम (Didelphys Virgiana) पृष्ठ ५७

मेक्रोपस काँगरू (MACROPUS)

काँगरू-वंश की मुख्य जाति मेक्रोपस है जो ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में सर्वत्र मिलती है। मेक्रोपस जाति के काँगरू का आस्ट्रेलिया से वैसा ही घनिष्ट सम्बन्ध है जैसा कि ऊँट का अरब से और हाथी का भारत से। आस्ट्रेलिया उपनिवेश का ध्यान आते ही इस अद्भुत जीव का चित्र भी आँखों के सामने घूम जाता है।

काँगरू को देख के सबसे पहले हमारा ध्यान उसकी बेमेल अगली और पिछली टाँगों की ओर आकर्षित होता है। पिछली टाँगें अत्यन्त लम्बी, पुष्ट, और बलिष्ट, किन्तु अगली निर्बल और छोटी छोटी होती हैं। अगली और पिछली टाँगों की तुलना करने से ऐसा जान पड़ता है मानो अगली किसी रोग के कारण सूख के पूर्ण वृद्धि को न पहुँच सकी हों।

काँगरू के शरीर का सारा बल पिछले भाग में होता है। कन्धे, शरीर का अग्रभाग, और अगली टाँगें निर्बल होती हैं।

प्रत्येक अगले पैर में पाँच उँगलियाँ होती हैं जिन पर मुड़े हुए नख होते हैं। पिछले पैरों की उँगलियों की रचना असाधारण होती है। इनमें से एक उँगली बहुत बड़ी और पुष्ट होती है जिस पर नुकीला और भीषण नख होता है। शत्रु पर आक्रमण करने में काँगरू इसी हथियार का प्रयोग किया करता है। इस बड़ी उँगली से बाहर की ओरवाली उँगली कुछ छोटी होती है और भीतर की ओर दो छोटी छोटी निर्बल उँगलियाँ होती हैं। इन छोटी उँगलियों से बैठने अथवा खड़े होने में कोई सहारा नहीं मिलता, और न उछलने ही में वे किसी प्रकार सहायक होती हैं।

काँगरू की दुम भी लम्बी और मोटी होती है और उसके शरीर का यह एक उपयोगी अंग है। काँगरू को बैठे हुए देख के तुरन्त समझ में आ जाता है कि दुम से उसको क्या लाभ है। दोनों पिछली टाँगों को जोड़ पर तोड़ के दुम को वह पीछे टेक लेता है और तिपाई सी बना के बैठ जाता है।

काँगरू की दंत-रचना भी विचित्र है। दाँतों की संख्या और रचना निम्न-लिखित है:—

कृंतक दन्त $\frac{३-३}{१-१}$, कीले $\frac{१-१}{०-०}$, दूधडाढ़ें $\frac{२-२}{२-२}$, डाढ़ें $\frac{४-४}{४-४}$ = ३४

स्तनपोषित जन्तुओं में काटनेवाले कृंतक दन्तों की संख्या ऊपर और नीचेवाले जबड़ों में समान हुआ करती है किन्तु काँगरू के ऊपरवाले जबड़े में कृंतक दाँतों के ३ जोड़े होते हैं, और नीचेवाले में केवल एक। ये नीचे के दोनों दाँत बाहर को भालों के समान निकले रहते हैं। कीलें केवल ऊपरी जबड़े में होती हैं, वे भी अत्यन्त छोटी छोटी। डाढ़ें घास आदि को पीसने के लिए उपयुक्त होती हैं।

काँगरू का सिर छोटा और थूथन नुकीला होता है। कान बड़े और खड़े होते हैं। टाँगों पर और दुम पर कोमल बाल होते हैं। शेष सारा शरीर ऊनी बालों से ढका होता है।

काँगरू-वंश के सभी जन्तु शाकभोजी हैं और घास तथा पत्तियों से अपना निर्वाह किया करते हैं। सुरक्षित स्थान में, जब काँगरू को किसी प्रकार का भय नहीं होता, तो वह चारों पैरों से चलता है किन्तु अगली और पिछली टाँगों की लम्बाई में बहुत अन्तर होने के कारण उसको इस प्रकार चलने में सुविधा नहीं होती और अगला धड़ बे ठिकाने ऊपर को उठ जाने के कारण वह अत्यन्त भोंडा प्रतीत होता है।

काँगरू दौड़ता नहीं वरन् आश्चर्य्यजनक छलाँगें भरता है और उसकी गति अति शीघ्रगामी जन्तुओं के बराबर होती है। प्रत्येक

छलाँग में २५-३० फुट धरती पार कर जाना काँगरू के लिए साधारण बात है। नौ दस फुट ऊँची झाड़ियाँ वह सहज ही फाँद जाता है। पत्थर, चट्टानें और ऊँची-ऊँची झाड़ियाँ पार करते उसको देख के ऐसा बोध होता है जैसे कि उसकी टाँगों में कमानियाँ लगी हों और आँख झपकते वह ऐसी छलाँगें भरता है कि देखनेवाले को यह भ्रम हो जाता है कि उसकी अगली टाँगें भूमि से नहीं छूतीं। किन्तु वस्तुत: वह अगली टाँगों ही पर गिरता है और तुरन्त पिछली टाँगों को आगे खींच दूसरी छलाँग ले लेता है। यह विश्वास भी निर्मूल प्रमाणित हुआ है कि छलाँग भरने में काँगरू अपनी पुष्ट दुम से सहायता लेता है। यथार्थ में उसकी पूँछ दौड़ते समय सीधी फैली रहती है और उसको तुले रहने में सहायता देती है।

स्वभाव ही से काँगरू एक डरपोक जन्तु होता है जिससे किसी को हानि नहीं पहुँचती। कुछ समय पहले ये जीव बड़े आनन्द से अपने देश में जीवन व्यतीत करते रहे होंगे, क्योंकि आस्ट्रेलिया के विस्तृत मैदानों में घास की कमी नहीं थी। तब सर्वत्र उनके झुण्ड के झुण्ड दिखाई पड़ा करते थे जिनमें ५०-६० या और भी अधिक जीव होते थे। किन्तु जब से यूरोपियन लोग वहाँ बसे हैं और गाय बैलों तथा भेड़-बकरियों के बड़े बड़े गल्ले रखने लगे हैं तब से काँगरू बेचारे को अपने ही घर में चैन नहीं मिलता। आस्ट्रेलिया उपनिवेश के निवासी निर्दयता से बेचारे काँगरू का सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं। बड़ी जाति के बलवान् कुत्ते उसके शिकार के लिये शिक्षित किये जाते हैं। विष देकर भी वे मारे जाते हैं और बाड़ों में घेर के भी उनका वध किया जाता है। सारांश यह कि सौ पचास वर्ष में पृथ्वी पर शायद काँगरू की स्मृति-मात्र रह जायगी। अभी यह हाल होगया है कि आस्ट्रेलिया के नगरों

में रहनेवाले अनेक निवासी ऐसे मिलते हैं जिन ने ज़ू (पशुशाला) के बाहर काँगरू के कभी दर्शन नहीं किये हैं।

जब जान पर आ बनती है तो सीधा निर्दोष काँगरू भी भीषण हो कर युद्ध करता है। जब कोई शिकारी और कुत्ते उसका पीछा करते हैं और भाग के प्राण बचाने का अवसर काँगरू को नहीं मिलता तो बहुधा वह किसी वृक्ष या चट्टान से पीठ टेक के खड़ा हो जाता है। शत्रु का सामना करने के लिए इस प्रकार सहारा ले लेना उसके लिए आवश्यक होता है क्योंकि आक्रमण करते समय वह दोनों पिछली टाँगों को साथ साथ चलाता है। ऐसे मौक़े पर केवल शिक्षित कुत्ते ही काम दे सकते हैं। जो कुत्ते उसकी मार से और टाँगों के प्रबल नखों से अनभिज्ञ होते हैं वे स्वयं अपने प्राण खोते हैं। मूर्खवत् वे उसके ऊपर दौड़ते चले जाते हैं। क्षण-मात्र में काँगरू ऐसे कुत्तों का पेट साफ़ चीर डालता है। यथा-संभव वह कुत्ते को अगली टाँगों से पकड़ के दबा लेता है और पिछली टाँग के भीषण नख से पेट में ऐसा घाव मारता है कि आँतें निकल पड़ती हैं।

कभी कभी काँगरू उच्चकोटि की बुद्धि का परिचय देता है और अपनी रक्षा के लिये एक अनोखा उपाय करता है। किसी जलाशय में घुस के वह जल में खड़ा हो जाता है। जो कुत्ता पहले उसके पास पहुँचता है उसको पकड़ के उसका सिर जल के भीतर कर देता है। मिनट दो मिनट में कुत्ते का काम समाप्त हो जाता है। दूसरे कुत्ते अपने साथी की दशा देख भाग खड़े होते हैं। *

पीछा किये जाने पर मां अपने बच्चों को थैली में बिठा के भागती है, किन्तु यदि वह देखती है कि क्रमशः कुत्ते पास आते जा रहे हैं तो एक एक बच्चे को निकाल के झाड़ियों में फेंकती जाती है और

* Goulds Mammals of Australia.

कतरा के स्वयं दूसरा रास्ता पकड़ती है। कुत्ते बच्चों की ओर ध्यान न दे उसी के पीछे लगे चले जाते हैं। मातृस्नेह पशुओं में भी कैसा प्रबल होता है।

काँगरू सहज ही पालित हो जाता है। उसका मांस उत्तम होता है और चमड़ा भी काम का होता है। असभ्य, आदिम निवासी उसका शिकार करने के लिये एक अद्भुत अस्त्र का प्रयोग किया करते हैं। यह लकड़ी का एक छोटा सा टुकड़ा होता है जो झुका के अर्द्धचंद्राकार बना लिया जाता है। उन लोगों के निपुण हाथों में इस छोटी सी लकड़ी में विचित्र शक्ति आ जाती है और वह इस प्रकार काम करती है मानो जीती-जागती हो। इस हथियार को बूमरैंग (Boomerang) कहते हैं। आस्ट्रेलिया के असभ्य लोग उसको नाना विधि से चलाते हैं। कभी वह वायुमंडल में उठ के सौ दो सौ गज़ का चक्कर करके सनसनाती हुई फेकनेवाले के हाथ ही में लौट कर आजाती है। कभी ऐसा होता है कि काँगरू किसी झाड़ी अथवा चट्टान के पीछे होता है तो असभ्यगण ऐसे अवसर पर बूमरैंग को ऐसी चतुराई से फेंकते हैं कि वह पहले झाड़ी के इस पार भूमि से टकराता है। भूमि से टक्कर खा वह ऊपर उठता है और झाड़ी को पार करता हुआ काँगरू को जा लगता है। बूमरैंग की छोटी सी लकड़ी काँगरू को ऐसे ज़ोर से लगती है कि वह जगह से हिल भी नहीं सकता।

काँगरू शाकभोजी जीव है और विशेषकर घास पर निर्वाह करता है। उनके छोटे छोटे झुण्ड, किसी पुराने नर की अध्यक्षता में रहा करते हैं। प्रायः नरों में भीषण युद्ध होते हैं।

काँगरू के कोई ३० उपजातियाँ आस्ट्रेलिया, न्यू गिनी और वान डीमेन्सलेंड में मिल चुके हैं। इनमें से बड़े भेड़ की बराबर होते हैं और छोटे चूहों से बड़े नहीं होते।

बड़ा भूरा काँगरू (MACROPUS GIGANTUS)

काँगरू का प्राय: सभी से प्रसिद्ध जातिभेद भूरे रंग का बड़ा काँगरू कहलाता है जो आस्ट्रेलिया में सर्वत्र मिलता है।

सभ्य जगत् को काँगरू का पता इसी जातिभेद के एक जन्तु के द्वारा चला था, और इसके पता लगानेवाले की कहानी रोचक है। विख्यात अन्वेषक कप्तान जेम्स कुक सन् १७७० ई० में आस्ट्रेलिया के न्यू साऊथ वेल्स प्रान्त की एक नदी के मुहाने में लंगर डाले अपने जहाज़ की मरम्मत कर रहे थे। कुछ नाविक भूमि पर कबूतरों की खोज में घूम फिर रहे थे और उनको सुयोग से एक बड़ा भूरा काँगरू दिखाई पड़ा। लौट के जो वर्णन इस अपरिचित जन्तु का नाविकों ने दिया उसे सुनकर सभी उसको देखने के लिये उत्सुक हो उठे। सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्रवित् सर जोज़ेफ़ बैंक्स भी उक्त जहाज़ पर उपस्थित थे और उनको भी एक दिन उक्त जन्तु के दर्शन मिले। सर जे० बैंक्स की डायरी के सम्पादक लिखते हैं :—

"सर जे० बैंक्स से कहा गया था कि एक जन्तु जो ताज़ी कुत्ते के बराबर था, जिसका रंग चूहे का सा था, और जो बड़ी तीव्र गति से भागता था, देखा गया है। शीघ्र ही स्वयं उनको भी उसके देखने का अवकाश हुआ। उनको यह देख के अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ कि वह केवल दो टाँगों के सहारे दौड़ता था और जरबोआ चूहे के समान छलाँगें भरता था। तत्पश्चात् जहाज़ के द्वितीय अफ़सर ने एक काँगरू को मारा भी।"*

यूरोप-निवासियों को पहले-पहल इस काँगरू का परिचय खाल द्वारा हुआ था।

---

* *Journal of Rt. Hon'ble Sir Joseph Banks*, edited by Sir J. Hooker.

पृष्ठ ५१]

काँगरू

काँगरू का यह बहुत बड़ा जातिभेद है। उसके शरीर की लम्बाई ५ फुट तक पहुँचती है और दुम ३ फुट की होती है। इनका बोझ २½ मन तक का होता है। शरीर पर छोटे, घने, ऊनी बाल होते हैं जिनका रंग भूरा-बादामी होता है। जंगलों और मैदानों में इनके झुण्ड, जिनमें ५०-६० पशु तक होते हैं, बहुसंख्यक मिलते हैं, परन्तु उनकी संख्या दिन प्रति दिन न्यून होती जाती है। उसका मांस स्वादिष्ट नहीं होता, किन्तु आस्ट्रेलिया के आदिनिवासी उसको बड़ी रुचि से खाते हैं और उसको 'कूरा' कहते हैं। जल में ये जीव बड़ी दक्षता से तैरते हैं।

बड़े भूरे काँगरू की एक नसल (Variety) टैस्मेनिया द्वीप में भी मिलती है।

बड़ा लाल काँगरू (Macropus Rufus)—काँगरू जाति का यह सबसे बड़ी उपजाति है। शरीर की लम्बाई ५½ फुट तक होती है और पूँछ ३½ फुट तक की। नर का रंग हलका लाल होता है और अपने वासस्थानों के पार्श्ववर्ती रंग से मिलता-जुलता है। यह जातिभेद मध्य आस्ट्रेलिया में मिलता है। प्रत्येक नर के संग कई कई मादीनें रहा करती हैं।

वल्लारू (Macropus Fasciatus)—यह उपजाति पहाड़ियों पर और पथरीले स्थानों में मिलती है। इनकी दुम ऊपर से नीचे तक एक सी मुटाई की होती है। यह उपजाति गुफाओं में रहा करती है और इसका स्वभाव अन्य उपजातियों के समान सीधा नहीं होता। गोल्ड बतलाता है कि उसने इस जन्तु को ऐसे स्थानों में पाया है जहाँ पानी का दूर दूर तक पता नहीं होता जिससे प्रमाणित होता है कि यह जीव बिना जल के बहुत समय तक रह सकता है।

डेंड्रोलेगस—इस जाति में भी कई उपजातियाँ आ जाती हैं। ये सब पेड़ों पर रहनेवाले काँगरू हैं और वृक्षों की डालों पर बड़ी

फुरती से उछलते कूदते हैं। वृक्षों पर रहने के कारण इनकी टाँगों में भी परिवर्तन हो गया है। पिछली टाँगें उतनी लंबी नहीं होतीं जितनी कि भूमि पर रहनेवाली मेक्रोपस जाति की होती हैं। न अगली टाँगें उतनी निर्बल और पतली होती हैं। पेड़ के काँगरू देखने में सुन्दर होते हैं। वे केवल घने जंगलों में वास करते हैं और स्वभाव से बड़े भीरु होते हैं।

चूहे काँगरू (Potoroos)—इस जाति में लगभग १० उप-जातियाँ पाई जाती हैं जो सब छोटे ख़रगोश के बराबर होते हैं और आस्ट्रेलिया तथा टैस्मेनिया के टापू में मिलते हैं। घास, पत्ती और जड़ों पर ये अपना निर्वाह करते हैं। जड़ें वे अपने अगले पञ्जों से खोद लेते हैं।

साधारण चूहे काँगरू (Potoroos Tridactylus)—इस उपजाति की पिछली और अगली टाँगों की लम्बाई में बहुत थोड़ा अन्तर होता है। झाड़ियों के नीचे ये घास के घोंसले बना लेते हैं और दिन में उन्हीं में पड़े रहते हैं। ये चारों पैरों से सरपट भागा करते हैं।

बेटॉनजिया (Potoroos Bettongia)—चूहा काँगरू जाति की यह एक प्रसिद्ध उपजाति है। इन जन्तुओं में एक विचित्र बात यह है कि अपनी लम्बी दुम से हाथ का काम लेते हैं। बेटॉनजिया अपनी दुम को घास के गुच्छे के चारों ओर लपेट कर उसको झटके से उखाड़ लेता है और तब दुम ही के द्वारा घास को मुँह में भी ले जाता है।

थैलीवाले मांसभुक्

(THE DASYURIDŒ)

साधारण विवरण (परिचय)

हमारे जन्तु-जगत् के मासंभुक् प्राणियों के स्थान में आस्ट्रेलिया में डेस्युरिडे-वंश के जन्तु हैं जो आस्ट्रेलिया, न्यू गिनी और टेस्मेनिया के टापुओं में मिलते हैं। इनके अगले पैरों में ५-५ और पिछलों में ४-४ नख होते हैं। ऊपर के जबड़ों में प्रत्येक ओर चार और नीचेवाले में तीन छोटे कुंतक दंत होते हैं। डाढ़ों और दूधडाढ़ों की संख्या भिन्न भिन्न होती है।

थैलीवाले मांसभुजों की निम्न-लिखित चार जातियाँ हैं:—

(१) डेस्यूरस (Dasyurus)
(२) थाइलेसीनस (Thylacenus)
(३) फ़ैस्कोगेल (Phascogale)
(४) मर्मीकोब (Myrmecobe)

डेस्यूरस

इस जाति के जन्तुओं को आस्ट्रेलिया की बिल्लियाँ समझनी चाहिए। बिल्ली-वंश के जन्तुओं के समान ये पक्के मांसभुक् हैं और नाना प्रकार के छोटे जन्तुओं को मार कर अपना निर्वाह करते हैं। ये जन्तु मछलियाँ भी खाते हैं। दिन में वे वृक्षों के खोखलों में या चट्टानों में छिपे रहते हैं, केवल रात्रि में बाहर आते हैं।

टेस्मेनिया का पिशाच (Dasyurus Ursinus)—डेस्यूरस जाति की यह एक प्रसिद्ध उपजाति है जिसको उसकी भयानक प्रकृति के कारण टेस्मेनिया का 'डेविल' अथवा पिशाच के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। देखने में वह कुछ कुछ भालू का सा और क़द में बिज्जू के बराबर होता है। बालों का रंग काला होता है, किन्तु किसी किसी के शरीर पर श्वेत धब्बे भी होते हैं। इस भयंकर जन्तु के सिर, कपाल और मुँह इतने चौड़े और भारी होते हैं कि उसकी आकृति डरावनी दिखाई देती है।

आस्ट्रेलिया में ऊन का बड़ा व्यवसाय है और कृषक मीलों के घेरों में बहुसंख्यक भेड़ों के गल्ले पालते हैं। यह पिशाच उन मूल्यवान् भेड़ों की बहुत हत्या करता है। आस्ट्रेलिया के कृषक भी इस जन्तु का सर्वनाश करने में यथाशक्ति कुछ उठा नहीं रखते।

थाईलेसीनस—इस जाति की एक प्रसिद्ध उपजाति "आस्ट्रेलिया का बाघ" के नाम से प्रसिद्ध है। यह जन्तु बाह्यरूप में एक हीनकाय, दुबले कुत्ते के समान होता है। शरीर के पिछले भाग पर कुछ काली धारियाँ पड़ी होने के कारण सर्वसाधारण उसको 'बाघ' कहने लगे हैं। घरेलू जन्तुओं की इसके द्वारा भी बड़ी हत्या होती है।

फ़ैस्कोगेल—इस जाति के जीव बड़े चूहे के बराबर होते हैं। इनकी बहुत सी उपजातियाँ (Species) आस्ट्रेलिया तथा समीपवर्ती टापुओं में पाई जाती हैं। ये सब कीटभुक् प्राणी हैं और उनके दाँतों की रचना कीटभुक्-जन्तुओं के समान होती है, अर्थात् कीले छोटे छोटे और डाढ़ों पर गाँठें उठी होती हैं। इनमें से कुछ वृक्षों पर रहा करते हैं और कुछ भूमि पर।

मर्मीकोब—हमारे चूहों की जगह जैसे आस्ट्रेलिया में उपरोक्त फ़ैस्कोगेल जाति के जीव हैं वैसी ही हमारे जन्तु-जगत् की गिलहरियों के सदृश वहाँ **मर्मीकोब** जाति के जन्तु हैं।

इनकी रचना गिलहरी के समान होती है। जबड़ों में दाँतों की संख्या ५४ तक होती है, अर्थात् ।

कृंतक दंत $\frac{४-४}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$, डाढ़ें $\frac{५-५}{५-५}$ या $\frac{६-६}{६-६}$

५० या ५४

स्तनपोषित-समुदाय के किसी अन्य प्राणी के मुँह में दाँतों की इतनी अधिक संख्या नहीं होती।

चींटीभुक् मर्मीकोब (Myrmecobe Fasciatus)—यह जन्तु दक्षिणी तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया में होता है। शरीर गिलहरी का सा और रंग कत्थई होता है। पीठ पर चौड़ी सफ़ेद धारियाँ होती हैं और उसकी लंबी पूँछ गिलहरी की पूँछ के समान झबरी होती है। कतिपय कीटभुक् प्राणियों के समान इसकी भी जिह्वा बहुत लंबी होती है और रबड़ के समान खिँच के बढ़ जाती है। लंबी जीभ के द्वारा वह एक ही बार सैकड़ों चींटियों को मुँह में पहुँचा लेता है। यद्यपि चींटीभुक् मर्मीकोब मारस्यूपियल श्रेणी में सम्मिलित है तथापि उसके पेट पर थैली नहीं होती। किन्तु जन्म के समय उसके बच्चों की अवस्था, और उनका पालन-पोषण, उसी प्रकार होता है जैसे कि इस श्रेणी के अन्य प्राणियों के बच्चों का। बच्चों के मुँह में माँ अपने स्तन दे देती है और वे बालों में छिपे लटके रहते हैं। ये जीव वृक्षों पर कभी नहीं चढ़ते।

पिरामिलिडे-वंश

(Family—PERAMELIDŒ)

हमारे ख़रगोशों की जगह थैलीवाली कक्षा में पिरामिलिडे-वंश के जन्तु हैं। इस वंश की मुख्य जाति पिरामिलीज़ (Genus Perameles) है। साधारण बोल-चाल में आस्ट्रेलिया में इनको बैंडीकूट (Bandicoot) कहते हैं। ये ख़रगोश के समान छोटे छोटे

दोनों पार्श्व में खाल लटकती होती है। इन खालों के कारण इस वंश के प्राणी छलाँग भरके वायु में उड़ते हुए बहुत दूर तक जा सकते हैं।

फ़ेलेन्जर-वंश की बहुत सी जातियाँ आस्ट्रेलिया, टैसमेनिया और न्यू गिनी में मिलती हैं। बहुधा उनका सिर चौड़ा और चपटा और दुम लम्बी होती है। कुछ जातियाँ फलाहारी और शाकभोजी हैं, अन्य कुछ कीटभुक् हैं।

लोमड़ी सदृश फ़ेलेन्जर (Phalangista Vulpecula)— फ़ेलेन्जर जाति का यह जातिभेद आस्ट्रेलिया में सर्वत्र मिलता है। शरीर की रचना तथा क़द लोमड़ी के समान होते हैं। रंग भूरा, कान श्वेत और दुम काली होती है। शरीर पर घने ऊनी बाल होते हैं। यह जन्तु वृक्षों पर रहा करता है और दिन में छिपा रहता है। केवल रात्रि में बाहर निकलता और कोमल पत्तियाँ तथा फल खाया करता है। इस फ़ेलेन्जर के समूर के लिए उसकी बहुत हत्या की जाती है। वह दुम को पेड़ की शाखा में इस प्रकार लपेट लेता है कि कभी कभी मृत्यु हो जाने पर भी लटका ही रहता है। आस्ट्रेलिया के जंगली कुत्ते उसके ऐसे पक्के शत्रु होते हैं कि यदि कभी वह वृक्ष से नीचे उतर आता है तो जीवित नहीं छूटता।

क्वाला (Koala-Phascolarctes Cinereus)— क्वाला को आस्ट्रेलिया का भालू भी कहते हैं क्योंकि उसका मोटा, भारी शरीर भूरे रंग के बड़े बड़े बालों से ढका होता है। शरीर की मुटाई और लंबे बालों के कारण वह छोटा सा भालू प्रतीत होता है। शरीर की लंबाई लगभग दो फ़ुट की होती है। क्वाला के कान बहुत बड़े होते हैं और दुम बिलकुल नहीं होती, अगले पैरों की भीतरी दो उंगलियाँ एक झिल्ली से मढ़ी होती हैं और ये दोनों अन्य उंगलियों से मिलाई जा सकती हैं। उंगलियों की ऐसी बनावट के कारण

काला वृक्षों की डाल को बड़ी दृढ़ता से पकड़ लेता है। दाँतों की रचना निम्न प्रकार है:—

कृंतक $\frac{३-३}{१-१}$, कीले $\frac{१-१}{०-०}$, दूध, डाढ़ें $\frac{१-१}{१-१}$, डाढ़ें $\frac{४-४}{४-४}$ = ३०

काला का सा 'भोलाभाला' सीधा जन्तु शायद ही अन्य कोई होता हो। किसी को हानि पहुँचाना तो दूर रहा, उसमें स्वयं अपनी रक्षा करने का सामर्थ्य, साहस, तथा बुद्धि नहीं होती। वह अपने आलस्य और मूर्खता के कारण शत्रु के सामने से भाग जाने की भी चेष्टा नहीं करता। काला के प्राण बड़ी कठिनाई से निकलते हैं, कभी कभी देखा गया है कि शरीर चलनी हो जाने पर भी वह मरता नहीं।

काला अपना जीवन वृक्षों ही पर व्यतीत करता है। वृक्ष-वासी होते हुए दुम न होना एक असाधारण बात है।

काला केवल पूर्वी आस्ट्रेलिया में पाया जाता है।

फैस्कोलोमायडे-वंश

(FAMILY—PHASCOLOMYDŒ)

इस वंश के जन्तु भी रूप में छोटे से भालू के समान होते हैं। टाँगें छोटी छोटी और मोटी, अगले पैरों में ५-५ उंगलियाँ होती हैं जिन पर लंबे, पुष्ट और झुके हुए नख होते हैं। पिछले पैरों के अँगूठे बहुत छोटे होते हैं और इन पर नख नहीं होते। अँगूठे के पास की तीन उंगलियाँ एक झिल्ली में मढ़ी होती हैं। पूँछ बहुत छोटी नाम-मात्र की होती है।

दाँतों की संख्या से स्पष्टत: विदित हो जाता है कि ये जन्तु शाकभोजी हैं:—

कृंतक $\frac{1-1}{1-1}$, कीले $\frac{0-0}{0-0}$, दूधडाढ़ें $\frac{1-1}{1-1}$, डाढ़ें $\frac{4-4}{4-4}$ वंश में केवल एक ही जाति फ़ैस्कोलोमिस है जिसके कई जाति-भेद पाये जाते हैं।

फ़ैस्कोलोमिस (Phascolomys) जाति के जन्तु सामान्यतया बोल-चाल में वाम्बट (Wombat) कहलाते हैं।

साधारण वाम्बट (Phascolomys Mitchelli) आस्ट्रेलिया और टैस्मेनिया में मिलता है। इसके शरीर के बालों का रंग किसी का पीला और किसी का काला होता है। बाल अति मोटे और खुरखुरे होते हैं, वाम्बट की चालढाल भी भालू की-सी भद्दी और लड़खड़ाती हुई होती है। यह भी पदतलचर जन्तु (Plantigrade) है।

वाम्बट के पैरों में पुष्ट खनित्र नख होते हैं। वह भूमि के भीतर बिलों में रहता है, वृक्षों पर कभी नहीं चढ़ता। वाम्बट स्वभाव का सीधा और भीरु होता है और दिन में बिलों के भीतर छिपा रहता है। इस जन्तु के शरीर की लंबाई लगभग तीन फुट की होती है।

सिटेशिया श्रेणी

अर्थात्

जल के मांसभोजी

(ORDER OF CETACEA)

साधारण विवरण

सिटेशियावर्ग के जीव जल में रहनेवाले मांसभुक् प्राणी हैं। इसी वर्ग के अंतर्गत ह्वेल और उसके सदृश कुछ अन्य जीवों को भी स्थान दिया जाता है। हम प्राय: ह्वेल को "ह्वेल मछली" कहा करते हैं। इसका कारण यह है कि सिटेशिया-वर्ग के दीर्घकाय प्राणियों के शरीर का आकार मछली के समान होता है। किन्तु ह्वेल को मछली कहना बिलकुल भूल है। ह्वेल मछली नहीं, वरन् स्तनपोषित समुदाय का जन्तु है। प्रारम्भ में ही बताया जा चुका है कि स्तनपोषित-समुदाय के जीवों की पहचान यह है कि उनकी मादाओं के स्तन होते हैं जिनसे दूध पिला के वे अपने बच्चों का पालन पोषण करती हैं। मछली के स्तन नहीं होते और वे अपने बच्चों का पालन दूध पिला के नहीं करतीं। इसके विरुद्ध ह्वेल की मादा के (और सिटेशिया श्रेणी के सभी जीवों की मादाओं के) स्तन होते हैं और वह अपने बच्चों का पालन दूध पिला कर करती हैं। ह्वेल और मछलियों की आन्तरिक रचना में और भेद भी हैं।

स्तनपोषित-समुदाय के सब जन्तुओं का रक्त गरम होता है। ह्वेल भी गरम रक्तवाला प्राणी है। किन्तु मछली-समुदाय के किसी जीव का रक्त गरम नहीं होता। स्तनपोषित-समुदाय के सब जन्तुओं

को श्वास लेने के लिए वायु की आवश्यकता होती है। इस समुदाय के जो प्राणी जल में रहनेवाले हैं वे भी थोड़ी थोड़ी देर पर जल के ऊपर नथुने निकाल के श्वास लेते हैं। ह्वेल को बारम्बार श्वास लेने के लिए जल के ऊपर आना पड़ता है। इसके विपरीत मछली-समुदाय के जीवों को श्वास लेने के लिए जल के बाहर आने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि प्रकृति ने उनकी श्वासेन्द्रिय को ऐसा रचा है कि वे जल ही में से जीवन के आधार आक्सीजन गैस को खींच लेती हैं।

इसलिए ह्वेल आदि का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने से पूर्व यह बात आवश्यक है कि हम इस भ्रम को अपने मन से निकाल दें, जिसके कारण हम ह्वेल को मछली कहने लगते हैं।

संसार के जल व स्थल के जीवों में सिटेशिया-वर्ग के जीव सबसे बड़े हैं। उनका सिर बड़ा और आकार मछली का-सा होता है। जल में तैरने का अंग उनकी दुम है। आँख बहुत छोटी, खाल चिकनी और लोमहीन होती है। उनकी दोनों अगली टांगों ने डांड़ों का रूप धारण कर लिया है। पिछली टाँगों की उनको जल में कोई आवश्यकता नहीं पड़ती अतः पिछली टाँगों का कोई बाहरी चिह्न उनके शरीर में अवशिष्ट नहीं रह गया है। किन्तु पिछली टाँगों की जगह पर मांस के भीतर दो हड्डियाँ मिलती हैं जिनसे विदित होता है कि पहले कभी इन जन्तुओं के भी पिछली टांगें हुआ करती थीं। रीढ़ के दोनों ओर, पसलियों के बीच बीच में बहुत से कोष होते हैं जिनमें आक्सिजन से परिपूर्ण रक्त भरा रहता है। जब ह्वेल गोता ले जल के भीतर रहता है तो रक्त का यही आक्सिजन उसको जीवित रखता है।

सिटेशिया वर्ग के जीवों की श्रवणेन्द्रिय तीक्ष्ण होती है किन्तु घ्राणशक्ति अच्छी नहीं होती। उनके मुँह में या तो दाँत होते ही

नहीं या यदि होते हैं तो सब एक ही आकार के। कतिपय की पीठ पर सिन्ने होते हैं किन्तु ये रीढ़ से जुड़े नहीं होते और उनमें हिलने डुलने की भी शक्ति नहीं होती। मादा के दो स्तन होते हैं जिनमें ऐसे पुट्ठे होते हैं कि उनके सञ्चालन के द्वारा पिच-कारी की भाँति माँ दूध को बच्चे के मुँह में फेंक सकती है।

सिटेशिया-वर्ग के जीव (Order of Catacea) तीन वंशों (families) में विभक्त किये जा सकते हैं, अर्थात्—

(१) बालिनिडे (Balœnidœ)

(२) फ़िस्टिराईडे (Physteridœ)

(३) डेल्फ़िनिडे (Dalphinidœ)

बालिनिडे-वंश

(BALŒNIDŒ FAMILY)

इस वंश के अन्तर्गत कई प्रकार के ह्वेल हैं जो पृथ्वी के सबसे बड़े प्राणी हैं। इस वंश के जन्तुओं के सिर बड़े होते हैं। मुँह में दाँत नहीं होते, किन्तु उनके तालू से 'बालीन' नामक हड्डियों की एक बहुत बड़ी संख्या लटकती होती है। इन हड्डियों का वर्णन, विस्तार से, आगे दिया जायगा।

यद्यपि इस वंश के जन्तुओं के मुँह में अब किसी प्रकार के दाँत नहीं होते तथापि भ्रूणावस्था में इनके बच्चों के नुकीले दाँत मसूढ़े के भीतर विद्यमान होते हैं। किन्तु ये दाँत दंतमांस को तोड़ के बाहर कभी नहीं निकलते। इससे सिद्ध होता है कि बालिनिडे-वंश के पूर्वजों के पुरातन युग में दाँत होते थे। प्राणिशास्त्र का यह नियम है कि प्रत्येक प्राणी की रचना के वे जातिलक्षण जो उसमें विकसित और परिवर्तित होने के कारण अब विद्यमान

नहीं रह गये हैं, उक्त प्राणी की किसी न किसी अवस्था में दिखाई दे जाते हैं (Law of Recapitulation)। भ्रूण में दाँतों का पाया जाना विदित करता है कि किसी काल में इस वंश के पूर्वजों के दाँत अवश्य होते रहे होंगे। ये दाँत कुछ ही समय में भीतर ही भीतर लुप्त हो जाते हैं।

ह्वेल के स्तन उसकी जननेन्द्रिय के पास होते हैं। बालिनिडे-वंश में दो जातियाँ हैं, अर्थात्—

(१) बालिना (Balœna)

(२) बालिनोप्टेरा (Balœnoptera)

ह्वेल

ब्रिटिश-म्यूज़ियम के डाक्टर ग्रे ने बालिना जाति में चार उपजातियाँ मानी हैं। उनमें सबसे प्रसिद्ध उपजाति "ग्रीनलैंड का ह्वेल" है। हम इसी ह्वेल का सविस्तर वर्णन देते हैं।

ग्रीनलैंड का ह्वेल—(Balœna Mysticetus)— यह ह्वेल ऐटलान्टिक तथा पैसिफ़िक महासागरों के धुर उत्तरी भागों में मिलता है। यद्यपि सिटेशिया वर्ग का यह सबसे बड़ा जीव नहीं है तो भी इस विकटाकार जन्तु की लम्बाई साधारणतः ६० फ़ुट से ८० फ़ुट तक होती है। यदि पाठकों को इससे दीर्घकाय ह्वेल की विशालता का अनुमान न हुआ हो तो उसके वज़न पर ध्यान दें। ग्रीनलैंड के ह्वेल का वज़न लगभग १५० टन अर्थात् ४,२०० मन तक पहुँचता है। कभी कभी कोई ह्वेल मिला है जिसकी लम्बाई और तौल दोनों असाधारण आश्चर्यजनक होते हैं। एक दो की नाप-तौल हम आगे सुनायेंगे। बिना देखे ऐसे बड़े वज़नवाले जीव का अनुमान भी करना कठिन है। यदि तराज़ू के एक पल्ले पर चार हज़ार मन का एक ह्वेल चढ़ाया जाय तो उसके तौलने के लिए

ग्रीनलैण्ड का ह्वेल (Balæna Mysticetus) पृष्ठ ६४

केचेलॉट ह्वेल (Physeter Macrocephalus) पृष्ठ ७८

डॉल्फ़िन (Dolphin) पृष्ठ ८२

सूँस (The Gangetic Porpoise) पृष्ठ ८३

नारवाल (Monodon Monoceros) पृष्ठ ८५

मनेटी (Manatus) पृष्ठ ८८

डेढ़ डेढ़ मन के २,६६६ मनुष्य चढ़ाने पड़ेंगे। तराज़ू के इस पल्ले पर एक छोटा सा मेला जुड़ा दिखाई पड़ेगा।

ह्वेल के से विशाल जन्तु को स्थल पर जीवन व्यतीत करना अत्यन्त दुःखदायी होता। उसको अपने शरीर के साधने के लिए कितनी मोटी मोटी टाँगें अपेक्षित होतीं! और उन टाँगों से कितने जीव-जन्तु प्रतिदिन कुचल जाया करते! जिस अभागे के खेत में होकर एक बार ह्वेल निकल जाता उसकी फ़सल का सर्वनाश ही हो जाता। किन्तु जल में ह्वेल के शरीर को ऐसा सहारा मिल जाता है कि उसको अपने अतुल बोझ से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। ह्वेल का स्वभाव भी कुछ खिलाड़ी होता है और समुद्र में वह बड़े आनन्द से घण्टों क्रीड़ा किया करता है। वह उतनी ही फुरती से तैरता, गोता लेता और ऊपर आता है जैसे कि एक छोटी सी मछली।

अगाध जल में विहार करते हुए ह्वेल प्रायः समुद्रतल तक पहुँचा करता है। थोड़े थोड़े काल के उपरान्त जल के ऊपर उसे श्वास लेने आना पड़ता है किन्तु शीघ्र ही फिर वह गोता लेता है और आँधी के वेग के समान प्रायः एक मील गहरा चला जाता है। यह बात विचारणीय है कि एक मील गहराई में ह्वेल के शरीर पर जल का कितना बोझ होता होगा। एक घन फुट जल के बोझ के आधार पर हिसाब लगाने से ज्ञात होता है कि ह्वेल के सम्पूर्ण शरीर पर जल का बोझ २,११,२०० टन का, एक मील की गहराई में हो जाता है। एक टन का बोझ लगभग २८ मन का होता है। इस प्रकार ह्वेल का शरीर ५९,१३,६०० मन जल से दबता है और उसके शरीर के प्रत्येक वर्ग फुट पर १३७ टन अथवा ३,८३६ मन का बोझ होता है।

जल के इतने बड़े बोझ से तो ह्वेल की हड्डियाँ तक चूर चूर हो जानी चाहिए। किन्तु प्रकृति ने उसको जल के जीवन के लिए

पूर्णतया तैयार कर दिया है। उसके शरीर की अधिकांश हड्डियाँ जोड़ पर कोमलास्थिविशिष्ट (Cartilaginous) होती हैं और कोई कोई ढीले बन्धनों से बँधी होती हैं। अत: पानी का दबाव पड़ने से वे लचक खा जाती हैं, टूटती नहीं। इसके अतिरिक्त उसके सारे शरीर पर १५-२० इंच मोटी चर्बी की गुदगुदी तह चढ़ी होती है। चर्बी की मोटी तह भी कमानियों का काम देती है और ह्वेल के शरीर की रक्षा करती है।

शरीर की लगभग एक-तिहाई लम्बाई में ह्वेल का सिर होता है। पृथ्वी पर ह्वेल का मुँह सबसे बड़ा मुँह है। उसके जबड़ों की लम्बाई लगभग १६ फ़ुट की, और चौड़ाई ७ फ़ुट की होती है और जब वह अपने मुँह को फैलाता है तो जीभ और तालू में १२ फ़ुट का अन्तर हो जाता है। जबड़ों के खुलने पर उसके मुँह की गुफा में एक छोटी मोटी नाव, नाविकों-सहित, सुविधा से प्रवेश कर सकती है और उसके भीतर दो लम्बे आदमी, एक के ऊपर एक सीधे खड़े हो सकते हैं।

ह्वेल के मुँह में जीभ भी होती है, जिसकी लम्बाई लगभग ८ गज़ की होती है। वह कितनी मोटी और भारी होती होगी इसका अनुमान पाठक निम्नलिखित घटना से करें। एक ह्वेल टेम्स नदी में पकड़ी गई थी। कुछ दिन वह किनारे पर पड़ी रही और गरमी के कारण उसकी जीभ फूल गई। एक साहब को शौक हुआ कि ह्वेल के मुँह में घुस के उसका दृश्य देखना चाहिए। बल्लियों से उसका जबड़ा चीर के वह मुँह में घुसे तो जीभ में दलदल के समान उनके पैर गड़ने लगे। वह मनुष्य बेचारा गड़ता ही चला गया। यहाँ तक कि ऐसा प्रतीत होने लगा कि उसकी क़बर उस जीभ में ही बनेगी। तब बाहर से एक बल्ली डाली गई और वह उस बल्ली से चिपट गया और बाहर खींच लिया गया।

ह्वेल की श्रवणेन्द्रिय तीक्ष्ण होती है, वह जल के भीतर भी भलीभाँति शब्द सुन सकता है। किन्तु ह्वेल के बाहरी कान नहीं होते। यदि प्रकृति ने ह्वेल के शरीर में कान रक्खे होते तो वे अवश्य ही कई गज़ लम्बे होते। ऐसे बड़े बड़े कान जल में तैरने में बाधक होते। ह्वेल के अंगप्रत्यंग पर विचार करने से स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि उसके किसी अंग की रचना ऐसी नहीं की गई है जो उसके भारी शरीर के लिये कष्टकर हो।

नथुनों के छिद्र ह्वेल के सिर के सबसे ऊँचे भाग पर होते हैं। इस स्थान पर नथुने होने से उसको एक विशेष लाभ यह होता है कि साँस लेने के लिए शरीर का कोई भाग जल से बाहर नहीं निकालना पड़ता। ह्वेल के साँस लेने का दृश्य देखने योग्य होता है। ज्यों ही वह जल से बाहर आता है तो जल में भँवर-सा पड़ जाता है और दोनों नथुनों में से कई गज़ ऊँची श्वेत धारा निकलती है। और साँस वह ऐसे ज़ोर से निकालता है कि सीटी का सा शब्द होता है जो दूर तक सुनाई पड़ता है। प्रायः लोग समझते हैं कि नथुनों द्वारा ह्वेल वह जल बाहर निकाल रहा है जो उसके पेट में भर गया था, किन्तु यह ठीक नहीं है। वस्तुतः फेफड़ों की अशुद्ध वायु जल की भाप से परिपूर्ण होती है और भाप बाहर निकलते ही शीत के कारण जम जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वेल के नथुनों से जल की धारायें निकल रही हैं। ऊपर आकर ह्वेल तुरन्त ही फिर गोता नहीं लेता वरन् ८-१० मिनट तक ठहर के फेफड़ों में बारंबार शुद्ध वायु भरता और निकालता है। तत्पश्चात् वह गोता लगाता है और फिर उसको १०-२० मिनट तक साँस लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु यह भी देखा गया है कि घायल हो जाने पर या जब कोई शत्रु उसे सताता है तो ह्वेल एक एक घंटे तक बिना साँस लिये जल के भीतर

रह सकता है। यह विषय विचारणीय है कि इतने समय तक बिना साँस लिये यह जन्तु जल के भीतर कैसे रह सकता है। गरम रक्तवाले स्तनपोषित जन्तुओं में किसी अन्य प्राणी में इतनी देर तक बिना साँस लिये जीवित रहने की शक्ति नहीं होती। ह्वेल के रक्त का एक भाग जब उसके शरीर में घूमता है तो दूसरा भाग पसलियों के नीचे विशेष कोषों में जमा रहता है। जब पहला भाग अशुद्ध हो जाता है तो दूसरा भाग उसका स्थान ले के ह्वेल को जीवित रखता है।

जलचर जीवों को टाँगों का काम नहीं पड़ता। ह्वेल के शरीर में भी अब टाँगें नहीं रह गई हैं वरन् शरीर के अग्रभाग में केवल दो छोटे अंग होते हैं जो आकार में नाव के डाँडों के समान होते हैं। यद्यपि इनमें उंगलियाँ नहीं होतीं तो भी हाथ और भुजा की सारी हड्डियाँ, पुट्ठे, नसें आदि विद्यमान होती हैं। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि स्तनपोषित समुदाय के अन्य प्राणियों के समान पहले कभी ह्वेल के भी टाँगें रही होंगी। विज्ञानवेत्ताओं का मत है कि किसी समय में ह्वेल भी एक बृहत् चतुष्पद था और उसका शरीर बालों से ढका भी रहता था। तब ह्वेल पूर्णतया जल का जीव नहीं था वरन् थल पर भी बहुत सा समय व्यतीत किया करता था। अमेरिका के किसी किसी भाग में अब भी भूगर्भ में ह्वेलों की हड्डियाँ गड़ी मिलती हैं, और इतनी बहुतायत से मिलती हैं कि कृषक उनको उखाड़ के खेतों का घेरा (बाढ़) बनाने के काम में लाते हैं। इँगलैंड के दक्षिणी किनारे पर एक बार एक पहाड़ी की चोटी तूफ़ान के कारण गिर के बह गई थी। उसके नीचे एक हड्डी ९ फ़ुट लम्बी गड़ी मिली थी। इस हड्डी की परीक्षा की जाने पर ज्ञात हुआ कि वह किसी ह्वेल की हड्डी थी जो कि ७० फ़ुट से ज़्यादा लम्बा रहा होगा और जिसको मरे सहस्रों वर्ष हुए होंगे!

फिर कुछ ऐसे कारण उपस्थित हुए कि ह्वेल ने स्थल पर आना-जाना त्याग दिया। और बिलकुल जलचर जीव हो गया। जल के जीवन में टाँगों का उसको काम न पड़ता था। अनभ्यास से कालान्तर में उसकी अगली टाँगें छोटी पड़के छोटे छोटे सिन्नों के रूप में परिणत हो गईं। पिछली टाँगों के प्रयोग की अगली टाँगों से भी कम आवश्यकता ह्वेल को होती होगी क्योंकि उनका काम जल में वह अपनी दुम से लिया करता है। अतः पिछली टाँगें बिलकुल लुप्त हो गईं। उनकी जगह पर अब भी मांस के भीतर एक एक छोटी सी हड्डी गड़ी मिलती है। पिछली टाँगों का बस इतना ही चिह्न शेष रह गया है।

ह्वेल की आँखें बहुत छोटी होती हैं। गाय बैल की आँखों से बड़ी नहीं होतीं। और उसकी आँखें होती भी निराले स्थान पर हैं क्योंकि वे सिर की गुलाई के पीछे दोनों जबड़ों के जोड़ के पास छिपी होती हैं और कठिनाई से ढूँढ़ने पर मिलती हैं। प्रत्येक आँख के ऊपर सिर की गुलाई भीति के समान खड़ी होती है जिसका परिणाम यह होता है कि हर एक आँख को एक ही ओर का दृश्य मिलता है।

ह्वेल की दुम उसका सबसे उपयोगी अंग है। मछलियों की दुम ऊर्ध्वतनी अर्थात् खड़ी खड़ी होती है। इसके विरुद्ध ह्वेल की दुम आड़ी और चपटी होती है। उसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक का नाप लगभग १८ फुट होता है। जल में तैरते समय वह अपनी दुम को चक्र के समान इधर-उधर चलाता है। ठीक जैसे एक जहाज़ के पहिये पानी को फाड़ के उसको आगे बढ़ाते हैं उसी प्रकार ह्वेल की दुम उसको तैरने में सहायता देती है। और जब ह्वेल गोता लेकर नीचे जाना चाहता है या नीचे से ऊपर आना चाहता है तब वह दुम को ऊपर नीचे को चलाता है। बड़ी नोची

गहराई से वह केवल दो चार बार दुम को चला कर तुरन्त ऊपर पहुँच जाता है। ह्वेल के इस बृहत् अंग में अद्वितीय बल होता है। किसी ने कहा है कि जन्तु-जगत् के तीन सबसे भयंकर अंग हैं— शेर का पञ्जा, जिराफ़ का खुर, और ह्वेल की दुम। इनके आघात की तुलना करनेवाला किसी अन्य जन्तु का कोई अंग नहीं। ह्वेल का शिकार करनेवाली नौकाओं को सबसे अधिक भय उसकी दुम का रहता है क्योंकि अवकाश मिल जाने पर वह दुम से धक्का देके नाव को, नाविकों-सहित, जल से कई गज़ ऊँचा उछाल देता है।

ह्वेल की मोटी खाल सर्वथा तैल से चिकनी रहती है और इस चिकनाहट के कारण उसको तैरने में बड़ी सुविधा होती है। खाल का रंग शरीर के ऊपरी भाग पर काला चमकता हुआ होता है और नीचे की तरफ़ भूरा। खाल पर बाल नहीं होते। खाल के नीचे एक तह चर्बी की होती है जो शरीर के किसी किसी भाग पर २४ इंच तक मोटी होती है। एक ग्रीनलेंड ह्वेल में से लगभग १५ टन (अर्थात् ४२० मन) चर्बी निकलती है और किसी किसी में इससे बहुत ज़्यादा। यह चर्बी की तह ह्वेल के लिए बड़ी उपयोगी होती है। शीतल जल में वह उसके शरीर को गरम रखती है, जल के बोझ से उसके शरीर को हानि नहीं पहुँचने देती और शरीर को हलका बना देती है जिससे कि उसको जल में तैरने में बड़ी सुविधा हो जाती है।

ह्वेल के मुँह में किसी प्रकार के दाँत नहीं होते वरन् दाँतों के बदले उसके तालू से वे प्रसिद्ध प्लेटें, सैकड़ों की संख्या में लटकती रहती हैं जो "ह्वेलबोन" अर्थात् ह्वेल की हड्डियाँ कहलाती हैं। ये प्लेटें तालू के पास मोटी और हड्डी के समान कड़ी होती हैं किन्तु नीचे की तरफ़ उनकी चौड़ाई कम होती जाती है। प्लेटों के भीतरी किनारों पर बालों की-सी झालर बनी होती है। प्लेटों

की एक एक पंक्ति तालू के दोनों ओर होती है और प्लेटों की संख्या लगभग ४०० तक होती है। इन प्लेटों का बोझ लगभग १$\frac{१}{२}$ टन अर्थात् ४२ मन होता है।

ह्वेल बोन

ये प्लेटें मनुष्य के काम की वस्तु हैं और प्रत्येक ह्वेल में से दो तीन हज़ार रुपये मूल्य की निकल आती हैं।

अब यह देखना है कि ह्वेल के मुँह में प्लेटों का यह वन किस उद्देश्य से रचा गया है। इसके समझने के लिए हमको पहले यह विचार करना होगा कि ह्वेल का खाद्य क्या है और वह उसको कैसे प्राप्त करता है। जन्तु-जगत् के प्राणियों की रचना का अध्ययन करते हुए हमको सैकड़ों विचित्र एवं अद्भुत बातों का ज्ञान प्राप्त होगा किन्तु रचना की विलक्षणता का इससे अधिक विस्मयकर कोई उदाहरण शायद ही मिलेगा कि ह्वेल के मुँह की उस विशाल गुफा के भीतर, जिसमें एक नाव प्रवेश कर सकती है, गले का छिद्र इतना छोटा सा होता है कि उसमें मनुष्य की मुट्ठी भी नहीं समा सकती। और जिस नली के द्वारा गले से पेट में भोजन पहुँचता है वह और भी संकुचित होती है।

समुद्र में सहस्रों बड़े बड़े जीव-जन्तु होते हैं जिनसे वह अपने उदरानल की ज्वाला शीघ्र शान्त कर सकता है किन्तु शोक! वे ह्वेल के किसी काम के नहीं क्योंकि कोई बड़ा जीव उसके छोटे गले में समा नहा सकता और न उनका मांस कुचलने अथवा टुकड़े करने के लिए ह्वेल के मुँह में दाँत ही होते हैं। अतएव समुद्र के इस बड़े दानव को अपना निर्वाह छोटे छोटे जीवों पर करना पड़ता है। उसका मुख्य खाद्य एक प्रकार के छोटे छोटे घोंघे हैं जिनका वैज्ञानिक नाम 'क्लायोबोरियालिस' (Clio Borealis) है। ये केवल सवा इंच लंबे होते हैं। कैसे आश्चर्य की बात है! ह्वेल को अपने पेट

भरने के लिए ऐसे छोटे छोटे जीवों की कितनी संख्या पकड़नी पड़ती होगी !

ह्वेल के मुँह की प्लेटों की उपयोगिता अब हमारी समझ में आ सकेगी। एक जन्तु-शास्त्रविद् डाक्टर थियर्सलिन बतलाते हैं कि क्रायोबोरियालिस घोंघों का एक एक समूह बीस, तीस, अथवा चालीस मील की लम्बाई में फैला होता है और चौड़ाई में भी कई कई मील होता है। ऐसे किसी कोष के पास पहुँचते ही ह्वेल अपने मुँह की गुफा को खोल के क्रायों के झुण्ड के बीच में से बड़े वेग से तैरता हुआ निकलता है। जल के संग सहस्रों घोंघे भी उसके मुँह में पहुँच जाते हैं। ह्वेल तब अपनी जीभ को प्लेटों की पंक्तियों के बीच में तालू से और दोनों ओर प्लेटों की झालर से अड़ाता है। जीभ का दबाव पड़ते ही झालरों में होकर सारा जल मुँह के बाहर निकल जाता है, घोंघे झालरों में फँसे रह जाते हैं। तब ह्वेल घोंघों को धीरे धीरे निगल जाता है। इस प्रकार ह्वेल की प्लेटें वही काम देती हैं जो कि मछली पकड़नेवालों का जाल देता है।

चर्बी, तैल और ह्वेल बोन की प्राप्ति के लिए ग्रीनलैंड के ह्वेल का बहुत शिकार किया जाता है। कभी कभी ऐसे ह्वेल मिल जाते हैं जिनकी लम्बाई और बोझ असाधारण होते हैं। उनमें से एक की लम्बाई पूरी १३२ फुट निकली थी और उसका बोझ २०० टन अर्थात् ५,६०० मन था। उसके मुँह में १५२ बालक एक संग घुसके खड़े हो गये थे। एक अन्य ह्वेल का बोझ २४० टन अर्थात् ६,७२० मन का था। उसमें से २,३८० मन मांस निकला था। उसके अस्थिपञ्जर का बोझ ६८० मन था। चर्बी में से ४,००० गैलन तैल निकला और मुँह से ८०० प्लेटें निकलीं। अनुमान किया गया था कि उसकी आयु १,००० वर्ष से कम नहीं थी।

मादा के प्रतिबार केवल एक बच्चा उत्पन्न होता है। जन्म पाते ही बच्चा अपनी माता के चारों ओर जल में चक्कर लगाने लगता है। तब माता करवट लेके एक पार्श्व से लेट जाती है और बच्चे के मुँह में स्तन देने की चेष्टा करती है। कुछ देर तक इसमें सफलता नहीं होती क्योंकि अभी बच्चा दूध पीना नहीं जानता। किन्तु शीघ्र ही स्तन उसके मुँह में चला जाता है और वह जल के बिछौने पर लेटा-लेटा आनन्द से माता का दूध पीने लगता है। दो मास के भीतर ही बच्चे के मुँह में प्लेटें निकल आती हैं तब वह स्वयं अपना भोजन ढूँढ़ने लगता है।

विधाता ने मातृ-स्नेह सभी जन्तुओं की मादाओं को दिया है किन्तु मादा ह्वेल जो ममता अपने बच्चे के प्रति प्रकट करती है वह पशु-मात्र से आश्चर्यजनक है। शत्रु के सामने वह कदापि अपने प्यारे को छोड़ के नहीं भागती वरन अपनी जान जोखों में डाल के उसको धक्का दे देके आगे बढ़ाती और सुरक्षित स्थान में पहुँचा देने के उपाय करती है। कभी कभी वह बच्चे को अपने सिन्ने के द्वारा शरीर से चिपटा के भागती और उसके प्राण बचा लेती है। यदि कभी उसका बच्चा मारा जाता है तो उसकी उद्विग्नता और दुःख की सीमा नहीं रह जाती। वह फिर सावधानी से अपने भी प्राण नहीं बचा सकती वरन उसी स्थान पर पागल के समान इधर-उधर फड़फड़ाती फिरती है यहाँ तक कि स्वयं शत्रु का शिकार बन जाती है। बड़े शोक की बात है कि जब ह्वेल का शिकार किया जाता है तो शिकारी बच्चे को देख के पहले उसी पर आक्रमण करते हैं। एक तो उसमें बड़े ह्वेल की-सी तीव्रता और फुरती नहीं होती दूसरे यह कि उसके सहारे मा का शिकार सहज हो जाता है और मादा से नर भी ऐसा प्रेम करता है कि उसको जोखों में देख छोड़ कर नहीं भागता वरन् वहीं स्वयं चक्कर लगाता रहता है।

ह्वेल का शिकार कोई सहज काम नहीं है। उसके लिए असीम साहस एवं निपुणता की आवश्यकता होती है और जान पर खेलना होता है। इसके अतिरिक्त ह्वेल के शिकार के लिए विशेष प्रकार के जहाज़ और यंत्रों की भी आवश्यकता होती है। किन्तु धन के लोभ में मनुष्य सब प्रकार के जोखों को उठाता है। ह्वेल की चर्बी तथा ह्वेल बोन दोनों ही मूल्यवान् वस्तुएँ हैं। सन् १८८६ ई० में केवल इंग्लेंड के ह्वेल मारनेवाले जहाज़ों ने ३४ ह्वेल मारे। इनमें ३२० टन चर्बी निकली और ३७० हन्ड्रेडवेट बोझ की प्लेटें निकलीं। इन दोनों वस्तुओं का मूल्य ३,४६,५२०) रुपया हुआ।*

ह्वेल के शिकार के लिए छोटे छोटे, ४०० या ५०० टन के अत्यन्त सुदृढ़ जहाज़ बनाये जाते हैं और उनमें बहुत से कुण्ड तैल भरने के लिए होते हैं। प्रत्येक कुण्ड में २००-२५० टन तक तैल भरा जा सकता है। समुद्र के उन भागों में पहुँच कर जहाँ ह्वेल मिलते हैं एक नाविक जहाज़ के किसी ऊँचे स्थान पर देख-भाल के लिए बिठा दिया जाता है। ज्यों ही उसको आस-पास में कहीं ह्वेल का पता चलता है तो वह सूचना दे देता है। जहाज़ पर से नावें तुरन्त जल में छोड़ दी जाती हैं।

नाविकों के अतिरिक्त प्रत्येक नाव पर एक भाला मारनेवाला भी रहता है। वह अब चौकन्ना हो हाथ में भाला ले तैयार हो जाता है। यह भाले बहुत बड़े बड़े होते हैं। उनकी नोक बहुधा तीर की नोक के समान और लंबाई लगभग ८ फ़ुट की होती है। उनका बोझ लगभग ५ सेर का होता है। अनुभवी भाले फेंकनेवाले भाले को कई गज़ तक बड़े वेग से फेंक लेते हैं। भाला एक रस्सी में बँधा रहता है जिसकी लंबाई ३-४ हज़ार फ़ुट होती है। यह रस्सी बड़ी-सी चर्ख़ी पर लपटी रहती है।

* *Vide* the Encyclopædia Britannica.

भाला फेंकनेवाला पूरा वीर होना चाहिए। उसका काम बड़ी सावधानी, शान्ति, धैर्य्य, और साहस का है। कभी कभी देखा जाता है कि ह्वेल के पास पहुँचते ही वह ऐसा भयग्रस्त हो जाता है कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है, शरीर काँपने लगता है और भाला हाथ से छूट के गिर जाता है। सारी सफलता भाला फेंकनेवाले की निर्भीकता और दक्षता ही पर निर्भर है। यदि भाला चलाने में वह चूक जाय, देर कर दे, अथवा भरपूर बल से भाला न मारे तो सारा परिश्रम नष्ट हो जाता है। यदि भाला पूरे बल से नहीं मारा गया तो वह ऊपरी चर्बी की तह में रह जाता है उसकी नोक मांस तथा पुट्ठों में प्रवेश नहीं करती। ह्वेल अपने शरीर को फड़फड़ा के भाले को सहजही निकाल देता है और घाव खा के फिर ऐसा भागता है कि कहीं पता नहीं चलता।

अस्तु। अब भाला मारनेवाला तैयार खड़ा है। सामने ह्वेल की पीठ दिखाई पड़ रही है और उसके नथुनों से भाप की धारायें निकल रही हैं। सबके हृदय धड़क रहे हैं और सभी टकटकी लगाये अपने अपने काम के लिए तैयार हैं। सहसा अफ़सर के मुँह से आदेश निकलता है "मारो"। इस शब्द के निकलते ही भाला हवा में सनसनाता है, तीर के समान वायुवेग से ह्वेल तक पहुँचता है, चर्बी को फाड़ता हुआ, मांस में घुस के पुट्ठों और नसों में अटक जाता है। इस अनपेक्षित विपद् से ह्वेल घबरा जाता है, भाले को निकालने की चेष्टा करता है किन्तु छुटने का उपाय न देख क्रोधित हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कोई नाव उस समय की जल्दी और घबराहट में ह्वेल के पास पहुँच जाय तो वह अपनी बलवान् दुम के एक ही प्रचण्ड धक्के से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दे। अन्त में पीड़ा से व्याकुल हो ह्वेल आँधी-तूफ़ान के समान

गोता ले सीधा तली की ओर जाता है। प्राणों की रक्षा का भय बड़ा प्रबल है। ह्वेल अंधाधुन्द जाता है, न आगे देखता है न पीछे। इसका एक सच्चा दृष्टान्त सुनिए। समुद्र की गहराई ८०० फुट थी। एक ह्वेल ने भाला खा के गोता लिया तो वह समुद्र की तली से ऐसे वेग से टकराया कि उसके जबड़े की बहुत हड्डी चूर चूर होगई। अस्तु। ह्वेल गोता लेता है। रस्सी की चर्खी रेल के पहिये के समान घूमती है और रस्सी ऐसे वेग से निकलती है कि यदि उसके निकलने में लेश-मात्र भी रुकावट पड़ जाय तो नाव तुरन्त पलट जाय। कभी कभी ऐसी दुर्घटना हो जाती है कि किसी अभागे कर्मचारी का हाथ-पैर बड़े वेग से निकलती हुई रस्सी के लपेट में पड़ जाता है। रस्सी के संग वह खिंचता चला जाता है और फँसा हुआ अंग रगड़ से क्षणमात्र में कट के अलग हो जाता है। घायल हो जाने पर कुछ समय के उपरान्त ह्वेल साँस लेने को ऊपर आता है। ज्यों ही उसका शरीर दिखाई पड़ता है तो पूर्ववत् उसको दूसरा भाला मारा जाता है। इसी प्रकार अब बारंबार ह्वेल नीचे जाता और ऊपर आता है और प्रत्येक बार उसके शरीर में भालों की संख्या बढ़ती जाती है। निपुण भाला फेंकनेवाले ताक के भाले को ह्वेल के शरीर में ऐसे स्थान पर मारते हैं कि उसका काम शीघ्र समाप्त हो जाय। बिना लक्ष्य के भाले फेंकते रहने का ह्वेल पर बहुत प्रभाव नहीं पड़ता और परिणाम यह होता है कि दस-बीस भाले लग जाने के पश्चात् ह्वेल की घबराहट कुछ कम हो जाती है और वह बेतहाशा भाग पड़ता है। तब नाव और रस्सी सब उसके संग उड़े चले जाते हैं। इसी प्रकार की बीसियों कठिनाइयाँ शिकारियों के सामने आती हैं और उनके लिए उपाय तुरन्त सोचना और करना पड़ता है। अन्त में उसके नथुनों से लाल रक्त की धारायें निकलने लगती हैं। यह पूरा चिह्न है कि ह्वेल का अन्त आ पहुँचा। शीघ्र ही उसका शरीर फड़-

फड़ाता है और आस-पास का जल मथित हो जाता है। प्राण निकलते ही उसका शरीर उलट जाता है और सिर कुछ नीचे को लटक जाता है। और ह्वेल का मृत शरीर लहरों पर उतराने लगता है।

यह आवश्यक होता है कि ह्वेल का शरीर तुरंत काट के चर्बी आदि निकाल ली जाय क्योंकि ज्यों ही उसका मृत शरीर तैरने लगता है तो सहस्रों ही जलचर मांसभोजी जीव और पक्षी उसको नोचने लगते हैं।

रॉरक्काल

(BALŒNOPTERA OR THE RORQUAL.)

बालिनिडे-वंश की यह सबसे बड़ी जाति है। रॉरकाल ग्रीनलेंड-ह्वेल से भी लम्बाई-चौड़ाई में बड़ा होता है। उसकी पीठ पर केवल एक सिन्ना होता है। मुँह की प्लेटें छोटी और कुछ चौड़ी होती हैं। ग्रीनलेंड-ह्वेल की अपेक्षा उसका सिर छोटा होता है और पेट की खाल पर बहुत सी गहरी गहरी रेखायें होती हैं।

रॉरकाल उतने सीधे स्वभाव का नहीं होता जितना कि ग्रीनलेंड का ह्वेल। अतः उसका शिकार भी अधिक कठिन होता है। किन्तु रॉरकाल का शिकार कोई करता भी नहीं क्योंकि उसके शरीर से चर्बी बहुत थोड़ी निकलती है।

हिन्द महासागर में, विशेषकर मालाबार के किनारे पर रॉर-काल के झुण्ड के झुण्ड मिलते हैं। बंगाल-प्रान्त में चटगाँव बन्दर के किनारे एक रॉरकाल आ पड़ा था जिसकी लम्बाई पूरे ९० फुट की थी और जिसके शरीर का घेरा ४२ फुट था। मालाबार के तट पर इस जाति का एक जन्तु मिला था जिसकी लम्बाई पूरे १०० फुट की थी।

इसकी कई उपजातियाँ योरप और अमेरिका के किनारे पर भी मिलती हैं।

फिस्टिराईडे-वंश

(PHYSTERIDŒ FAMILY.)

साधारण विवरण

सिटेशिया श्रेणी के दूसरे वंश को 'फिस्टिराईडे-वंश' का नाम दिया जाता है। इस वंश के ह्वेलों की रचना की मुख्य विशेषता यह है कि उनके मुँह में बालिनिडे-वंश के ह्वेलों के समान प्लेटें नहीं होतीं वरन् नीचेवाले जबड़े में बहुत से नुकीले दाँत होते हैं।

इस वंश की मुख्य जाति केचेलॉट ह्वेल है जो प्रायः सभी समुद्रों में मिलता है।

केचेलॉट

(CACHALOT OR SPERM WHALE)

(*Physeter Macrocephalus*)

केचेलॉट ह्वेल की लम्बाई ५०-६० फुट की होती है किन्तु मादा बहुत छोटी होती है। उसका सिर अत्यन्त भयानक होता है। नीचे का जबड़ा तो बहुत पतला-सा होता है किन्तु ऊपरी जबड़ा और सिर मिल के एक समतल चबूतरा-सा बन जाता है जिसकी लम्बाई २० फुट से कम नहीं होती। नीचेवाले जबड़े में ४० से ५० तक नुकीले दाँत होते हैं। प्रत्येक दाँत तौल में दो पौंड से चार पौंड तक का होता है। ऊपर के जबड़े में प्रत्येक दाँत के लिए एक गड्ढा बना होता है। यदि ये गड्ढे न बने हों तो केचेलॉट अपने दाँतों की तीव्र नोकों के कारण मुँह भी बन्द न कर पाता। सिर के ऊपर सामने की ओर उसके नथुने होते हैं। नथुनों के पीछे उसके विशाल कपाल में एक कुण्ड होता है जिसमें चमकीला सफ़ेद रंग का तैल भरा होता है। केचेलॉट को मार कर उसके सिर का ढकना तोड़ डालते हैं और डोलों में भर भर के इस तैल को निकाल लेते हैं। एक केचे-लॉट (जिसकी लम्बाई ६४ फुट की थी) के सिर में से १०० बड़े

ह्वेल

पीपे तैल के निकले थे। किसी किसी में पूरे १०० टन तैल निकल आता है। प्रति टन का मूल्य दस पौंड होता है। इस प्रकार एक केचेलाँट में कोई १५,०००) रुपये का केवल तैल निकल आता है। इस तैल की मोमबत्ती प्रसिद्ध है।

केचेलाँट के शरीर से एक और मूल्यवान् उपयोगी वस्तु भी प्राप्त होती है। यह एक प्रकार का अम्बर होता है जिसको एम्बर-ग्रिस (Ambergris) कहते हैं। यह पदार्थ केचेलाँट की अँतड़ियों में मिलता है और नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थ उससे तैयार किये जाते हैं।

प्रत्येक ह्वेल में ५० पौंड तक एम्बरग्रिस निकल आता है। एक केचेलाँट में से निकले हुए एम्बरग्रिस का मूल्य १२ या १५ हज़ार रुपये से कम नहीं होता। इन पदार्थों के अतिरिक्त केचेलाँट में से २००-३०० मन चर्बी भी निकलती है। उसकी चर्बी में एक गुण यह होता है कि उसमें दुर्गन्ध नहीं होती जैसी कि सिटेशिया वर्ग के अन्य जीवों की चर्बी में होती है।

केचेलाँट एकान्तप्रिय नहीं है वरन् झुण्ड के झुण्ड साथ रहते हैं। प्राय: दो अथवा तीन सौ के दल एक संग महासागरों में दूर दूर के चक्कर लगाते फिरते हैं। यद्यपि उनका शरीर स्थूल और दीर्घ होता है तथापि वे बड़ी लम्बी लम्बी यात्रा किया करते हैं। एक केचेलाँट जो ऐटलान्टिक महासागर से भाला खा के भागा था पैसिफ़िक महासागर में पकड़ा गया था।

बंगाल की खाड़ी में, लंका टापू के निकटवर्ती समुद्रों में, तथा जापान और कोरिया के पास इस जन्तु का बहुत शिकार किया जाता है। ऐसे मूल्यवान् जन्तु को भला मनुष्य कब छोड़ने-वाला है। किन्तु केचेलाँट ग्रीनलेंड-ह्वेल का सा भीरु नहीं होता। उसके शिकार में जान पर खेल कर जाना होता है। केचेलाँट में

शत्रु के सामने अद्भुत फ़ुरती आ जाती है और अपनी रक्षा के लिए वह भीषण हो कर लड़ाई करता, और भयानक होकर नौका को अपने बृहत् सिर के प्रचण्ड धक्के मारता है।

स्वभाव की भीषणता के कारण केचेलॉट के नर आपस में भी भयंकर युद्ध किया करते हैं। कामोद्दीपन-काल में जब मादाओं के पीछे झगड़ा होता है तो प्रायः एक दूसरे को मार डालते हैं।

मादा के बहुधा एक बच्चा होता है जो जन्म के समय १०-११ फ़ुट लम्बा होता है। माता बच्चे का पालन-पोषण बड़े प्रेम से करती है और उसकी रक्षा करने को सर्वथा तैयार रहती है।

डेल्फ़िनिडे-वंश

[THE DELPHINEDÆ]

साधारण विवरण

पूर्वोक्त दोनों वंशों के जन्तुओं की अपेक्षा सिटेशिया कक्षा के डेल्फ़िनिडे-वंश के जीव बहुत छोटे होते हैं। इस वंश के सब जन्तु दाँतदार हैं। नुकीले दाँतों की बहुत बड़ी संख्या उनके मुँह में पाई जाती है। इनके केवल एक ही नथना होता है। प्राय: सभी समुद्रों में इनके झुण्ड के झुण्ड मिलते हैं। कहीं कहीं बड़ी नदियों में भी ये जीव पहुँच जाते हैं। इस वंश के सब जन्तु पक्के मांसभोजी हैं और छोटे बड़े जीवों की उनके द्वारा बहुत हत्या होती है।

डेल्फ़िनिडे-वंश में निम्न-लिखित जातियों को स्थान दिया जाता है:—

(१) डॉलफ़िन, (२) पॉर्पस, (३) ग्रेम्पस, (४) सूँस, (५) नारवाल, (६) श्वेत ह्वेल।

डेल्फ़िनिडे-वंश के ये सब जन्तु जल के प्राणी हैं और उनका शरीर बिलकुल मछली का-सा होता है। किन्तु ये स्तनपोषित जीव हैं और इनकी मादाएँ अपने बच्चों का पालन स्तनों से दूध पिला के करती हैं। ये सब जल के भीतर, मछली के समान साँस भी नहीं ले सकते हैं वरन उनको थोड़ी थोड़ी देर पर जल के ऊपर साँस लेने को आना पड़ता है।

डॉल्फ़िन

(THE DOLPHIN)

डॉल्फ़िन प्राय: सभी समुद्रों में मिलता है। उसके शरीर की लम्बाई लगभग ८ फ़ुट की होती है। दोनों जबड़े पक्षियों की चोंच के समान लम्बे निकले हुए होते हैं जिनमें बहुत से नुकीले दाँत होते हैं। डॉल्फ़िन सर्वदा बहुत से मिल के संग रहते हैं और जलचर जीवों में इनसे ज़्यादा खिलाड़ी कोई जीव नहीं होता। कुतूहलवश एक दूसरे पर उछलते कूदते रहते हैं और घंटों खेल-तमाशे किया करते हैं। जहाज़ को देख सारा झुण्ड उसके पीछे लग जाता है और मीलों तक संग नहीं छोड़ता। उनका तमाशा देखने को नाविक और यात्री सब एकत्रित हो जाते हैं।

छोटी छोटी मछलियों और घोंघों पर वह अपना निर्वाह करता है।

पॉर्पस

(THE PORPOISE)

पॉर्पस जाति के जन्तुओं में डॉल्फ़िन की-सी चोंच नहीं होती वरन उनका जबड़ा मछली के समान गोल होता है। यह सुन्दर सुडौल जीव सिटेशिया-वर्ग का सबसे छोटा जीव है। उसका शरीर ५ फ़ुट से अधिक नहीं होता। देखने में पॉर्पस बिलकुल मछली-सा प्रतीत होता है किन्तु वह स्तनपोषित समुदाय का जीव है। उसके जबड़े में लगभग १०० छोटे छोटे नुकीले दाँत होते हैं।

पॉर्पस की एक उपजाति (Phocœna communis) उत्तरी एट-लांटिक एवं पैसिफिक महासागर में और योरप के समीपवर्ती समुद्रों में बहुत होता है। झुण्ड का झुण्ड जल से बाहर उछलता किनारों पर से दिखाई पड़ा करता है। प्राय: यह जन्तु मछली मारनेवालों के जाल में फँस जाया करता है किन्तु उसका मांस स्वादिष्ट नहीं होता।

ग्रेम्पस

THE GRAMPUS

(*Orca Gladiator*)

ग्रेम्पस बड़ा और बलवान् जन्तु है और उसका शरीर लगभग २० फ़ुट लम्बा होता है। उत्तर में ग्रीनलेंड से दक्षिण में ऑस्ट्रेलिया तक सभी समुद्रों में यह भयानक जन्तु मिलता है।

सामुद्रिक जीवों में ग्रेम्पस का-सा अनियमित और बहुभोजी दूसरा जीव नहीं होता। उसकी प्रकृति ऐसी वधिक होती है कि उसको समुद्र का भेड़िया कहना अनुचित न होगा। बड़ी बड़ी मछलियों और अन्य जीवों को समूचा ही निगल जाता है। भोजन से उसे कदापि तृप्ति नहीं होती। एक जन्तुशास्त्रवित् बतलाते हैं कि उन्होंने एक ग्रेम्पस का मृत शरीर पाया था जिसके गले में एक सील अटकी हुई थी। इस ग्रेम्पस के पेट में १३ पॉर्पस तथा १४ सील (Seal) की लाशें उपस्थित थीं। फिर भी जी न माना और एक सील उसने और निगल जानी चाही। पेट में स्थान तो था नहीं, वह सील गले में अटक गई और ग्रेम्पस की मृत्यु हो गई।

ग्रेम्पस ह्वेल का पक्का शत्रु है। झुण्ड के झुण्ड, ह्वेल पर आ टूटते हैं और उसके शरीर को काटना, नोचना आरम्भ कर देते हैं और शीघ्र उसे मार लेते हैं। विकटकाय ह्वेल से उनके झुण्ड के सामने कुछ करते नहीं बनता।

सूँस

THE GANGETIC PORPOISE

(*Platanista Gangetica*)

गंगा नदी का सूँस सिटेशिया-वर्ग के प्लेटेनिस्टा जाति का स्तनपोषित जीव है। भिन्न भिन्न स्थानों में इसको सूँस, सोंस, सूँसा आदि के नाम दिये गये हैं।

सूँस गंगा नदी में एवं उसकी बड़ी बड़ी सहायक यमुना, घाघरा आदि में मिलता है। ब्रह्मपुत्र में भी पाया जाता है किन्तु हिन्दुस्तान की दक्षिणी नदियों में नहीं होता। नदियों के संगम पर विशेषकर इनकी बहुत संख्या मिलती है, कारण कि वहाँ खाने के लिए मछलियों का अभाव नहीं होता। बड़े बड़े नगरों के समीप नदियों में इनके झुण्ड के झुण्ड दिखाई पड़ते हैं। कोई साँस लेने को ऊपर उठते हैं, कोई जल में इतस्तत: लुढ़कते फिरते हैं और फिर जल में डुबकी लगा जाते हैं।

डॉक्टर जर्डन तीन सूँसों के शरीर का नाप ६, ६½ और ७ फ़ुट बतलाते हैं। शरीर का रंग गहरा सीसे के समान होता है, वृद्धावस्था में कुछ हल्के धब्बे भी शरीर पर दिखाई पड़ने लगते हैं। ऊपरवाले जबड़े में ५६ और नीचेवाले में ५८ दाँत होते हैं। कानों के छिद्र छोटे और आँखें अत्यन्त छोटी छोटी होती हैं। सूँस की दृष्टि-शक्ति इतनी निर्बल होती है कि छछूंदर के समान वह भी सूर्य्य के प्रकाश में देख नहीं सकती। यही कारण है कि सूँस को गदले जल में लोटना प्रिय होता है।

सूँस के भी जबड़ों के आगे डॉल्फ़िन के समान चोंच निकली होती है जिसकी लम्बाई एक फ़ुट से सवा फ़ुट तक या कभी कभी और भी अधिक होती है और इस चोंच से वह कीचड़ में से मछलियाँ, घोंघे आदि खोदता रहता है।

सूँस अत्यन्त लद्धड़, आलसी और मन्दगामी जीव है। ढाका के पास गरवारू जाति के लोग प्राय: उसको भालों से मार लिया करते हैं। ये लोग उसका मांस खा लेते हैं और चर्बी जलाते हैं।

सूँस का एक जातिभेद सिन्धु नदी में भी मिलता है जो गंगा के सूँस से कुछ बड़ा होता है।

एक विचित्र और विलक्षण बात यह है कि मादा का शरीर नर से बड़ा और लम्बा होता है।

नारवाल

THE NARWHAL

(Monodon Monoceros)

सिटेशिया-वर्ग का यह विचित्र छोटा सा जीव उत्तरी ठंढे समुद्रों में मिलता है। बचपन में नारवाल के ऊपरी जबड़े में केवल दो दाँत होते हैं। नरों में इनमें से एक दाँत बराबर बढ़ता जाता है और ७-८ फ़ुट लम्बा हो के मुँह के सामने बर्छी के समान निकल जाता है। यह खोखला होता है और उसका बाहरी आकार पेंच के समान होता है। इस दाँत का कोई विशेष उपयोग समझ में नहीं आता और जो कुछ विश्वास उसके सम्बन्ध में हैं वे कल्पना-मूलक हैं।

नारवाल की लम्बाई १०-१२ फ़ुट की होती है और वह झुण्ड में रहा करता है। ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ होने पर उनके दल उत्तरी सागरों की तरफ़ जाते देखे जाते हैं जिनमें कई कई हज़ार जीव होते हैं। वे दाँत से दाँत और दुम से दुम मिलाये ऐसे क्रम से तैरते हैं और संग संग गोता लेते और ऊपर उठते हैं मानो कोई सेना जा रही हो।

नारवाल के दाँत की हड्डी हाथीदाँत से भी अच्छी बताई जाती है किन्तु खोखला होने के कारण उसकी केवल छोटी छोटी वस्तुएँ बन सकती हैं।

प्राय: नारवाल बड़े वेग से जहाज़ में टक्कर मारते हैं। संभवत: वे उसको कोई बृहत् जन्तु समझते हैं। ऐसी मूर्खता करने पर उनका दाँत जहाज़ में गड़ के टूट जाता है। किसी किसी का विश्वास है कि अपने शिकार के शरीर में भी नारवाल दाँत को घुसा के उसको जकड़ लेता है।

ग्रीनलेंड के निवासी नारवाल का मांस खाते हैं और उसकी चर्बी भी काम में लाते हैं।

श्वेत ह्वेल

(BELUGA CATADON)

डेल्फिनिडेवंश की यह एक प्रसिद्ध जाति है जिसका सुन्दर सफ़ेद शरीर १२ से १६ फ़ुट तक का होता है। ग्रीनलेंड द्वीप के पास यह जन्तु बहुत मिलते हैं। श्वेत ह्वेल का मांस सुस्वादु और चर्बी उत्तम होती है। ग्रीनलेंड के निवासी इसका मांस खाते और सुखा के रख भी छोड़ते हैं। उनका कण्ठस्वर बड़ा सुरीला होता है। जल के भीतर वे एक सीटी का-सा शब्द करते हैं जिसको सुन के प्रतीत होता है कि कोई पत्ती बोल रहा है। वह मछ-लियों और घोंघों पर अपना निर्वाह करता है।

साईरीनिया-श्रेणी

(SIRENIA)

साधारण विवरण

साईरीनिया-श्रेणी के जन्तु भी जल में रहनेवाले स्तनपोषित जीव हैं किन्तु सिटेशिया एवं पिनिपीडिया-श्रेणी से उनमें मुख्य भेद यह है कि ये शाकभोजी हैं। वे किसी प्रकार का मांस नहीं खाते वरन् सामुद्रिक घास और पौधों पर अपना निर्वाह करते हैं।

साईरीनिया-श्रेणी के जन्तुओं की हड्डियाँ अत्यन्त ठोस और भारी होती हैं। अमित शक्तिशालिनी प्रकृति ने प्रत्येक जीव-जन्तु की रचना में बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया है। इन जन्तुओं को अधिकांश समय समुद्र की तली में व्यतीत करना पड़ता है क्योंकि घास पौधे समुद्र की तली ही में मिलते हैं। यदि हड्डियाँ ठोस और सुदृढ़ न होतीं तो वे अधिक समय तक पानी का बड़ा बोझ कैसे सह सकते। ह्वेल के वृत्तान्त में हम देख चुके हैं कि लगभग एक मील की गहराई में प्रत्येक वर्ग फ़ुट पर लगभग ३८३६ मन का बोझ होता है। हड्डियों के बोझ के कारण इनको गोता मार के तली में पहुँचने में भी बड़ी सुविधा होती है।

इन जन्तुओं का सिर गोल, आँखें छोटी और बाहरी कान नहीं होते। दुम चपटी और पार्श्वस्थ होती है। खाल के नीचे एक मोटी तह चर्बी की होती है।

साईरीनिया-श्रेणी में केवल एक वंश है और उसमें दो जातियाँ हैं:—

(१) मैनेटी (२) ड्यूगाँग

साईरीनिया-श्रेणी की एक तीसरी जाति पृथ्वी पर से हाल ही में लुप्त हो चुकी है। इसको राइटिना (Rhytina) कहते थे और यह बेरिंग सागर के तटों पर मिलती थी। राइटिना दंतविहीन प्राणी थे और उनके डाढ़ें तक नहीं होती थीं। मांस के लिए मनुष्य-द्वारा उनकी इतनी हत्या की गई कि सन् १७८६ ई० में राइटिना का पूरा विध्वंस हो गया। संसार में अब उसकी स्मृति-मात्र अवशिष्ट है।

मैनेटी

THE MANATEE

(*Manatus*)

भारी, भद्दा, आलस्यशील और मंदगामी मैनेटी का शरीर, मछली के समान, आगे से पीछे को पतला होता जाता है। उसके शरीर में केवल अगली टाँगें होती हैं जो चपटी और नाव के डाँड़ों के समान होती हैं। उनका आकार कुछ कुछ मनुष्य के तलवे का-सा होता है। प्रत्येक पैर पर तीन चपटे नख होते हैं किन्तु उंगलियों का कुछ पता नहीं होता। मैनेटी अपनी टाँगों को बड़ी सुगमता से चारों ओर हिला-डुला सकता है। उसकी पिछली टाँगें नहीं होतीं, न शरीर के भीतर ही उनका कोई चिह्न मिलता है। आँखें छोटी छोटी और आँखों के पीछे कान के बहुत छोटे छोटे से छिद्र होते हैं। उसका गोल, गुदगुदा थूथन सिर के आगे निकला होता है। मुँह की रचना विशेषरूप की होती है। ऊपरी ओंठ बीच में फटा होता है। दोनों भागों पर मांस की मोटी गद्दियाँ चढ़ी होती हैं, और इन गद्दियों पर बालों की मोटी मोटी ठूँठें होती हैं। ऊपरी ओंठ मैनेटी के लिए बड़ा उपयोगी होता है। उसके दोनों भागों को मैनेटी इस प्रकार मिला सकता है जैसे हम अपनी

उंगलियाँ मिलाते हैं। उन्हीं से वह घास पात को पकड़ लेता है और दोनों भागों को झुका कर खाद्य को मुँह में ले जाता है। बालों की ठूँठों के कारण ओंठ के दोनों भाग ऐसे खुरदरे होते हैं कि उनकी पकड़ से घास-पात सहज फिसलने नहीं पातीं।

उसके चपटे हाथ तैरने में भी सहायता देते हैं और उनसे वह अपने खाद्य को दबा कर मुँह तक भी पहुँचा लेता है।

भूमि पर मैनेटी कठिनाई से थोड़ा-बहुत रेंग सकता है।

मैनेटी निर्दोष और संसर्गप्रिय जीव है। नर और मादा की पारस्परिक प्रीति आदर्शजनक होती है। शत्रु के सामने नर मादा को छोड़ के कभी नहीं भागता। माँ भी बच्चे से बड़ा प्रेम करती है। इसी लिए शिकारी सर्वथा पहले बच्चे को काँटा मारते हैं। रक्त बहते देख नर और मादा सब उसकी सहायता करना चाहते हैं और सारा परिवार शिकारी के हाथ लग जाता है।

अनेक देशों में चिरकाल से एक कहावत चली आती है कि समुद्रों में 'मत्स्य-स्त्रियाँ' हुआ करती हैं जिनका आधा शरीर सुन्दर स्त्रियों का-सा होता है और शरीर का निम्न भाग मछलियों का-सा। विचित्र बात यह है कि यद्यपि मैनेटी की मादा में स्त्री के सौंदर्य्य का कोई चिह्न नहीं होता तथापि उसी को समुद्र की मत्स्य-स्त्री मानते हैं। संभवत: इसका कारण यह हो सकता है कि मैनेटी के स्तन भी वक्ष:स्थल पर होते हैं और उसके कुचों का आकार स्त्रियों के कुचों के सदृश होता है। मादा मैनेटी अपने बच्चे को गोद में दबा के ठीक उसी प्रकार दूध पिलाती है जैसे कि स्त्रियाँ। प्राय: देखा जाता है कि तट के समीप मादा अपने बच्चे को गोद में ले, गहरे जल में दुम के सहारे सीधी खड़ी हो जाती है और बच्चे को दूध पिलाती है।

दुर्भाग्यवश मैनेटी का मांस, चमड़ा, और चर्बी सब मनुष्योपयोगी हैं, अतः निर्दयी मनुष्य सर्वत्र उनके वध पर उतारू रहता है। ऐसे निर्दोष, आलसी और बुद्धिहीन जीव का संसार में ठिकाना कहाँ!

मैनेटी बेचारे को न काटने को दाँत मिले हैं, न मारने के लिए सींग और न भागने के लिए टाँगें। अस्तित्व के संघर्ष में उसका विध्वंस अनिवार्य्य है। कुछ समय के उपरान्त संभवतः यह जीव भी लुप्त हो जायगा।

मैनेटी के दो जातिभेद पृथ्वी पर मिलते हैं, अर्थात्—

(१) अमेरिका का मैनेटी (Manatus Australis) जो वेस्ट इन्डीज़ टापुओं में, अमेरिका के किनारों पर और ब्रेज़ील नदी में पाया जाता है।

(२) अफ़्रीक़ा का मैनेटी (Manatus Senegalensis) जो अफ़्रीक़ा के समुद्र-तटों पर मिलता है।

दोनों की रचना और स्वभाव बहुत कुछ समान होते हैं। दोनों जाति-भेदों की दंत-रचना विचारणीय है। जबड़ों में सामने को जहाँ अन्य जन्तुओं के कृंतक दंत हुआ करते हैं मैनेटी के हड्डी की प्लेटें जड़ी होती हैं। इन प्लेटों की हड्डी सींग की-सी होती है। उनके मुँह में कीले नहीं होते क्योंकि शाकभोजियों के लिए कीले निष्प्रयोजनीय हैं। मैनेटी के गालों में चौड़ी चकरी डाढ़ें होती हैं जो शाक-पदार्थों के चर्वण के लिए उपयोगी होती हैं।

ड्यूगाँग

THE DUGONG

Halicore

साइरीनिया-श्रेणी में मैनेटी के अतिरिक्त केवल ड्यूगाँग की एक जाति और है। ड्यूगाँग के अगले पैरों में मैनेटी के समान

ड्यू गांग (Halicore) पृष्ठ ९०

वालरस (Trichechus Rosma-
rus) पृष्ठ ९२

फ़ोका (Phoca) पृष्ठ ९६

सामुद्रिक भालू (Otaria Ursina) पृष्ठ १०३

सामुद्रिक शेर (Otaria Stelleri) पृष्ठ १०३

हिन्द का हाथी (Elephas Indicus) पृष्ठ १०७

नख नहीं होते। उसके ऊपरी जबड़े में दो कृंतक दंत होते हैं जो बहुत बड़े और आगे की ओर झुके हुए होते हैं। परन्तु मोटे और भारी ओंठों के कारण ये दाँत बाहर से नहीं दिखाई पड़ते। ड्यूगाँग की जीभ पर सामने को छिलका सा चढ़ा होता है। मैनेटी के समान इनके जबड़ों में भी प्लेटें होती हैं।

इस जाति की भी मुख्य उपजातियाँ दो हैं, अर्थात्—

तल्लामाहा (Halicore Dugong)—ड्यूगाँग का यह जाति-भेद अन्दमन तथा लंका टापुओं के निकट और भारत के मालाबार-तट पर पाया जाता है। लंका में इसको तल्लामाहा कहते हैं। यह ६-७ फ़ुट लम्बा होता है या कभी कभी कुछ अधिक। खाल का रंग हलका नीला होता है। आँखें बहुत छोटी होती हैं। सूर्य्योदय के समय प्रायः तट पर निकल कर ड्यूगाँग धूप में पड़े दिखाई पड़ते हैं।

आस्ट्रेलिया का ड्यूगाँग (Halicore Australis)—इसका मांस उत्तम और स्वादिष्ट समझा जाता है और उसकी चर्बी भी स्वच्छ और गन्धरहित होती है। चर्बी के लिए ये जन्तु बहुत मारे जाते हैं। फेफड़ों के रोग के लिए इसकी चर्बी में वही गुण बताया जाता है जो कॉड मछली के तेल में होता है।

पिनिपीडिया-वर्ग

(Order of Pinnepedia)

साधारण विवरण

वैज्ञानिक दृष्टि से पिनिपीडियाश्रेणी के जन्तुओं को मांसभुक्-श्रेणी (Order of Carnivora) के प्राणियों में स्थान मिलना चाहिए। वास्तव में उनका स्थान बिल्ली-वंश (Felidæ) के जन्तुओं और ऊदबिलाव (Lutra) के बीच में है। किन्तु जलचर जीव होने के कारण उनको प्रायः एक दूसरी ही श्रेणी में स्थान दिया जाता है।

पिनिपीडियाश्रेणी के जीवों की रचना जल के जीवन के लिए पूर्णतया उपयुक्त है। इनका शरीर भी मछली के समान सामने से पीछे को पतला होता जाता है। किन्तु सिटेशिया-श्रेणी के प्राणियों से इनके शरीर का आकार स्पष्टतः विभिन्न होता है। सिटेशिया के जीव बिलकुल मछली के समान जान पड़ते हैं, पर पिनिपीडिया के प्राणियों के सिर और शरीर के बीच में गर्दन होती है। इनके शरीर में चारों टाँगें उपस्थित होती हैं किन्तु हाथ और पैरों की उंगलियों पर झिल्ली चढ़ी होती है। जल में तैरने में टाँगों से सहायता अवश्य मिलती है किन्तु स्थल पर वे कुछ काम नहीं देतीं। भूमि पर बड़ी कठिनाई से ये जीव थोड़ा बहुत खिसक सकते हैं। धूप खाने के लिए प्रायः तट पर वे आ जाते हैं और अपने बच्चों को सर्वथा किनारे ही पर जन्म देते हैं।

मछलियाँ और अन्य सामुद्रिक जीवों को खाकर वे अपना निर्वाह करते हैं। पिनिपीडिया-श्रेणी में तीन वंश हैं, अर्थात्—

(१) वालरस-वंश—Trichechidæ.

(२) बिना कानवाली सीलें—Phocidæ.

(३) कानवाली सीलें—Otariidæ.

वालरस

(TRICHECHUS ROSMARUS)

वालरस अपने वंश का अकेला ही प्राणी है।

यह विशाल, भद्दा, विचित्र जीव केवल उत्तरी (शीतमेखला) के हिममय समुद्रों में मिलता है। वालरस पृथ्वी के बड़े जन्तुओं में से है। उसके शरीर की लंबाई १५-१६ फुट होती है और बोझ एक टन (लगभग २८ मन) तक होता है। हिमाच्छादित तटों पर वालरस के झुंड के झुंड धूप खाने के लिए प्रायः लोटते दिखाई पड़ते हैं और उनको दूर से देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो पानी

से भरी बड़ी बड़ी मशकें पड़ी हों। वालरस झुंड में रहनेवाले जीव हैं और समुद्र में किनारे ही पर रहते हैं, दूर कभी नहीं जाते।

वालरस के शरीर में चार टाँगें होती हैं। अगली टाँगों का ऊर्द्ध्व भाग तो शरीर के भीतर गड़ा होता है। केवल निम्न भाग शरीर के बाहर लटकता है। भुजा की हड्डी स्पष्टरूप से खाल के भीतर गड़ी हुई दिखाई पड़ती है। पिछली टाँगों का भी कुछ भाग शरीर के भीतर होता है। जो भाग बाहर होता है वह पीछे को सीधा फैला रहता है। उसकी पिछली टाँगें देख कर ऐसा मालूम होता है कि किसी रोग के कारण रह गई हैं।

वालरस के मुँह में कुल ३४ दाँत होते हैं किन्तु इनमें से बहुत से तो अल्पावस्था में ही गिर जाते हैं, और कई दाँत मसूढ़ों के भीतर ही रह जाते हैं, बाहर नहीं निकलते। जो दाँत वास्तव में काम के होते हैं उनकी संख्या निम्न-लिखित है:—

कृंतक $\frac{१-१}{०-०}$, कीलें $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$ = १८

वालरस के ऊपरी जबड़े के कीले विलक्षण होते हैं। वे असंगत बेडौल बढ़ते चले जाते हैं और जबड़ों के बाहर हाथी के दाँतों के समान निकले रहते हैं। इनकी नोकें नीचे को होती हैं और लंबाई २० इंच तक होती है। कंकड़ पत्थरों में से अथवा बालू में गड़े हुए सामुद्रिक घोंघे वह इन्हीं से खोदकर निकाल लेता है। ढालू किनारे पर चढ़ने के लिए वह अपने कीले भूमि में गड़ा कर उन्हीं के सहारे अपने शरीर को ऊपर को घसीटता है।

वालरस बेचारे के एक तो हाथ-पाँव लुञ्ज होते हैं दूसरे उसका शरीर इतना स्थूल है कि भूमि पर वह बेबस होता है। स्वभाव का भी वह सीधा और निर्दोष होता है। तट पर यदि बेचारा कभी घिर जाता है तो उससे कुछ करते नहीं बनता। न तो भागने

ही की क्षमता उसमें है, न वह अपनी स्थूलता एवं निकम्मे हाथ-पैरों के कारण शत्रु पर आक्रमण ही कर सकता है। क्रोधित हो केवल गर्जन करता रहता है या भूमि को अपने बृहत् कीलों से खोद डालता है।

किन्तु जल में विशाल वालरस में भी बहुत कुछ फ़ुरती आ जाती है। विशेषकर घायल हो जाने पर वह भीषण होकर शत्रु का सामना करने को तैयार हो जाता है। दल के किसी व्यक्ति को संकट में देख उसके सब साथी बड़े उत्साह और साहस के साथ सहायता करने को आ पहुँचते हैं। प्रायः वे नाव को घेर लेते हैं और अपने प्रबल दाँतों से उसको तोड़ डालने में कोई कसर बाक़ी नहीं रखते। कभी कभी अपने भारी शरीर से ऐसे ज़ोर का धक्का मारते हैं कि नाव उलट जाती है।

वालरस की प्रकृति कलहप्रिय होती है और उनमें प्रायः युद्ध हुआ करते हैं। नरों के शरीर के बाल झड़ जाने पर इन लड़ाइयों के चिह्न खाल पर दृष्टिगोचर होते हैं।

वालरस के कीलों की हड्डी उपयोगी होती है। उसमें विशेष गुण यह होता है कि पुरानी पड़ने पर भी पीली नहीं पड़ती। वालरस की खाल भी मोटी और सुदृढ़ होती है। उससे काठियाँ, जूतों के तले आदि बनाये जाते हैं। परन्तु सबसे मूल्यवान् वस्तु जो वालरस से प्राप्त होती है वह उसकी चर्बी है। प्रत्येक वालरस के शरीर से १०-१२ मन उत्तम चर्बी निकलती है। इन सब वस्तुओं की प्राप्ति के लिए प्रायः शिकारी वालरस के दलों को किनारे पर घेर लेते हैं और निर्दयी हो कर ज़रा सी देर में सैकड़ों को मार लेते हैं। वालरस की इतनी हत्या की जा चुकी है कि अब उनकी संख्या बहुत कम होगई है।

ग्रीनलेंड आदि देशों में रहनेवाले एस्किमो जाति के लोग वालरस पर बहुत कुछ निर्भर करते हैं। सील और वालरस

दो ही जन्तु हैं जो उन हिमाच्छादित प्रदेशों में मिलते हैं। एस्किमो लोग उनका मांस खाते हैं, चर्बी जलाते हैं, हड्डियों के हथियार बनाते हैं, खाल के लबादे, डेरे तथा स्लेज के कुत्तों की काठियाँ बनाते हैं। सारांश यह कि यदि एक वालरस भी एस्किमो के हाथ लग जाता है तो सारे परिवार के अभावों की पूर्त्ति हो जाती है।

ध्रुव के सुप्रसिद्ध पता लगानेवाले, कप्तान पैरी को एक रात्रि एस्किमो लोगों के डेरों में व्यतीत करने का अवसर हुआ था। गाँव के मर्द सब वालरस के शिकार को गये हुए थे। रात्रि बड़ी भयानक और कष्टदायक हो रही थी, बरफ़ ख़ूब गिर रही थी और ठंढ की सीमा न थी। अतिथि लोगों का आदर-सत्कार स्त्रियों ने किया। स्त्रियाँ एक गीत सुना रही थीं कि इतने में एक बालक ने आ के ख़बर दी कि मर्दों ने बरफ़ पर किसी जन्तु को मारा है। लगभग एक घंटे के उपरान्त एक शिकारी मांस का एक बड़ा टुकड़ा लिये आ पहुँचा और सूचना दी कि उनके हाथ दो वालरस लग गये हैं। सारे ग्राम में धूम मच गई। स्त्रियाँ एक दूसरे को आनन्ददायक समाचार सुनाने और गले मिलने लगीं। उस मांस के टुकड़े से सब स्त्रियों और बालकों को थोड़ा थोड़ा भोजन भी प्राप्त होगया और चर्बी से सबके घरों के चिराग़ भी जल गये। आठ बजे से आधी रात के बाद तक मांस के बोझ के बोझ मनुष्यों द्वारा पहुँचते रहे, और अन्त में स्लेजों पर भी कुत्ते घसीट कर लाये।

ग्राम में दीपकों का प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। वालरसों के मांस को काटते समय जैसा आनन्द मंगल सबने मनाया वह देखने योग्य था।

उपरोक्त वर्णन से विदित होता है कि एस्किमो जाति के लिए वालरस कितने काम का जीव है।

फ़ोसिडे-वंश

अर्थात् बिना कानवाली सीलें

(PHOCIDÆ)

साधारण विवरण

बाह्यरूप में सील-वंश के जन्तु भी वालरस-वंश के समान होते हैं। इनकी अगली और पिछली टाँगों का भी वही ढंग होता है जो वालरस की टाँगों का होता है। किन्तु सील के दाँत वालरस के दाँतों के समान बाहर नहीं निकले होते हैं। सीलें भी जल के मांसभोजी जीवों में से हैं।

सील का सिर गोल और थूथन कुत्ते का-सा होता है। मुँह पर बड़ी बड़ी मूछें होती हैं जो संभवत: स्पर्शेन्द्रिय का काम देती हैं।

पैरों में ५-५ उंगलियाँ होती हैं जिन पर झिल्ली चढ़ी होती है। सील की भी पिछली टाँगें वालरस की टाँगों के समान पीछे को फैली रहती हैं और इनका बहुत सा भाग एक दूसरे से जुड़ा होता है।

सील-वंश की मुख्य दो जातियाँ हैं:—

(१) फ़ोका (Phoca),

(२) हाथी सील (Cystophora).

फ़ोका

अर्थात् बिना कानवाले सील

(PHOCA)

पृथ्वी के उत्तरी समुद्रों में, विशेषकर योरप के उत्तरी तट पर, फ़ोका जाति के जन्तु मिलते हैं। सील पूर्णतया जल का प्राणी है।

पर्वताकार लहरों तथा तूफ़ान में उसे समुद्र में क्रीड़ा करने में असीम आनन्द प्राप्त होता है। फिर भी यद्यपि तैरने और गोता लगाने में वह मछली का-सा दक्ष होता है तथापि, वालरस के सदृश, वह किनारे पर भी बहुत समय व्यतीत करता है। भूमि पर सील को भी चलना अत्यन्त कष्टकर होता है। पिछली टाँगों के दोनों तलवों को वह ऊपर को उठा लेता है और तब अगले पैरों से ज़ोर लगाकर आगे को बढ़ता है।

सील की कोई इन्द्रिय तीक्ष्ण नहीं होती, केवल दृष्टि-शक्ति कुछ अच्छी होती है, किन्तु अधिक चमक में उसकी आँखें भी काम नहीं करतीं। फ़ोका जाति के जन्तुओं के बाहरी कान नहीं होते, इसलिए उनकी श्रवणशक्ति भी दुर्बल होती है।

सील मुख्यरूप से अपना उदरपालन नाना प्रकार की मछलियों से करता है, जिनको वह बड़ी फ़ुर्ती से पकड़ता है। प्राय: मछलियों को वह समूचा ही निगल जाता है जिससे विदित होता है कि उसकी रसनेन्द्रिय भी उत्तम नहीं होती। सील के भोजन के सम्बन्ध में एक और विलक्षण बात यह है कि उसके पेट में प्राय: कंकड़-पत्थर भी भरे मिलते हैं। किसी किसी का मत है कि सील अपना बोझ बढ़ाने के उद्देश्य से इनको खा लेता है, जिससे कि गोता लगाने में सुविधा हो। प्रमाणित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह कहाँ तक सत्य है। यह भी संभव है कि वह कंकड़-पत्थरों को अपनी अज्ञानता के कारण खाद्य-पदार्थ समझ के निगल जाता हो।

सील का कंठस्वर कुत्ते के भूँकने के समान होता है। ये जन्तु सदा दल में रहते हैं। उनकी संसर्गशीलता पर पारस्परिक लड़ाइयों का प्रभाव नहीं पड़ता। जब दल किनारे पर निकल के सोता है तो उनमें से कोई एक बराबर जागता रहता है और बहुत

चौकन्ना रह कर पहरा देता है। मनुष्य अथवा ध्रुव के भालू को देखते ही पहरेवाला तुरन्त चिल्ला के सारे दल को जगा देता है और सब खिसक खिसक कर तुरन्त जल में कूद पड़ते हैं।

मादा प्रतिवर्ष केवल एक या दो बच्चे देती है। बच्चों का शरीर जन्म के समय श्वेत कोमल बालों से ढका होता है किन्तु बाल शीघ्र ही झड़ जाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि सील के बच्चे, जिनको माँ सदा भूमि पर जन्म दिया करती है, पहले-पहल जल से झिझकते हैं। तैरने का जब उनको पहला अवसर होता है तो वे नवशिक्षितों की भाँति जल में इधर-उधर फड़फड़ाते फिरते हैं, नवसिखिये के समान हाथ-पैरों के थप्पड़ चलाते हैं, और तुरन्त ही किनारे को लौट पड़ते हैं। किन्तु दो चार बार के ही अभ्यास से वे अच्छे तैराक हो जाते हैं और तब जल ही उनका शरणस्थान हो जाता है।

प्रतिवर्ष एक विशेष ऋतु में नरों के आचार-व्यवहार अत्यन्त निराले हो जाते हैं। यह वह समय है जब नर को मादाओं की खोज होती है। प्रत्येक नर कई कई मादाओं को घेर के कई मास तक अपने अधीन रखता है और अपने वासस्थान के पास किसी दूसरे नर को नहीं आने देता। एक ग्रन्थकार ने इस समय का अति मनोहर वृत्तान्त दिया है और उसी का सारांश नीचे दिया जाता है।

लगभग जून मास के आरम्भ होने पर, नर सैकड़ों और हज़ारों की संख्या में किनारे के पास आना आरम्भ करते हैं और प्रत्येक नर किनारे पर कोई उपयुक्त स्थान छाँट के उस पर अधिकार जमा लेता है और मादाओं के आने की प्रतीक्षा करते हैं। मादाएँ ३-४ सप्ताह के उपरान्त आने लगती हैं। जो नर पहले पहुँचते हैं वह तो स्थान घेरते जाते हैं किन्तु जो पिछड़ जाते हैं उनको स्थान

की प्राप्ति के लिए ऐसे भीषण युद्ध करने पड़ते हैं कि बहुतों के तो प्राण तक निकल जाते हैं।

सीलों का यह नियम है कि जब कोई नर एक स्थान पर अधिकार जमा लेता है तो उस स्थान में कोई दूसरा सील नहीं जाता। बहुधा इस नियम का पालन किया जाता है, किन्तु "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली मसल यहाँ भी प्राय: चरितार्थ होती है। और जो नर अपने स्वत्वों की रक्षा स्वयं नहीं कर सकते उनके प्रति कोई नियम नहीं बरता जाता।

प्रत्येक नर का अधिकार लगभग १० गज़ लम्बे और १० गज़ चौड़े स्थान पर समझा जाता है।

मैंने एक बार एक नर को देखा जिसने सामने ही की ओर एक स्थान घेर रक्खा था और जिसको उस स्थान की रक्षा के लिए ५०-६० युद्ध करने पड़े थे। सबमें उसी की विजय हुई। उसका सारा शरीर घावों से भर गया था जिनमें से कोई कोई हरे थे और कोई सूख चुके थे। उसकी एक आँख निकल पड़ी थी। तो भी उसने अपना स्थान नहीं छोड़ा और १५-२० मादाओं को बराबर घेरे रहता था।

लगभग तीन मास तक कोई नर अपने स्थान को और अपनी मादाओं को छोड़ के नहीं हटता। अतएव उनको निराहार रहना पड़ता है। सीलों का यह लम्बा उपवास आश्चर्य्यजनक है। सब जन्तु जो शरद्-ऋतु में चिरस्थायी विश्राम और उपवास (hyber-nation) किया करते हैं वे पड़े सोते रहते हैं और किसी प्रकार का श्रम नहीं करते। इसके विरुद्ध सीलों को अपने उपवास में प्रति-क्षण चौकन्ना रह के भीषण युद्ध करने पड़ते हैं।

जैसे जैसे मादाएँ आती जाती हैं सब नर उनको अपने अपने स्थान में लिवा जाने की चेष्टा करते हैं। आगे बढ़ बढ़ के सब

उनका आदरपूर्वक स्वागत करते हैं किन्तु साथ ही साथ बहुत कुछ धींगामुश्ती भी होती है। नर मादाओं को बलात् ढकेल के भी अपने अधीन करने में कोई त्रुटि नहीं करते।

क्षण-मात्र को किसी नर की आँख चूकी नहीं कि उसके पड़ोसी ने उसके अंत:पुर में लूट मचाई और एक न एक मादा को, दाँत से पकड़ कर घसीट ले गया! फिर क्या है; तुरन्त भीषण युद्धनाद और कोलाहल मच जाता है। आस पास के सारे नर इस लड़ाई में आ जुटते हैं। परन्तु जब तक ये मूर्ख आपस में लड़ते हैं तब तक कोई चतुर चोर आ कूदता है और उस मादा को जिसके पीछे रुधिर की नदियाँ बहाई जा रही हैं घसीट के अपने ज़नानख़ाने में डाल लेता है।*

एस्किमो लोगों के लिए सील भी उतना ही बहुमूल्य है जितना कि वालरस। उनका एक एक बालक उसके शिकार में दक्ष हो जाता है। राह चलते भी यदि किसी को पता चलता है कि बरफ़ के नीचे सील है तो वह वहीं बैठ जाता है और फिर कितना ही समय क्यों न लगे वह सील को मारे बिना नहीं हटता। उस शीत में जब कि थर्मामीटर का पारा शून्य से भी ३०-४० डिग्री नीचे रहता है एस्किमो एक सील के लिए बरफ़ पर १०-१२ घंटे भी बैठा रहता है। अन्त में ज्यों ही सील मुँह निकालता है तो वह पूरे बल से भाला मारता है। सील का मांस, चर्बी, और चमड़ा तो उपयोगी होता ही है, पर एस्किमो उसका रक्त तक पी जाते हैं। पतली पतली हड्डियों की सूई और नसों के डोरे बना के काम में लाये जाते हैं।

एस्किमो बेचारा अपने अभावों की पूर्ति के लिए बड़ा कष्ट उठा के एक दो सील मार पाता है, किन्तु सभ्य जगत् के शिकारी, नये

---

* "History of the North American Pinnipeds," by Mr. J. A. Allen.

नये यंत्रों वा हथियारों से सज्जित होकर प्रत्येक वर्ष सील के शिकार को जाते हैं और दो चार सप्ताह में जहाज़ को सीलों के शिकार से भर कर लौटते हैं। एक जहाज़ एक चक्कर में ४२,००० सीलें लाद के लाया था। इनका मूल्य २½ डालर प्रति सील की दर से २१,८७५) पौंड हुआ। यदि पौंड १५) रुपये का माना जाय तो इस एक चक्कर में शिकारियों को ३,२८,१२५) रुपये का माल प्राप्त हुआ।

सील बेचारा एक सीधा और निर्दोष जन्तु है और पाले जाने पर अपने स्वामी से बड़ी प्रीति करता है। पादरी वुड एक पालतू सील का वृत्तान्त देते हैं कि वह अपने स्वामी के हाथ से लकड़ी छीन के तुरन्त जल में कूद जाता था, फिर किनारे की ओर को आता था और ज्यों ही उसका स्वामी लकड़ी छीनना चाहता था तो घूम के दूर तैर जाता था। वह जल में से मछली पकड़ लाता था और अपने स्वामी को दे देता था।

सील के कई उपजाति पृथ्वी पर मिलते हैं।

साधारण सील (Phoca Vitulina) एटलान्टिक और पैसिफ़िक महासागरों के उत्तर में मिलता है। रंग पीलापन लिये होता है और शरीर पर काले काले धब्बे होते हैं।

ग्रीनलेंड का सील (Phoca Greenlandica) क़द में यह पहली उपजाति से दोगुना होता है और ग्रीनलेंड द्वीप के पास मिलता है।

हाथी-सील

(CYSTOPHORA PROBOSCIDEA, OR THE ELEPHANT SEAL)

सील के दोनों वंशों में इस जाति से बड़ा कोई जन्तु नहीं होता। हाथी से भी यह जन्तु क़द में बड़ा और बोझ में अधिक होता है। शरीर की लम्बाई २० से ३० फ़ुट तक होती है और

शरीर के घेरे का परिमाण १५-१६ फुट का। एक हाथी-सील के शरीर में से लगभग ३० मन मांस और ७० गैलन स्वच्छ तेल निकल आता है। उस पर इतनी चर्बी होती है कि उसका शरीर थलथल हिला करता है। उसके थूथन से एक छोटी सी सूँड-सी लटकी होती है।

हाथी-सील बेचारा किसी पर आक्रमण नहीं करता और यदि करना भी चाहे तो अपने स्थूल शरीर के कारण कर नहीं सकता। अतएव मनुष्य उसके पास तक चले जाते हैं और सहज ही में मार लेते हैं। इस जन्तु की इतनी हत्या हुई है कि ये अब केवल दक्षिणी अमेरिका के ध्रुव दक्षिण में हॉर्न अन्तरीप के पास मिलते हैं।

ऑटेरिडे-वंश

अर्थात् कानदार सीलें

(THE OTARIIDÆ)

साधारण विवरण

ऑटेरिडे-वंश के सीलों की मुख्य विशेषता यह है कि उनके कान होते हैं। सिर गोल, आँखें बड़ी और पैर की उंगलियाँ खाल से मढ़ी होती हैं और यह खाल उंगलियों के आगे झालर के समान लटकती होती है। कोमल घने बालों के कारण उनकी खाल बहुमूल्य होती है।

दाँतों की संख्या निम्न-लिखित है :—

कृंतक दंत $\frac{३-३}{२-२}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{४-४}$, डाढ़ें $\frac{१-१}{१-१}$

किसी किसी में डाढ़ों की संख्या $\frac{२-२}{१-१}$ होती है।

कानदार सील के वंश में दो जाति हैं, अर्थात्—

सामुद्रिक शेर (Otaria Stelleri)

सामुद्रिक भालू (Otaria Ursina)

सामुद्रिक शेर

इस कानदार सील को 'शेर' का नाम देने का यह कारण है कि उसकी गर्दन पर शेर बबर के से अयाल होते हैं जो कंधों पर लटकते रहते हैं। यह जन्तु अलास्का प्रायद्वीप और आस पास के द्वीपों में मिलता है।

सामुद्रिक भालू

सील की इस प्रसिद्ध जाति के जन्तु उत्तर में अलास्का प्राय-द्वीप के तीरवर्ती समुद्रों में होते हैं और दक्षिण में भूमध्यरेखा से दक्षिणी ध्रुव तक मिलते हैं। उसकी खाल पर अत्यन्त घने, कोमल और रेशम के से बाल होते हैं और बड़े मूल्य में बिकती है। खाल के बनानेवाले जब इस जन्तु के समूर को काला रंग देते हैं तो उससे सुन्दर और गरम शायद ही किसी जन्तु की खाल होती होगी। ये जन्तु बीच समुद्रों में किनारे से दूर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु वसंत-ऋतु के आते ही सब बेहरिंग सागर की ओर चले जाते हैं और वहाँ के शून्य टापुओं पर उनकी मादाएँ बच्चे देती हैं। इन टापुओं में वे दो तीन मास तक रहते हैं। नर कई कई मादाओं को ले के भूमि पर निर्विघ्न अपना समय व्यतीत करता है। कुछ समय पहले इन टापुओं पर लाखों सील जमा हो जाया करते थे। अगस्त के अन्त में ये जन्तु टापुओं को छोड़ कर फिर महासागरों को लौट जाते हैं और उनके संग सहस्रों छोटे छोटे बच्चे भी होते हैं।

इस सील की खाल की जाकटें बड़े मूल्य की होती हैं और ३००) या ४००) रुपये तक में बिकती हैं। अतः सहस्रों मनुष्यों ने अपना उद्यम इस जन्तु को मार के खाल बेचने ही का कर लिया है। क्रमशः उनकी संख्या घटने लगी। अब इस जाति के इने-गिने थोड़े से जन्तु केवल एक द्वीप पर नमूने के लिए रह गये हैं। अमेरिका की सरकार ने बहुत उपाय किये हैं कि उनको कोई मारने न पाये किन्तु चोरी छिपे अब भी लोग उनको नहीं छोड़ते।

"मोटीखालवाले जन्तु"

(THE PACHYDERMATA)

साधारण विवरण

सुविधा की दृष्टि से तथा विज्ञानवित् कुवे (Cuvier) के मतानुसार, इस पुस्तक में पृथ्वी के खुरवाले जन्तु, दो श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं, अर्थात्—

(१) मोटी खालवाले (The Pachydermata),

(२) रोमन्थकर (The Ruminantia).

भूमिका में लिखा जा चुका है कि जो जन्तु मोटी खालवाली श्रेणी के अन्तर्गत माने जाते हैं उनमें कोई ऐसा विशेष जाति-लक्षण नहीं पाया जाता जिसके द्वारा वे अन्य श्रेणी के जन्तुओं से अलग किये जा सकें। न उनमें कोई ऐसा लक्षण ही विद्यमान है जिससे उनमें कोई पारस्परिक सम्बन्ध लक्षित होता हो। मोटी खालवाली श्रेणी के प्राणियों की रचना, रूप-रंग, स्वभाव आदि में कोई भी समानता नहीं होती। हाथी, घोड़ा, गैंडा, हिपो आदि सब अपने अपने ढंग के निराले होते हैं।

सुप्रसिद्ध अँगरेज़ी-विद्वान् अध्यापक अवन (Professor Owen) ने खुरवाले जन्तुओं को तीन श्रेणियों में बाँटा है, और तीनों श्रेणियों के जन्तुओं में कोई न कोई उत्तम पहिचान रखी है, अर्थात्—

(१) प्रोबोसाइडिया (Proboscidea)—इस श्रेणी में सूँडवाले जन्तु अर्थात् हाथी रक्खे गये हैं।

(२) पेरिसोडैक्टाइल (Perrisodactyle)—इस श्रेणी में उन जन्तुओं को स्थान दिया गया है जिनके पैरों में (कम से कम पिछले

पैरों में तो अवश्य) खुरों की संख्या विषम होती है। इनके पैरों में एक, या तीन, या पाँच खुर होते हैं। घोड़ा, गैंडा, टेपिर आदि के पैरों में खुरों की संख्या विषम होती है।

(३) आर्टियोडैक्टाइल (Artiodactyle)—इस श्रेणी के प्राणियों के खुर समसंख्यक होते हैं, अर्थात् उनके पैरों में दो या चार खुर होते हैं। इसके अन्तर्गत सुअर, हिपोपोटेमस और सारे जुगाली करनेवाले जीव हैं।

मोटी खालवाले जन्तु सब शाकभोजी जीव हैं। तीक्ष्ण नखों और भीषण पञ्जों की उनको आवश्यकता नहीं थी। अतः प्रकृति ने उनके पैरों के अन्त में खुर अथवा सुम रक्खे हैं। इन हड्डी के से कठोर खुरों के कारण उनके हाथ पैरों में न तो पकड़ने ही की शक्ति होती है न वे स्पर्शेन्द्रिय का काम दे सकते हैं।

मोटी खालवाली श्रेणियों के जन्तुओं के सिर पर सींग नहीं होते, और इस भेद के द्वारा वे जुगाली करनेवाले जन्तुओं से तुरन्त पृथक् किये जा सकते हैं। जुगाली करनेवाले जन्तुओं में से अधिकांश के सिर पर सींग होते हैं।

स्थल के बहुत से दीर्घकाय जन्तु इस श्रेणी में सम्मिलित हैं।

दाँतों की रचना पर ध्यान देने से तुरन्त ज्ञात हो जाता है कि इस श्रेणी के जन्तु शाकभोजी हैं। दोनों जबड़ों के कृंतक दंत (Incisors) पुष्ट, और छेनी के समान तीक्ष्ण धारवाले होते हैं। घास-पात को दबा कर कुतरने के लिए इनकी रचना पूर्णतया उपयुक्त है। कीले (Canines) या तो होते ही नहीं या बहुत छोटे छोटे होते हैं, क्योंकि कीले विशेषकर शिकारी जन्तुओं के ही काम के हैं। डाढ़ें चौड़ी, चकरी और चपटी होती हैं और घास-पात को पीसने में चक्की के समान काम देती हैं।

मोटी खालवाली श्रेणी निम्नलिखित वंशों में विभक्त की जा सकती है:—

(१) गजवंश (Proboscidea)
(२) हिपोवंश (Hippopotamidœ)
(३) गैंडावंश (Rhinocerotidœ)
(४) टेपिरवंश (Tapiridœ)
(५) हाइरेक्सवंश (Hyracidœ)
(६) अश्ववंश (Equidœ)
(७) सुअरवंश (Suidœ)
(८) पिकेरीवंश (Dicotylidœ)

गजवंश

[THE PROBOSCIDEA]

हाथी अपने वंश की अकेली जाति है। हाथी के अतिरिक्त प्रकृति ने सूँड़ सृष्टि के किसी अन्य जन्तु को नहीं दिया है और सूँड़ ही के कारण यह दीर्घकाय जीव देखने में सबसे निराला है। हाथी को स्थल के प्राणियों में सबसे दीर्घकाय जन्तु होने का गर्व प्राप्त है।

हाथी-जाति (genus) की केवल दो उपजाति पृथ्वी पर पाई जाती हैं, अर्थात्—

(१) हिन्द का हाथी (Elephas Indicus),
(२) अफ़्रीक़ा का हाथी (Elephas Africanus)

दोनों की बनावट में कुछ विभिन्नता होती है। अफ़्रीकन हाथी हिन्द के हाथी की अपेक्षा बड़ा और बलवान् होता है। उसके कान भी बहुत बड़े होते हैं और जब वह उनको पीछे ले जाता है तो उसके कन्धे बिलकुल ढक जाते हैं। अफ़्रीका के किसी किसी हाथी के कान ३½ फ़ुट लंबे और २½ फ़ुट चौड़े तक देखे गये हैं।

अफ़्रीकन हाथी का मस्तक छोटा सा और पीछे को ढालू होता है जिसके कारण वह कुछ कुरूप सा प्रतीत होता है। इसके विपरीत हिन्द के हाथी का ललाट सुविशाल और उन्नत होता है जिससे देखने में वह समझदार जान पड़ता है।

अफ़्रीकन-जाति के जन्तुओं की पीठ सीधी और कन्धों से नीची होती है, परन्तु हिन्द के हाथी की पीठ गोल और कन्धों से ऊँची होती है। अफ़्रीका के हाथी की खाल भी अति खुरखुरी होती है और उस पर गहरी गहरी रेखायें पड़ी रहती हैं।

एक सुप्रसिद्ध और अनुभवी शिकारी, जिसने हाथी का शिकार हिन्दुस्तान एवं अफ़्रीका दोनों देशों में किया था, बतलाता है कि दोनों उपजाति के दो सबसे बड़े जन्तुओं के नाप उसे निम्नलिखित मिले।

	अफ़्रीकन		भारतीय
	फ़ुट इंच		फ़ुट इंच
कन्धे तक ऊँचाई ...	१३—२	...	१०—८
सिर की ऊँचाई ...	१२—९	...	११—१०
शरीर की सबसे बड़ी परिधि	१७—६	...	१५—०
अगली टाँग की परिधि ...	५—४	...	४—८
देह की लंबाई ...	१२—४	...	१०—१०
दाँतों की लंबाई ...	७—२	...	५—१०
दाँतों का बोझ ...	२४६ पौंड	...	१८३ पौंड*

अफ़्रीका महादेश में हाथी सहारा मरुभूमि के दक्षिण से केप-कालोनी (Cape Colony) के उत्तर तक मिलता है। हिन्दुस्तान में हाथी बड़े बड़े जङ्गलों में अब भी बड़ी संख्या में हैं। तराई में भूटान से देहरादून और क्यारदादून तक तथा मध्यहिन्द में मेदनीपुर से

* "Sport in Many Lands," by Major Leveson.

अफ़्रीक़ा के हाथियों के झुण्ड (Elephas Africanus) पृष्ठ १०८

हिपोपोटेमस (Hippopotamus) पृष्ठ १३६

हिन्द का बड़ा गेंडा (Rhinoceros Indicus) पृष्ठ १४८

सुमात्रा का गैंडा (Rh. Sumatranus)
पृष्ठ १५१

केटलोआ गैंडा (Rh. Ketloa)
पृष्ठ १५२

मण्डला तक और दक्षिण में गोदावरी नदी तक में ये पाये जाते हैं। पश्चिमी तट पर अनेक स्थानों में हाथी के दल हैं। त्रावंकोर से १७ या १८ डिग्री उत्तरी अक्षांश तक विशेषकर अनिमल्ली पहाड़ी पर हाथी मिलते हैं। कायम्बटोर पहाड़ियों, वायनाद, और नीलगिरि के ढालों पर, तथा कुर्ग, मैसूर एवं कनारा तथा लङ्का टापू और आसाम के जङ्गलों में भी ये बहुत हैं।

भारत के बाहर हाथी मलय प्रायद्वीप में एवं सुमात्रा और जावा के द्वीपों में भी होता है।

स्वभावत: हमारा ध्यान सबसे पहले हाथी की सूँड़ की तरफ़ आकृष्ट होता है क्योंकि यही उसका सबसे अनोखा अङ्ग है। सूँड़ हाथी का ऊपरी ओंठ है जो विलक्षण रूप से बढ़ता चला जाता है। सूँड़ में दो नलियाँ होती हैं और प्रत्येक नली के ऊपरी भाग के अंत पर नथुने का एक छिद्र होता है।

सूँड़ का अन्तिम भाग हाथी का हाथ है। उसके छोर पर एक ओर, छोटी सी उंगली के समान, एक पुट्टा होता है और उसके सामने एक गोलाकार गाँठ होती है। यह पुट्टा और गाँठ उंगली और अँगूठे का काम देती हैं और दोनों की सहायता से हाथी उससे हाथ का सा काम ले लेता है।

हाथी के लिए सूँड़ कितना उपयोगी अङ्ग है! वही उसकी घ्राणेन्द्रिय है और वही स्पर्शेन्द्रिय। उसी के द्वारा हाथी अपना भोजन प्राप्त करता है, उसी से मुँह तक पहुँचाता है और उसी से पानी पीता है। वही उसका हाथ भी है और प्रबल हथियार भी। सूँड़ को गोल लपेट के वह ऐसा प्रचण्ड धक्का मारता है कि बड़े से बड़े जन्तु भी धराशायी हो जाते हैं। एक दूसरे को भी हाथी सूँड़ ही से धमकाते और मारते हैं। सूँड़ की उंगली व पुट्टे से हाथी सूक्ष्म से

सूक्ष्म वस्तु सुविधा से उठा सकता है, गेहूँ का एक दाना अथवा घास का एक तिनका वह उसके द्वारा मुँह में पहुँचा सकता है। नन्हीं नन्हीं वस्तुओं को सूँड़ से उठा लेने की कैसी क्षमता हाथी में होती है इसका एक बार एक अद्भुत उदाहरण लङ्का-द्वीप में देखने में आया था। एक हाथी को प्रतिदिन एक अस्पताल में जाने का काम पड़ा करता था और वह रोगियों को दवा खाते देखा करता था। एक दिन एक रोगी ने औषधि की नन्हीं सी गोली हाथ से गिरा दी। हाथी ने तुरन्त गोली सूँड़ से उठा के रोगी के मुँह में डाल दी और ज़ोर से फूँक मार उसको गले से नीचे उतार दिया।

सूँड़ की लम्बाई ६ फ़ुट से ८ फ़ुट तक होती है। प्राणि-शास्त्र-वित् कुवे (Cuvier) बतलाते हैं कि इस उपयोगी अङ्ग में लगभग ४०,००० पुट्ठे होते हैं जो एक दूसरे में इस प्रकार गुथे होते हैं कि हाथी उसको जहाँ से चाहे झुका सकता है, मोड़ सकता है और गोलाई में लपेट भी सकता है। सर इमर्सन टेनेन्ट लिखते हैं कि "मैंने देखा है कि हाथी छोटी छोटी टहनियों की छाल को सूँड़ से साफ़ छील डालता है। घास को वह बड़ी दक्षता से झटका देके उखाड़ लेता है और तब जिस सफ़ाई से वह उसको पकड़ के, धूल मिट्टी झाड़ने के लिए अपने पैरों पर मारता है, सो देखते ही बनता है। नारियल का बाहरी कठोर छिलका छुड़ाने के लिए पहले वह उसको पैर के तले दबा के रगड़ता है, तब सूँड़ से उसके टुकड़ों को छुड़ा के, डाढ़ों से कुचल डालता है और नारियल के रस को बड़े स्वाद से पीता है।"

जल को हाथी सूँड़ में खींच कर भर लेता है और उसके सिरे को मुँह में डालकर जल को पेट में पहुँचा देता है। और एक विलक्षण रीति हाथी की यह है कि जैसे जल को सूँड़ के द्वारा पेट के भीतर पहुँचाता है उसी प्रकार पेट से बाहर भी निकाल लेता है।

ग्रीष्म-काल में थोड़ी थोड़ी देर पर वह सूँड़ के द्वारा पेट में से पानी खींच लाता है और अपने शरीर पर छिड़कता चलता है। एक अद्‌भुत बात यह होती है कि हाथी के पेट से जो जल निकलता है वह स्वच्छ और गन्धरहित होता है।

हाथी के शरीर में सूँड़ सबसे कोमल अङ्ग है। सूँड़ पर घाव अथवा चोट की पीड़ा हाथी के लिए असह्य होती है। शत्रु के सामने हाथी को सबसे बड़ी चिन्ता अपनी सूँड़ की होती है और वह उसको गोल लपेट कर मुँह के भीतर छिपाने का प्रयत्न करने लगता है। शिक्षित हाथी जो बड़ी दृढ़ता से शेर, चीते आदि का सामना किया करते हैं वे भी, सूँड़ पर एक बार घाव लग जाने पर, डरपोक और भीरु हो जाते हैं, और शेर आदि का गन्ध पाते ही भाग खड़े होते हैं।

हाथी के मुँह में केवल एक जोड़ी कृंतक दाँतों की होती है किन्तु खाने में वे सहायक नहीं होते। ये कृंतक दंत ही बढ़कर हाथी के गजदंत बन जाते हैं। पहले ये दूध के दाँतों के साथ निकलते हैं और लगभग एक वर्ष में गिर जाते हैं। तत्पश्चात् दूसरे निकलते हैं जो जीवन भर धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं। हाथी की शोभा उन्हीं पर निर्भर है। गजदन्त भी हाथी के आक्रमण तथा रक्षा के हथियार होते हैं। इन्हीं के भीतर से बहुमूल्य पदार्थ निकलता है जो "हाथीदाँत" के नाम से प्रसिद्ध है।

अफ्रीका के हाथी के दाँत बहुत बड़े, भारी और शोभनीय होते हैं, और अफ्रीकन जाति की मादाओं के भी गजदन्त होते हैं, हिन्द की जाति की मादाओं के गजदन्त नाममात्र को मुँह से बाहर निकले होते हैं। यह एक विचित्र बात है कि लङ्का टापू में नर और मादा दोनों ही के गजदन्त अति छोटे होते हैं, जिनकी लम्बाई १०-१२

इंच से अधिक नहीं होती और जिनका घेरा केवल एक दो इंच का होता है। इनको 'मकुना' हाथी कहते हैं।

गजदन्त बहुत भारी होते हैं। सर सैम्युअल बेकर लिखते हैं कि उनके पास एक गजदन्त था जिसका बोझ १४९ पौंड था। खर्तुम नगर में आपने एक जोड़ा देखा था जिसका बोझ ३०० पौंड था। एक अन्य स्थान में आपने एक दाँत १७२ पौंड का देखा था। सन् १८७४ ई० में लंदन के हाथीदाँत के बाज़ार में एक गजदन्त बिका था जो तोल में १८८ पौंड था। औसत से एक पूरे अफ्रीकन नर के गजदन्तों का वज़न १४० पौंड हुआ करता है। बहुत दिनों से हाथी-दाँत से नाना प्रकार के आभूषण और अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं और अब बिलियर्ड की गेंदों के लिए उसकी बड़ी मात्रा में माँग है। अफ्रीका में दाँत के लिए प्रतिवर्ष उसकी इस संख्या में हत्या होती है कि संभवत: कुछ दिनों बाद, मैमथ के समान, हाथी के भी अस्थिपञ्जर ही मिला करेंगे। कतिपय भूभागों में जहाँ ५० वर्ष पहले हाथियों के बड़े बड़े दल पाये जाते थे आज इस जन्तु का नाम भी नहीं रह गया है। सहस्रों हाथियों के दाँत बिलियर्ड की गेंदें बनी मेज़ों पर आज लुढ़कती फिरती हैं। एक ग्रन्थकार बतलाते हैं कि "गत दस वर्ष से केवल एण्टवर्प बन्दरगाह में औसत १८,५०० हाथियों के दाँत प्रतिवर्ष बिक्री के लिए पहुँचते हैं। एण्टवर्प बन्दरगाह को केवल एक काँगो प्रदेश से हाथी-दाँत भेजे जाते हैं। और योरप में एण्टवर्प की-सी हाथी-दाँत की बिक्री की अनेक मंडियाँ हैं।" सुप्रसिद्ध शिकारी अकेले मिस्टर सेलूस ने सन् १८६८ ई० में ९५ हाथी मारे थे जिनसे उनको दो टन (लगभग ५६ मन) हाथी-दाँत प्राप्त हुआ था।*

* "Life of F. C. Selous, D. S. O.," by J. G. Millais, F. Z. S.

मिस्टर प्राँथिरो बतलाते हैं कि एक बार केवल तीन बोअरों (Boers) ने एक बड़े दल को जिसमें १०४ हाथी थे एक दलदल में फँसा लिया। हाथी अपने बोझ के कारण दलदल से निकल कर भाग न सके। रात्रि होने से पहले शिकारियों ने दल के सारे जन्तुओं को मार डाला। हथिनियों तथा बच्चों को भी नहीं छोड़ा। ऐसे पराक्रम शिकारियों ने अन्य स्थानों में भी दिखाये हैं। सर इमर्सन टेनेन्ट बतलाते हैं कि लंका टापू में केवल एक शिकारी के हाथ से १४०० हाथी मारे गये थे।

हाथी की पिछली टाँगों की रचना में एक ऐसी विशेषता होती है जो अन्य किसी पशु में नहीं पाई जाती। कुत्ता, घोड़ा, बैल, ऊँट सभी की पिछली टाँगें जोड़ पर पीछे को झुकती हैं। जब ये बैठते हैं तो टाँगों को खींच कर शरीर के नीचे कर लेते हैं। इसके विपरीत हाथी की पिछली टाँगें जोड़ पर आगे को झुकती हैं। बैठते समय वह उनको दुहरा करके शरीर के नीचे नहीं दबाता वरन् पीछे को सीधा फैला लेता है। क्या पाठकों ने कभी ध्यान दिया है कि घोड़े को कितना श्रम और बल बैठ कर उठने में लगाना पड़ता है? हाथी की टाँगों की रचना से प्रकृति की दूरदर्शिता का प्रमाण मिलता है। यदि हाथी भी उनको दुहरा करके अपने शरीर के नीचे दाब ले तो उसको उठना यदि असंभव नहीं तो कम से कम अत्यन्त कष्ट-प्रद हो जाया करता।

पिछली टाँगों के विशेष गठन के द्वारा हाथी पर्वतों के ढाल पर बड़ी सुगमता से चढ़ उतर सकता है। ढाल पर उतरते समय वह पिछली टाँगों को पीछे फैला के अपने शरीर के पिछले भाग को नीचा कर लेता है, और अगली टाँगों पर सीधा खड़ा रहता है और तब, अत्यन्त सावधान हो, एक एक पग आगे बढ़ाता है। जब

ढाल पर चढ़ता है तो उसका व्यवहार ठीक इसके प्रतिकूल होता है अर्थात् वह अगली टाँगों को तोड़ लेता है और पिछली टाँगों को सीधा रखता है। इन प्रयत्नों के द्वारा वह मंद किन्तु अचूक चाल से ऐसे ढालू स्थानों पर चढ़ उतर जाता है जिन पर कोई घोड़ा जाने का कभी साहस नहीं कर सकता।

हाथी की खंभे की सी टाँगें उसके भारी बोझ को सँभालने के लिए आवश्यक हैं। घोड़े अथवा बैल की-सी झुकी हुई टाँगें उसके बृहत् शरीर को सँभाल नहीं सकती थीं। रात्रि के परिभ्रमण के अनन्तर हाथी प्रायः खड़े ही खड़े पेड़ से टिक कर सो जाया करता है। अपनी चौड़ी चकली टाँगों के कारण उसको न तो कोई असुविधा होती है न गिर पड़ने का भय रहता है। इस सम्बन्ध में सर इमर्सन टेनेण्ट एक अद्भुत घटना का उल्लेख करते हैं। एक हाथी के गोली ऐसे स्थान पर लगी कि उसके प्राण वहीं निकल गये किन्तु मृत्यु हो जाने पर भी हाथी का शरीर टाँगों पर सीधा ही खड़ा रहा।

हाथी का प्रत्येक पैर पाँच भागों में विभक्त होता है किन्तु वे सब एक मोटी खाल से मढ़े होते हैं। प्रत्येक भाग के ऊपर एक छोटा सा खुर होता है। तलवों पर मांस की मोटी मोटी गद्दियाँ होती हैं जिनके कारण वह पदतलचर (Plantigrade) जान पड़ता है किन्तु वास्तव में हाथी एक अंगुलचर जन्तु (Digitigrade) है।

हाथी के बड़े डील-डौल को देखते हुए उसकी आँखें बहुत छोटी होती हैं और दृष्टि-शक्ति भी अच्छी नहीं होती, किन्तु घ्राणेन्द्रिय बड़ी तीव्र होती है, और दृष्टि की कमी उसी से पूरी हो जाती है। मनुष्य अथवा हिंस्र जन्तुओं की गन्ध दूर ही से पा जाने में वह

कभी नहीं चूकता। जिस भूमि पर से मनुष्य निकल जाता है उस भूमि पर पहुँचते ही हाथी को मनुष्य की गन्ध मिल जाती है, और वह या तो तुरन्त भाग खड़ा होता है या घबरा कर चारों ओर देख-भाल करने लगता है।

एक अनुभवी शिकारी का कहना है कि उन्होंने एक बार पहाड़ पर से देखा कि ज्यों ही दल की सबसे आगे चलनेवाली हथिनी एक पगडंडी के पास पहुँची, जिस पर से कि उक्त यात्री अपने साथियों-सहित दो दिन पहले निकले थे, तो सारा दल तुरन्त भाग खड़ा हुआ। प्राय: देखा जाता है कि अंधा हाथी घ्राणशक्ति के द्वारा अपने मार्ग का पता लगा लेता है।

हाथी की रसनेन्द्रिय अति उत्तम होती है। वह उन पशुओं में से नहीं है जिनका केवल उदरपूर्ति कर लेने ही से संतोष हो जाता हो किन्तु हाथी पक्का चटोरा, और उत्तम खाद्य-पदार्थों का प्रेमी होता है। किसी किसी खाद्य-पदार्थ से उसको विशेष रुचि होती है और उसकी प्राप्ति के लिए बड़ा कष्ट सहन कर वह दूर दूर के चक्कर लगाया करता है। जिस पेड़ की पत्ती अथवा फल का वह शौकीन होता है उसका पता निविड़ वनों के घोर अन्धकार में भी, महक से लगा लेता है। गन्ना, केला, नारियल और विशेषकर मीठी वस्तुएँ खाने का बड़ा शौकीन होता है। कभी कभी पालतू हाथी शराब पीना भी सीख जाते हैं। केले के तने वह बड़े स्वाद से खाता है। तने को पैर से दबा के उसका ऊपरी छिलका सूँड़ से साफ़ छील डालता है और उसकी लंबी लंबी धज्जियाँ अपने शरीर पर फेंकता जाता है। इस प्रकार मोटा, कड़ा छिलका उतार के वह केले का केवल भीतरी, कोमल भाग खाता है।

अफ्रीका का हाथी नाना प्रकार की रसीली जड़ें खोद के बहुत खाया करता है। विशेषकर मिमोसा नामक वृक्ष को जहाँ देख

लेता है यथा-शक्ति उसकी जड़ों के लिए उसे तुरन्त उखाड़ डालता है। निरन्तर खोदते रहने के कारण अफ्रीकन हाथी का सीधा दाँत प्राय: घिस जाया करता है और बाईं ओर का दाँत सीधे दाँत की अपेक्षा सर्वथा अधिक मूल्य को विकता है।

जिस जंगल में हाथी का दल एक रात भी चर लेता है उसका नाश हो जाता है। सैकड़ों वृक्षों की छोटी बड़ी शाखायें तोड़ तोड़ कर वे अकारण फेंक देते हैं, और छोटे छोटे पेड़ उखाड़ कर गिरा देते हैं। इस स्वभाव के कारण हाथी के दल का पता सहज लग जाता है।

हाथी की स्मरणशक्ति के प्रशंसनीय होने में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। बहुत दिनों तक वह बात नहीं भूलता और भलाई बुराई को याद रखता है। विशेषकर महावत के क्रूर व्यवहार को कभी विस्मरण नहीं करता और अवसर पा के कभी न कभी उससे बदला ले लेता है। कौन फल किस ऋतु में और किस प्रदेश में होता है यह हाथी को पूर्णतया याद रहता है। लंका के दक्षिणी भाग में बेल के जंगल हैं। ज्यों ही बेल पकने पर आते हैं तो हाथी के दल के दल, दूर दूर से आकर वहाँ पहुँच जाते हैं।

हाथी और दर्ज़ी की एक प्रसिद्ध पुरानी कहानी से इस जन्तु की स्मरणशक्ति एवं प्रतीकारपरायणता का अच्छा दृष्टान्त मिलता है। एक महावत अपने हाथी को नित्य एक विशेष सड़क पर से पानी पिलाने को ले जाया करता था। घरों की खिड़कियों में हाथी सूँड़ डालता चलता था, और लोग कुतूहलवश उसको कोई फल अथवा अन्य कोई भोजन-पदार्थ दे दिया करते थे। किसी कारण से एक दर्ज़ी एक दिन हाथी के इस व्यवहार से क्रोधित होगया और भोजन देने की जगह उसने अपनी सूई हाथी की सूँड़ में छेद दी। हाथी पानी पीने

को चुपचाप चला गया। पानी पी के जब लौटने लगा तो सूँड में मैला जल और कीचड़ भर लाया। दर्ज़ी की खिड़की पर पहुँच उसने सूँड़ भीतर डाली और गदले जल का छिड़काव कमरे भर में कर दिया।

हाथी दीर्घजीवी प्राणी है। निश्चितरूप से तो यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी आयु कितनी होती है किन्तु पालतू हाथी १०० वर्ष तक जीवित रहते देखे गये हैं। जङ्गल में, जहाँ हाथी को स्वाधीन और स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने को मिलता है, उसकी आयु १५० वर्ष से कम न होती होगी।

बच्चा माता के गर्भ में लगभग २१ मास तक रहता है और ४० वर्ष में युवावस्था को पहुँचता है। मादा के स्तन अगली टाँगों के बीच में होते हैं। इस स्थान पर स्तनों का होना असाधारण है। बच्चा दूध पीने के लिए अपनी सूँड उठा के स्तन को मुँह से दबा लेता है।

अपने दीर्घ शरीर और विशेषकर काले रंग के कारण हाथी सूर्य्यताप सहन नहीं कर सकता। इसलिए सूर्य्योदय होते ही हाथी के दल घने जंगलों में शरण लेते हैं और सूर्य्यास्त होने ही पर बाहर निकलते हैं।

यद्यपि इस महान् जन्तु ने विशाल शरीर पाया है तथापि न तो वह आलसी ही होता है न भद्दा। रात्रि में चरते हुए हाथी का दल बड़े दूर दूर के चक्कर लगाता है। हाथी दौड़ नहीं सकता किन्तु जब झपट के चलता है तो उसकी गति दौड़ने से कम नहीं होती। उसकी फ़ुर्ती का पूरा अनुमान तभी होता है जब कभी क्रोधित हो वह किसी पर झपटता है। लगभग १०० गज़ तक तो वह ऐसी तीव्रता से जाता है कि शायद ही कोई आदमी भाग के प्राण बचा सकता हो। तत्पश्चात् हाँप जाने के कारण उसकी गति कुछ धीमी

हो जाती है। पैरों पर मांस की मोटी गद्दियाँ होने से-उसकी चाल में किञ्चित्-मात्र भी आहट नहीं होती। उछलने का सामर्थ्य इस विशाल जन्तु में नहीं होता और यदि कोई छोटी सी खाई भी उसके मार्ग में आ जाती है जिसको डग भर के वह पार नहीं कर सकता तो उसको रुक जाना पड़ता है।

जंगली दशा में हाथी सीधा, शान्त और निर्दोष जीव होता है। यदि ऐसे दीर्घकाय प्राणी की प्रकृति में क्रूरता और भीषणता होती तो बड़ी कठिनाई होती। अपनी स्वाभाविक भीरुता के कारण छोटे से छोटे अपरिचित जन्तुओं को भी देख के हाथी भयभीत हो जाता है। एक यात्री लिखता है कि हाथी के दल रात्रि में उसके कैम्प के पास आ जाते थे किन्तु उसके छोटे से कुत्ते के भूकते ही वे तुरन्त भाग जाया करते थे।

जंगली हाथी की बुद्धि और समझ बहुत प्रशंसनीय नहीं होती और उसमें चातुर्य्य अथवा चालाकी का नाम भी नहीं होता। पालित दशा में हाथी अपनी बुद्धि की बहुत कुछ उन्नति कर लेता है।

लंका टापू में प्राय: जंगलों के निकट ही धान की खेती होती है। कृषक लोग अपने खेतों की रक्षा के लिए उनके चारों ओर छोटी छोटी टहनियों का घेर खींच देते हैं जो केवल ५-६ इंच ऊँचा होता है। खेतों के बीच बीच में कृषक चौड़े चौड़े रास्ते हाथियों के लिए छोड़ देते हैं। हाथी रात में पानी पीने को निकलते हैं किन्तु धान को कभी नहीं छूते, न कभी उन नन्हें घेरों को तोड़ने अथवा पार करने ही की चेष्टा करते हैं क्योंकि जंगली हाथी छोटे से छोटे घेर से डर जाता है। जब धान काट लिये जाते हैं और घेर नहीं रहते तो हाथी खेतों में घुस के चावल की खोज करने लगते हैं।

जंगली हाथी के सरल स्वभाव का यह एक उत्तम प्रमाण है कि उनके दल के संग प्राय: अन्य जानवर भी रहते हैं, हाथी उनको कभी

हानि नहीं पहुँचाते। मिस्टर न्यूमैन बतलाते हैं कि उन्होंने हाथियों के संग ज़ेबरा घोड़े और गिज़ाला हरिण रहते देखे हैं। जर्मन शिकारी हरस्किलिङ्स ने अफ्रीका में देखा कि दो हाथी एक बड़े नर जिराफ़ के संग रहते और साथ साथ चरते थे।

हाथियों को सहवास अधिक प्रिय होता है। और वे सर्वथा झुंड में रहते हैं, किन्तु बहुधा झुंड में एक ही कुटुम्ब के व्यक्ति एक साथ रहते हैं, कुटुम्बियों के अतिरिक्त झुंड में कोई बाहर का व्यक्ति, जो संयोगवश चलते फिरते मिल गया हो, कभी सम्मिलित नहीं किया जाता। शरीर के गठन पर ध्यान देने से कोई न कोई विशेषता ऐसी पाई जाती है जिससे प्रमाणित हो जाता है कि सब एक ही पूर्वज की संतान हैं और उन सबमें कोई पारस्परिक सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, सन् १८४४ ई० में एक दल पकड़ा गया था जिसमें २१ हाथी थे किन्तु सबकी सूँड़ें असाधारण लम्बाई की थीं और सभी की सूँड़ों में एक विशेषता यह थी कि उनके ऊपरी और निम्न भाग की मुटाई में बहुत थोड़ा अन्तर था। एक अन्य दल ३५ हाथियों का पकड़ा गया था और उन सबकी आँखों का रङ्ग समान था।

झुंड का एक व्यक्ति, जो बहुधा सबसे दीर्घ, बलवान्, और अनुभवी होता है, सर्वसम्मति से झुंड का नेता मान लिया जाता है और उसकी अध्यक्षता सब आँख मूँद के स्वीकार कर लेते हैं। नेता प्रायः कोई न कोई बड़े गजदंतों का नर हुआ करता है, किन्तु यदि कोई प्रतिभाशालिनी मादा इस पद के योग्य समझी जाती है तो उसकी भी अध्यक्षता स्वीकार करने में किसी को लेश-मात्र भी संकोच नहीं होता और उसकी आज्ञा-पालन भी उतनी ही तत्परता से करते हैं जितनी कि नर की।

दल के सारे व्यक्ति अपने नेता की रक्षा के लिए सर्वथा चिन्तित रहते हैं। जब भाग कर प्राण बचाने की सम्भावना नहीं रह जाती और दल को शत्रु का सामना करना पड़ता है तो वे अपने नेता को चारों ओर से घेर लेते हैं और उसको ऐसे प्रयत्न से छिपा लेते हैं कि नेता को गोली से हताहत करना बड़ा कठिन होता है और शिकारी को कई हाथियों के प्राण लेने पड़ते हैं जिनको कदाचित् वह मारना भी नहीं चाहता था। एक बार एक शिकारी मेजर रॉजर्स ने एक नर नेता को बहुत घायल कर डाला तो उसके साथियों ने उसको तुरन्त घेर लिया और अपने कंधों से सहारा देकर उसको जंगल को भगा ले गये।*

कैसी स्वामिभक्ति है कि प्रत्येक हाथी अपने नेता की रक्षा के लिए प्राण तक देने को तैयार रहता है। वह भली भाँति समझता है कि नेता के सुरक्षित रहने ही पर सारे दल की कुशल निर्भर है। कदाचित् किसी सेना ने अपने सेनापति की रक्षा के लिए ऐसी तत्परता प्रकट न की होगी।

यह स्वीकार करना पड़ता है कि हाथियों में कुछ ऐसे नियम होते हैं जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति को करना पड़ता है और उनके उल्लंघन करनेवाले को यथोचित दण्ड दिया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि जंगलों में कोई कोई हाथी एकान्तवास किया करते हैं। ये हाथी समाज के किसी नियम का निरादर करने के अपराध पर दल से बहिष्कृत किये हुए होते हैं। इनको कोई दूसरा दल भी अपने में नहीं मिलाता। ऐसे अपराधी अपमानित हो कर बड़े चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं और उनका शेष जीवन फिर दुराचरणों ही में व्यतीत होता है। ये अकेले चरते फिरते हैं और निष्कारण दूसरों पर आक्रमण किया करते हैं।

---

* "Natural History of Ceylon," by Sir J. E. Tennant.

प्रतिवर्ष कुछ समय के लिए हाथी की वह दशा हो जाती है जब वह "मस्त" कहलाता है। ऐसी अवस्था में हाथी अत्यन्त चञ्चल हो उठता है। क्षण भर भी शान्ति से खड़ा नहीं रह सकता, कभी सिर हिलाता है, कभी झूमता है, कभी पैरों से धरती खोदता है। उसकी प्रकृति में भी एक विचित्र परिवर्तन हो जाता है। स्वाभाविक सुशीलता और जन्म भर की शिक्षा को वह एकदम भूल जाता है और ऐसा क्रूर हो जाता है कि मनुष्य के प्राण लेने में भी कुछ संकोच नहीं करता। कभी कभी पालतू मस्त हाथी बन्धनमुक्त हो भाग जाते हैं और बड़ा उपद्रव मचाते हैं, किन्तु बहुधा कुछ समय के उपरान्त वे फिर शान्त और आज्ञापालक हो जाते हैं।

अफ्रीका का हाथी अब कहीं पालित नहीं किया जाता किन्तु प्राचीन समय में कारथेज के अधिवासी उसको पालते थे और युद्ध में भी उससे सहायता लेते थे।

हिन्द में हाथी सदा से मानव-जाति का दास और सहायक रहा है। रणक्षेत्र में हाथियों के दल के दल सेना के साथ रहते थे। किन्तु कभी कभी हाथियों से सेना को लाभ के बदले हानि भी बहुत पहुँचती थी। राजा पुरु ने जब सिकन्दर की सेना का पञ्जाब में सामना किया था तो पुरु की सेना में २०० हाथी थे जो रणभूमि में दो दो सौ गज़ के अन्तर पर खड़े किये गये थे। इतिहास-लेखक एरियन (Arrian) ने इस युद्ध का वृत्तान्त देते हुए लिखा है कि हाथियों ने शत्रु की सेना की अपेक्षा अपनी सेना को अधिक हानि पहुँचाई। ज्योंही भयभीत हो हाथी भागे तो उनके पैरों के तले शत्रु और मित्र दोनों ही कुचले गये। महावतों के मारे जाने पर बहुत से हाथी स्वतन्त्रता पाकर और घावों की पीड़ा से उन्मत्त हो सारे रणक्षेत्र में बेतहाशा दौड़ते फिरते थे, मित्र और शत्रु दोनों ही पर आक्रमण करते, पैरों से कुचलते और दाँतों से छेदते थे।

सम्राट् चन्द्रगुप्त की सेना में भी ९,००० हाथी रहा करते थे।*

इतिहास से पता चलता है कि भारत के सिवा अन्य देशों में भी हाथी युद्ध के लिए शिक्षित किया जाता था। यूनान में सबसे पहले हाथी को एन्टिपेटर (Antipator) भारतवर्ष से ले गया था। कारथेज-निवासियों ने योरप में सबसे पहले हाथी को युद्ध के लिए शिक्षित किया था। जब रोम-निवासियों ने पहले-पहल पिरस (Phrrhus) की सेना में हाथी देखे तो वे उनको चलती फिरती कलें समझ बहुत डरे। एलियन और प्लिनी ने लिखा है कि रोम-निवासी अफ्रीका से हाथी पकड़ कर लाते थे और उनसे तमाशा कराते थे। रोम के सम्राट् जूलिअस सीज़र ने जब इँगलेंड पर चढ़ाई की तो एक स्थान पर उसकी सेना को टेम्स नदी पार करनी थी। नदी के दूसरी ओर ब्रिटेन का राजा दल-बल सहित खड़ा था। सीज़र ने एक बहुत बड़ा हाथी नदी में छोड़कर शत्रु की ओर बढ़ाया। ब्रिटेन की फ़ौज हाथी देख के भाग पड़ी और सीज़र नदी को पार कर गया।

यह सर्वमान्य है कि हाथी को शिक्षित करने की प्रथा भारत से प्रचलित हुई और मिस्र आदि देशवालों ने भारतवासियों से ही हाथी पालना सीखा था।

मनुष्य के संग रहकर उसकी शिक्षा-दीक्षा से, हाथी की बुद्धि बहुत उन्नति कर लेती है। शिक्षित किये जाने पर वह बहुत से काम सीख लेता है और उसके स्वाभाविक ज्ञान की भी ऐसी जागृति हो जाती है कि अनेक काम वह अपनी बुद्धि और समझ से भी करने लगता है। सर इमर्सन टेनेण्ट लंका टापू में कैण्डी नगर के पास जंगल में घोड़े पर जा रहे थे। मोड़ पर एक पालतू हाथी एक बहुत बड़ा लट्ठा दाँतों पर उठाये ला रहा था। घोड़ा उसको देखके

* See Vincent Smith's "Early History of India."

चौंका और रुक गया। यह देख हाथी ने लट्ठा नीचे फेंक दिया और मार्ग छोड़ पीछे हट गया। घोड़े का भय इस पर भी दूर न हुआ तब झाड़ियों को दबाता कुचलता हाथी और भी पीछे हट गया। घोड़े को तब साहस हुआ और आगे बढ़ा। जब घोड़ा कुछ दूर निकल गया तो वह बुद्धिमान् हाथी निकला और लट्ठा उठा के पूर्ववत् फिर चल दिया। पशु के हृदय में परोपकार का इतना ध्यान होना सराहनीय और विस्मयकर है।

हिन्दुस्तान में बाघ के शिकार के लिए लोग प्रायः हाथी ही पर जाते हैं और अनेक अवसर ऐसे पड़ जाते हैं जब केवल शिकार की सफलता ही नहीं वरन् स्वयं शिकारी ही की कुशल हाथी की बुद्धि और चतुराई पर निर्भर करती है। ऐसे अवसरों पर यदि हाथी के व्यवहार उन्हीं कार्य्यों तक परिमित रहें जो उसको सिखा दिये गये हैं और वह अपनी बुद्धि से कुछ न सोचे समझे तो वह अपने स्वामी की कोई सेवा नहीं कर सकता।

कप्तान फ़ॉरसाइथ (Captain Forsyth) जिन्होंने मध्य प्रदेश में बाघ के शिकार में हाथियों का बहुत अनुभव प्राप्त किया था लिखते हैं :—

"बाघ के शिकार में शिकारी और उसके सहयोगी हाथी के बीच अद्भुत प्रेम उत्पन्न हो जाता है। लोग हाथी को पशुशाला में अथवा बोझ घसीटते देख यह समझ लेते हैं कि वह एक स्थूल, अप्रतिभ, और मन्दगामी पशुमात्र है, किन्तु वही हाथी शिकार में शिकारी के हाथ पैर बन जाता है और ऐसे उत्कृष्ट शारीरिक तथा मानसिक गुणों का परिचय देता है कि उनसे अधिक कोई पशु उनका परिचय नहीं दे सकता। बुद्धिमत्ता से शिकार में वह ऐसी रोचकता प्रकट करता है कि जिसकी आशा नहीं की जा सकती। जिसने देखा नहीं

वह विश्वास नहीं कर सकता कि कैसी अपूर्व आश्चर्यजनक सावधानी से शिक्षित हाथी बाघ के पास पहुँचता है। सूखी टहनियों आदि को कैसी पटुता से, किञ्चित् मात्र शब्द किये बिना, मार्ग से हटाता चलता है। चरचराती हुई पत्तियों अथवा लुढ़कनेवाले पत्थरों पर अपने बृहत् शरीर को कैसी आश्चर्य्यजनक निःशब्दता से बढ़ाता है। झाड़ियों में फेंकने के लिए, जब स्वामी पत्थर माँगता है तो तुरन्त उठा उठा कर देता चलता है। अन्त में अपनी सचेत सूँड़ से संकेत कर या तो निश्चित रूप से बताता है कि भयंकर हिंस्र पशु कहाँ छिपा है या सूँड़ को पटक पटक कर चेतावनी देता है कि उसने बाघ का पता निश्चित रूप से तो नहीं लगा पाया है तथापि वह कहीं पास ही है। जब वह शत्रु को देखता है जिसका कि उसको स्वाभाविक भय होता है तो उसकी अचल दृढ़ता और धैर्य्य देखने योग्य होता है। हाथी का कर्तव्य है कि वह चट्टान के समान अटल हो खड़ा हो जाय चाहे बाघ उछल के उसके सिर ही पर आ टूटे, और सुशिक्षित हाथी ऐसा ही करके दिखा देते हैं।"

स्वाभाविक ज्ञान की हाथी में त्रुटि नहीं होती। किसी किसी अवसर पर वह ऐसी उत्कृष्ट बुद्धि का परिचय देता है कि जो आश्चर्यजनक होती है। एक हाथी एक दीवार के पास बँधा था। किसी ने एक फल उसके पास फेंका। फल हाथी से कुछ दूर गिरा और उसकी सूँड़ फल तक न पहुँची। तब उसने श्वास भर के सवेग फूँक मारी। फल भीति से टकराया और लुढ़कता हुआ उसके पास लौट आया।*

विज्ञान-शिरोमणि चार्ल्स डार्विन लिखते हैं "मैंने पशुशाला में देखा कि जब कोई छोटी सी वस्तु एक हाथी की पहुँच के बाहर फेंक दी जाती थी तो वह ऊपर से इस प्रकार फूँक मारता था

---

* Jesse's *Gleanings in Natural History*, Vol. I.

कि श्वास, चतुर्दिक् फैलने के कारण, उक्त वस्तु को उसकी ओर खींच लाती थी।"

आज्ञा का अक्षरश: पालन करना हाथी का स्वाभाविक गुण है। यदि ऐसा न होता तो यह दीर्घकाय जन्तु मनुष्योपयोगी नहीं हो सकता था। उत्सवों और मेलों की भीड़ में यदि हाथी बिना आदेश के एक पैर भी उठा दे तो वह भी ख़तरनाक हो जाय। इँगलेंड के एग्ज़िटर चेञ्ज (Exeter Change) नामक स्थान में बहुत समय हुआ एक बुड्ढा पालतू हाथी था। सन् १८४६ ई० में उसका मार डालना निश्चित किया गया और गोली मारने के लिए कई सिपाही उसके सामने खड़े किये गये। हाथी के शरीर में पूरी १२० गोलियाँ मारी जा चुकी थीं, शरीर चलनी होगया था, किन्तु अभागे के प्राण नहीं निकलते थे। न हाथी अपना मस्तक गोली चलानेवालों की ओर मोड़ता था न यथास्थान गोली लगती थी। तब महावत ने हाथी का नाम लेकर पुकारा। मृत्यु की तीव्र वेदना में भी उसने महावत का कण्ठस्वर सुनते ही अपना मुँह उसकी ओर मोड़ लिया और आज्ञा पाते ही घुटने टेक के सिर झुका दिया। गोली चलानेवालों को तब सहज ही उसके सिर का निशाना मिल गया।

पालतू हाथी महावत के सारे कुटुम्ब से परिचित हो जाता है और प्रीति करता है। महावत के छोटे छोटे बालक उसके संग निर्भय-रूप से खेलते रहते हैं। हाथी उनको सूँड़ से उठाकर पीठ पर बिठा लेता है और फिर धीरे से नीचे उतार देता है।

अस्वस्थ हो जाने पर कड़वी और अस्वादिष्ट औषधि शान्तरूप से पी लेने में, और फोड़ा हो जाने पर शस्त्र-चिकित्सा की तीव्र-वेदना सहर्ष सहन कर लेने में हाथी अपनी उच्च कोटि की बुद्धि और सहन-शीलता का परिचय देता है। एक हाथी की पीठ में बहुत बड़ा फोड़ा

होगया था और उसकी शस्त्र-चिकित्सा करने को एक डाक्टर से कहा गया। डाक्टर साहब को जब पूरा विश्वास दिलाया गया कि चीर-फाड़ की पीड़ा से हाथी कुछ उपद्रव नहीं करेगा तब वे फोड़ा चीरने को तैयार हुए। हाथी की टाँगें तक नहीं बाँधी गईं। महावत ने उसको केवल घुटनों पर बिठा दिया था। हड्डी काटने के एक बड़े नश्तर से, डाक्टर ने पूरे बल से उसका फोड़ा चीरा। हाथी ने चूँ तक न किया। वरन् और झुक गया। पीड़ा के कारण मंद स्वर से वह बेचारा चीखता रहा। इसमें किञ्चित् भी संदेह नहीं किया जा सकता कि वह भली प्रकार समझता था कि चीर-फाड़ उसी के हित के लिए की जा रही थी और पीड़ा का होना अनिवार्य्य था।

पादरी जूलियस यंग ने अपने पिता, सुप्रसिद्ध एक्टर, मि० चार्ल्स यंग के जीवन-चरित में एक हाथी के सम्बन्ध में एक रोचक घटना का उल्लेख किया है। यह वही हाथी था जो अन्त में एग्ज़िटर चेञ्ज में मारा गया था और जिसकी मृत्यु का वर्णन दिया जा चुका है। यह हाथी सन् १८१० ई० में इँगलेंड पहुँचा था और उसको कॉवेन्ट गार्डन नाटक कम्पनी ने मोल ले लिया था। किसी खेल का रिहर्सल अर्थात् अभ्यास कराया जा रहा था। स्टेज (रङ्गभूमि) पर एक छोटा सा पुल बनाया गया था जिस पर से हाथी निकाला जाने को था। हाथी पुल पर न बढ़ा। उस दिन खेल बन्द कर दिया गया। दूसरे दिन फिर हाथी पुल पर बढ़ाया जाने लगा। पुल को पैर से टटोल कर वह फिर रुक गया। इस पर नाटक-कम्पनी के स्वामी ने महावत को आज्ञा दी कि हाथी को मारो। महावत बारम्बार अंकुश मार रहा था और स्वामी चिल्ला चिल्ला कर और मारने की आज्ञा दे रहा था। रुधिर की नदी सी बह रही थी। इतने में चार्ल्स यंग पहुँच गये। हाथी को ऐसी निर्दयता से मारने का उन्होंने बड़ा प्रतिरोध किया और महावत का हाथ पकड़ लिया।

इस बीच में कप्तान हे (Captain Hay) भी पहुँच गये। यह उस जहाज़ के कप्तान थे जिस पर कि हाथी इँगलेंड गया था। कप्तान हे और हाथी में बड़ा प्रेम होगया था। हाथी ने उनको तुरन्त पहिचान लिया। सूँड़ से उनका हाथ पकड़ के उसने अपने घाव पर रक्खा और तब हाथ को उनकी आँखों के सामने ले गया मानो वह उनको दिखाना चाहता था कि वे लोग उसके कैसे घाव मार रहे थे। उसके इस व्यवहार से कठोर और क्रूर-हृदय भी द्रवित होगये और स्वामी को भी दया आगई। वह दौड़ के गया और कुछ सेब मोल लाया और हाथी को दिये। हाथी ने सेब सूँड़ से उठा लिये किन्तु नीचे फेंक उनको पैरों से कुचल डाला और ठुकरा के दूर फेंक दिये। चार्ल्स यंग भी इतने में कुछ सेब मोल ले आये। उनसे सेब लेकर हाथी ने तुरन्त खा लिये।

मान-मर्यादा का हाथी को बड़ा ख़याल रहता है और वह अपमान सहन नहीं कर सकता। एक हाथी का स्वामी नित्य उसे शराब पिलाया करता था। पहले वह गिलास भर के हाथी को दिया करता था तत्पश्चात् अपना गिलास भरता था। एक दिन स्वामी बोला—"हाथी नित्य तुम पहले पिया करते थे, आज मैं पहिले पिऊँगा।" उस दिन हाथी ने शराब का प्याला स्वीकार नहीं किया।

दुर्भाग्यवश बन्दी हो जाने पर हाथी की परिवार-वृद्धि नहीं होती, अतः प्रत्येक हाथी जो हम देखते हैं जङ्गल से पकड़ के लाया हुआ होता है। लङ्का, आसाम, मैसूर आदि में हाथी "खेदा" के द्वारा पकड़े जाया करते हैं।

खेदा के लिए मोटे, और लम्बे लट्ठों का एक बड़ा घेरा बना लिया जाता है जिसकी लम्बाई ५०० फ़ुट और चौड़ाई २५० फ़ुट के क़रीब होती है। यथासम्भव यह घेरा अत्यन्त सुदृढ़ बनाया जाता है। लट्ठे प्रायः ३ फ़ुट भूमि में गाड़ दिये जाते हैं और १२ फ़ुट या कुछ

अधिक ऊपर निकले रहते हैं। बाड़े को सुदृढ़ बनाने के लिए अन्यान्य प्रयत्न भी किये जाते हैं। आड़े आड़े लट्ठे भी गाड़े जाते हैं, और लट्ठों की टेकें भी लगा दी जाती हैं। इतने प्रयत्न किये जाने पर भी यदि हाथियों का दल मिलकर घेरे की किसी दीवार से टक्कर मार दे तो उसके टूट कर चूर चूर हो जाने में सन्देह नहीं। भाग्यवश भीरु हाथी को न तो अपने अपूर्व बल का पूरा ज्ञान होता है और न उनमें सब मिलकर एक साथ कोई काम कर सकने की बुद्धि ही होती है। अस्तु। बाड़े में प्रवेश करने के लिए केवल एक फाटक होता है जो इच्छानुसार ऊपर या नीचे तुरन्त उठाया या गिराया जा सकता है।

अब खेदा करनेवाले मनुष्य, जिनकी संख्या दो या तीन सहस्र तक होती है हाथी के किसी दल को तीन ओर से घेर लेते हैं। मीलों की परिधि में वे फैले रहते हैं और उनका अभीष्ट यह होता है कि हाथियों का दल उनकी पंक्ति को फाड़ के निकलने न पावे वरन् घेरे की ओर क्रमशः बढ़ता चले। प्रतिदिन दल को कोस दो कोस आगे बढ़ाते जाते हैं। कभी कभी घेरे तक पहुँचने में उनको डेढ़ दो मास लग जाते हैं क्योंकि हाथियों को एकाएक भयभीत और उत्तेजित करने से सारे उद्योग के विफल होने की संभावना होती है। इसी से विदित होता है कि कितना धन और कितना समय प्रत्येक खेदे में लगता है और कितने धैर्य तथा सावधानी की आवश्यकता होती है।

उत्तरोत्तर जब दल बाड़े के सम्मुख पहुँचता है तो वह बड़ी चिन्ता का समय होता है। हाथी बाड़े से स्वभावतः डरता है और यदि किसी अनपेक्षित समय पर हाथी का दल भयभीत हो के भाग पड़े तो महीनों का परिश्रम नष्ट हो जाय।

सहस्रों मनुष्यों के होते हुए भी सारे जङ्गल में सन्नाटा छा जाता है। छोटे बड़े सभी कर्म्मचारी कटिबद्ध हो अपने निर्दिष्ट

स्थान पर खड़े अंतिम हाँके का संकेत पाने की प्रतीक्षा करते हैं।

अकस्मात् चतुर्दिक् से उच्चनाद उठता है। हाँका करनेवालों की चीखें, ढोलों की गड़गड़ाहट, बन्दूकों के शब्द सब मिल के ऐसा कोलाहल मचाते हैं कि सारा वायुमण्डल शब्दायमान हो जाता है। हाथी जब तक पूर्णतया भयग्रस्त नहीं हो जाता बाड़े में प्रवेश नहीं करता। प्राय: यह अंतिम हाँका रात्रि के समय किया जाता है क्योंकि अग्नि और मशालों से हाथी को डराना सहज होता है।

हाथी व्यग्र हो इतस्तत: भागने लगते हैं और मनुष्यों की पंक्ति को फाड़ के निकल भागने की चेष्टा करते हैं, किन्तु बेचारे जिधर ही पहुँचते हैं उधर ही से डरा के भगा दिये जाते हैं। निराश हो अन्त में दल का नेता फाटक की ओर अग्रसर होता है। फाटक पर ठिठक के क्षण भर सोचता समझता है तत्पश्चात्, अन्य कोई उपाय न देख, बाड़े के भीतर घुस जाता है। नेता के घुसते ही सारा दल तुरन्त बाड़े के भीतर दौड़ पड़ता है। तत्क्षण फाटक गिरा दिया जाता है।

बाड़े के भीतर पहले तो सारा दल सीधा भागता चला जाता है किन्तु निकलने का रास्ता न पाके सब फाटक की ओर लौटते हैं। फाटक को बन्द पा के उनके भय की सीमा नहीं रह जाती, उन्मत्त के समान वे सारे बाड़े का चक्कर लगाते फिरते हैं। मनुष्यों का समूह अब बाड़े को घेर कर खड़ा हो जाता है और, भालों आदि से डराके, हाथियों को लट्ठों से नहीं टकराने देता। भागते भागते कभी दल एक स्थान पर खड़ा हो जाता है, किन्तु क्षणिक निराशा को त्याग तुरन्त ही दल किसी दूसरी दिशा में भाग पड़ता है। स्वाधीनता की पशुमात्र में भी कैसी उत्कट अभिलाषा होती है।

क्रमशः उनका वेग क्षीण होता जाता है और अन्त में वे सब उपायहीन हो एक स्थान में सिर झुका के खड़े हो जाते हैं। तत्पश्चात् दो एक दिन उनको भूखा खड़ा रहने देते हैं, तब पालतू शिक्षित हाथियों की सहायता से उनके पैरों में फन्दा डाल एक एक को बाहर निकालते हैं। एक खेदा का मनोरञ्जक वृत्तान्त देते हुए सर इमर्सन टेनेंट लिखते हैं :—

"दूसरे दिन पालतू हाथियों को भीतर ले जाने की तैयारी की गई। फाटक धीरे से उठाया गया और दो पुराने शिक्षित हाथी, महावतों तथा दो नौकरों सहित भीतर घुसे। उनके संग एक वृद्ध फन्दा डालनेवाला एवं उसका पुत्र, रंघानी, भी भीतर गया। फन्दा डालने में ये बाप-बेटे बड़े निपुण समझे जाते थे। पालतू हाथियों में से एक की अवस्था सौ वर्ष से भी अधिक थी, दूसरी एक मादा थी जिसका नाम श्रीवेदी था। श्रीवेदी जङ्गली हाथियों को फँसाने में बड़ी चतुर थी और उसको स्वजातीय स्वतन्त्र भाइयों को पकड़ा देने में कुछ विलक्षण आनन्द प्राप्त होता था।

"श्रीवेदी बड़ी सावधानी से आगे बढ़ी। ज्यों ही वह दल के पास पहुँची तो सब हाथी उसकी ओर अग्रसर हुए। दल का नेता उसके पास आया और अपनी सूँड़ उसके सिर पर फेरी। तदनन्तर वह लौट के अपने साथियों के पास जा फिर खड़ा होगया।

"श्रीवेदी भी तुरन्त उसके पीछे लग गई जिससे कि फन्दा डालने-वाले को फन्दा मारने का अवकाश मिले। जंगली हाथी को तुरन्त ज्ञात होगया कि उसके फन्दा डाला जा रहा था। पैर को झटका देके वह फन्दा डालनेवाले पर आक्रमण करने को घूमा। श्रीवेदी ने तुरन्त अपनी सूँड़ उठा के उसको धमकाया और पीछे हटा दिया। वृद्ध फन्दा डालनेवाले के चोट भी आगई। अतएव वह बाहर पहुँचा दिया गया और उसका स्थान उसके लड़के ने लिया।

"जंगली हाथी अब एक स्थान पर एकत्रित हो, अपने मुँह बीच में करके, खड़े हो गये। दोनों पालतू हाथी तब सबसे बड़े नर के पास ले जाये गये। जङ्गली हाथी को बीच में कर वे दोनों इधर उधर खड़े होगये। जङ्गली हाथी की उद्विग्नता देखने योग्य थी। कभी वह एक पैर से और कभी दूसरे से खड़ा होता था। रङ्गानी चोर के समान फन्दा ले आगे को बढ़ा। इस फन्दे की रस्सी का एक छोर श्रीवेदी की गरदन में बँधा था। ज्यों ही एक बार हाथी ने पैर उठाया तो रङ्गानी को अवकाश मिल गया और उसने तुरन्त फन्दा डाल दिया। फन्दा पड़ते ही दोनों पालतू हाथी पीछे को हटे। श्रीवेदी के चलते ही वह जङ्गली हाथी भी पीछे को घसिटने लगा। इधर श्रीवेदी ने जङ्गली हाथी को घसीटना आरम्भ किया, उधर दूसरा पालतू हाथी दल के सामने जाकर खड़ा होगया जिससे कि कोई दूसरा हाथी अपने साथी की दुर्दशा देख के श्रीवेदी के काम में बाधक न होने पाये। बन्दी हाथी ने बड़ा उपद्रव किया, कभी चिंघारता था और कभी भागना चाहता था। जिस पेड़ से वह बाँधा जाने को था वह २० या ३० गज़ के फ़ासले पर था। श्रीवेदी ने स्वयं पेड़ के चारों ओर घूम के रस्सी का एक फेरा घुमा दिया। दूसरा फेरा डालना अब संभव न था क्योंकि रस्सी की रगड़ के कारण जङ्गली हाथी को खींचना उसकी शक्ति के बाहर हो गया। अतएव दूसरा पालतू हाथी तुरन्त सहायता के लिए आ गया और जङ्गली हाथी के सिर और कन्धों से अपना सिर और कन्धा भिड़ा के उसको पीछे हटाने लगा। श्रीवेदी ने इस प्रकार दूसरा फेरा भी डाल दिया।

"इसके पश्चात् दोनों पालतू हाथी आगे बढ़ जङ्गली हाथी के दोनों ओर खड़े होगये। रङ्गानी ने छिपके दोनों अगली टाँगों में भी फन्दे डाल दिये। इन फंदों की रस्सियाँ भी पेड़ों से बाँध दी गईं।

"पालतू हाथियों के हटते ही जङ्गली ने भीषण उत्पात आरम्भ किया। कभी सूँड़ उठाके चीख़ता, चिंघारता था, कभी फन्दों की गाँठें खोलता और कभी रस्सियों को खींचता तानता था। अन्त में ज़ोर करते करते वह शरीर के एक पार्श्व-भाग के सहारे गिर पड़ा। फिर उसने भूमि पर सिर और अगली टाँगें टेक के बंधन तोड़ने के लिए विकट बल लगाया यहाँ तक कि उसकी पिछली टाँगें ऊपर उठ गईं। उसकी यह दशा देखकर दया आती थी। कई घंटों तक वह ऐसी ही चेष्टायें करता रहा, तत्पश्चात् हार थक के चुपचाप खड़ा रहा।

"एक आश्चर्य्यजनक बात यह थी कि जङ्गली हाथी महावतों पर आक्रमण नहीं करते थे, न कभी उनको सूँड़ से नीचे गिरा लेने की चेष्टा करते थे। इसी प्रकार एक एक करके सारे हाथी बाँध दिये गये।

"तत्पश्चात् एक दूसरा दल फँसाया गया। इस दल में एक मस्त हाथी था जिसने बड़ा उपद्रव किया। फन्दा डालके जब वह खींचा गया तो सूँड़ से उसने एक पेड़ पकड़ लिया और लेट गया। उसको पेड़ से छुड़ाने के लिए तीन हाथी लगाने पड़े। एक टाँग में फन्दा पड़ जाने पर दूसरी टाँग को वह शरीर के नीचे दबाकर बैठ गया। अंत में जब उसकी चारों टाँगों में फन्दे पड़ गये तो उसका दुःख देख हृदय द्रवित होता था। भूमि पर पड़ा वह आर्तनाद करता था और दोनों आँखों से अश्रुधारा बहती थी।"

उपर्युक्त वृत्तान्त से यह स्पष्टतः विदित हो जाता है कि बिना पालतू हाथियों की सहायता के खेदा के द्वारा जंगली हाथी कदापि नहीं पकड़े जा सकते। केवल इतना ही नहीं वरन् यदि शिक्षित हाथी स्वयं अपनी बुद्धि से काम न करें और यदि वे प्रत्येक अवसर पर आदेश पाने की ही राह देखें, तथा प्रत्येक कठिनाई के लिए

अद्भुत बुद्धिमानी से स्वयं उपाय न सोच लें, तो जंगल के स्वतन्त्र हाथी को बन्दी कर लेना असम्भव ही हो जाय।

लगभग दो मास तक नयाबन्दी हाथी जब कभी पानी पिलाने को अथवा स्नान कराने को भेजा जाता है तो दो शिक्षित हाथी उसके संग जाते हैं और एक आदमी भाला लेके उसके आगे चलता है। तत्पश्चात् उसको अकेला ले जाने का साहस किया जाता है।

मैमथ हाथी

(THE MAMMOTH—*Elephas Primigenus*)

यद्यपि इस पुस्तक में उन्हीं प्राणियों को स्थान दिया गया है जो पृथ्वी पर इस समय जीवित जगत् में विद्यमान हैं तथापि मैमथ का संक्षिप्त वर्णन अनेक कारणों से रोचक होगा। संभवतः लाखों वर्ष हुए मैमथ पृथ्वी पर से लुप्त होगया किन्तु अब तक मैमथ के अस्थिपञ्जर और दाँत इतनी बहुतायत से मिलते हैं कि एक प्रकार से वह जन्तु-जगत् के अन्तर्गत ही माना जा सकता है। सायबेरिया में प्रायः इस जन्तु के मृत शरीर बरफ़ में दबे मिले हैं जिनका मांस, खाल, बाल इत्यादि शीत के प्रभाव से वैसे ही बने रहे हैं जैसे कि वे जीवित अवस्था में रहे होंगे।

हमारी समकालीन हाथी की जातियों की अपेक्षा मैमथ बहुत बड़ा होता था। उसके शरीर की ऊँचाई १५ फ़ुट से १८ फ़ुट तक होती थी। मैमथ पृथ्वी के उत्तरी हिमालय प्रदेशों में हुआ करता था और शीत से बचने के लिए उसका सारा शरीर लम्बे बालों से ढका होता था जिनका रङ्ग हल्का लाल होता था। उसके गजदंत बहुधा चक्र के समाने घूमे हुए होते थे और उनकी परिधि ९-१० फ़ुट से कम नहीं होती थी।

शारीरिक गठन में मैमथ हिन्द के हाथी से बहुत मिलता था और विद्वानों का मत है कि दोनों की उत्पत्ति एक ही जाति के पूर्वजों से हुई होगी।

मैमथ के अस्थिपञ्जर और दाँत पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में मिला करते हैं। इँगलेंड, मध्य योरप, रूस, सायबेरिया इत्यादि में किसी प्राचीन काल में यह अद्भुत जन्तु निवास किया करता था। लंदन के "नैच्यूरल हिस्ट्री" अजायबघर में मैमथ की एक पूरी खोपड़ी, बृहत् गजदंतों-सहित रक्खी है जो इल्फ़र्ड नगर के पास एक खेत में निकली थी।*

रूस की राजधानी पेट्रोग्राड (अथवा लेनिनग्राड) के अजायबघर में मैमथ का एक पूरा अस्थिपञ्जर है जिसका आविष्कार मास्को के विज्ञानवेत्ता मिस्टर ऐडम्स ने किया था। सन् १८०६ ई० में उन्होंने स्वयं सायबेरिया जाकर इस शव की परीक्षा की। उसके मांस, खाल और बाल के अधिकांश भाग बरफ़ के शीत में जैसे के तैसे ही बने थे। किन्तु दुर्भाग्यवश लोगों ने उसका कुछ मांस काट काट के घरेलू कुत्तों को खिला दिया था। भालुओं ने भी उसके शरीर के अनेक अंश खा डाले थे। किन्तु गर्दन पर की खाल और बाल सुरक्षित थे और एक बहुत ही बड़ी मात्रा में बाल चारों ओर बिखरे पड़े थे। यह बात तो पुरातत्त्व के ज्ञाता ही सिद्ध कर सकते हैं कि इस जन्तु का मृत शरीर कितने सहस्र वर्षों तक उस स्थान में दबा रहा होगा। न जाने किस सुदूर, अतीत काल में इस जन्तु ने अपनी जीवन-लीला के दु:ख-सुख भोगे होंगे। तब से न जाने कितने साम्राज्य स्थापित होकर नष्ट हो चुके, कितने समृद्धि-सम्पन्न देशों का भाग्य-परिवर्तन होगया और कितनी जातियों का उत्थान और पतन हो चुका।

---

* Sir Ray Lankester's "Extinct Animals."

मैमथ का प्रादुर्भाव इस पृथ्वी पर किस काल में हुआ था और कौन से युग में वह लुप्त होगया इन विषयों का उत्तर निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता। भूगर्भ-विद्या के "प्लाइस्टोसीन" (Pleistocene) की तह में बहुधा उनके 'प्रस्तरविकल्प' (Fossils) मिला करते हैं। यह तह हमारे पैरों के नीचे से लगभग २०० फ़ुट की गहराई तक चली गई है। "ग्लेशियल युग" (Glacial Period) में और उसके उपरान्त भी मैमथ ब्रिटेन में होता था। उसको सम्भवतः एक लाख वर्ष हो चुके। तब मनुष्य पशुओं के समान गुफाओं में रहा करते थे और पत्थर एवं हड्डी के भाले और तीर बनाया करते थे।

प्राचीन समय के किसी चित्रकार द्वारा मैमथ के दाँत पर खोदा हुआ एक मैमथ का चित्र फ़्रांस में मिला है। उसके विषय में एक ग्रन्थकार लिखते हैं:—

"प्रस्तरयुग" की (अर्थात् वह काल जब मनुष्य धातुओं से अनभिज्ञ था और केवल पत्थर ही के हथियार बनाया करता था) एक क़बर में मैमथ के दाँत का एक टुकड़ा मिला है जिस पर मैमथ का सुन्दर चित्र खोदकर बनाया गया है। चित्र में मैमथ के मोटे मोटे बाल भी बने हैं। अग्निप्रस्तर के तथा साधारण पत्थर के हथियार भी उक्त क़बर के भीतर निकले। ये सब इस बात के प्रमाण हैं कि वह मनुष्य जो उस क़बर में गाड़ा गया था, या तो मैमथ का कोई बड़ा शिकारी था या कोई प्रसिद्ध चित्रकार ही था।"*

---

* *The Puzzle of Life*, by Arthur Nichols, F.R.G.S.

हिप्पो-वंश

(HIPPOPOTAMUS)

स्थल के दीर्घकाय जन्तुओं में हाथी के बाद हिपोपेटेमस (दरियाई घोड़ा) का नम्बर है। भारी, भद्दा, बेडौल और कुरूप हिपोपेटेमस उस पुराने युग की याद दिलाता है जब कि आधुनिक सुगठित प्राणियों का विकास नहीं हुआ था। किसी ने बहुत ठीक कहा है कि "पशुशाला में नाना प्रकार के चपल और उत्तम संगठनों से युक्त जीव-जन्तुओं के बीच हिपो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्राचीन समय का एक योद्धा ढाल और गदा बाँधे, नवीन अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित आधुनिक सैनिकों में आ खड़ा हुआ हो।"

भारतवर्ष में हिपोपेटेमस को प्रायः दरियाई-घोड़ा कहते हैं। किन्तु घोड़े और हिपो में उतना ही अन्तर है जितना कि दिन और रात में। हिपो को घोड़ा कहना, सुन्दर सुडौल घोड़े का अपमान करना है। मिस्र में उसको जल-शूकर कहते हैं।

इस विशाल जन्तु की ऊँचाई लगभग ५½ फ़ुट, और शरीर की लम्बाई दुम सहित १२ से १४ फ़ुट तक होती है। हिपो चरबी और मांस का ऐसा भण्डार होता है कि उसके पेट की परिधि का नाप भी लगभग लम्बाई के बराबर ही होता है। टाँगें छोटी छोटी होने के कारण उसका पेट भूमि से मिला सा दिखाई पड़ता है और उसकी ऊँचाई का ठीक अनुमान नहीं होता। हिपो का बोझ लगभग १०० मन का होता है।

स्थल के प्राणियों में सबसे बड़ा भाड़-सदृश मुँह हिपो ने पाया है। भयानक दाँतों के कारण मुँह खोलने पर उसकी आकृति

अति डरावनी होती है। नीचेवाले जबड़े के कृंतक दंत दंतमांस से निकल के, अन्य जन्तुओं के दाँतों के समान, खड़े हुए नहीं होते वरन् बाहर को झुके होते हैं। नीचे के जबड़े के कीले भीषण होते हैं। ये भी झुके हुए गोल होते हैं। प्रत्येक कीलों का बाहरी नाप ३० इंच तक होता है जिसमें से कोई १० इंच की लम्बाई दंतमांस से बाहर निकली रहती है। सुप्रसिद्ध शिकारी मि० सेलूस बतलाते हैं कि प्रत्येक कीले का बोझ ४ पौंड से ७ पौंड तक होता है। कीलों से हिपो पौधों को, जड़सहित, इस प्रकार उखाड़ लेता है मानो वे कृषक के औज़ारों से उखाड़े गये हों।

हिपो का ऊपरी ओंठ बाहर को लटका होता है और थूथन के ऊपरी भाग में नथुने होते हैं जो जल में प्रवेश करते समय बन्द किये जा सकते हैं। हिपो के कान इतने बड़े शरीर की अपेक्षा बहुत छोटे छोटे होते हैं और दूरस्थ शब्दों को सुनने के लिए वह उनको बड़ी शीघ्रता से आगे पीछे को चलाता रहता है। जल में गोता लेने पर वह कानों को भी इस प्रकार बन्द कर सकता है कि उनमें एक बूँद पानी नहीं जाता। हिपो की आँखें कानों के समीप खिड़कियों के समान ऊपर को उठी रहती हैं। खाल अति मोटी होती है। शरीर के किसी किसी भाग में उसकी मुटाई पूरे दो इंच तक पहुँचती है। केवल खाल का बोझ ५ हन्ड्रेडवेट अर्थात् लगभग ७ मन होता है। दुम ८-९ इंच लम्बी और अति भद्दी होती है। नर का रंग गहरा भूरा और मादा का कुछ पीलापन लिये होता है।

इस "प्राचीन योद्धा" का जैसा शरीर निकृष्ट है वैसी ही उसकी बुद्धि भी दुर्बल होती है। उसके विशाल कपाल में भेजा बहुत छोटा सा होता है। जो कुछ बुद्धि बेचारे को मिली है वह

सब उदरपालन और आत्मरक्षा में ही ख़र्च हो जाती है। किन्तु प्रकृति ने हिपो को इतना बुद्धिहीन नहीं रचा है कि आत्मरक्षा के उपाय न कर सके। अफ़्रीका के आदिमनिवासी हिपो को बहुधा खटकों के द्वारा पकड़ा करते हैं। हिपो बड़ी चतुराई से प्राय: इन खटकों को पहिचान लेता है और उनके पास नहीं जाता। इसी प्रकार यह देखा गया है कि जिन प्रदेशों में बन्दूक़वालों की पहुँच हो जाती है उनको त्याग कर हिपो के दल अन्य स्थानों को चले जाते हैं।

हिपो दक्षिणी और पूर्वी अफ़्रीका में होता है, पृथ्वी पर किसी अन्य देश में यह विशाल जीव नहीं होता। उनके दल नदियों और झीलों के किनारे रहा करते हैं और अधिकांश समय वे जल ही में व्यतीत करते हैं। स्थल पर उनकी चाल ढाल अत्यन्त भद्दी होती है और शरीर की स्थूलता के कारण वे शीघ्र ही थक जाते हैं। किन्तु जल में तो वे बड़े फ़ुर्तीले हो जाते हैं और उनका शरीर ऐसा उतराने लगता है कि वे बड़ी सुविधा और तीव्रता से तैर सकते हैं। कभी कभी देखा जाता है कि दल के सारे हिपो ऊँचे तट से जल में कूदते और क्रीड़ा करते हैं। उनके खुर्राटे और कोलाहल मीलों तक सुनाई पड़ा करते हैं। बहुधा वे रात्रि ही में जल से बाहर निकलते हैं और तनिक सा भी आहट होते तुरन्त जल में कूद जाते हैं।

हिपोपोटेमस का क्रोध अत्यन्त भीषण होता है। विशेषकर यदि रात में हिपो का दल नदी में किसी शत्रु का सामना करने पर उतारू हो जाय तो ईश्वर ही कुशल करते हैं। बड़ी बड़ी नावों पर भी तब उनसे शरण नहीं मिलती। अपने शरीर के एक धक्के ही से हिपो नाव को प्राय: उलट देता है। जैम्बेसी नदी में डाक्टर लिविंगस्टन (Livingstone) को एक बार एक ऐसी ही दुर्घटना का सामना

हुआ था जब कि उनके साथियों की एक नाव हिपो के दल ने उलट दी थी। सर सैम्युअल बेकर (Sir Samuel Baker) बतलाते हैं कि एक बार एक हिपो ने एक नाव में ऐसे ज़ोर का धक्का मारा कि उसकी पेंदी में छेद होगया। उस पर बहुत सी बकरियाँ लदी होने पर भी वह जल से उछल गई और तुरन्त उलट गई और सारी बकरियाँ डूब गईं।

हिपो के भीषण दाँत और बलिष्ठ जबड़ों के सामने निहत्थे मनुष्य का कुछ बस नहीं चलता। अनेक बार ऐसी घटनायें देखी गई हैं कि हिपो ने आदमी को मुँह से पकड़ लिया और अपने प्रबल जबड़ों से एक बार ही दबा के उसके दो टुकड़े कर दिये।

हिपो के दाँतों की हड्डी में एक विशेष गुण होता है कि पुरानी पड़ने पर वह पीली नहीं पड़ती, इसलिए पहले वह मनुष्य के कृत्रिम दाँत बनाने के काम में लाई जाती थी। किन्तु अब उससे अधिक उपयुक्त वस्तुएँ दाँत बनाने के लिए आविष्कृत हो गई हैं।

हिपो की सुदृढ़ खाल बहुत उपयोगी होती है। उससे चाबुक, पहिया घुमाने की पेटियाँ आदि बनाई जाती हैं। एक यात्री बतलाते हैं कि अफ़्रीका के निवासी हिपो के शरीर पर से खाल उतार कर तुरन्त उसमें से लंबी लंबी धज्जियाँ काट लेते हैं। उनको थोड़ा सुखा के हथौड़े से पीटते और गोल करते हैं। तब उनके चाबुक बनाते हैं जो अत्यन्त सुदृढ़ होते हैं।

हिपो की चरबी भी उत्तम होती है क्योंकि उसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। अफ़्रीका के आदिमनिवासी प्रायः उसका मांस भी खाते हैं। एक हिपो में से दो ढाई मन उत्तम स्वच्छ चरबी निकल आती है।

मांस, खाल, चरबी आदि सभी मनुष्योपयोगी होने से हिपो का भी बहुत शिकार किया जाता है। इस अद्भुत जन्तु की भी संख्या घटती जाती है। एक शिकारी बतलाता है कि सन् १८९९ ई० में उसने किलिमांजरो और मीरु पहाड़ों के बीच की झीलों में बहुत हिपो देखे थे। उनकी संख्या १५० से कम न थी। किन्तु सन् १९०३ ई० में इन झीलों में हिपो का कहीं पता भी न रह गया था।

मादा के प्रति बार केवल एक बच्चा होता है, कभी कभी दो। माँ अपने बच्चे से बड़ा प्रेम करती है और जल में प्रवेश करते समय उसको पीठ पर खड़ा कर लेती है और जल्दी जल्दी जल से ऊपर उठती रहती है जिससे कि बच्चे को अधिक देर तक बिना साँस लिये जल में न रहना पड़े।

हिपो का स्वभाव अत्यन्त कलहप्रिय होता है। प्राय: रात्रि में नर एक दूसरे पर डौंकते और लड़ाई करते सुनाई पड़ते हैं। पुराने नरों के शरीरों पर के घावों के चिह्न उनकी झगड़ालू प्रकृति का प्रमाण देते हैं।

पारस्परिक झगड़ों के अतिरिक्त हिपो जंगल के अन्य प्राणियों को किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचाता। मनुष्य के प्रति जो शत्रुता हिपो प्रकट करता है सो स्वयं मनुष्य ही के अत्याचार का फल है। जिन भूभागों में नित्य उनका पीछा और शिकार किया जाता है वहाँ हिपो भी मनुष्य का वैरी होके निष्कारण आक्रमण किया करता है। जर्मन यात्री हरस्क्रिलिंग ने मध्य अफ्रीका की विक्टोरिया न्यानज़ा झील में देखा कि वहाँ की असभ्य जातियों के लोग निर्भयरूप से बाँसों के बेड़ों पर मछली मारते फिरते हैं और उनके आस-पास बीसियों हिपो जल में तैरते रहते हैं और बेड़ों पर आक्रमण नहीं करते।

हिपो की एक छोटी उप-जाति केवल लाईबेरिया प्रदेश में मिलती है। अल्प-संख्यक होने के कारण इसके दर्शन भी दुर्लभ हैं। लाईबेरिया की उप-जाति का शरीर लगभग बड़े घरेलू सुअर के बराबर होता है। यह जन्तु एकान्त-प्रिय होते हैं। नर या तो अकेला या केवल एक मादा के साथ रहा करता है।

हिपोपोटेमस-वंश में केवल एक जाति हिपोपोटेमस ही है, अन्य कोई नहीं।

गैंडा-वंश

(RHINOCEROS)

गैंडे के नाम से हिन्दुस्तान में शायद ही कोई अपरिचित हो क्योंकि इस विशाल जन्तु की दो उपजाति भारतवर्ष में भी मिलती हैं।

प्राचीन काल में पृथ्वी के बहुत से भूभागों में यह जन्तु मिलता था। रूस, फ्रांस, जर्मनी आदि, योरप के ठंढे देशों में उसके अस्थिपञ्जर भूमि में गड़े मिलते हैं। किन्तु अस्तित्व-रक्षा के संघर्ष में अन्य सुगठित जीव-जन्तुओं का सामना यह भारी, भद्दा जन्तु न कर सका। उसकी संख्या क्रमशः घटने लगी। अब अफ्रीका और एशिया के उष्ण भूभागों के अतिरिक्त गैंडा और कहीं नहीं होता। गैंडे की नाक पर का सींग उतना ही विचित्र होता है जितनी कि हाथी की सूँड़। स्तनपोषित समुदाय के अन्य किसी जन्तु की नाक पर सींग नहीं होता। गैंडे के किसी किसी जातिभेद की नाक पर दो सींग भी हुआ करते हैं।

गैंडे के सींग का स्थान जैसा अनोखा है वैसी ही उसकी रचना भी अद्भुत है, क्योंकि अन्य पशुओं के सींगों के समान उसमें हड्डी नहीं होती वरन् नाक पर लम्बे लम्बे और अति मोटे बाल एक

लसदार पदार्थ से चिपक के सींग का रूप धारण कर लेते हैं। उसकी सींग को सूक्ष्म-दर्शन यंत्र (Microscope) से देखने से इस बात का पूरा पता चल जाता है। सींग का नाक की हड्डी से पृथक् होने का एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि नाक की हड्डी और सींग के बीच में अति मोटी खाल होती है। इसी खाल में से वह बाल उगे होते हैं जो चिपक के सींग बन जाते हैं। मरे हुए गैंडे का सिर यदि धूप में सुखा लिया जाय तो उसका सींग तेज़ छुरे से काटा जा सकता है। आश्चर्यजनक बात यह है कि यद्यपि उसमें नाम को भी हड्डी नहीं होती तथापि वह इतना ठोस और दृढ़ होता है। यथोचित पालिश कर दिये जाने पर वह अति चिकना और चमकदार बन जाता है और नाना प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ उसमें से बनाई जाती हैं, जैसे प्याले, तलवार की मूठें इत्यादि।

गैंडे के सींग के प्याले पहले बहुमूल्य समझे जाते थे क्योंकि उनके सम्बन्ध में एक चिरकालीन कहावत प्रसिद्ध थी कि उनमें विष डालते ही तुरन्त उफन के नीचे गिर जाता है। एशियाई मुसलमान बादशाह गैंडे के सींग का प्याला अवश्य साथ रखते थे। मुग़ल बादशाह बाबर ने अपने जीवन-चरित में लिखा है कि उसने भी हिन्दुस्तान में आकर गैंडे के सींग का प्याला बनवाया था।

सींग के बाद हमारा ध्यान गैंडे की खाल की ओर आकृष्ट होता है। भारी, मोटी, दुर्भेद्य खाल की तहें एक पर एक ढालों के समान चढ़ी होती हैं और कई स्थानों पर थैलों के समान ढीली ढीली लटकती होती हैं। गैंडे की खाल को देख के ऐसा प्रतीत होता है कि मानो प्रकृति ने भूल से उसके नाप से बड़ी बना दी हो। खाल शरीर के ऊपरी भाग में और पार्श्व-भाग में पूरी दो इंच मोटी होती है और उसका बोझ लगभग ६-७ मन का होता है। किसी जन्तु की खाल शरीर पर से इतनी सुविधा से नहीं छूट आती

जितनी कि गैंडे की। गैंडे की खाल की ढालें अत्यन्त मज़बूत होती हैं।

मनुष्य को छोड़ के गैंडे के सबसे बड़े शत्रु छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े होते हैं। सहस्रों कीड़े खाल की तहों के बीच में घुसे रहते हैं और खाल को काट के मांस तक घुस जाते हैं। उनके काटने से गैंडा बहुत विकल होता है और उनसे बचने के लिए वह घंटों तक पानी और कीचड़ में केवल नथुने बाहर निकाले डूबा रहता है। कीड़ों को मारने के लिये वह कीचड़ में लोट के सारे शरीर पर उसकी मोटी तह चढ़ा लेता है।

प्रत्येक गैंडे के संग एक प्रकार के छोटे पत्ती लगे रहते हैं। गैंडा भले प्रकार समझता है कि वे उसके सच्चे मित्र और हितैषी हैं। ये पत्ती गैंडे के शरीर पर घंटों बैठे रहते हैं और उसकी खाल के कीड़ों को चुन चुन के खाया करते हैं। गैंडा उनको न उड़ाता है न कोई हानि पहुँचाता है। इसके सिवा पत्ती गैंडे की एक और भी सेवा करते हैं। शिकारी के आने की वे उसको पहले ही से चेतावनी दे देते हैं। पहले यह बात विश्वसनीय नहीं समझी जाती थी। किन्तु अनेक यात्री और शिकारी स्वयं अनुभव से इसका समर्थन करते हैं। सुप्रसिद्ध गार्डन कमिंग (Gordon Cumming) लिखते हैं "गैंडे के निकट किसी ऐसे स्थान पर पहुँचने से पूर्व कि मैं गोली चला सकूँ उन पत्तियों ने जो उसके साथ थे चोंचें गैंडे के कान में डाल कर्कश स्वर कर उसको चौकन्ना कर दिया। गैंडा जागा, तुरन्त उठा, और तेज़ी से भाग के जंगल में घुस गया। फिर उसका कहीं पता न चला।........ये पत्ती गैंडे के सब उपजातियों के संग रहते हैं। गैंडे के शरीर पर मैल के कारण सहस्रों कीड़े-मकोड़े रहते हैं उन्हीं को चुन चुन के ये चिड़ियाँ खाया करती हैं। वे गैंडे की बड़ी हितचिन्तक होती हैं और उसको

गहरी नींद से भी जगा देती हैं। गैंडा भी उनके संकेत-शब्दों को ख़ूब पहिचानता है। वह उठके चारों ओर दृष्टि डालता है और तुरन्त भाग खड़ा होता है।"

गैंडे के बृहत् सिर और नाक की हड्डी अत्यन्त मोटी और दृढ़ होती है। यदि नाक की हड्डी निर्बल होती तो किसी कठोर वस्तु पर सींग मारते ही वह चूर चूर हो जाती।

गैंडे की आँखें छोटी और दृष्टि निर्बल होती है। वह रक्षा के लिए अपनी तीक्ष्ण घ्राणेन्द्रिय पर निर्भर रहता है। विशेषकर उसको मनुष्य की गन्ध बहुत दूर ही से मिल जाती है और गैंडे के शिकारी को बहुत चौकन्ना रहना पड़ता है। उसकी छोटी और मोटी टाँगें तीन भागों में विभक्त होती हैं और प्रत्येक भाग पर एक छोटा गोल खुर होता है। छोटी सी भद्दी दुम पर बाल नहीं होते और उसके शरीर का रंग बहुधा धुमैला काला होता है।

गैंडा शाकभोजी जन्तु है और नाना प्रकार की घास, पत्तियों और जड़ों से उदर-पोषण किया करता है। जड़ें वह अपने सींग से खोद लेता है।

बहुधा यह जन्तु दलदलों और झीलों के निकट वास किया करता है और या तो कीचड़ में लोटता रहता है या घने वृक्षों की छाया में खड़ा सोता रहता है। नरकुलों और ऊँची ऊँची घास में पड़ा रहना उसको प्रिय है। जिस स्थान में वह रहता है वहाँ की जड़ें, झाड़ियाँ आदि उखाड़ के, पैरों से घास को कुचल डालता है और १५-२० फ़ुट का घेरा समतल कर लेता है।

गैंडे का शरीर स्थूल और स्वभाव भी कुछ आलसी होता है किन्तु आवश्यकता के समय वह अद्भुत फ़ुर्ती दिखाता है। जिन लोगों ने उसको रक्षा के लिए भागते देखा है वे बतलाते हैं कि उसको दौड़ते देख के यह अनुभव ही नहीं होता कि उसका शरीर

भारी और बोझल है। मीलों तक ऐसी तेज़ी से वह भाग सकता है कि जंगल की ऊँची-नीची भूमि के कारण घोड़े का सवार भी सहज उसको नहीं पकड़ सकता। उसके तीन खुरवाले पैर पथरीली भूमि पर दौड़ने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होते हैं।

पशुशाला में गैंडे को देख के बोध होता है कि उसको चलना-फिरना भी कठिन होगा। किन्तु पशुशाला के जन्तु अपनी जाति की स्वाभाविक और वास्तविक स्थिति को यथावत् प्रकट नहीं कर सकते। वे अपने कुल को केवल कलंकित ही कर सकते हैं। कटहरों में आजन्म के बन्दी जन्तु, जिनका चलना-फिरना केवल अपने पिँजरे ही तक परिमित रहता है, जिनको अपनी रक्षा के लिए अथवा अपने अभावों की पूर्ति के हेतु कभी हाथ पैर हिलाने तक की आवश्यकता नहीं पड़ी, जिन्होंने स्वाधीन, प्राकृतिक जीवन का आनन्द कभी नहीं उठाया और जिनको निविड़ वनों एवं अगाध झीलों के दर्शन स्वप्न में भी नहीं मिले, ऐसे जीव-जन्तु बेचारे अपनी जाति के सच्चे उदाहरण कैसे हो सकते हैं?

अन्य शाकभोजियों के समान गैंडा भी सीधा और नेक जानवर होता है। मिस्टर सेलूस अपने अनुभव से बतलाते हैं कि केवल चिल्ला देने से या ढेले मार कर आदमी उसको भगा सकता है। मनुष्य पर गैंडा तभी वार करता है जब उसको भाग जाने का मार्ग नहीं मिलता। किन्तु घायल हो जाने पर तो वह क्रोध और भीषणता की साक्षात् मूर्त्ति बन जाता है। फिर वह आगा-पीछा नहीं सोचता वरन् जिधर मुँह उठ जाता है उधर ही आँधी के समान दौड़ पड़ता है। जो कुछ सामने पड़ता जाता है उसी को सींग से मारता और पैरों से कुचलता है। सुप्रसिद्ध शिकारी मिस्टर सी० जे० एंडर्सन (Mr. C. J. Anderson) इस जन्तु के क्रोध के आवेश की एक घटना इस प्रकार सुनाते हैं:—

"अकस्मात् चिल्लाने और गोली चलने के शब्द हमारे कान में पड़े। आँख उठाते ही हमको ज्ञात हुआ कि एक गैंडा भरपूर तेज़ी से दौड़ता हुआ हमारी ओर आ रहा है। हमारी रक्षा केवल गाड़ी ही पर हो सकती थी, अतएव झटपट चढ़ हम उसमें कूद गये। और कुछ करने का अवकाश भी न था क्योंकि ज्यों ही हम लोग गाड़ी में कूदे उस बलवान् पशु ने ऐसे ज़ोर का धक्का मारा कि, यद्यपि गाड़ी गहरे रेत में खड़ी थी, तथापि वह कई पग आगे फिंक गई। भाग्यवश गैंडे ने गाड़ी के पीछे धक्का मारा था। यदि उसने पार्श्व से आक्रमण किया होता तो गाड़ी अवश्य ही उलट गई होती। तत्पश्चात् वह अग्नि की ओर अग्रसर हुआ जिसके समीप ही हमारा एक बर्तन भी रक्खा था। बर्तन को लुढ़का दिया और जलती लकड़ियों को उसने इधर-उधर बिखेर दिया। इसके बाद बिना और कुछ हानि किये वह उन्मत्त-सा भागा चला गया।"

नित्य एक नियमित समय पर गैंडा पानी पीने को एक ही स्थान पर जाया करता है। उसका यह स्वभाव कभी कभी उसके लिए प्राणघातक हो जाता है क्योंकि शिकारी उसी स्थान पर वृक्ष पर छिप के बैठ जाते हैं और उसको सहज ही मार लेते हैं।

मादा के प्रति बार केवल एक बच्चा उत्पन्न होता है और वह दो चार सप्ताह में ही अपनी माँ के संग भागा भागा फिरने लगता है।

गैंडे की खाल और सींग के लिए उसका प्रायः शिकार किया जाता है। अफ़्रीका में 'हब्श' देश के निवासी उसके शिकार में बड़ी वीरता प्रकट करते हैं। घोड़े पर एक मनुष्य सवार हो जाता है और एक दूसरा मनुष्य सर्वाङ्ग नंगा हो, हाथ में केवल एक तलवार लेके, काठी के पीछे बैठ जाता है। गैंडे का पता चलने पर वे उसका पीछा करते हैं। ज्यों ही गैंडा दृष्टिगोचर होता है वे घोड़े को उसके सामने ले जाके खड़ा कर देते हैं। गैंडा क्रोध में भर

उन पर आक्रमण करता है। तुरन्त वे घोड़े को दायें अथवा बायें हटा देते हैं और नंगा शिकारी तुरन्त नीचे कूद जाता है। गैंडा घूम कर फिर घोड़े पर आक्रमण करता है। तब नंगा शिकारी पीछे से उसकी टाँग की मोटी नस तलवार से काट देता है और गैंडा उसी स्थान पर रह जाता है।

सुविख्यात शिकारी मिस्टर सेलूस ने एक बार एक मादा का शिकार किया जिसके संग एक बहुत छोटा सा बच्चा केवल एक दो दिन का था। बच्चा शिकारियों के घोड़ों को माँ समझ कर उनके पीछे हो लिया। उक्त शिकारी लिखते हैं "हमने निश्चय कर लिया कि हम उसको अपनी गाड़ियों पर ले चलेंगे।......छोटा बच्चा हमारे पीछे पीछे कुत्ते के समान चलता आया। सूर्य्यताप से उसको बड़ा कष्ट होता था क्योंकि जब कोई छायादार वृक्ष मिलता था तो वह उसके नीचे ठहर कर पीछे रह जाता था। किन्तु ज्यों ही घोड़ा कोई २० गज़ आगे निकल जाता था तो वह अपनी छोटी सी दुम को मड़ोर कर और चोख़ के दौड़ता और फिर उसके बराबर आ जाता था। अन्त में हम गाड़ियों के पास पहुँचे तो उस छोटे पशु की शान्त प्रकृति में अकस्मात् परिवर्तन होगया। न जाने कुत्तों को देखकर जिन्होंने भूँक भूँक कर चारों ओर से उसको घेर लिया था या गाड़ियों को देख के उसकी यह दशा होगई......वह साक्षात् भूत के समान होगया और बड़े क्रोध से उसने आदमियों, कुत्तों और गाड़ियों तक पर वार करना आरम्भ कर दिया।"*

गैंडे की कई उपजाति पृथ्वी पर मिलती हैं किन्तु पूर्णतया यह निश्चित नहीं किया जा सका है कि उसकी कितनी उपजाति हैं और उनके पारस्परिक भेद क्या हैं। न यही बात अब तक सिद्ध हो

* Hunter's *Wanderings in Africa*, by Mr. F. C. Selous.

सकी है कि किसी उपजाति की एक से अधिक नसलें (Varieties) हैं या नहीं।

जन्तु-शास्त्र के अनेक विद्वानों का मत है कि गैंडे की छः उपजातियाँ हैं जिनमें से तीन अफ्रीका में और तीन एशिया में मिलती हैं, अर्थात्—

(१) हिन्द का बड़ा गैंडा (Rhinoceros Indicus)

(२) हिन्द का छोटा गैंडा (Rh. Javanicus or Sondaicus)

(३) सुमात्रा का गैंडा (Rh. Sumatranus)

(४) अफ्रीका का बड़ा गैंडा (Rh. Simus)

(५) केप का गैंडा (Rh. Africanus)

(६) केटलोआ गैंडा (Rh. Ketloa)

हिन्द का बड़ा गैंडा—यह बृहत्काय जन्तु बहुधा ९-१० फ़ुट लम्बा होता है और उसकी दुम दो फ़ुट की होती है। ऊँचाई ४½ फ़ुट से ५ फ़ुट तक होती है। सींग की लम्बाई दो फ़ुट तक पाई गई है। इस उपजाति के केवल एक ही सींग होता है।

यह उपजाति हिमालय की तराई में नैपाल से भूटान तक पायी जाती है। आसाम में भी बहुत होती है और प्रायः घने जंगलों में दलदलों के समीप वास किया करती है। उसका शिकार हिन्द में बहुधा हाथी पर किया जाता है और डाक्टर जर्डन लिखते हैं कि कभी कभी घायल होकर वह हाथी को ऐसा प्रचण्ड धक्का देता है कि हाथी तुरन्त उलट जाता है।

मुग़ल बादशाह बाबर ने अपने जीवन-वृत्तान्त में गैंडे का एवं हिन्दुस्तान के अन्य पशुओं का मनोहर वृत्तान्त दिया है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय गैंडा और शेर दोनों बनारस के निकट तक

मिला करते थे और हाथी चुनार के समीपवर्ती पहाड़ों के निकट हुआ करते थे। बाबर लिखता है :—

"हमारे देश में जो विश्वास है कि गैंडा हाथी को अपने सींग पर उठा सकता है सो असत्य है। उसकी नाक पर केवल एक सींग, एक बालिश्त से कुछ अधिक लम्बा होता है। किन्तु दो बालिश्त का मैंने कोई सींग नहीं देखा।

"एक बहुत बड़े सींग में से मैंने एक प्याला और पाँसे रखने का एक डब्बा बनवाया है। इन दोनों वस्तुओं के बन जाने पर ३-४ अँगुल सींग और बच रहा है। गैंडे की खाल अति मोटी होती है। यदि एक बड़ी कमान बगल तक खींच के बड़े बल से चलाई जावे तो तीर ३-४ अंगुल उसकी खाल में घुस जाता है। किन्तु लोग कहते हैं कि कोई कोई भाग ऐसे होते हैं जिनमें तीर गहरा भी घुस जाता है। उसके दोनों कन्धों पर और जाँघों के पार्श्व-भाग में खाल ढीली-ढाली लटकी होती है और कपड़े की झोलियों के समान प्रतीत होती है......गैंडा हाथी से अधिक भीषण होता है और पाला नहीं जा सकता। पेशावर और हशुआगढ़ के जंगलों में, तथा सिन्धु और बेरेह के बीच के जंगलों में वह बहुत मिलता है। मैंने हिन्दुस्तान में भी गैंडे मारे। वह सींग बड़े ज़ोर से मारता है। शिकार में गैंडे के सींग से बहुत से घोड़े और बहुत से आदमी घायल हुए। एक बार एक गैंडे ने नवयुवक मक़सूद के घोड़े को उछाल के एक भाले की लम्बाई के अन्तर पर फेंक दिया।"

एक अन्य स्थान पर गैंडे के शिकार का वर्णन करते हुए बाबर ने लिखा है :—

"जब हम लोग कुछ दूर निकल गये तो एक नौकर समाचार लेकर पहुँचा कि विक्रम के निकट एक गैंडा जंगल में घुस गया है और घेर लिया गया है, और हमारी राह देखी जा रही थी। घोड़ों

को शीघ्रता से भगा कर हम वहाँ पहुँचे और उस स्थान को चारों ओर से घेर लिया। ज्यों ही लोगों ने नाद किया त्यों ही गैंडा तुरन्त निकल कर मैदान में आया। हुमायूँ और उनके साथियों ने गैंडा कभी नहीं देखा था अतः वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पशु का एक कोस तक पीछा किया। उसको बहुत तीर मारे और अन्त में उसको मार लिया। गैंडे ने किसी घोड़े अथवा मनुष्य पर उत्साह से वार नहीं किया। मैं प्रायः यह सोचा करता हूँ कि यदि हाथी और गैंडे का सामना कराया जाय तो दोनों के व्यवहार कैसे होंगे। इस अवसर पर महावत हाथियों को ले आये थे और एक हाथी गैंडे के ठीक सामने भी पड़ गया, किन्तु ज्यों ही महावत हाथी को गैंडे की ओर बढ़ाता था त्यों ही गैंडा दूसरी ओर को भागता था।" *

गैंडे और हाथी का उल्लेख करते हुए हिन्द की पुरानी कहावत याद आती है कि एक गैंडे के सामने ४० हाथी भी डर से कान नहीं हिलाते। इसमें बहुत कुछ सत्यता है क्योंकि हाथी गैंडे से डरता है। हाथी स्वभावतः ही कुछ भीरु जन्तु होता है और छोटे छोटे अपरिचित जन्तुओं से भी डर जाता है।

एक शिकारी मेजर लेविसन को गैंडों और हाथियों के युद्ध का अपूर्व दृश्य एक बार अफ़्रीका में देखने का सुयोग हुआ था। उसका वृत्तान्त उन्होंने इस प्रकार दिया है :—

"हाथियों के दल में से केवल दो हाथी बचे थे जिनको हमने नहीं मार पाया था। जभी ये हाथी भागे तो दो गैंडों ने उन पर आक्रमण किया। गैंडे केटलोआ जाति के थे जो अफ़्रीका के जन्तुओं में सबसे भीषण और प्रतिहिंसक जीव

* Memoirs of Emperor Babar.

होते हैं। हम लोगों ने अपनी बन्दूकें फिर भर लीं, और यह निश्चित करके कि दोनों ही पक्ष के योद्धाओं को मार लेंगे, हम युद्धस्थल की ओर अग्रसर हुए। किन्तु रण-क्षेत्र एक बड़ा दलदल था जिसमें ऊँचे ऊँचे नरकुल जमे हुए थे। जब हाथी आक्रमण करते थे या अपने क्रोधित प्रतिद्वंद्वियों के वार से बचने को मुड़ कर भागते थे तो हमको केवल उनकी पीठ दिखाई पड़ती थी। हम लोगों ने अब निश्चय कर लिया कि हम उस लड़ाई में हस्तक्षेप न करेंगे वरन् युद्ध का तमाशा देखेंगे। सब प्रकार हमको यही जान पड़ता था कि हाथियों की हार हो रही है, क्योंकि उनके कण्ठ से बड़े करुणास्वर निकल रहे थे और उनके प्रतिद्वन्द्वी बड़ी भीषणता से गुर्रा कर उन्हें धमका रहे थे। अन्त में हाथी बिलकुल परास्त होकर भाग पड़े और जल में घुस गये। मैंने दूरबीन से देखा तो हाथी जल्दी जल्दी तैर के भागे जा रहे थे। गैंडों को पूरी विजय हुई थी और वे समर-भूमि ही में डटे रहे।

हिन्द का छोटा गैंडा—यह उपजाति बंगाल-प्रान्त में सुन्दरबन में मिलती है। महानदी के किनारे से उत्तर में मेदनीपुर तक भी कहीं कहीं इस उपजाति के जन्तु मिलते हैं। ब्रह्मा, मलय प्रायद्वीप, जावा और बोर्नियो के द्वीपों में भी यह उपजाति होती है। ये गैंडे छोटे होते हैं, उनके शरीर की लंबाई ७-८ फुट और उँचाई ३½ फुट होती है। उनकी खाल पर उतने झोल नहीं होते जितने कि हिन्द के बड़े गैंडे की खाल पर होते हैं। इनकी नाक पर भी केवल एक सींग होता है।

सुमात्रा का गैंडा—यह उपजाति मलय प्रायद्वीप में और बोर्नियो के टापू में मिलती है। एशिया में एक यही उपजाति है जिसकी नाक पर दो सींग होता है। क़द में यह जन्तु भी छोटा होता है। उसकी ऊँचाई ४ फुट से अधिक नहीं होती।

इसका अगला सींग प्राय: बहुत लंबा और सुन्दर होता है और नाप में पिछले से बहुत बड़ा होता है। लंदन के अजायबघर में इस जन्तु का एक सींग है जो ३२ इंच लंबा है। चीन के निवासी इस जन्तु के बड़े बड़े सींग सब मोल ले लेते हैं और कोई अच्छा सींग चीन से शायद ही बाहर जाने पाता होगा। ब्रह्मा में इस गैंडे को "अग्निभुज" का नाम दिया जाता है। ये जन्तु प्राय: रात्रि में मनुष्य का कण्ठस्वर अथवा अन्य शब्द सुन कर भागते नहीं वरन् यात्रियों के कैम्प पर आक्रमण करते हैं। जलती हुई लकड़ियों को वे बिखेर देते हैं और अन्य प्रकार भी हानि पहुँचाते हैं।*

अफ्रीका के गैंडे—अफ्रीका की तीन उपजातियों की नाक पर दो सींग आगे पीछे होते हैं, और उनकी खाल में हिन्द के बड़े गैंडे के समान झोलियाँ नहीं होतीं वरन् उनकी खाल पर चिकनापन होता है।

केप का गैंडा और केटलोआ दोनों काले रंग के होते हैं। केप का गैंडा ५ फुट से अधिक ऊँचा नहीं होता। केटलोआ इनसे कुछ अधिक ऊँचाई के होते हैं। ६ फुट की ऊँचाई के केटलोआ प्राय: देखे जाते हैं।

केटलोआ का अगला सींग २½ फुट तक का देखा गया है। एक असाधारण बात यह है कि केटलोआ की मादा का सींग नर से लम्बा होता है किन्तु नर के सींग की अपेक्षा पतला होता है। केटलोआ नर अपने सींगों को प्राय: चट्टानों अथवा वृक्षों से रगड़ा करते हैं जिसके कारण वे घिस के छोटे हो जाते हैं।

केप के गैंडे का अगला सींग केटलोआ के सींग से बहुत छोटा होता है। दो फुट से अधिक लम्बाई का शायद ही कोई होता हो।

---

* Mason's *Burmah*.

मिस्टर रोलैण्ड वार्ड (Mr. Rowland Ward) लिखते हैं कि इस उपजाति का सबसे बड़ा सींग जो आज तक मिला है ५३½ इंच लंबा है।

अफ्रीका के दोनों काले गैंडों की प्रकृति, विशेषकर केटलोआ की, अत्यन्त भीषण होती है। ऊँची ऊँची घास में से अकस्मात् निकल कर वे मनुष्य अथवा अन्य जन्तुओं पर निष्कारण ही वार करते हैं। केटलोआ का क्रोधावेश अति भयंकर होता है। प्राय: अनायास ही वह क्रोध में भर ख़ून-ख़राबा करने पर उद्यत हो जाता है। गार्डन कमिंग (Gordon Cumming) बतलाते हैं कि वह गज़ों तक भूमि को सींगों से इस प्रकार खोद डालता है मानो हल चलाया गया हो। अपनी स्वाभाविक भीषणता के कारण झाड़ियों से ही भिड़ पड़ता है। यह क्रोधावेश शीघ्र समाप्त भी नहीं होता वरन् केटलोआ घंटों तक झाड़ियों से युद्ध करता रहता है और जब तक उसकी एक एक टहनी तोड़ कर गिरा नहीं लेता वह शान्त नहीं होता। भीषणता की मूर्त्ति बन कर वह भयानक ख़र्राटे भी लेता और डौंकता है।

अफ्रीका का बड़ा सफ़ेद गैंडा—सब गैंडों का यह ज्येष्ठ भ्राता है। कतिपय जन्तु-शास्त्र-वेत्ता कहते हैं कि यह हिपो से भी बड़ा और भारी होता है और हाथी के अतिरिक्त स्थल का सबसे भारी प्राणी है।

सफ़ेद गैंडे की ऊँचाई कन्धों तक लगभग ६ फ़ुट ८ इंच की होती है। उसका अगला सींग ४ या ५ फ़ुट लम्बा होता है, किन्तु पिछला बहुत छोटा सा होता है।

सफ़ेद गैंडे का रंग स्लेट के समान होता है। मिस्टर चैपमैन (Mr. Chapman) ने एक सफ़ेद गैंडे के बोझ का अनुमान किया था कि वह ६२ मन से कम का नहीं था। उसका सिर इतना बड़ा होता है कि इतना बड़ा शरीर होते हुए भी वह बेडौल प्रतीत होता

है। वह अपना सिर इतना नीचा रखता है कि ठोड़ी भूमि से रगड़ खाती है। यह जन्तु सीधा और शान्त स्वभाव का होता है और बहुधा किसी पर आक्रमण नहीं करता। फिर भी पशु पशु ही है। एक बार एक सफ़ेद गैंडे ने एक शिकारी पर ऐसा भयानक आक्रमण किया था कि उसका सींग शिकारी की जाँघ और काठी को फाड़ता हुआ घोड़े के पेट के पार निकल गया।

टेपिर

(TAPIR)

Tapirus

मोटी खालवाली श्रेणी पृथ्वी के विचित्र जन्तुओं का समूह है। हाथी, हिपो, गैंडा सभी की शारीरिक रचना विचित्र है किन्तु टेपिर उन सबसे अनोखा है। सृष्टि के सारे जीव-जन्तु परिवर्तन-शील हैं, उत्तरोत्तर विकास के द्वारा उनका शारीरिक गठन बदलता जा रहा है। किन्तु हमारा टेपिर पक्का लकीर का फ़कीर है। वह अपनी चाल-ढाल, रूप-रंग में रत्ती भर परिवर्तन नहीं होने देता। भूगर्भ के मायोसीन (Miocene) युग की तह में टेपिर के प्रस्तरविकल्प (Fossil remains) मिलते हैं। विज्ञानवेत्ताओं का मत है कि इस युग को २०,००,००० (बीस लाख) वर्ष हो चुके। जन्तु-जगत् में इस दीर्घकाल में कैसे कैसे परिवर्तन हो गये! मायोसीन युग में घोड़ा भेड़ के बराबर होता था और उसके पैरों में तीन तीन खुर हुआ करते थे। वही घोड़ा आज किस अवस्था को पहुँच गया है। किन्तु टेपिर जैसा मायोसीन युग में होता था ठीक वैसा ही आज भी है। उस सुदूर काल से आज तक टेपिर की रचना में नाममात्र को भी परिवर्तन नहीं हुआ है और इस विचार से टेपिर इस पृथ्वी का सबसे पुराना निवासी है।

अफ्रीक़ा का गंडा (Rh. Simu)
पृष्ठ १५३

टपिर (Malayan Tapir)
पृष्ठ १५४

हाइरेक्स (Hyrax)
पृष्ठ १५६

घोड़ा (Equus Callabus)
पृष्ठ १५७

ज़ेबरा (Zebra) पृष्ठ १७०

गधा (Equus Asinus)
पृष्ठ १७४

इस अपरिचित जन्तु की ३ या ४ उपजातियाँ दक्षिणी अमेरिका में मिलती हैं। दक्षिणी अमेरिका के अतिरिक्त इसकी केवल एक उपजाति मलय प्रायद्वीप में होती है।

दक्षिणी अमेरिका की उपजातियों में सबसे प्रसिद्ध ब्रेज़ील का टेपिर (Tapirus Americanus) है। उसकी लम्बाई ५ फ़ुट होती है। शरीर पुष्ट, गर्दन मोटी, टाँगें छोटी छोटी, रंग धुमैला काला होता है। उसका ऊपरी ओंठ छोटी सी सूँड़ के समान आगे को निकला होता है। यद्यपि इसके अन्त पर हाथी की सूँड़ के समान वस्तुओं को पकड़ने के लिए कोई विशेष पुट्ठे नहीं होते तथापि उसमें कुछ शक्ति वस्तुओं को पकड़ने की अवश्य होती है। नर की गर्दन पर कुछ मोटे खड़े बाल होते हैं। अगले पैर चार चार और पिछले तीन तीन खुरदार भागों में विभक्त होते हैं। दुम छोटी सी होती है और उसके कारण शरीर अति भद्दा लगता है। देखने में सुअर, हाथी, गैंडा, हिपो सभी उसके भाई-बन्धु प्रतीत होते हैं।

टेपिर शाकभोजी है और उसकी प्रकृति अहिंसक एवं भीरु होती है। भयभीत हो जाने पर वह आँधी के समान वृक्षों और झाड़ियों से टकराता हुआ जंगल को भागता है। वह दिन में वन के किसी घने भाग में जल के किनारे रहता है। वह जल का प्रेमी है और प्रायः ग़ोता लगाया और तैरा करता है।

जन्तु-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि यदि टेपिर पालित करके घरेलू जन्तुओं के समान रक्खा जाय तो वह बोझ लादने के काम में भी आ सकता है और उसका मांस भी मनुष्योपयोगी होगा।

मलय की उपजाति (Tapirus Indicus) बहुत बड़ी होती है। इसका शरीर लगभग ८ फ़ुट लंबा और ऊँचाई ३-३½ फ़ुट की होती

है। उसका रंग भी विचित्र होता है। पीठ और शरीर के पार्श्व भाग भूरे होते हैं और टाँगें, गर्दन, मुँह सब धुमैले काले रंग के होते हैं और उसको देख के ऐसा ज्ञात होता है जैसे कि पीठ पर काठी कसी हो।

हाइरेक्स

(HYRAX)

हाइरेक्स एक छोटा सा ख़रगोश के समान जीव है। मोटी खाल की श्रेणी में सभी जीव दीर्घकाय हैं, छोटे क़द का केवल हाइरेक्स ही उसमें सम्मिलित है। अद्‌भुत बात यह है कि छोटा सा हाइरेक्स गैंडे और हिपो का भाई-बन्द है। उसके दाँतों की, खोपड़ी की और पैरों की रचना बिलकुल गैंडे के समान होती है। जन्तु-शास्त्र-वित् बैरन कुवे (Baron Cuvier) कहते हैं कि सींग को छोड़ के बाह्यरूप में हाइरेक्स एक छोटा सा गैंडा ही होता है।

हाइरेक्स सीरिया में तथा अफ़्रीका में होता है। उसका शरीर घने भूरे बालों से ढका होता है और वह पत्थरों और चट्टानों के नीचे छिपा रहा करता है।

घोड़ा-वंश

(THE EQUIDŒ)

घोड़ा-वंश में केवल एक ही जाति मानी जाती है, जिसकी तीन उपजातियाँ पृथ्वी पर मिलती हैं, अर्थात्—

(१) घोड़ा (Equus)

(२) गधा (Asinus)

(३) ज़ेबरा (Hippotigris)

प्रत्येक उपजाति की कई कई नसलें मिलती हैं। इस वंश के जन्तुओं की दंत-रचना निम्न-लिखित है :—

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, डाढ़े $\frac{६-६}{६-६}$

इनके खुर अविभक्त होते हैं। कीले केवल नरों के होते हैं। दुम पर बहुत लम्बे बाल होते हैं। कान कुछ बड़े और नुकीले होते हैं और गर्दन पर बड़े बड़े बाल होते हैं जिसको अयाल कहते हैं।

घोड़ा

(EQUUS CALLABUS)

सभ्यता के आरंभ से घोड़ा मानवजाति का सहायक और सेवक रहा है। यदि पशुसंसार के सारे जीव पृथ्वी पर से आज लुप्त हो जायँ तो, गाय को छोड़ कर, कदाचित् किसी जन्तु की अनुपस्थिति से मनुष्य को इतना दुःख और कष्ट न होगा जितना कि घोड़े की अनुपस्थिति से। सैनिक, कृषक, वणिक्, यात्री, धनी और निर्धन सभी उसके उपकृत हैं। इतिहासों में समझदार घोड़ों के उल्लेख मिलते हैं, कवियों ने उनके गुण गाये हैं। वीर एकिलीज़ के घोड़े ज़ैन्थस को कवि-कुलगुरु होमर ने अमर कर दिया है। सिकन्दर का घोड़ा, ब्यूसिफ़ेलस, इतिहास में प्रसिद्ध है। नेपोलियन के घोड़े मेरेंगो के सुम और अस्थिपञ्जर लंदन के अजायबघर में रक्खे हुए हैं।

बिजली और भाप से चलनेवाली अनेक शीघ्रगामी सवारियाँ मनुष्य-द्वारा आविष्कृत होती जाती हैं किन्तु घोड़े का स्थान कोई भी न ले सकी। शिकार, दौड़ और खेलों में आनन्ददायक कौन हो सकती है? स्वामी का आदेश, मनोरथ और चित्तवृत्ति को इशारे से समझ लेनेवाली कौन सी कल है? समरभूमि में युद्ध-नाद से स्फुरित और उत्साहित हो कर्मक्षेत्र में अग्रसर होनेवाला कौन सा यंत्र बन सका है?

सुप्रसिद्ध अध्यापक हक्सले का कथन है कि घोड़ा कई दृष्टि से अभूतपूर्व जन्तु है। सबसे मुख्य बात यह है कि सजीव जगत् की शरीररूपी कलों में घोड़े के शरीर की कल सर्वोत्कृष्ट है। जितने

चलनेवाले यंत्र मानव-जाति ने अपनी बुद्धि से बनाये हैं उनमें से कोई भी इस कार्य्य के लिए घोड़े के समान पूर्णतया उपयुक्त नहीं बन सका है।

पशुसंसार में जितने दीर्घकाय जन्तु हैं उनमें घोड़ा ही एक ऐसा जीव है जिसे प्रकृति ने डील-डौल के साथ सौंदर्य्य भी मुक्तहस्त से दिया है। उसका अंग-प्रत्यंग सुन्दर, सुगठित और सुडौल रचा गया है। उसके किसी अंग में दोष नहीं, कोई बेजोड़ नहीं, कोई बेमेल नहीं, वरन् सब एक दूसरे की शोभा को बढ़ाते हैं। गधे के कान बेजोड़ जँचते हैं। बैल की टाँगें उसके शरीर को देखते छोटी होती हैं, ऊँट की गरदन बहुत लम्बी होती है, जिराफ़ की ऊँचाई बेठिकाने होती है। हिपो और गैंडे का तो कुछ कहना ही नहीं। किन्तु घोड़े के शानदार शरीर में ऐसा कोई दोष नहीं है।

घोड़ा कब से पाला जाता है और सबसे पहले किस देश को उसके पालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था इसका निर्णय तो असंभव सा है। प्राचीन ग्रन्थों से, और अन्य प्रमाणों से ज्ञात होता है कि इतिहास के निश्चित और अनिश्चित सभी कालों में घोड़ा एक घरेलू पालतू जन्तु था। प्राचीन आर्य्य जातियाँ जब मध्य एशिया में उन्नति कर रही थीं और जब उनकी शाखायें भारतवर्ष और योरप की दिशा में फैली भी न थीं, तब भी वे घोड़े से अनभिज्ञ न थीं क्योंकि अनेक देशों की भाषाओं में घोड़े के लिए जो शब्द हैं वे मिलते-जुलते हैं। संस्कृत का 'अश्व', फ़ारसी का "अस्प" और जर्मन भाषा का 'अस्वीनान' स्पष्टतः सब एक ही शब्द से निकले हैं।

जंगली दशा में घोड़ा अब पृथ्वी के किसी भाग में नहीं मिलता। ऐसा जान पड़ता है कि मनुष्य ने इस जन्तु की उपयोगिता देखकर एक को भी स्वतंत्र नहीं छोड़ा। एशिया और दक्षिणी अमेरिका के कुछ भूखंडों में जो घोड़े जंगल में स्वाधीन जीवन

व्यतीत करते पाये जाते हैं उनके विषय में प्राणिशास्त्रज्ञों की राय है कि वे वस्तुत: जंगली नहीं थे वरन उन पालतू घोड़ों की सन्तान हैं जो किसी समय में न जाने किस दुर्घटना के कारण स्वामिहीन हो स्वतंत्र जीवन बिताने लगे होंगे।

दक्षिणी अमेरिका में जंगल में वास करनेवाले घोड़ों के बहुत झुण्ड हैं। अधिकतर तो वे छोटे छोटे दलों में रहते हैं जिनमें केवल एक नर और कई कई मादाएँ होती हैं। परन्तु किसी किसी दल में पूरे १,००० तक देखे गये हैं। प्रत्येक दल एक निर्दिष्ट स्थान में रहा करता है। न अपना स्थान छोड़ कर कहीं जाता है, न किसी दूसरे दल को अपनी सीमा के भीतर आने देता है। प्रत्येक दल का एक नेता होता है और उसी की देख-रेख में दल रहा करता है। ऋतु के परिवर्तन के संग जब इनके दल देश के एक भाग से दूसरे को चलते हैं तो देखने में बड़े सुहावने लगते हैं। लंबी लंबी पंक्ति बनाकर सब घोड़े एक के पीछे एक चलते हैं, सब नपे तुले पग बढ़ाते हैं और टापें संग संग उठाते और धरते हैं। उनकी टापों का शब्द सुनकर ऐसा जान पड़ता है मानो अश्वारोही पलटन चली जा रही हो।

जंगल के ये घोड़े पालतू तो हो जाते हैं किन्तु बड़ी कठिनाई से। उनके पकड़ने के लिए भी वही साधन काम में लाया जाता है जिससे हाथी को पकड़ते हैं। लट्ठों का एक बाड़ा बना के दल को हाँका कर उसके भीतर घुसा देते हैं। तत्पश्चात् फन्दा डालकर एक एक घोड़े को निकालते हैं और कोई प्रवीण सवार उछल के उसकी पीठ पर चढ़ जाता है। घोड़ा पहले तो उछल कूद के बड़ा उपद्रव मचाता है किन्तु सवार को गिरा देने में सफल न हो वह बेतहाशा भाग पड़ता है। भागते भागते त्रस्त हो के घोड़े की प्रचण्डता कम होने लगती है। अन्त में पीठ के सवार से छुटकारा

पाने में निष्फल प्रयत्न हो वह स्वतंत्रता की आशा छोड़ देता है। कुछ ही समय में सवार उसको लौटा लाता है और वह पालतू घोड़े के समान शान्त हो जाता है।

जंगल के घोड़ों की प्रकृति संसर्गशील और सहवास-प्रिय होती है। एक दूसरे से सहानुभूति रखते हैं। विपद् के समय दल के नर घेरा बनाकर खड़े हो जाते हैं और मादाओं और बच्चों को बीच में कर लेते हैं। छोटे छोटे शत्रुओं से तो वे किञ्चित् नहीं डरते। भेड़िये पर बेधड़क दौड़ पड़ते हैं और टापों से कुचल डालते हैं।

एक जन्तु-शास्त्र-वित् बतलाते हैं कि जंगली झुण्ड को यदि कोई पालतू घोड़ा दिखाई पड़ जाता है तो वे उसको बड़ी करुणादृष्टि से देखते हैं। यदि गाड़ी में जुता कोई घोड़ा उनको दिखाई पड़ जाता है तो वे गाड़ी को घेर लेते हैं और ख़ूब हिनहिनाते हैं, मानो अपने बन्दी भाई को स्वाधीनता लाभ करने को उत्साहित और निमंत्रित कर रहे हों। यदि उन पर चाबुक चलाया जाता है तो वे भयंकर हो जाते हैं। गाड़ी पर टापों की वर्षा करते हैं और साज़ को दाँतों से काट डालते हैं।*

घोड़े के शरीर की रचना में सबसे अनोखो बात क्या होती है? सारे स्तनपोषित समुदाय में केवल घोड़ा जाति के ही जन्तु हैं जिनके खुर बीच से विभक्त नहीं होते। इस सम्प्रदाय के अन्य सभी प्राणियों के हाथ पैरों के अन्त में या तो पञ्जे होते हैं और उंगलियों पर नख होते हैं या वे मोटे मोटे भागों में विभक्त होते हैं जिन पर खुर होते हैं। घोड़ा जाति के जन्तुओं के सुम ठोस और अविभक्त होते हैं।

---

* "The Industries of Animals," by Frederick Houssay.

किन्तु घोड़े के भी पूर्वजों के पैर किसी युग में विभाजित हुआ करते थे। तब घोड़ा लोमड़ी के बराबर होता था। घोड़े ने विकास के द्वारा क्रम क्रम से कैसे उन्नति की, उसकी रचना में परिवर्तन होते हुए वह अपने प्राक्तन रूप से वर्तमान रूप में कैसे परिणत हुआ, इसकी कहानी अत्यन्त रोचक है। विज्ञान ने शायद ही ऐसे किसी जन्तु के पूर्वजों का पता ऐसे निश्चितरूप से लगाया हो। घोड़े की भिन्न भिन्न अवस्थाओं के प्रस्तर-विकल्प (Fossils) मिल चुके हैं और उन्हीं के आधार पर उसके विकास का क्रम निर्णय किया गया है।

घोड़े के प्राथमिक पूर्वजों का क़द लोमड़ी के बराबर होता था। अगले पैर चार भाग में विभक्त होते थे और प्रत्येक भाग पर खुर होता था। पाँचवें खुर का भी थोड़ा सा चिह्न अवशिष्ट था। पिछले पैरों में केवल तीन खुर होते थे। विज्ञान में इनको "योहिपस" (Eohippus) का नाम दिया गया है। योहिपस के प्रस्तर-विकल्प योसीन (Eocene) चट्टानों की सबसे नीची तह में अमेरिका में मिले हैं। भूगर्भशास्त्र के अनुसार हिसाब लगाने से ज्ञात होता है कि योहिपस के प्रादुर्भाव को चालीस लाख वर्ष से अधिक हो चुके।

योसीन चट्टानों की ऊपरी तहों में घोड़े के जो प्रस्तर-विकल्प मिले हैं उनको ओरोहिपस (Orohippus) का नाम दिया गया है। ये भी क़द में लोमड़ी के बराबर थे किन्तु पाँचवें खुर का जो चिह्न योहिपस में मौजूद था उसका अब कोई पता नहीं रह गया था। पिछले पैरों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

योसीन तहों के ऊपर भूगर्भ में मायोसीन (Miocene) तहें हैं जिनको दबे हुए, भूगर्भशास्त्रानुसार, लगभग २० लाख वर्ष हो चुके हैं। मायोसीन चट्टानों में घोड़ों के जो प्रस्तर-विकल्प मिले हैं उनका

क़द भेड़ के बराबर होता था। इनको मेसोहिपस (Mesohippus) का नाम दिया गया है। मेसोहिपस ने इस बीस लाख वर्ष की अवधि में क़द में तो उन्नति कर ही ली थी, इसके अतिरिक्त उनके पैरों में भी परिवर्तन हो गया था क्योंकि उनके अगले पैरों में केवल तीन खुर रह गये थे। चौथे खुर की जगह केवल एक हड्डी लटकी रह गई थी जो भूमि तक भी नहीं पहुँचती थी। पिछले पैरों में उस समय भी पूर्ववत् तीन भाग थे।

भूगर्भ में मायोसीन के ऊपर प्लायोसीन (Pliocene) चट्टानों की तहें हैं। प्लायोसीन चट्टानों की नीची तहों में जो घोड़ों के प्रस्तर-विकल्प मिलते हैं उनसे ज्ञात होता है कि अब घोड़ा क्रमशः उन्नति करता हुआ क़द में गधे के बराबर होने लगा था। इनको प्रोटोहिपस (Protohippus) का नाम दिया गया है। प्रोटोहिपस के अगले पैरों में केवल बीच का भाग बड़ा और पुष्ट रह गया था, और इसी भाग पर सारे शरीर का बोझ पड़ता था। शेष दो भाग छोटे पड़ गये थे और भूमि तक पहुँचते भी न थे। पिछले पैरों के खुरों की भी यही दशा थी।

प्लायोसीन की ऊपरी तहों में जिस प्रकार के घोड़ों का परिचय मिलता है वह टट्टू के बराबर था। इनको प्लायो-हिपस (Pliohippus) का नाम दिया गया है। प्लायोहिपस वर्तमान काल से लगभग दस लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर होता था। प्लायोहिपस का बीचवाला खुर बहुत बड़ा हो गया था और छोटे खुर विलीन हो चुके थे।

अंतिम दस लाख वर्षों में प्लायोहिपस का क़द बढ़ कर हमारे समकालीन घोड़े का सा होगया है और उसका बीचवाला खुर भी अत्यन्त पुष्ट और ठोस होकर सुम बन गया है।

घोड़ा शाकभोजी जीव है। अपने ओंठों से घास-पत्ती को पकड़ कर वह बड़ी सफ़ाई से मुँह में पहुँचाता है। उसके ओंठों में पकड़ने की शक्ति भी है और वही उसकी स्पर्शेन्द्रिय भी है। घास को काट लेने के लिए उसके कृंतक दंत बड़े बड़े और तीक्ष्ण धार के होते हैं। मांसाहारी न होने के कारण घोड़े के मुँह में कीले बहुत छोटे होते हैं। उसकी बड़ी चपटी डाढ़ों के किनारों पर एवं बीच में तीक्ष्ण धारों के कई घेरे उठे होते हैं।

दाँतों की संख्या के द्वारा घोड़े की आयु बड़ी सुगमता से जानी जा सकती है। दाँतों की पहचान महत्त्व-पूर्ण है क्योंकि घोड़े का मूल्य उसकी आयु पर निर्भर है। जन्म से एक वर्ष के भीतर उसके दूधदाँत निकल आते हैं और उनकी संख्या निम्न-लिखित होती है—

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}=२४$

इन दूधदाँतों के निकलने का क्रम यह होता है कि—

(१) जन्म से लगभग ५ दिन के उपरान्त दो दो डाढ़ें जबड़ों के प्रत्येक ओर निकल आती हैं।

(२) दस दिन के भीतर बीचवाले दो कृंतक दंत निकल आते हैं।

(३) लगभग एक मास समाप्त होते होते एक एक तीसरी डाढ़ भी फूट आती है।

(४) लगभग चार मास के उपरान्त इधर-उधर के दो कृंतक दंत और निकल आते हैं।

(५) आठ मास की आयु होते होते कोनेवाले कृंतक दाँत भी निकल आते हैं।

इनके निकल आने पर दूधदाँतों की संख्या पूरी हो जाती है।

पहला वर्ष समाप्त हो जाने के उपरान्त ये दूधदाँत गिर चलते हैं और उनके स्थान पर पक्के दाँत निकलना आरंभ हो जाते हैं।

पहला वर्ष समाप्त होने के कुछ ही दिन के पश्चात् एक डाढ़ निकल आती है। दूसरा वर्ष समाप्त होने से पूर्व एक डाढ़ और निकल आती है। लगभग २½ वर्ष में पहली दूधडाढ़ निकलती है। २½ वर्ष और तीन वर्ष के बीच में पहला कुंतक दंत निकलता है। तीन वर्ष की अवस्था में दूसरी और तीसरी दूधडाढ़ें और एक डाढ़ और बाहर आ जाती हैं। ३½ वर्ष के उपरान्त और चार वर्ष से पहले एक कुंतक दंत और निकल आता है। चार और ४½ वर्ष के बीच में कीले निकलते हैं। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में तीसरा कुंतक दंत भी निकल आता है और पक्के दाँतों की संख्या पूर्ण हो जाती है।

इस प्रकार घोड़े की अवस्था पाँच वर्ष तक उसके दाँतों की संख्या के द्वारा जानी जा सकती। तत्पश्चात् ६-१० वर्ष तक दाँतों के घिसने पर विचार करने से आयु का पता चल जाता है।

पृथ्वी पर घोड़े की बहुत सी नसलें हैं और बहुत सी नसलें मनुष्य ने उत्पन्न कर ली हैं।

सब नसलों में उत्कृष्ट अरब का घोड़ा है। गुणों में और बाह्यरूप में उससे तुलना करनेवाली कोई नसल नहीं है। किन्तु इस सर्वगुणसम्पन्न नसल का कोई अच्छा घोड़ा मोल मिलना दुर्लभ है क्योंकि अरब का निवासी अपने घोड़े को ऐसा रत्न समझता है कि कितने ही दामों पर उसको बेचने को तैयार नहीं होता।

चिर काल से किसी देश में जनता को घुड़दौड़ से ऐसा प्रेम नहीं रहा है जैसा कि इँगलेंड में। मुख्य मुख्य घुड़दौड़ों में प्रतिवर्ष बड़े बड़े मेले जुड़ते हैं और श्रीमान् सम्राट् से लेकर छोटे-बड़े सभी

उनमें भाग लेते हैं। महीनों पहले से समाचार-पत्र दौड़नेवाले घोड़ों के गुण-दोष बखानने लगते हैं। सवार होनेवाले जाकियों के हाल छपने लगते हैं। बाज़ियाँ लगती हैं। धन लुटता है। दौड़ होते ही लाखों रुपये की हार-जीत हो जाती है। कोई जीवन भर के लिए धनवान् और कोई सदा के लिए दरिद्र हो जाते हैं। बहुत सी राष्ट्रीय घटनायें भी जिनसे देशों और जातियों का भाग्य परिवर्तन हो जाता है घुड़दौड़ के समाचारों के सामने फीकी पड़ जाती हैं।

इँगलेंड में घुड़दौड़ के लिए घोड़ों की उत्पत्ति कराने में और उनके पालन-पोषण एवं शिक्षा पर बड़ा धन व्यय किया जाता है क्योंकि उनके द्वारा धन, मान, गौरव सभी प्राप्त होने की आशा होती है। इसिनग्लास (Isinglass) नामक घोड़े ने तीन वर्ष में ५७,१८५ पौंड जीते थे। यदि पौंड १५ रुपये का माना जाय तो यह धन ८,५७,७७५) रुपये के बराबर हुआ। डोनोवन (Donovan) नाम के एक घोड़े के द्वारा उसके स्वामी को कुल ५८,६३५ पौंड अर्थात् ८,८४,०२५) रुपये प्राप्त हुए। वेस्टमिनस्टर के ड्यूक के "फ़्लाइंग फ़ाक्स" (Flying Fox) नामक घोड़े ने केवल दो वर्ष में ६,०१,३५०) रुपये जीते थे।

किसी बड़ी घुड़दौड़ में जीत जानेवाले घोड़े का मूल्य इतना बढ़ जाता है कि स्वप्न की बात-सी जान पड़ती है। सन् १९२६-२७ की डर्बी रेस का जीता हुआ घोड़ा, जिसका "कालवाय" नाम है पूरे ९,००,०००) रुपये में हाल ही में बिका है।

बड़ी बड़ी घुड़दौड़ों में जाते हुए घोड़ों और घोड़ियों से प्रायः सन्तानोत्पादन का काम भी लिया जाता है क्योंकि यह सर्वमान्य है कि वंशानुक्रम से इन पूर्वजों के गुण संतान में संक्रमित हो जाते हैं। 'ला फ़्लीशी' नाम की घोड़ी जब वह वृद्धा हो जाने

पर घुड़दौड़ के काम की न रह गई तो १,३२,३००) रुपये में संतानोत्पादन के लिए बिकी थी। इसी प्रकार जीते हुए नरों से साँड़ का काम लिया जाता है और उनको बड़ी बड़ी फ़ीसें मिलती हैं। 'सेंट साइमन' नामक घोड़े को प्रतिबार ६०० गिनी अर्थात् ९,०००) रुपये फ़ीस के मिलते थे।

घोड़े की बुद्धि मध्यम दर्जे की होती है। हाथी और कुत्ते की बुद्धि उससे कहीं बढ़ के होती है और बड़े मांसभुजों में प्राय: सभी जीव बुद्धि में घोड़े से ऊँची श्रेणी के होते हैं। फिर भी घोड़ा ऐसा बुद्धिहीन भी नहीं होता कि बिलकुल मूर्ख पशु ही कहा जाय। यदि घोड़ा बिलकुल मूर्ख होता तो वह मानव-जाति के लिए कदापि उपयोगी नहीं हो सकता था।

घोड़ा अपने स्वामी को पहचानता है और उससे प्रेम करता है। सिकन्दर के घोड़े के विषय में कहा जाता है कि जब उस पर शाही भूल डाल दी जाती थी और साज़सामान से सुसज्जित कर दिया जाता था तो वह अपने स्वामी के अतिरिक्त पीठ पर किसी को नहीं चढ़ने देता था। युद्ध में ऐसी घटनायें देखी गई हैं कि स्वामी के गोली लगने और गिर जाने पर घोड़ा तत्काल ठिठक के खड़ा होगया और स्वामी के मृत-शरीर की रक्षा मांसभोजी पक्षियों से करता रहा।

घोड़े की प्रकृति गर्व के भाव से परिपूर्ण होती है और किसी प्रकार का अपमान वह सहन नहीं कर सकता। भड़क भड़क की भूल और चमकते दमकते साज़ तथा आभूषणों से घोड़ा प्रसन्न होता है। स्पेन देश में यह रीति है कि जिस घोड़े को दंड देना होता है उसका मुकुट और घंटियाँ अथवा घुँघरू उतार के दूसरे को पहना देते हैं।

इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि शिकार, पोलो आदि में घोड़ा अपने सवार के मनोरथ को समझता है। विशेष कर घुड़दौड़ के मर्म से वह अनभिज्ञ नहीं होता और विजय लाभ करने का, उत्साह के साथ, उद्योग करता है। एक घोड़े ने दौड़ में जब देखा कि दूसरा घोड़ा भी बराबर आ पहुँचा है तो पहले उसने यथाशक्ति अपनी गति बढ़ाई। परन्तु शनैः शनैः जब दूसरा घोड़ा आगे निकलने लगा तो उसने झपट के, अपने दाँतों के भरपूर बल से उसकी टाँग पकड़ ली।

घोड़े की स्मरणशक्ति बहुत अच्छी होती है। जिस मार्ग पर से एक दो बार निकल जाता है उसको कभी नहीं भूलता। अँधेरे में घर लौटते हुए भटक जाने पर घोड़े के स्मरण पर निर्भर रहने से सवार को कभी धोका नहीं होता। घोड़ा कदापि भूल नहीं करता और सर्वथा ठीक ठिकाने पहुँच जाता है।

एक समय बेवेरिया और टाइरोल में युद्ध हो रहा था। टाइ-रोल की सेना के कुछ घोड़े बेवेरिया के सैनिकों ने पकड़ लिये और सवार होके उनको युद्ध में ले गये। अकस्मात् इन घोड़ों ने अपनी सेना का बिगुल सुना और तुरन्त उसका शब्द पहिचान लिया और आरोहियों को पीठ पर लिये वे बेतहाशा भाग पड़े, न लगाम से रुके न एड़ की परवा की। उन्होंने अपनी सेना के बीच पहुँच कर ही साँस ली और उनकी पीठ पर बैठे हुए सैनिक बन्दी कर लिये गये।

कभी कभी कोई घोड़ा अच्छी बुद्धि का परिचय देता है। एक साहब ने अपने घोड़े के नाल एक लुहार की दुकान पर बँधवाये। दूसरे दिन फिर घोड़ा बिना लगाम और सवार के उसी दुकान पर पहुँचा। लुहार ने समझा कि वह छूट के भाग आया होगा अतः

ढेले मार के उसको भगा दिया। किन्तु थोड़ी ही देर में घोड़ा फिर दुकान पर आ उपस्थित हुआ। लुहार ने तब निकल के घोड़े के चारों पैरों की परीक्षा की। एक पैर का नाल गिर गया था। लुहार ने उस पैर में फिर नाल जड़ दिया। घोड़े ने तब अपना पैर एक दो बार भूमि पर मार के देखा और यह निश्चित करके कि नाल ठीक जड़ गया है वह पुलकित हो हिनहिनाया और अपने घर की ओर भागा चला गया।

पशुओं की बुद्धिमानी की कभी कभी ऐसी अद्भुत घटनायें देखने सुनने में आती हैं कि जिनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। मेटर्लिंक की किसी पुस्तक से उद्धृत करके एक मासिक पत्र ने एक घोड़े की अलौकिक बुद्धि का वृत्तान्त प्रकाशित किया था जो इतना विस्मयकर था कि उसकी सत्यता पर संदेह किया जा सकता है। बर्लिन में एक व्यक्ति विलियम फ़ान ऑस्टन नाम का था। उसने अपनी सम्पत्ति पशुओं की ज्ञान-वृद्धि के लिए दे डाली थी और स्वयं घोड़ों को शिक्षा देना आरम्भ किया। सन् १६०० ई० में उसने एक रूसी घोड़ा मोल लिया और धैर्य्यपूर्वक शिक्षा दे के उसकी आश्चर्य्यमयी उन्नति कर दिखाई। पहले उसको दायें, बायें, ऊपर, नीचे इत्यादि साधारण बातों का ज्ञान सिखाया। तत्पश्चात् उसको गणित-विद्या सिखाने लगा। मेज़ पर एक, दो, फिर कई गोलियाँ रखता था, और घोड़े को दिखा के उनकी संख्या बताता और तब घोड़े के पैर से उतने ही बार खटके कराता था। कुछ दिनों के बाद गोलियों की जगह काले तख़्ते पर कोई संख्या लिख देता और वैसा ही कराता। फल यह हुआ कि घोड़ा गिनती सीख गया और छोटे छोटे प्रश्न भी करने लगा। इसके अतिरिक्त घोड़े ने कई अन्य बातें भी सीख लीं। उसकी स्मरण-शक्ति ऐसी अच्छी थी कि तारीख़ बता देता था। सारांश यह कि चौदह वर्ष के स्कूल

जानेवाले लड़के को जितना ज्ञान होता है उतना इस घोड़े ने भी प्राप्त कर लिया था।

सन् १९०४ ई० में इस घोड़े की परीक्षा करने के लिए एक कमेटी बैठी जिसमें मनोविज्ञान तथा शरीर-रचना-शास्त्र के विशेषज्ञ, पशुशालाओं के संचालक, सरकस के मैनेजर और पशुचिकित्सा के डाक्टर सम्मिलित थे। उन्होंने पूर्ण परीक्षा के उपरान्त अपनी सम्मति दी कि घोड़े के कौशल दिखाने में किसी प्रकार के छल से काम नहीं लिया गया है।

तत्पश्चात् विज्ञान-वेत्ताओं की एक दूसरी कमेटी बैठी। इस कमेटी ने एक लम्बा-चौड़ा विवरण निकाला और निश्चित किया कि घोड़े को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था, न वह गिनती जानता था न प्रश्नों का हल करना। घोड़ा केवल अपने पालक के गुप्त संकेतों के द्वारा सब बात बता दिया करता था। बेचारे फ़ान आस्टन ने बहुत कुछ कहा-सुना पर किसी ने एक न सुनी। निदान इसी शोक में उसकी मृत्यु होगई। मरते समय ऑस्टन ने इस घोड़े को क्राल नामक अपने एक धनाढ्य शिष्य को दे डाला। क्राल ने स्वयं इस घोड़े की शिक्षा में बहुत भाग लिया था। क्राल ने तब दो अरबी घोड़े और मोल लिये जिनका नाम उसने मुहम्मद और जरीफ़ रक्खा। इन घोड़ों की बुद्धि ऑस्टन के घोड़े से भी बढ़-चढ़ के निकली। मुहम्मद शीघ्र ही जोड़, बाक़ी, गुणा और भाग सब सीख गया। चार मास में उसने वर्गमूल निकालना भी सीख लिया और शीघ्र ही क्राल-द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार पढ़ने भी लगा। दोनों घोड़े शब्द पहिचानते थे, रंग पहिचानते थे और वस्तुओं की गंधों का उन्हें परिज्ञान था। वे घड़ी देख के बता देते थे कि क्या बजा है।

फिर सनसनी फैली और विद्वानों की कई कमेटियाँ बैठीं। अब की बार सबको संतोष होगया कि इस मामले में कोई छल-कपट नहीं है और इन घोड़ों की अलौकिक बुद्धि का रहस्य सभी की समझ से बाहर है।

यह स्वप्न की सी बातें हैं। बहुत सी असाधारण घटनायें संसार में होती हैं जिन पर टीका-टिप्पणी करना हमारी बुद्धि से बाहर है। अन्त में हमको सर सैम्युअल बेकर के शब्दों में कहना पड़ता है कि "सब घोड़े एक से नहीं होते। कोई कोई बुद्धि प्रकट करते हैं विशेष कर यदि अन्नादि पदार्थ दिये जाने का लोभ उनको दिया जाये। किन्तु यदि विकास-सिद्धान्त (Evolution) के उदाहरण में घोड़ा पेश किया जावे तो निस्सन्देह उक्त सिद्धान्त साबित नहीं होता। घोड़ा सृष्टि के आदि से मानव-जाति का साथी रहा है किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में उसमें उससे अधिक बुद्धि नहीं है जितनी कि हज़रत नूह द्वारा नौका में चढ़ाये जाने के समय उसमें थी।

"एक बार जब पार्लिमेंट में सेना के लिए घोड़े ख़रीदने को रुपया दिये जाने पर बहस हो रही थी तो एक मेम्बर ने घोड़े की अच्छी व्याख्या की थी कि 'मुझे घोड़े से सहानुभूति नहीं है। मैं तो घोड़े के विषय में बस इतना जानता हूँ कि वह एक ओर से काटता है और दूसरी ओर से दुलत्ती मारता है और शरीर के मध्य भाग से खाल छील देता है।'"*

ज़ेबरा

(THE ZEBRA)

ज़ेबरा, घोड़ा जाति (Genus) ही का एक उपजाति (Species) माना जाता है। सारे प्राणि-वर्ग में शायद ऐसा सुन्दर जन्तु दूसरा

* Sir Samuel Baker's "Wild Beasts and Their Ways."

पृष्ठ १७१

ज़ेबरा

नहीं होता। उसका सारा सुडौल शरीर काली और सफ़ेद धारियों से सुसज्जित होता है। खेद है कि मानव-जाति ऐसे शोभायमान जन्तु को अधीन और वशीभूत करने में कृतकार्य्य नहीं हुई।

ज़ेबरा केवल अफ़्रीका में होता है जहाँ उसकी तीन उपजाति पाई जाती हैं, अर्थात्—

(१) पहाड़ी ज़ेबरा (Equus Zebra).

इस जातिभेद के शरीर का रंग श्वेत होता है और उस पर काले रंग की धारियाँ होती हैं। अपने काले-सफ़ेद रंग के कारण यह जन्तु सब जातिभेदों से सुन्दर प्रतीत होता है।

पहाड़ी ज़ेबरा दक्षिणी अफ़्रीका के केप कॉलोनी प्रदेश में मिलता है, या यों कहना उचित होगा कि मिला करता था, क्योंकि इनकी संख्या अब इतनी घट गई है कि इनके कुछ थोड़े ही से दल ऊँचे ऊँचे पहाड़ों पर अवशिष्ट हैं। केप कॉलोनी की सरकार अब इनकी रक्षा करती है और यथाशक्ति चेष्टा की जा रही है कि ज़ेबरा का यह सुन्दर उपजाति पृथ्वी पर से लुप्त न होने पाये। पहाड़ी ज़ेबरा की ऊँचाई कंधों तक लगभग ४ फ़ुट होती है। यह जन्तु पहाड़ी स्थानों में वास किया करता है और बहुत तेज़ भागनेवाला जीव है।

(२) बर्चेल का ज़ेबरा (Equus Burchelli).

इस उपजाति के जन्तुओं के शरीर भिन्न भिन्न रंगों के होते हैं। किसी का श्वेत, किसी का भूरा अथवा हलका पीला होता है। धारियाँ किसी की भूरी और किसी की काली होती हैं। दक्षिणी अफ़्रीका में आरेञ्ज नदी से एबिसीनिया तक यह उपजाति मिला करती है। पहाड़ी ज़ेबरा की अपेक्षा इसकी ऊँचाई अधिक होती है और शरीर भी भारी और भरा हुआ होता है। गर्दन के बाल लम्बे होते हैं।

(३) ग्रेवी का ज़ेबरा (Equus Grevy)

घोड़े की इस उपजाति का आविष्कार हाल ही में स्पीक और ग्रैण्ड, दो सुप्रसिद्ध अन्वेषकों ने, विक्टोरिया न्यानज़ा झील से उत्तरी प्रदेशों में किया है। यह भी एक प्रकार का धारीदार ज़ेबरा है जो निविड़ वनों का रहनेवाला है और जंगलों से बाहर मैदान में कभी दिखाई नहीं पड़ता। शारीरिक गठन में यह उपजाति पहाड़ी ज़ेबरा से मिलता है। इसके शरीर की काली धारियाँ पहाड़ी ज़ेबरा और बर्चल के ज़ेबरा दोनों ही से बहुसंख्यक होती हैं और पतली भी होती हैं। टाँगों पर नीचे तक स्पष्ट धारियाँ होती हैं।

सब उपजातियों के ज़ेबरा बहुधा छोटे छोटे दलों में रहा करते हैं। वे अत्यन्त भीरु स्वभाव के होते हैं, और उनकी दृष्टिशक्ति भी ऐसी तीक्ष्ण होती है कि उनके दल के पास पहुँचना बहुत कठिन है।

ज़ेबरा के दल सम्पूर्ण दिन धूप में चरते फिरते हैं। सूर्य-ताप से उनको कष्ट नहीं होता, न वे कभी धूप से त्राण पाने को वृक्षों की छाया में खड़े देखे जाते हैं।

शिकारियों के लिए एक प्रकार से ज़ेबरा के दल अनिष्ट-कर होते हैं क्योंकि उनको देखते ही ज़ेबरा बड़ा कोलाहल मचाते हैं और भाग दौड़ करके उपद्रव करने लगते हैं। सारा जंगल जाग उठता है और आसपास के जीव-जन्तु चौकन्ने हो भाग जाते हैं। एक अनुभवी शिकारी बतलाते हैं कि ज़ेबरा के दल शिकारियों के कैम्प के पास प्रायः कुतूहलवश आ जाते हैं और खड़े खड़े देखभाल करते रहते हैं। किन्तु जब ही कोई उनकी ओर देखता है तो वे तुरन्त भाग पड़ते हैं।

प्रत्येक दल में बहुधा एक नर के संग कई मादाएँ रहा करती हैं। कभी कभी ऐसा होता है कि किसी दल की अनेक

मादाएँ जंगल के हिंस्र जन्तुओं का शिकार हो जाती हैं। दल का नेता जब किसी दूसरे दल की मादाओं को छीन के बलात् अपने दल में मिलाना चाहता है तब नरों में परस्पर भीषण युद्ध हो जाया करते हैं।

ज़ेबरा का रंग पार्श्ववर्ती पदार्थों से बड़े विचित्र रूप से मिल जाता है। (देखिए भूमिका)। रक्षार्थ वर्ण-समानता (General Protective Resemblance) ज़ेबरा से अधिक किसी अन्य जन्तु के लिए प्रयोजनीय भी न थी, क्योंकि ज़ेबरा को अपना जीवन उन्हीं जंगलों में व्यतीत करना होता है जिनमें कि शेर बबर का साम्राज्य है और जंगल के राजा को ज़ेबरा का मांस अत्यन्त प्रिय भी होता है।

ज़ेबरा की प्रकृति में ऐसा कोई दोष तो नहीं होता जिसके कारण उनका पालित किया जाना असंभव हो, किन्तु उनको सभ्य और शिक्षित करने में बड़ी कठिनाई होती है और प्रायः वे काटना सीख जाते हैं।

क्वागा

(EQUUS QUAGGAS)

क्वागा भी धारीदार होता है। क़द में ज़ेबरा से कुछ छोटा किन्तु शारीरिक रचना में घोड़े के समान होता है। इस जन्तु का यह नाम उसके विचित्र कण्ठस्वर के कारण रक्खा गया है क्योंकि उसमें "उ-आग-गा, उ-आग-गा" के शब्द निकलते हैं।

कागा के सिर, गर्दन और शरीर पर गहरे भूरे रंग की धारियाँ होती हैं। ये धारियाँ सिर और कन्धों पर चमकती हुई किन्तु शरीर पर उत्तरोत्तर धुँधली होती जाती हैं और पिछले भाग पर अदृश्य हो जाती हैं। टाँगें और दुम सफ़ेद होती हैं। गर्दन पर छोटे छोटे अयाल होते हैं जो सीधे खड़े रहते हैं।

कुछ समय हुआ कागा के दल केपकॉलोनी प्रदेश और वॉल नदी के बीच में बहुत मिला करते थे किन्तु अब उनकी संख्या बहुत कम हो गई है।

कागा छोटे छोटे हिंस्र जन्तुओं का साहसपूर्वक सामना करता है और उनको अपने सुमों से मार के भगा देता है। किन्तु शेर को कागा का मांस बहुत पसन्द है और शेरों ही के कारण इस जन्तु की संख्या इतनी कम होगई है कि किसी किसी का अनुमान है कि कागा पृथ्वी से लुप्त हो चुका है।

गधा

(Equus Asinus)

गधा बेचारा भी घोड़ा-जाति (Genus) ही की एक उपजाति है। ऐसी उत्कृष्ट जाति का जीव होते हुए भी यह उपयोगी जन्तु बेचारा बिलकुल गधा ही समझा जाता है। अनेक देशों में, विशेष-कर भारतवर्ष में, मूर्खता और नीचता की उपमा गधे से दी जाया करती है। परन्तु गधा वस्तुतः ऐसा निन्दनीय जन्तु नहीं है। गाली, लात खा के भी वह मानव-जाति की पूरी सेवा करता है। क़द के हिसाब से इतना भारी बोझ लादने वाला कोई जन्तु नहीं होता और इस परिश्रमी जन्तु के पालन-पोषण में स्वामी को कुछ ख़र्च भी नहीं करना पड़ता। वह रूखी सूखी घास और व्यर्थ झाड़ियाँ खा के अपना निर्वाह कर लेता है। उसकी सहनशीलता और धैर्य्य भी अद्वितीय है।

इन गुणों और सेवा का मनुष्य उसको क्या पुरस्कार देता है? काम के समय वह डंडे और गालियाँ खाता है और काम समाप्त हो जाने पर टाँगें बाँध के छोड़ दिया जाता है। उसके भाग्य में यही बदा है। इसी का परिणाम है कि गधा आग्रही, हठी और काम-

गोरखर (Equus Onager) पृष्ठ १७५

योरप के बनैले सुअर (Sus Scrofa) पृष्ठ १८१

वार्ट सुअर (Wart Hog) पृष्ठ १८३

बैबिरसा सुअर (Babirussa Alfurus) पृष्ठ १८३

श्वेतोष्ठ पिकेरी (White-lipped Peccary) पृष्ठ १८४

ऊँट (Camelus) पृष्ठ १८८

चोर जन्तु होगया है। मनुष्य के क्रूर व्यवहारों के कारण उसके स्वभाव-सिद्ध गुणों की अवनति होगई है।

परन्तु गधे की ऐसी निकृष्ट दशा सर्वत्र नहीं है। जिन देशों में उसके संग न्याय का व्यवहार किया जाता है वहाँ गधा न आग्रही होता है, न कामचोर, और न मूढ़। फ़ारस, अरब, मिस्र आदि देशों में गधे के संग प्रेम का व्यवहार किया जाता है, उसके खिलाने-पिलाने की सुध रक्खी जाती है, इसलिए इन देशों में गधे की अति उत्तम नसलें पाई जाती हैं। इसी प्रकार माल्टा टापू में और स्पेन में भी गधे की उपयोगी नसलें मिलती हैं।

"पशुओं की बुद्धि" ("Intelligence of Animals") नामक पुस्तक में सुप्रसिद्ध मिस्टर रोमानीज़ (Mr. Romanes) लिखते हैं कि गधे की बुद्धि घोड़े से ऊँची श्रेणी की होती है और स्मरणशक्ति में भी गधा किसी से कम नहीं होता।

जंगली गधे की पृथ्वी पर कई नसलें हैं।

गोरख़र (Equus Onager)—गधे की यह नसल गुजरात, कच्छ, जसलमेर और बीकानेर में पाई जाती है। सिंध-प्रान्त में इन्डस नदी से पश्चिम गोरखर बहुत होते हैं। बलूचिस्तान और ईरान में भी बहुसंख्यक होते हैं।

ग्रीष्म-ऋतु में इनके बच्चे उत्पन्न होते हैं। बलूची लोग तीव्र घोड़ों पर सवार होके उनका पीछा करते हैं। गोरखर स्वयं तो भाग जाते हैं किन्तु छोटे बच्चे शीघ्र ही थक के लेट जाते हैं और शिकारी उनको पकड़ लाते हैं। बच्चे बहुधा जीवित नहीं रहते किन्तु जो बच जाते हैं वे अच्छे दामों को बिक जाते हैं।

क्यांग (Equus Hemionus)—यह नसल तिब्बत के पहाड़ों पर १५,००० फ़ुट की ऊँचाई तक मिलती है। उसके बड़े क़द और छोटे छोटे कानों के कारण प्रायः जन्तुशास्त्रवित् उसको जंगली घोड़ा

कहते हैं। परन्तु क्यांग की दुम पूर्णतया साची है कि वास्तव में वह गधे की एक नसल है। इनका रंग गहरा लाल या कत्थई हुआ करता है।

नर गधा और घोड़ी के संयोग से एक वर्णसंकर जाति पैदा होती है जिसको ख़च्चर कहते हैं। ख़च्चर में माँ और बाप दोनों के गुण विद्यमान होते हैं। घोड़े का बल, साहस और उत्साह और गधे का धैर्य्य, शान्ति और सहनशीलता सब उसकी प्रकृति में पाये जाते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में बोझ लादने के काम के लिए ख़च्चर से उपयोगी और कोई जन्तु नहीं होता।

अनेक देशों में ख़च्चर पैदा कराये जाते हैं। फ़्रांस और स्पेन में इसका बड़ा व्यवसाय है।

यह एक अद्भुत बात है कि ख़च्चरों में सन्तानोत्पादन-शक्ति नहीं होती। प्रत्येक ख़च्चर गधा और घोड़ी के संयोग से उत्पन्न कराना पड़ता है।

सुअर-वंश

(SUIDÆ—BOARS AND PIGS)

मोटी खालवाली श्रेणी के सुअर-वंश की मुख्य उपजाति सुअर है, जो अपनी गंदी आदतों के कारण अस्पृश्य और घृणास्पद समझी जाने लगी है।

सुअर-वंश के सभी जन्तुओं का थूथन अत्यन्त लम्बा होता है और उसके अन्त पर उसका सुदृढ़ प्रोथ होता है। उसकी खाल बहुत मोटी और सारे शरीर पर अत्यन्त मोटे और कड़े बाल होते हैं। दुम छोटी सी और पैर चार भागों में विभक्त होते हैं, जिनमें से दो भाग बड़े बड़े होते हैं, शेष दो भाग पीछे की ओर लटके होते हैं और चलने फिरने में उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। प्रोथ के चपटे, गोल सिरे में उसके नथुने होते हैं और प्रोथ को दृढ़ करने के लिए उसके भीतर एक गोलाकार मुलायम हड्डी (gristly disc) होती है और दूसरे एक विशेष हड्डी से भी उसको सहारा मिलता है।

सुअर को अपने संचलनशील प्रोथ से खाद्य-पदार्थ की प्राप्ति में बड़ी सहायता मिलती है। रसीली जड़ों को वह उसी से खोद लेता है, कीड़े-मकोड़ों की खोज करते हुए वह उसी से बड़े बड़े पत्थरों को पलट लेता है, कड़ी भूमि में गड्ढे खोद लेता है, और खेतों में बोये हुए नाज की खोज में, प्रोथ से मिट्टी हटाता हुआ ऐसी सीधी पंक्तियाँ बना देता है मानो हल चलाया गया हो।

सुअर के मुँह में चारों प्रकार के दाँत उपस्थित होते हैं अर्थात् :—

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{४-४}$, डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$ = ४४

नीचेवाले जबड़े के कृंतक दाँत आगे को झुके होते हैं और उनके द्वारा जड़ों को वह आसानी से काट लेता है। विचित्र कीलों के कारण उसकी आकृति डरावनी और कुरूप प्रतीत होती है। ऊपर-वाले जबड़े के कीले पहले बाहर को बढ़ते हैं और ओंठ से बाहर निकल कर उनकी नोकें ऊपर को घूम जाती हैं। नीचे के बड़े कीले सीधे होते हैं और दंतमांस के बाहर इनकी लम्बाई लगभग ५ इंच होती है। जबड़े बन्द होने पर ऊपर नीचे के कीले एक दूसरे से रगड़ खाते हैं और दोनों ही की नोकें तीक्ष्ण बनी रहती हैं। शिकार में देखा गया है कि भागता हुआ सुअर हाथी की टाँगों की मोटी खाल तक को इन भीषण कीलों से साफ़ फाड़ डालता है।

सुअर की दूधडाढ़ों पर तीक्ष्ण धारें उठी होती हैं जैसी कि मांस-भुज जन्तुओं की डाढ़ों पर होती हैं, किन्तु डाढ़ें चपटी और शाक-भोजियों के समान होती हैं।

दाँतों की रचना से ही विदित होता है कि सुअर पक्का सर्व-भक्षी जीव है। उसके लिए मांस, फल, जड़ें, कीड़े-मकोड़े सभी भक्ष्य हैं। साँप, गिरगट, चूहे, छछून्दर आदि भी उससे नहीं बचते। अवसर पा जाने पर आलू अथवा अन्य कृषि को नष्ट कर डालता है। खेत में डाले हुए बीज को चुन चुन के खा जाता है। गन्ने को एक स्थान पर चबा के उसका सारा रस चूस लेता है।

सुअर की घ्राणेन्द्रिय बड़ी तीव्र होती है। भूमि में गड़ी हुई नाना प्रकार की रसीली जड़ों का पता सूँघ कर ही वह लगाता चलता है। प्रायः शिकार में देखा जाता है कि भागता हुआ सुअर किसी ऐसी पगडण्डी पर पहुँचता है जिस पर से मनुष्य निकले होते हैं, तुरन्त ही वह ठिठक जाता है, भूमि को सूँघता है और किसी दूसरी दिशा में भाग पड़ता है।

सुअर जल का प्रेमी है और घने वन के दलदली स्थानों में पड़ा रहना अथवा तरावट के लिए कीचड़ में लोटते रहना उसको बहुत सुहाता है।

सुअर बच्चे बहुत देते हैं और मादा प्रति बार चार से दस बच्चे तक पैदा करती है। जंगल के हिंस्र जन्तुओं से रक्षा करने के लिए मादा अपने बच्चों को किसी सुरक्षित स्थान में छिपाकर रखती है और बड़े साहस से उनकी रक्षा करती है। कभी कभी दल के सारे नर भटक के दूर निकल जाते हैं तब कई मादायें मिलकर साथ रहने लगती हैं और बच्चों की रक्षा के लिए सब मिलकर शत्रु का सामना करती हैं। बच्चों के शरीर पर धारियाँ होती हैं किन्तु वे कुछ महीनों के बाद अपने आप मिट जाती हैं।

सुअर की प्रकृति में साहस और वीरता कूट कूट कर भरी होती है। यदि भागने का अवकाश नहीं मिलता तो वह दृढ़ता से शत्रु का सामना करता है। तब भय और संकोच का उसकी प्रकृति में कोई चिह्न नहीं रह जाता। अपनी रक्षा के लिए जो उपाय उसके मन में बैठ जाता है उसे पूरा किये बिना नहीं रहता। यदि वह निकल भागना निश्चित कर ले तो फिर उसको रोकनेवाला कोई नहीं है। वह सहज ही में प्राण नहीं देता वरन् जमकर खड़ा हो जाता है और आत्मरक्षा के लिए युद्ध करता है। कप्तान लेविसन लिखते हैं "मैंने एक बुड्ढे खुर्राट सुअर को देखा कि वह पाँच जंगली हाथियों के एक झुण्ड से झगड़ पड़ा और उनकी टाँगों पर आक्रमण करके उनको उस स्थान से भगा दिया जहाँ कि सुअर का कुटुम्ब जल पी रहा था। उन पाँचों बृहत्काय जीवों का चीख़ कर उसके सामने से भागना अत्यन्त हास्यजनक प्रतीत होता था।"*

* Captain Leveson: Sport in Many Lands.

हिन्दुस्तान की बनैले सुअर की दो तीन नसलें।

हिन्द का बनैला सुअर (Sus Indicus)—यह नसल हिन्दुस्तान में सर्वत्र मिलती है। ऊँची ऊँची घास के मैदानों में, जंगलों में, तथा पर्वतों पर दस बारह हज़ार फ़ुट की उँचाई तक बनैला सुअर मिलता है। किसी किसी प्रान्त में वे बहुत होते हैं और कृषि को बहुत हानि पहुँचाते हैं। बहुधा वे झुण्ड ही में मिलते हैं। मैदानों में जहाँ सुअर को घने वृत्तों की छाया नहीं मिलती वह लम्बी लम्बी घास में बसेरा बना लेता है। बहुत सी घास काटकर वह पहले भूमि पर फैलाता है। तब प्रोथ से उठाके उसके नीचे घुसता है। घास उठ जाती है और उसकी एक झोंपड़ी सी बन जाती है। दिन में धूप से रक्षा पाने के लिए सुअर फिर उसी में घुस कर बैठा रहता है। डाक्टर जर्डन बतलाते हैं कि उन्होंने किसी किसी भाग में ऐसी झोपड़ियाँ बहुत देखी हैं और उनमें से सुअर निकाले हैं।

सुअर की यह उपजाति लंका टापू में भी बहुत मिलती है।

बंगाल का सुअर (Sus Bengalensis)—प्राणि-शास्त्र-वेत्ता ब्लाइथ के अनुसार बंगाल का सुअर पृथक् नसल का है। उसके कपाल की बनावट भी भिन्न है और वह हिन्द के सुअर से बड़ा भी होता है। बंगाल की नसल समस्त बंगाल में हिमालय की तराई तक और अराकान तक मिलती है और सम्भवत: आसाम और उसके दक्षिण में भी।

जन्तु-शास्त्र-वित् ग्रे का मत है कि नीलगिरि पर्वत पर भी सुअर की एक अलग उपजाति होती है (Sus Neelgherriensis)।

साधारण बनैला सुअर (Sus Scrofa)—ये उपजातियाँ योरप के अनेक देशों में, विशेषकर फ्रांस और जर्मनी के जंगलों में तथा एशिया के उत्तरी और पूर्वी भागों में पाई जाती हैं। अफ्रीका के उत्तर में एल्जीरिया एवं मिस्र देशों में भी पाया जाता है। इँगलैंड में अब बनैला सुअर कहीं नहीं रह गया है।

योरप के बनैले सुअर की ऊँचाई ३ फ़ुट की और शरीर की लंबाई लगभग ६½ फ़ुट की होती है। उसका बोझ ५ मन तक का होता है।

घरेलू सुअर—पृथ्वी का कदाचित् कोई ऐसा देश न होगा जहाँ घरेलू सुअर न होते हों। योरप एवं अमेरिका में, जहाँ के निवासियों का मुख्य खाद्य मांस है, सुअर की वृद्धि करने और नई नई नसलें उत्पन्न करने के लिए बड़े बड़े प्रयत्न किये गये हैं। कलों के द्वारा जैसे नाना प्रकार के खिलौने बनाये जाते हैं उसी प्रकार इन देशों में सुअर की अगणित नसलें उत्पन्न कर ली गई हैं। उनके शरीर पर मांस के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। माथे की हड्डी तक पर मांस की मोटी सी गद्दी चढ़ी होती है। पेट भूमि से रगड़ खाता है।

योरप और अमेरिका के अनेक नगरों में सुअर के मांस का अच्छा व्यवसाय होने लगा है। अमेरिका के शिकागो नगर में एक एक कारख़ाने में २५,००० सुअर, मांस के लिए, प्रतिदिन वध किये जाते हैं। अमेरिका की संयुक्त रियासतों से ब्रिटिश-टापुओं को लगभग १६,५०,००,०००) का सुअर का मांस प्रतिवर्ष भेजा जाता है।

सुअर की वंश-वृद्धि भी बड़ी शीघ्रता से होती है। प्रतिवर्ष मादा दो बार प्रसव करती है। अनुमान किया जाता है कि दस वर्ष में एक मादा की सन्तान की संख्या ६४,३४,८३८ तक पहुँच जाती है।

घरेलू सुअर अत्यन्त निकृष्ट जन्तु होता है। बनैले सुअर की प्रकृति के सारे दोष उसमें विद्यमान होते हैं किन्तु गुण नहीं। बनैले सुअर की निष्ठुरता, असभ्यता और जङ्गलीपन घरेलू सुअर के स्वभावों में भी पाये जाते हैं। किन्तु क्षुधा का निवारण बिना किसी कष्ट के होते रहने के कारण उसकी बुद्धि निर्बल हो जाती है। घरेलू सुअर का स्वभाव बड़ा दुराग्रही भी होता है, जिधर चलने को कहा जाता है उससे उलटी दिशा ही में चलना चाहता है।

परन्तु इस नीच जन्तु को भी प्रकृति ने निरा बुद्धिहीन नहीं छोड़ा है। घरेलू सुअर कभी कभी आश्चर्यजनक बुद्धिमत्ता तक का परिचय देते हैं। बाड़ों में बन्द सुअर किवाड़ की चटख़नी और बेलन उठा कर फाटक खोल लेते देखे गये हैं।

इनसे भी अधिक आश्चर्य्ययुक्त घटना एक बार देखी गई है। एक मादा अपने कई बच्चों-सहित जंगल में चरने के लिए भेजी जाया करती थी। एक दिन उसके स्वामी ने एक बच्चा मार कर हाँड़ी गरम कर ली। लगातार तीन दिन तक स्वामी एक एक बच्चा रोज़ मारता रहा। चौथे दिन जब मादा जंगल से लौटी तो उसके बच्चे उसके साथ नहीं आये। इसी प्रकार अब माँ नित्य अकेली लौटने लगी। तब बच्चों की खोज की गई। माँ भली भाँति समझ गई थी कि घर लौटने में बच्चों की कुशल नहीं है। अत: जंगल से बाहर निकलते ही वह बच्चों को मार मार कर लौटा दिया करती थी और घर को अकेली लौट आती थी।

सानो बनेल या छोटा सुअर

(PORCULIA SALVANIA)

सुअर-वंश की एक बहुत छोटी जाति नैपाल, भूटान और शिकिम की तराई में मिलती है जिसको नैपाल में सानो बनेल कहते हैं। उसकी ऊँचाई लगभग १० इंच होती है और बोझ लगभग ४-५ सेर

का। मिस्टर हाजसन, नैपाल के जन्तु-जगत् के एक विशेषज्ञ बतलाते हैं कि इस जाति के सुअर बड़ी कठिनाई से मिलते हैं क्योंकि वे घने से घने बनों में वास किया करते हैं। कई कई नर मिल कर एक साथ रहते हैं। रसीली जड़ें खाते हैं। मादा के केवल ३-४ बच्चे होते हैं।

बैबिरसा

(BABIRUSSA ALFURUS)

सुअर-वंश की यह जाति केवल सेलिबीज़ नामक टापू में मिलती है। बैबिरसा के चारों कीले बाहर निकले होते हैं और उनके कारण उसकी आकृति अत्यन्त विचित्र प्रतीत होती है। नीचे के कीले ओंठों के बीच से निकल के गोल घूमे होते हैं और उनकी नोकें आँखों के पास तक पहुँचती हैं। ऊपर के जबड़े के दोनों कीले जड़ से ऊपर की तरफ़ ही बढ़ चलते हैं। इनकी नोकें मांस में होकर थूथन की हड्डी को तोड़ के आँखों के पास बाहर निकलती हैं। यह दाँत भी गोल घूमे हुए होते हैं और उनकी नोकें माथे के पास तक पहुँचती हैं। बैबिरसा की विचित्र आकृति का अनुमान उसका चित्र देखे बिना नहीं किया जा सकता।

वार्ट सुअर

(THE WART HOGS)

वार्ट सुअर अफ़्रीका के निवासी हैं और सुअर के कुरूप वंश में ये सबसे कुरूप जन्तु हैं। वार्ट सुअर के थूथन की हड्डी अत्यन्त चौड़ी और चपटी होती है और प्रत्येक आँख के नीचे बड़े बड़े मांस-पिण्ड लटके होते हैं। दो छोटे छोटे मांसपिण्ड आँखों और दाँत के बीच में भी निकले होते हैं। वार्ट सुअरों का शरीर अत्यन्त बलवान् और प्रकृति साहसी होती है।

वार्ट सुअर के दो उपजाति हैं। एक पूर्वी-दक्षिणी अफ्रीका में मिलता है (Phacochærus Æthiopicus) और दूसरी उपजाति (Phacochærus Africanus) हवश देश से सेनिगाल तक मिलता है।

पिकेरी-वंश

(FAMILY—DICOTYLIDÆ)

पिकेरी वंश के जीव रचना में सुअर और हिपोपोटेमस के बीच में होते हैं। इस वंश में केवल एक ही जाति पिकेरी (Dicotyles) की है और उसके दो उपजाति पाये जाते हैं।

सुअर की सब जातियाँ पृथ्वी के पूर्वीय गोलार्ध में होती हैं। उनकी जगह अमेरिका में पिकेरी ने ली है। सुअर-वंश की अन्य कोई जाति अमेरिका में नहीं होती। इनके मुँह में केवल ३८ दाँत होते हैं। पिछले पैरों में केवल ३ खुर होते हैं। थूथन सुअर का सा होता है। पिकेरी के दुम नहीं होती। सारे शरीर पर घने और छोटे छोटे बाल होते हैं। पीठ पर एक ग्रन्थि होती है जिसमें से तैल के समान, तीव्र दुर्गन्धिमय एक द्रव निकला करता है। पिकेरी को मार डालने पर यदि यह ग्रन्थि तुरन्त न निकाल डाली जाय तो सारे मांस में इस द्रव की गन्ध फैल जाती है।

पिकेरी या तो वृक्षों के खोखले तनों में वास करते हैं या कभी कभी कोई ख़ाली बिल पा के भूमि के भीतर भी रहने लगते हैं।

पिकेरी बहुधा शाकभोजी होते हैं किन्तु कीड़े-मकोड़े आदि भी खा लेते हैं। कृषि को पिकेरी के द्वारा बड़ी हानि पहुँचती है और अवसर पाने पर प्राय: वे कुत्ता, भेड़, बकरी जैसे घरेलू जन्तुओं को मार डालते हैं। कभी कभी झुण्ड के झुण्ड मिलकर घोड़े तक का शिकार कर डालते हैं। कृषकों को स्वयं कभी कभी जङ्गल में पिकेरी के दल का सामना करना पड़ जाता है और उनसे प्राण बचाना कठिन

हो जाता है। प्राय: देखा गया है कि पेड़ पर चढ़ कर ही उनसे शरण मिलती है। कुत्तों से जब उनका शिकार कराया जाता है तो पिकेरी अपने छुरी सरीखे तेज़ कीलों से उनको गहरे घाव पहुँचा देते हैं।

इन मूर्ख जन्तुओं को बन्दूक़ का भी भय नहीं होता वरन् वे बन्दूक़ के शब्द से और भी उत्तेजित हो जाते हैं।

पिकेरी के दो उपजाति होते हैं, अर्थात्—

(१) कालरदार पिकेरी (Collared Peccary or Dicotyles torquatas)। इसका रङ्ग गहरा भूरा होता है और एक श्वेत धारी छाती पर एक कन्धे से दूसरे तक पड़ी होती है। यह उपजाति मध्य और दक्षिणी अमेरिका में मिलता है।

(२) श्वेतोष्ठ पिकेरी (White-lipped Peccary or D. labiatus)। इस उपजाति का रङ्ग कुछ कालिमा लिये होता है, किन्तु उसके ओंठ और मुँह श्वेत होते हैं। यह जन्तु पहली उपजाति से बड़ा और स्वभाव का क्रूर और असभ्य होता है।

रोमन्थकर-कक्षा

(The Ruminants)

साधारण विवरण

मोटी खालवाली श्रेणी के सदृश रोमन्थकर कक्षा में पचमेल जीव-जन्तु नहीं हैं वरन् उन सबमें जुगाली करने का एक ऐसा विशेष जाति-लक्षण है जिससे उनका पारस्परिक सम्बन्ध तुरन्त ज्ञात हो जाता है।

रोमन्थकर जीव जुगाली किया करते हैं, अर्थात् पहले वे अपने खुराक को थोड़ा चबा के निगल जाते हैं और तब भोजन के छोटे छोटे गोले पेट से उनके मुँह में आते जाते हैं और वे उनको पूर्णतया चबा कर फिर निगलते हैं। इसी को जुगाली करना कहते हैं।

जुगाली करने के पश्चात् भोजन का पाचन होता है, और उसके पोषक अंश को शरीर ग्रहण करता है।

रोमन्थकर श्रेणी के प्राणियों के पक्वाशय में चार भिन्न भिन्न भाग होते हैं जिनका वर्णन भूमिका में हो चुका है।

पुरातन काल में जब पृथ्वी जङ्गलों से आच्छादित और हिंस्र जन्तुओं से परिपूर्ण थी, भीरु और निस्सहाय रोमन्थकर जन्तुओं को पग पग पर प्राणों का भय लगा रहता था, और अपने गुप्त शरण-स्थानों से निकल कर उनको इतना ही समय कठिनाई से मिलता था कि जल्दी जल्दी भोजनों को निगल लें। भला उनको भोजन चबाने और पीसने का अवकाश कहाँ था। अमित शक्तिशालिनी प्रकृति ने इसी उद्देश्य से इस कक्षा के प्राणियों को जुगाली करने की शक्ति प्रदान कर दी है। शीघ्रता से उदरभरण कर वे भोजन को, किसी सुरक्षित स्थान में छुप के, सुविधा के साथ पीसते और चबाते रहते हैं।

रोमन्थकर कक्षा के जन्तु समसंख्यक खुरवाले प्राणी (Artiodactyle) हैं। उनके पैरों में दो खुर होते हैं। कुछ की टाँगों में दो छोटे छोटे खुर पीछे को लटके होते हैं किन्तु वे चलने फिरने में कोई सहायता नहीं देते।

ऊँट के अतिरिक्त अन्य किसी रोमन्थकर प्राणी के ऊपरी जबड़े में कृंतक दन्त (incisors) नहीं होते। इनके बदले उनके मसूड़े अत्यन्त कठोर और दृढ़ होते हैं।

नीचेवाले जबड़े में बहुधा छः कृन्तक दन्त होते हैं जो आगे को झुके होते हैं। जिनके कृन्तक दांतों की संख्या छः से अधिक होती है उनके दो अन्तिम दांतों को कीले समझना चाहिए। किन्तु शाकभोजी होने के कारण उनके कीलों ने भी कृन्तक दाँतों ही का आकार धारण कर लिया है। प्रत्येक जबड़े के प्रत्येक ओर छः चौड़ी चकरी डाढ़ें होती हैं।

इनके खुरों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों ठोस सुम नश्तर से बीच में चीर दिया गया हो। इस प्रकार के खुरों से चाल में हलकापन और लचक आ जाती है। उनके द्वारा इस श्रेणी के प्राणियों को ढीली मट्टी में अथवा कीचड़ आदि में चलने में सुविधा होती है क्योंकि भूमि पर पैर रखते ही दोनों भाग चिर के फैल जाते हैं और उठाने पर वे फिर मिल जाते हैं।

कतिपय के खुरों के बीच में एक गड्ढे के भीतर एक विशेष ग्रन्थि होती है जिसमें से एक प्रकार का चिकना लस पदार्थ निकल कर खुरों को चिकना रखता है और कड़ी भूमि की रगड़ से उनको हानि नहीं पहुँचने देता।

रोमन्थकर जन्तुओं की आँखें इस प्रकार पार्श्वस्थ होती हैं कि उनकी दृष्टि की परिधि बहुत विस्तृत होती है। उनकी घ्राणेन्द्रिय तीक्ष्ण होती है और वे अधिकांश द्रुतगामी भी होते हैं।

कुछ की आँखों के नीचे एक एक गड्ढा होता है जिसमें से मोम के समान एक पदार्थ बहा करता है। इन ग्रन्थियों का क्या उपयोग है यह कुछ यथार्थ रूप से नहीं कहा जा सकता, परन्तु विद्वानों का मत है कि सन्तानोत्पादन-शक्ति से उनका कुछ सम्बन्ध है।

रोमन्थकर जीव सब पक्के शाकभोजी हैं और अधिकांश के सिर पर सींग होते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्न-लिखित जीव माने जाते हैं:—

(१) ऊँटवंश (Camelidæ)

(२) जिराफ़वंश (Camelopardidæ)

(३) बारहसिंगावंश (Cervidæ)

(४) कस्तूरावंश (Moschidæ)

(५) गोवंश (Bovidæ)

ऊँट-वंश

(THE CAMELIDÆ)

ऊँट-वंश में दो जातियाँ (Genera) हैं अर्थात् (१) ऊँट (Camelus) और (२) ऑचीनिया (Auchinea)।

ऊँट एशिया और अफ़्रीक़ा का निवासी है। ऑचीनिया जाति के जन्तु केवल दक्षिणी अमेरिका में मिलते हैं। यद्यपि ऊँट की अपेक्षा यह जन्तु बहुत छोटे होते हैं तथापि उनकी रचना, विशेषकर लम्बी गर्दन, उनके वंश को प्रत्यक्षरूप से विदित करती हैं। ऑचीनिया की पीठ पर कूबड़ नहीं होता, और उनके पैर दो भागों में विभक्त होते हैं जिन पर कुछ नुकीले से खुर होते हैं।

ऊँट

(CAMELUS)

घोड़े और गौ को छोड़कर संभवतः ऊँट के बराबर किसी जन्तु ने मनुष्य की सेवा नहीं की होगी। पृथ्वी के अनेक बालुकामय विस्तृत भूभागों का अन्वेषण बिना ऊँट की सहायता के कदापि न हो सकता। बहुत से देशों में उसके बिना न कोई वाणिज्य हो सकता था, और न व्यापार या यात्रा करने ही का कोई उपाय रह जाता। सहारा, अरब, मध्य ऑस्ट्रेलिया आदि के विशाल मरु-स्थलों से मनुष्य अनभिज्ञ रहता। अरब जैसे देश में मानव-जाति का जीवन बिना ऊँट के कितना कष्टमय हो जाता, इसकी कल्पना करना कठिन है। मुअर मुसलमानों के साम्राज्य का विस्तार योरप में बिना ऊँट की सहायता के कभी न हो सकता। वास्तव में उसको "मरु-स्थल का जहाज़" कहना अनुचित नहीं है। उसका अंग-प्रत्यंग मानों बालू में लम्बी लम्बी यात्रा करने ही को रचा गया है।

ऊँट का सिर छोटा, गर्दन लम्बी, कान छोटे किन्तु श्रवण-शक्ति अच्छी होती है। उसके नथुने संकुचित हो बन्द हो सकते हैं।

मरुस्थल की जलती हुई बालू में यात्रा करते हुए ऊँट को प्रायः साइमून (Simoon) नामक भयानक गरम आँधी का सामना करना पड़ जाता है। अग्नितप्त बालू के कण वायु में उड़ते फिरते हैं। बाहर शरीर को तो अवर्णनीय कष्ट उनसे होता ही है, ऊपर से साँस लेना भी कठिन हो जाता है क्योंकि तप्तबालू के कारण जीवधारियों की श्वासेन्द्रिय के भीतर फफोले पड़ जाते हैं। साइमून के आते ही ऊँट बेचारा तुरन्त बैठ जाता है और गर्दन भूमि पर फैला के नथुने मूँद लेता है।

उसका ऊपरी ओंठ बीच में दो भागों में विभक्त होता है, और यह दोनों भाग ऊँट को स्पर्शेन्द्रिय का काम देते हैं।

ऊँट के घुटनों तथा छाती पर के ढट्टे ध्यान दिये जाने योग्य हैं। उनसे प्रमाण मिलता है कि ऊँट मनुष्य के दासत्व में चिरकाल से रहा है। बोझ लादते समय जब वह बैठता है तो उसकी छाती तथा घुटने भूमि से रगड़ खाते हैं। इन पर बारम्बार रगड़ लगते लगते समयान्तर में खाल मोटी पड़के ढट्टों के आकार में परिणत होगई है। अब ऊँट की सन्तान में भी जन्म से इन ढट्टों के चिह्न दिखाई पड़ा करते हैं। खाल की यह विशेष स्थिति सन्तान में संक्रमित होकर कालक्रम से वंश-परम्परा-गत होगई है।

पीठ का कोहाना ऊँट की रचना की विशेषता है। इस कूबड़ का क्या उपयोग है? कूबड़ केवल चर्बी का एक पिंड होता है। मरुभूमि में वनस्पति का नाम भी नहीं होता और लम्बी लम्बी यात्रा करने में सप्ताहों तक ऊँट को कोई भोजन नहीं मिलता। ऐसे ही समय के लिए प्रकृति ने यह चर्बी संचित कर दी है। ऊँट इसी के सहारे जीवित रहता है और दिन भर परिश्रम करता है। क्रमशः चर्बी की मात्रा न्यून होती जाती है और कूबड़ छोटा

होता जाता है। मरुस्थल में यात्रा आरम्भ करने से पूर्व ऊँट को ख़ूब खिला-पिला कर उसका कूबड़ बड़ा कर लेना आवश्यक होता है।

ऊँट का अल्पाहार तो विस्मयकर है ही किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि उसमें निर्जल उपवास करने की भी पूरी शक्ति होती है। जलती हुई बालू में और प्रचण्ड सूर्यताप में, दिन प्रतिदिन, बिना एक बूँद जल के, चलते रहना इस उपयोगी पशु की अद्भुत सहनशीलता को प्रकट करता है। प्राणि-जगत् में किसी दूसरे जीव में इतने काल तक प्यासे रहने की क्षमता नहीं होती। प्रकृति ने ऊँट के पेट में लगभग ८०० छोटी छोटी थैलियाँ जल सञ्चित रखने के लिए बना दी हैं। यात्रा आरम्भ करने से पूर्व जब उसको पानी पिलाया जाता है तो यह विवेकशून्य पशु भी समझ जाता है कि प्यास के कष्ट सहन करने का समय आ रहा है, अतः बड़े बड़े घूँट भर के वह जल के कोषों को ख़ूब भर लेता है। यात्रा करते हुए जल के लिए वह कैसा तरस जाता है इसका अनुमान तभी होता है जब कई दिन के उपरान्त किसी स्रोत के समीप जा पहुँचता है। तीव्र घ्राणशक्ति के द्वारा मीलों से उसको जल का पता चल जाता है और तब वह उन्मत्त के समान स्रोत की ओर को अग्रसर होता है। जल की खोज के लिए यात्री भी अपने ऊँट ही पर अवलम्बन करते हैं।

उसके पैर दो भागों में विभक्त होते हैं जिन पर छोटे छोटे गोल खुर होते हैं। तलवों पर मांस की मोटी गद्दियाँ चढ़ी होती हैं जिनसे उसके पैर बालू में धसते नहीं।

ऊँट की रुचि विलक्षण होती है, संभव है कि उसकी जीभ में रसनाशक्ति होती ही न हो। नीम की कड़वी पत्तियाँ खाकर वह आनन्द से जीवन-यापन कर लेता है। बबूल और झाड़ियों के काँटों

से उसके मुँह को कुछ हानि नहीं होती। भूखा होने पर वह सूखी हुई टहनियाँ तक चबा जाता है।

प्राय: सभी प्राणियों को प्रकृति ने खाद्य और अखाद्य पदार्थों की पहिचान कर लेने की बुद्धि दी है। केवल ऊँट ही एक ऐसा जीव है जो उदरभरण की चिन्ता में विष और अमृत में भी भेद नहीं करता वरन् जो कुछ सामने पड़ जाता है उसी को आँख मूँद के खा लेता है। मध्य अफ्रीका में एक वृत्त होता है जिसकी पत्ती ऊँट के लिए विषमयी होती है। वहाँ ऊँट की देख भाल विशेष रूप से रखनी पड़ती है, नहीं तो ऊँट इस वृत्त की पत्ती खाकर अपनी जीवन-लीला को अकाल ही में समाप्त कर लेता है।

ऊँट की प्रकृति के शान्त तथा सरल भाव प्रसिद्ध हैं किन्तु उसके सारे सद्व्यवहार वास्तव में स्वाभाविक नहीं होते वरन् उसकी प्रबल मूर्खता के फल हैं। उदर-पालन के अतिरिक्त उसको कोई भी चिन्ता नहीं घेरती। इस वैचित्र्यमय जगत् में कोई दृश्य उसके लिए चित्ताकर्षक नहीं, कोई विषय रोचक नहीं। उसको न अपने सवार की सुध होती है न आज्ञापालन की बुद्धि। न स्वामी से स्नेह होता है न कर्तव्य का ज्ञान। यदि नाक की सीध पर सीधा चलता जाता है तो यह उसकी कर्तव्य-परायणता का चिह्न नहीं है वरन् केवल मूर्खता का। दीर्घ काल तक मनुष्य के संग रह कर भी उसने कोई उन्नति नहीं की।

किन्तु अविवेकी ऊँट क्रूर व्यवहार का बदला लेने में किसी बुद्धिमान् से कम नहीं होता। वह ऐसे व्यवहार को स्मरण रखता है और अवसर मिल जाने पर घात कर बैठता है और तब उसके पुष्ट दाँतों की पकड़ से छूटना भी कठिन हो जाता है।

नर ऊँट कामोद्दीपनकाल में बड़ा दुष्ट हो जाया करता है। ऐसी अवस्था में उसकी गर्दन पर कोलतार के समान एक तरल पदार्थ

निकलने लगता है और वह मुँह से कभी कभी एक बड़ा सा बुद्बुद या बलबूला थूक का निकाला करता है। साथ ही साथ उसकी कुछ ऐसी दशा हो जाती है कि वह निष्कारण ही मनुष्यों को काटने दौड़ता है।

जंगली ऊँट कहीं नहीं पाये जाते, न यही निर्णय किया जा सकता है कि पृथ्वी के किस भाग में उसकी उत्पत्ति पहले हुई थी। कुछ समय हुआ ऊँटों के कुछ दल मध्य एशिया के मैदानों में देखे गये थे, किन्तु उनके विषय में यही सिद्ध हुआ कि वे उन पालतू ऊँटों की सन्तान हैं जो क़ाफ़िलों से समय समय पर बिछुड़ के स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने लगे होंगे।

कदाचित् किसी देश में मानव-जाति के लिए ऊँट इतना उपयोगी नहीं होता जितना कि अरब-निवासियों के लिए। वे उसका मांस खाते हैं और दूध पीते हैं। चमड़े के जूते और कांठियाँ बनाते हैं। बालों के कम्बल और डेरे बनते हैं। यात्रा तथा वाणिज्य-व्यापार के लिए ऊँट ही पर उनका सहारा होता है। ऊँट के बच्चों को विशेष साधनों-द्वारा अरब लोग सहनशील तथा परिश्रमी बनाते हैं। कभी वे उनके पैर बाँध के धूप में डाल देते हैं जिससे प्रचण्ड सूर्यताप के कष्ट सहन करने का उनको अभ्यास हो। कभी घुटनों के बल बिठा के उनको जकड़ देते हैं और पीठ पर बोझ लाद देते हैं, कई कई दिन तक भूखा रखते हैं और अल्पाहारी बनाते हैं। आश्चर्य का विषय है कि जलती हुई बालू पर २५-३० मील प्रतिदिन यात्रा करके, ऊँट सप्ताहों तक केवल दो चार मुट्ठी नाज अथवा छुहारों पर दिन काट लेता है।

ऊँट की चाल में एक विलक्षणता होती है कि वह प्रत्येक ओर की दोनों टाँगें साथ साथ उठाता है। इसी से जब तक अभ्यास नहीं हो जाता उसकी सवारी कष्टकर होती है।

बैक्ट्रिया का ऊँट (Camelus Bactrianus) पृष्ठ १६३

अलपाका (Auchenia Paco) पृष्ठ १६५

विक्यूना (The Vicugna) पृष्ठ १६५

ज़िराफ़ (The Giraffe) पृष्ठ १९६

वापिटी या अमेरिका का बारहसिंगा (The Wapiti) पृष्ठ २०६

वापिटी बारहसिंगा (Cervus Canadensis) पृष्ठ २०६

मादा के प्रति बार एक बच्चा होता है जिसकी पूर्ण वृद्धि १५-१६ वर्ष में हो जाती है। साधारणतः ऊँट की आयु ४०-५० वर्ष की होती है।

प्रत्येक ऊँट भले प्रकार समझता है कि उसमें कितना बोझ लादने की ताक़त है। यदि अधिक बोझ उस पर कभी लाद दिया जाता है तो वह किसी प्रकार खड़ा नहीं होता। चाबुक और डंडे खाके भी वह केवल चिल्लाता और सिर पटकता है किन्तु खड़ा नहीं होता।

पृथ्वी पर ऊँट की दो उपजाति पाई जाती हैं, अर्थात्

(१) अरब का ऊँट (Camelus Dromedarius)

(२) बैक्ट्रिया का ऊँट (Camelus Bactrianus)

दोनों की रचना में मुख्य भेद यह होता है कि अरब के ऊँट की पीठ पर केवल एक कूबड़ होता है और बैक्ट्रिया के ऊँट के दो कूबड़ होते हैं।

अरब में ऊँट की कई नसलें पैदा कर ली गई हैं। जो जन्तु बोझ लादने के काम में लाये जाते हैं उनका शरीर भारी, पैर बड़े और टाँगें मोटी मोटी होती हैं। ये बोझ बहुत लाद सकते हैं किन्तु उनकी चाल धीमी होती है। सबसे उत्तम नसल के जन्तु सवारी के काम में लाये जाते हैं। ये सुन्दर, छरहरे शरीरवाले जीव बालू में यात्रा करने में अद्वितीय होते हैं। एक दिन में १०० मील चला जाना उनके लिए सामान्य बात है। और ५०-६० मील प्रतिदिन सप्ताहों तक वे चलते रहते हैं।

बैक्ट्रिया की उपजाति के जन्तुओं की पीठ पर दो कूबड़ होते हैं। यह जातिभेद मध्य एशिया के देशों में मिलता है। बैक्ट्रिया के ऊँट अरब के ऊँट से बड़े और हृष्टपुष्ट होते हैं। इनका रंग गहरा कत्थई होता है और शरीर लंबे ऊनी बालों से ढका होता है। बैक्ट्रिया

के ऊँट की टाँगें छोटी होती हैं और पथरीले स्थानों में लंबी लंबी यात्रा करने के लिए उपयुक्त होती हैं। इस उपजाति की भी प्रकृति और स्वभाव अरब के ऊँट के से होते हैं और अपने देश में यह भी कम उपयोगी नहीं होती।

ऑचीनिया

(THE AUCHENIA)

ऊँट-वंश की ऑचोनिया जाति की कई उपजातियाँ अमेरिका में मिलती हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

लामा (Auchenia llama)—

ऑचीनिया जाति की एक प्रसिद्ध उपजाति 'लामा' कहलाती है। इसका क़द एक छोटे टट्टू का-सा होता है। कन्धों तक ऊँचाई लगभग ४ फ़ुट होती है। सिर छोटा, गर्दन कुछ लंबी, और कान खड़े होते हैं। सारे शरीर पर लंबे लंबे बाल होते हैं जिनका रंग बहुधा गहरा भूरा होता है। इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। लामा अमेरिका का ऊँट कहा जा सकता है और उसमें ऊँट की सी सहनशीलता भी होती है। किन्तु लामा ऊँचे ऊँचे पहाड़ों पर का रहनेवाला है। पहाड़ी दुर्गम स्थानों में बोझ लादने के कार्य्य के लिए वह अत्यन्त उपयोगी होता है। ऊँचे नीचे पथरीले स्थानों में चलते हुए उसके पैर फिसलने का कभी डर नहीं होता। लामा सवारी के काम में भी आता है, किन्तु उसमें एक अवगुण होता है। यदि कभी वह क्रोधित हो जाता है या सवार के किसी व्यवहार से अप्रसन्न हो जाता है तो गर्दन मोड़ कर तुरन्त सवार के ऊपर थूकने लगता है। प्रायः देखा गया है कि पशुशाला में बन्द रहनेवाले लामा भी यदि कभी रुष्ट हो जाते हैं तो तुरन्त दर्शकों के ऊपर थूक देते हैं।

डेढ़ दो मन का बोझ लादकर धीमी चाल से चलते रहने में लामा को कभी इनकार नहीं होता। किन्तु मार पीट वह सहन नहीं कर सकता और तेज़ चलने के लिए यदि उसको कोई मारे पीटे तो कभी कभी वह बैठ जाता है और बैठकर फिर चाहे मारते मारते उसके प्राण ले लिये जायँ पर वह नहीं उठता।

अल्पाका (Auchenia Paco)—

अल्पाका के नाम से तो हिन्द में भी सभी परिचित होंगे, क्योंकि यद्यपि यह जन्तु एक सुदूर देश का निवासी है तथापि उसके सुन्दर, कोमल ऊन का बना हुआ कपड़ा सर्वप्रिय है। अल्पाका भी मध्य और दक्षिणी अमेरिका में होता है। लामा से उसका क़द बहुत छोटा होता है। उसके शरीर पर के लंबे ऊन का रंग बादामी या काला होता है। अल्पाके का ऊन प्रसिद्ध है और अच्छे दामों को बिकता है। पालित अल्पाकों के झुण्ड ऊँचे पहाड़ों पर चरने के लिए रक्खे जाते हैं, केवल कुछ समय के लिए; जब ऊन काटने की ऋतु होती है उनको घाटियों में उतार लाते हैं और ऊन कट जाने के पश्चात् वे फिर पहाड़ों पर पहुँचा दिये जाते हैं।

ऊन के लिए अल्पाका को योरप तथा आस्ट्रेलिया में पालने का उद्योग किया गया किन्तु सफलता नहीं हुई।

थूकने का अवगुण अल्पाका में भी होता है।

विक्यूना (Auchenia Vicugna)—

ऑचीनिया जाति का यह सबसे छोटा जन्तु है। विक्यूना छोटे से गधे के बराबर होता है। शारीरिक रचना में लामा की भाँति होता है। इनके दल ऊँचे पहाड़ों पर रहते हैं। विक्यूना का ऊन कोमलता में अद्वितीय होता है और उसके ऊन के लिए अति ढालू और दुर्गम चोटियों पर भी शिकारी उसको नहीं

छोड़ते। उसका शरीर हलके भूरे रंग के ऊन से ढका होता है और एक भीतरी तह सफ़ेद ऊन की भी होती है।

गुआनको (Auchenia Guanaco)—

दक्षिणी अमेरिका की ऐन्डीज़-पर्वत-श्रेणी पर भूमध्यरेखा से धुर दक्षिण तक यह जन्तु मिलता है। ऑचीनिया जाति का यह प्रधान उपजाति है और लामा तथा अल्पाका दोनों का यही पूर्वज है।

जिराफ़

(THE GIRAFFE—CAMELOPARDALIS GIRAFFA)

जिराफ़ अपने वंश में अकेली जाति है और उसकी कोई दूसरी उपजाति भी पृथ्वी पर नहीं है।

जैसे हाथी स्थल के प्राणियों में सबसे विशाल होने का अभिमान कर सकता है वैसे ही जिराफ़ को सृष्टि का सबसे ऊँचा जन्तु होने का गर्व प्राप्त है। जन्तु-जगत् के किसी प्राणी की उससे तुलना नहीं की जा सकती, किसी से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। ऊँचा से ऊँचा हाथी जिराफ़ से ऊँचाई में आधा होता है। एक पूरे जिराफ़ की ऊँचाई १८ फ़ुट होती है। यदि ६–६ फ़ुट के तीन आदमी एक पर एक खड़े हो जायँ तो जिराफ़ की आँखों तक पहुँचे। इसलिए चाहे कितना ही विशद वर्णन उसकी ऊँचाई का दिया जाय किन्तु देखे बिना इस विचित्र जन्तु का अनुमान नहीं हो सकता।

जिराफ़ को देख के ऐसा बोध होता है कि प्रकृति ने अपनी रचना-कौशल से ऊँट, हरिण और बैल के अंगों का एक अपूर्व सम्मिश्रण करके इस सुन्दर जीव को रच दिया है।

जिराफ़ का सिर छोटा और थूथन पतला और लंबा होता है। सिर के ऊपर दो छोटे छोटे सींग से उठे होते हैं। अन्य रोमन्थकर

पृष्ठ १६८]

जिराफ़ी

जन्तुओं के सींगों के समान ये नहीं होते । जिराफ़ के सींग बहुत छोटे छोटे होते हैं और दूसरे वह उनसे किसी शत्रु पर कभी आक्रमण नहीं करता और फिर उनकी रचना भी विचित्र होती है। वे सिर की हड्डी से अलग होते हैं और गिरते नहीं। उन पर मोटी, रुयेंदार, खाल मढ़ी होती है और सिरे पर मोटे कड़े बालों का बुरुश सा बना होता है।

दोनों सींगों के बीच में सिर की हड्डी उठी हुई होती है। नरों में यह हड्डी इतनी उठी हुई होती है कि वह भी एक तीसरा सींग सा प्रतीत होता है। जिराफ़ की जीभ बड़ी लंबी होती है और उसमें चीज़ों को पकड़ लेने की ऐसी शक्ति होती है कि पत्तियों को वह उसी से पकड़ कर तोड़ लेता है। इसकी जीभ खिँच कर बढ़ भी सकती है और संकुचित भी हो सकती है। एक ग्रन्थकार तो यहाँ तक कहते हैं कि जिराफ़ अपनी जीभ को इतनी पतली कर सकता है कि वह पर की क़लम में भी घुस सकती है।

जिराफ़ की रसीली, चमकती हुई आँखें अत्यन्त सुन्दर होती हैं। सारे प्राणिवर्ग में शायद किसी जन्तु की आँखें ऐसी मनमोहक नहीं होतीं। आँखों के सौन्दर्य्य के कारण जिराफ़ बहुत ही सभ्य, नम्र, और सुशील जीव मालूम होता है।

गर्दन की लंबाई जिराफ़ की रचना की मुख्य विशेषता है। ऊँचे ऊँचे पेड़ों की चोटियों की पत्तियाँ वह खड़े खड़े आसानी से तोड़ लेता है। विज्ञान-वेत्ताओं का मत है कि पहले जिराफ़ की गर्दन भी साधारण लंबाई की होती थी। किन्तु प्रत्येक प्राणी का अंग-प्रत्यंग (आवश्यकतानुसार) परिवर्तनशील होता है। जिस अंग से काम नहीं लिया जाता वह दीर्घ काल में छोटा एवं निर्बल हो जाता है और धीरे धीरे लुप्त हो जाता है।

प्रत्युत जिस अंग से कोई विशेष काम लिया जाता है वह अंग समयान्तर में विकसित हो उस काम के लिए उपयुक्त बन जाता है। जिराफ़ को 'अकेशिया' नामक वृक्ष की पत्ती अत्यन्त प्रिय है। इस वृक्ष की पत्ती भूमि से बहुत ऊँचे पर होती है और जिराफ़ युगों से अपनी गर्दन उन पत्तियों तक पहुँचाने के लिए फैलाता रहा है। अतएव उसकी गर्दन ने, धीरे धीरे लम्बी होकर वर्तमान रूप धारण कर लिया है।

जिराफ़ अपने नथुनों को इच्छानुसार बंद कर सकता है। ऊँट के समान जिराफ़ भी अपने देश के गरम और झुलसानेवाले तूफ़ानों में नथुनों को बन्द करके ही प्राण बचाता है।

जिराफ़ की खाल लगभग १½ इंच मोटी परन्तु हलकी होती है। इसलिए अरब लोग ढालें बनाने के लिए उसको अति उत्तम समझते हैं। जिराफ़ की खाल के जूते के तले भी सुदृढ़ होते हैं। टाँग की हड्डियों में से बटन बनाये जाते हैं। उसका मांस भी स्वादिष्ठ समझा जाता है।

जिराफ़ की असाधारण ऊँचाई उसकी लंबी गर्दन के कारण होती है, शरीर केवल ७ फ़ुट ऊँचा होता है। धड़ आगे से पीछे को बहुत ढालू होता है। उसकी चारों टाँगें लम्बाई में बराबर होती हैं किन्तु ढालू शरीर के कारण अगली टाँगें बहुत बड़ी जान पड़ती हैं।

पैरों में दो खुर होते हैं। पूँछ के सिरे पर काले, लम्बे बालों का सुन्दर चँवर होता है जिससे जिराफ़ अपने शरीर पर से मक्खियों को उड़ाता रहता है। जिराफ़ के वासस्थानों में नाना प्रकार की डंक मारनेवाली मक्खियाँ होती हैं और उनसे अपनी रक्षा करने के लिए वह अपनी दुम को निरन्तर प्रायः हिलाता ही रहता है।

जिराफ़ के शरीर का हलका नारंगी रंग बड़ा सुहावना होता है और समस्त शरीर पर धुमैले धब्बे पड़े होते हैं। दूरदर्शी प्रकृति

का रचना-कौशल अद्भुत है। जीव-जन्तुओं को मनोमोहक रंग देकर सुशोभित करने के अतिरिक्त उनको गुल अथवा धारियाँ डाल के भी सुसज्जित किया है और इन्हीं चमकते हुए रंगों के द्वारा ऐसा प्रबन्ध भी कर दिया है कि जीव-जन्तु शत्रु से अपनी रक्षा भी कर सकें। रक्षक-वर्ण-साम्य के अनेक उदाहरण जन्तु-जगत् में मिलते हैं किन्तु दीर्घकाय जिराफ़ को देख के कौन कह सकता है कि वर्ण-समानता के द्वारा एक ऐसे सुविशाल, विकटाकार जीव को भी कोई रक्षा मिल सकती होगी।

सुविख्यात शिकारी गॉर्डन कमिंग (Gordon Cumming) लिखते हैं:—"मुझे पता चलता है कि इस सृष्टि को सुशोभित करने को रचे गये नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं में, और उनके वासस्थानों के दृश्यों में, कुछ अद्भुत समानता सी होती है। जिराफ़ ही को लीजिए। वह बड़े पुराने जंगलों में रहता है जहाँ अगणित सूखे और हरे वृक्ष होते हैं। वहाँ मैं प्राय: धोखा खा जाता था। मैंने अपने असभ्य देशी सेवकों की भी परीक्षा की। वे भी भ्रम में पड़ के दूर से कभी जिराफ़ को पेड़ का तना बतलाते थे और कभी वृक्षों के तनों को जिराफ़ समझ लेते थे।"

लंबी टाँगोंवाला जिराफ़ बड़ी तीव्र गति से भाग सकता है। पथरीली भूमि पर तो अच्छे अच्छे घोड़े भी उसको नहीं पकड़ सकते। परन्तु जिराफ़ की चाल में भी ऊँट की चाल ही की सी विचित्रता होती है। उसकी भी प्रत्येक ओर की अगली-पिछली टाँगें साथ साथ उठती हैं। इसी से दौड़ते समय उसकी गर्दन दायें-बायें झूमती चलती है और वह अत्यन्त भद्दा प्रतीत होता है।

जिराफ़ के पास पहुँचना बड़ा कठिन है। पहले तो १८ फ़ुट की ऊँचाई पर उसकी आँखें जड़ी होती हैं और उसकी दृष्टि के घेरे की परिधि ही क्या कम होती होगी। इसके अतिरिक्त जिराफ़ दल में

रहनेवाला जीव है और दल की रक्षा के लिए सदा एक संतरी नियत कर दिया जाता है। वह बड़ा चौकन्ना रह कर चारों ओर पता लगाता रहता है। जिराफ़ की घ्राणशक्ति भी तीव्र होती है और शत्रु की गन्ध उसको दूर ही से मिल जाती है।

यथाशक्ति जिराफ़ शत्रु के सामने से भाग कर ही प्राण बचाता है। किन्तु घिर जाने पर अपने खुरों की मार से काम लेता है। पिछली टाँगों की दुलत्ती ऐसी चलाता है कि टाँगें दिखाई तक नहीं पड़तीं। जिराफ़ की लात कोई साधारण बात नहीं है, उसके सामने शेर को भी भागते बन पड़ता है। खुले मैदान में जहाँ दुलत्ती चलाने में कोई बाधा नहीं होती जिराफ़ शेर से कभी नहीं हारता और आपने प्राण बचा ही लेता है।

प्राय: कहा जाता है कि पीछा करनेवालों (खदेड़नेवालों) पर जिराफ़ कंकड़-पत्थर फेंककर मारता है, पर यह भ्रम है। यथार्थ में बात यह है कि जब जिराफ़ भरपूर तेज़ी से दौड़ता है तो उसके फटे हुए खुरों के नीचे से कंकड़ पत्थर छटक कर बड़े वेग से पीछे को छूटते हैं।

जिराफ़ एक मूक-पशु है। सुप्रसिद्ध शिकारी मिस्टर न्यूमैन अपने अनुभव से बतलाते हैं कि उन्होंने जिराफ़ को कभी बोलते नहीं सुना। परन्तु जिराफ़ के बच्चे बोलते हैं और उनका कण्ठस्वर भेड़ से मिलता है।

जिराफ़ केवल अफ्रीका के मध्य भागों में होता है।

जिराफ़ के साथ ही नवाविष्कृत ओकापी जन्तु का वृत्तान्त दे देना अनुचित न होगा। अनेक विचारों से ओकापी की शारीरिक रचना जिराफ़ के समान होती है किन्तु ओकापी के वंश का पूरा निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। सभ्य-जगत् में अब तक शायद कोई जीवित ओकापी किसी पशुशाला में पहुँचा भी नहीं है।

ओकापी

(OKAPI—OKAPIA JHONSTONI)

ओकापी पृथ्वी का बहुत पुराना निवासी है। संभवतः जब मनुष्य का पृथ्वी पर प्रादुर्भाव भी नहीं हुआ था तब भी ओकापी विद्यमान था। आश्चर्य्यजनक बात यही है कि ऐसे पुराने निवासी के अस्तित्व तक का पता सभ्य संसार को अभी हाल तक न था। अफ़्रीक़ा के आदिम-निवासी ओकापी का पता दिया करते थे किन्तु उनका विश्वास कोई नहीं करता था। निदान सुप्रसिद्ध यात्री सर हैरी जान्सटन (Sir Harry Johnston) को इस जन्तु की कुछ खालें मिलीं। सर हैरी ने फिर बहुत खोज की कि कोई जीवित ओकापी उनको मिल जाय किन्तु सफलता नहीं हुई। सन् १९०६ ई० में अमेरिका से दो जन्तुशास्त्रवित् विशेषकर जीवित ओकापी लाने के लिये अफ़्रीक़ा भेजे गये। नौ वर्ष तक वे काँगो प्रदेश के सघन वनों और दलदलों में मारे-मारे फिरे किन्तु कोई भी जीवित ओकापी उनके हाथ न लगा। एक बार वे एक स्थान पर पहुँचे जहाँ कि आदिम-निवासियों ने एक ओकापी को खटके में फँसाया था, किन्तु इन लोगों के पहुँचते ही वह मर गया। सारांश यह कि अब तक कोई जीवित ओकापी किसी पशुशाला में नहीं पहुँच सका है।

ओकापी के आविष्कृत होने से पूर्व जिराफ़ की रचना एक समस्या थी। न उसके वंश में कोई दूसरा जीव था, न उसमें और किसी दूसरे जन्तु में कोई सम्बन्ध प्रतीत होता था। यह समझ में नहीं आता था कि इतने ऊँचे जन्तु की उत्पत्ति किन प्राणियों से हुई होगी। हरिण, बारहसिंगा आदि और जिराफ़ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता था। ओकापी के पता चलने से ये सारी समस्यायें हल होगईं।

ओकापी और जिराफ़ की शारीरिक रचना इतनी समान है कि ओकापी को हम छोटी गर्दन का जिराफ़ कह सकते हैं। ओकापी के सिर पर भी हड्डी उसी प्रकार उठी होती है जैसे कि जिराफ़ के सींग होते हैं किन्तु उसके पुट्ठों और टाँगों पर ज़ेबरा की सी धारियाँ पड़ी होती हैं।

ओकापी अत्यन्त भीरु होता है। मनुष्य की गन्ध पाते ही वह घने अँधेरे जंगलों में घुस जाता है। अफ़्रीका के आदिम-निवासी उसका मांस खाते हैं।

बारहसिंगा-वंश

(CERVIDÆ)

साधारण विवरण

रोमन्थकर-श्रेणी के बारहसिंगा-वंश में बहुत सी जातियाँ पाई जाती हैं जिनकी पहिचान उनके सुन्दर शानदार सींगों से की जा सकती है क्योंकि उनके सींगों में दस बारह छोटी छोटी शाखायें निकली होती हैं।

बारहसिंगों के सींग पतनशील (dèciduous) होते हैं, अर्थात् वे बारम्बार गिर कर नये निकला करते हैं। दो वर्ष की आयु होने पर उनके सिर पर पहले छोटी छोटी ठूँठें निकलती हैं। यह बसन्त ऋतु में गिर जाती हैं और उनके स्थान पर नये सींग निकलते हैं। प्रतिवर्ष इसी प्रकार पुराने गिर के नये सींग निकलते रहते हैं। प्रत्येक बार सींग बड़े होते जाते हैं और प्रतिवर्ष उनमें एक एक शाखा भी नई निकलती आती है। लगभग १२ वर्ष की अवस्था पर जो सींग निकलते हैं उनमें १० या बारह शाखायें होती हैं।

बारहसिंगों के सींगों की वृद्धि बड़े विचित्र ढंग से होती है। सारे प्राणि-जगत् में इतनी शीघ्रता से बढ़नेवाले न किसी जन्तु के सींग होते हैं न कोई दूसरा अंग। लगभग १५ सप्ताह में बारहसिंगे के सींग पूर्ण वृद्धि पर पहुँच जाते हैं। मई के मास में सींगों का निकलना आरम्भ होता है और अगस्त में उनकी वृद्धि पूरी होकर उनके ऊपर की खाल छूटने लगती है। सींग जब बढ़ते होते हैं तो उनमें रक्त पहुँचाने के लिए मोटी मोटी नसें होती हैं। यदि इस समय सींग हाथ से छूकर देखे जायँ तो वे शरीर के अन्य भागों के समान गरम प्रतीत होते हैं। वृद्धि पूरी हो जाने पर ये नसें सूख

के कड़ी पड़ जाती हैं और सींगों पर की कोमल रुयेंदार खाल जो मख़मल (velvet) कहलाती है, सूख कर चमड़े के समान हो जाती है।

जब नसें सूखने लगती हैं तो उनमें खिँचाव उत्पन्न होता है और सींगों में बड़ी खुजली मालूम पड़ती है। बारहसिंगा तब पतली पतली डालों, झाड़ियों आदि से सींगों को रगड़ता है। जैसे जैसे खाल सूख के कड़ी पड़ती जाती है बारहसिंगा सींगों को चट्टानों और वृक्षों के तनों आदि कठोर वस्तुओं से रगड़ने लगता है जिससे उनका चमड़ा और सूखी हुई नसें सब छूट के गिर पड़ती हैं।

ज्यों ज्यों सींग तैयार होते जाते हैं नरों की प्रकृति में परिवर्तन होता जाता है। ये अत्यन्त कलहप्रिय हो जाते हैं, अपने अपने दलों से अलग हो अकेले घूमते हैं और धाड़ें मार मार के अन्य नरों को युद्ध के लिए निमंत्रण देते हैं। मादाओं के लिए तब भीषण युद्ध होते हैं और बहुत से नर मारे भी जाते हैं।

जब बारहसिंगा वृद्धावस्था को पहुँचता है और उसका शारीरिक बल घटने लगता है तो उसके सींग भी प्रतिवर्ष छोटे और पतले होते जाते हैं और शाखाओं की संख्या, और उनकी लम्बाई भी, कम होती जाती है। यह भी देखा जाता है कि रोग से स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर, अथवा प्राकृतिक जीवन में किसी प्रकार का विघ्न पड़ जाने पर सींगों की बढ़वार कम हो जाती है। एक बारहसिंगे को, जब कि उसके सींग निकल रहे थे, जहाज़ पर यात्रा करनी पड़ी। अत: उसके सींग छोटे ही रह गये। किन्तु दूसरे वर्ष फिर उसके सींग पूरे निकले।

जहाँ तक पता चला है गर्म देशों में रहनेवाली जातियों के सींग प्रतिवर्ष नहीं निकलते वरन् दूसरे तीसरे वर्ष गिरते और निकलते हैं।

रेनडियर जाति की मादाओं के भी सींग होते हैं किन्तु अन्य किसी जाति की मादाओं के सींग नहीं होते।

बारहसिंगा-वंश के सभी जन्तु अपने सौंदर्य, सुगठित शरीर, पतली सुडौल टाँगें और तीव्रगति के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी दुम छोटी सी और आँखें गोल, बड़ी और शोभायमान होती हैं। रंग भूरा होता है किन्तु बच्चों के शरीर पर छोटे छोटे गुल या धब्बे पड़े होते हैं जो युवावस्था में मिट जाते हैं। शरीर पर छोटे, घने, और रूखे बाल होते हैं, किन्तु शीतप्रधान देशों में उनके बाल लम्बे और मुलायम होते हैं।

पृथ्वी पर बारहसिंगे की कई जातियाँ और बहुत सी उपजातियाँ पाई जाती हैं। बारहसिंगे शाकभोजी जीव हैं और प्रायः छोटे छोटे दलों में रहा करते हैं।

रेनडियर या उत्तरी बारहसिंगा

(RANGIFER TARANDUS)

बारहसिंगा-वंश में सर्व-प्रथम रेनडियर को स्थान दिया जाना उचित है क्योंकि पृथ्वी के अनेक भू-भागों में वह बड़ा मनुष्योपयोगी होता है।

यह जाति केवल उत्तरी ठण्डे देशों में पाई जाती है। योरप में नार्वे, स्वीडन, लापलैंड तथा फ़िनलैंड में, एवं स्पिट्ज़बर्गन और ग्रीनलैंड द्वीपों में, एशिया महाद्वीप में साइबेरिया और तारतार में ये जन्तु बहुत होते हैं। उत्तरी अमेरिका में भी उसकी एक उपजाति पाई जाती है।

रेनडियर के सुन्दर सींग ४-५ फुट लम्बे होते हैं और जड़ से थोड़े ही अन्तर पर दो मुख्य शाखाओं में विभक्त हो जाते हैं।

लापलैण्ड तथा अन्य उत्तरी देशों के निवासियों के लिए रेनडियर बारहसिंगा बड़ा उपयोगी जन्तु है। उनके लिए गाय, बैल,

घोड़ा, बकरी, भेड़ सब कुछ वही है। कदाचित् कोई घर ऐसा न होगा जिसमें पालतू रेनडियर न हों। पालतू रेनडियरों की संख्या ही से लापलैंड-निवासी की सम्पत्ति का अनुमान किया जाता है।

रेनडियर का मांस सुस्वादु होता है और उपरोक्त देशों के निवासियों का मुख्य खाद्य है। मादा का दूध गौ के दूध से भी उत्तम समझा जाता है। बोझ लादने तथा सवारी के कार्य्यों में संभवत: घोड़ा भी उनसे अधिक श्रम नहीं कर सकता। बिना पहिये की स्लेज-गाड़ी पर वह तीन चार मन बोझ सुविधा से खींच सकता है। जमी हुई कड़ी बर्फ़ पर दिन भर में स्लेज को वह सौ मील खींच ले जाता है। स्विडिन के राजभवन में एक रेनडियर का चित्र है जिसने अपनी पीठ पर एक सरकारी कर्मचारी को ४८ घंटे में ८६० मील पहुँचा दिया था। कहा जाता है कि इस अमूल्य जन्तु ने यात्रा समाप्त करते ही अपने प्राण त्याग दिये थे।

रेनडियर की खाल के गर्म वस्त्र उक्त देशों में पहिने जाते हैं और उसके सींगों में से भी नाना प्रकार की छोटी छोटी चीज़ें बनाई जाती हैं। रेनडियर के गोबर के कण्डे जलाये जाते हैं।

उत्तरी अमेरिका में जो उपजाति मिलती है वह पालतू नहीं बनाई जा सकती।

वापिटी या अमेरिका का बारहसिंगा

(THE WAPITI OR CERVUS CANADENSIS)

वापिटी जाति के बारहसिंगे उत्तरी अमेरिका में, विशेषकर कनाडा में पाये जाते हैं। केवल एक जाति को छोड़ के अपने वंश का यह सबसे बड़ा जन्तु है, और एक पूरे नर का बोझ ८०० अथवा १,००० पौंड तक हुआ करता है उँचाई लगभग १४ मुट्ठी होती है।

एल्क (Alces Malches)
पृष्ठ २०७

लाल बारहसिंगा (The Red Deer)
पृष्ठ २०६

कस्तूरा (Mochus Moschi-
ferus) पृष्ठ २१५

काला मृग (Antelope Cervi-capra) पृष्ठ २१६

नीलगाय (Portax Pictus) पृष्ठ २२१

चिकारा (Antelope Dorcas) पृष्ठ २२१

वापिटी का रंग कुछ पीलापन लिये भूरा होता है और उसके सुगठित, सुडौल शरीर को बड़े बड़े सींग विभूषित करते हैं। इनके सींग बोझ में ३०-४० पौंड तक होते हैं।

अमेरिका की रेडइंडियन जाति के लोग प्राय: वापिटी के बच्चों को पकड़ के पालते हैं और उनसे स्लेज खींचने का काम लेते हैं और उसका मांस भी खाते हैं।

कामवश ये जन्तु भी बड़े भीषण युद्ध किया करते हैं।

वापिटी नमक का बड़ा शौक़ीन होता है और खारे पानी की झीलों के निकट वास करके वह प्राय: भूमि को चाटा करता है।

वापिटी का रंग "रक्षक-वर्ण-साम्य" के सिद्धान्त का प्रमाण है। झाड़ियों के सामने खड़ा हुआ वापिटी दूर से कदापि नहीं पहचाना जा सकता।

एल्क बारहसिंगा

(THE ELK OR ALCES MALCHES)

एल्क भी पृथ्वी के उत्तरी भूभागों का निवासी है, किन्तु उत्तरी योरप, अमेरिका और एशिया के अतिरिक्त क़ाफ़ पर्वत-श्रेणी पर तथा उत्तरी चीन में भी होता है।

बारहसिंगा-वंश की एल्क सबसे बड़ी जाति है। उसका क़द घोड़े के बराबर होता है। एल्क के सींगों की बनावट निराली होती है। वे हड्डी के चौड़े तख़्तों के समान होते हैं। नीचे से ऊपर को चौड़े होते जाते हैं और उनकी ऊपरी बाढ़ पर खंदे होते हैं। ये सींग ठोस होने के कारण अत्यन्त भारी होते हैं। कर्नल डॉज लिखते हैं कि उनको एक मित्र ने एल्क के एक जोड़ी सींग दिये थे जिनका बोझ ६१ पौंड था।

एल्क के थूथन की लम्बाई माथे से मुँह तक लगभग दो फ़ुट होती है। ऐसे भारी सींग और मुँह को साधने के लिए गर्दन छोटी

और पुष्ट होना आवश्यकीय था। गले पर लम्बे लम्बे बाल डाढ़ी के समान लटके होते हैं। शरीर का अग्रभाग पिछले से अधिक ऊँचा होता है। दुम छोटी और रंग भूरा होता है। बारहसिंगा-वंश का केवल एक यही जीव है जो सुन्दर और सुडौल नहीं कहा जा सकता। एल्क अपनी छोटी गर्दन और भारी सींगों के कारण सिर झुका के भूमि की घास नहीं चर पाता। अतः वह अपना निर्वाह झाड़ियों की नीची नीची टहनियों पर किया करता है। वह प्रायः जल के समीप वास किया करता है और तैरने में कुशल होता है।

सींगों के निकलते समय एल्क को उनकी बहुत रक्षा करनी होती है क्योंकि यदि किसी दुर्घटना से उसके सींग टूट जायँ तो शरीर का सारा रक्त घाव में से बह जाता है। यही कारण है कि जब तक सींग पूर्णतया पुष्ट नहीं हो जाते एल्क किसी शून्य जंगल में, ऊँची ऊँची घास में छिपा पड़ा रहता है। सींगों की वृद्धि पूरी हो जाने पर फिर कोई भय एल्क को नहीं रह जाता।

एल्क स्वभावतः डरपोक और भीरु होता है और मनुष्य को देख के भागता है। वह फुरतीला और दूर दूर तक के चक्कर लगाने-वाला जन्तु है। उनके दल कभी अधिक समय तक किसी स्थान में नहीं ठहरते। रात भर में चरते फिरते उनका दल प्रायः २०-२५ मील निकल जाया करता है। जब दल एक स्थान से दूसरे को प्रस्थान करता है तो एल्क सर्वथा आगे पीछे की पंक्ति में चलते हैं।

अपने बृहत् शरीर को छोटी छोटी झाड़ियों में छिपा लेने में यह जन्तु अत्यन्त कुशल होता है। अति छोटी छोटी चट्टानों अथवा अन्य किसी आड़ में वह टाँगें मोड़ के इस प्रकार छिप रहता है कि जो निस्संदेह आश्चर्यजनक है। कर्नल डॉज इस सम्बन्ध में एक

घटना का उल्लेख करते हैं कि उनकी सेना के दो शिकारी जंगल में एक एल्क का पीछा कर रहे थे। उनमें से एक शिकारी, अकस्मात् एक बड़े नर एल्क के ऊपर ही जा निकला। यह जन्तु स्थिरता से सिर नीचा किये बैठा था। किन्तु आँखों से शिकारी की ओर टकटकी लगाये था। उसकी आकृति ऐसी भयानक हो रही थी कि इतने पास से भी शिकारी का निशाना चूक गया। बन्दूक़ का शब्द होते ही समस्त जङ्गल एल्क-बारहसिंगों से भर गया। कम से कम १०० जन्तुओं का दल आस पास ही छिपा हुआ था, किन्तु शिकारियों को, बन्दूक़ छूटने से पूर्व, कोई एल्क कहीं नहीं देख पड़ता था।*

लाल बारहसिंगा

(The Red Deer—Cervus Elephas)

यह सुन्दर, शानदार जन्तु योरप और उत्तरी एशिया में होता है। उसके कन्धों की ऊँचाई ४ फ़ुट से कुछ ही कम होती है अर्थात् वह एक छोटे से घोड़े के बराबर होता है। उसके सींगों की लम्बाई लगभग २½ फ़ुट होती है। सींगों के ऊपरी छोर से अगले खुरों तक का अन्तर लगभग ७ फ़ुट १० इंच होता है। ऐसा जन्तु शानदार क्यों न लगे?

लाल बारहसिंगे का रंग हलकी सुर्ख़ी लिये बादामी होता है। लाल बारहसिंगे की आयु ४०-४५ वर्ष की होती है। उसके सींगों में प्रतिवर्ष एक नई शाखा निकलती आती है। ६ वर्ष की अवस्था होने पर उसके सींग पूर्ण वृद्धि को पहुँच जाते हैं।

प्रतिवर्ष जब नये सींग निकल चुकते हैं तो कामवश लाल बारहसिंगा अपने गुप्त स्थानों से निकल पड़ता है। इस काल में कुछ अवधि के लिए वह अत्यन्त भीषण और क्लान्त रहता है। सारे जङ्गल में

---

* "The Hunting Grounds of the Great West" by Colonel Dodge.

भागा भागा फिरता है और भयङ्कर धाड़ें मार मार करके वन को गुंजा देता है। जहाँ कहीं दो नरों में भेंट हो जाती है तो मादाओं के लिए तुमुल युद्ध हो पड़ता है। यह युद्ध बहुधा एक के प्राण जाने ही पर समाप्त होता है। विजयी नर तब सब मादाओं पर क़ब्ज़ा कर लेता है। दो तीन सप्ताह तक नरों की यही दशा रहती है, वह खाना, पीना और सोना तक त्याग देता है। सम्पूर्ण रात्रि धाड़ें ही मारता रहता है।

मई या जून मास में मादा बहुधा एक बच्चे को जन्म देती है। बच्चे का शरीर पीले रंग का होता है और उस पर श्वेत धब्बे पड़े होते हैं। मादा अपने बच्चे को नरों से छिपाये रहती है क्योंकि नर बच्चों के ऐसे शत्रु होते हैं कि उनको देखते ही मार डालते हैं।

योरप के निवासियों को लाल बारहसिंगों का शिकार अति प्रिय है। उसके लिए घोड़े और कुत्ते विशेष रूप से शिक्षित किये जाते हैं और बहुत धन व्यय किया जाता है। स्काटलैण्ड में अब भी अनेक रईस, अमीरों ने अपनी अपनी ज़मीदारी के विस्तृत भू-भागों को लाल बारहसिंगों के लिए छोड़ रक्खा है, जिनको "बारहसिंगों का जंगल" कहते हैं। इनमें बारहसिंगों की वृद्धि होती रहती है और प्रतिवर्ष उनके शिकार का आनन्द उठाया जाता है।

लाल बारहसिंगा एकान्तवासी और अत्यन्त भीरु जन्तु होता है और उसकी घ्राणेन्द्रिय भी अति तीक्ष्ण होती है। नाममात्र को खटका होते ही वह भागता है। बलवान् कुत्ते हाँपते हुए बारहसिंगे को मार लेते हैं किन्तु यदि बारहसिंगा कहीं जम के खड़ा हो जाता है, तो उसके सींगों की भीषण मार के सामने जाने का कोई कुत्ता साहस नहीं करता।

साँभर

(Rusa Aristotelis)

हिन्दुस्तान के बारहसिंगों में साँभर प्रसिद्ध है। यह जाति हिन्द के सभी जङ्गलों में, और विशेषकर हिमालय, विन्ध्याचल, सतपुरा और पूर्वी घाट की श्रेणियों पर लगभग ९-१० हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक मिलती है। साँभर पथरीली पहाड़ियों पर रहना पसन्द करता है किन्तु घने जङ्गलों में भी प्रायः वास किया करता है।

साँभर की ऊँचाई कन्धों तक १३-१४ मुट्ठी होती है। देह की लम्बाई ६-७ फ़ुट और दुम लगभग एक फ़ुट की होती है। गरदन और गले पर लम्बे लम्बे बाल होते हैं। रंग अधिकतर गहरा भूरा होता है किन्तु एक ही स्थान में सबका रंग एक-सा नहीं होता। सींगों की मुटाई और लम्बाई में भी बहुत अन्तर हुआ करता है। किसी किसी के सींग बहुत भारी किन्तु छोटे होते हैं और किसी किसी के पतले और लम्बे। सींगों की लम्बाई बहुधा एक गज़ होती है और उनमें तीन तीन शाखायें हुआ करती हैं।

साँभर के सींग अप्रैल के महीने में गिरा करते हैं और नये सींग सितम्बर में पूरे हो चुकते हैं। तब प्रातःकाल और संध्या-समय वे धाड़ें मारते सुनाई पड़ने लगते हैं और बारहसिंगों की अन्य जातियों के समान इनके नर भी लड़ाइयाँ लड़ते हैं।

यद्यपि जंगल में कभी कभी अकेले नर या मादा भी देखे जाते हैं तथापि बहुधा साँभर दल में रहा करते हैं। सारे दिन जंगल के किसी घने भाग में वे छिपे रहते हैं। रात्रि में चरने को निकलते हैं और पथरीली भूमि पर बड़ी सुविधा से चल फिर के घास, फल और छोटी छोटी टहनियाँ खाते फिरते हैं। साँभर ऊँची ऊँची छलाँगें भर सकता है। ६ फ़ुट ऊँचा घेर वह सहज

पार कर जाता है, अतः कृषि को उनके द्वारा बड़ी हानि पहुँचती है। ग्रीष्म-काल में साँभर प्रायः जल में लोटा करता है।

हिन्दुस्तान में साँभर का बहुत शिकार किया जाता है। उसकी दौड़ कुछ भद्दी सी होती है किन्तु पथरीली और चट्टानी भूमि पर वह सहज हाथ नहीं लगता। यदि भागने का अवसर नहीं मिलता तो साँभर प्रायः जल में कूद पड़ता है।

साँभर आसाम, ब्रह्मा, मलय प्रायद्वीप और लंका में भी होता है।

चीतल

(Axis maculatus)

यह सुन्दर, धब्बेदार बारहसिंगा मध्य हिन्द के जंगलों और पहाड़ियों पर बहुत मिलता है। पश्चिमी और पूर्वी घाटों के नीचे भी अनेक स्थानों में चीतल पाया जाता है। बंगाल में सुन्दर-बन में चीतल के बहुत ज़्यादा झुण्ड हैं। चीतल का रंग पीला या भूरा होता है और सारे शरीर पर छोटे छोटे सफ़ेद धब्बे होते हैं। बारहसिंगों की अन्य जातियों की अपेक्षा चीतल छोटा होता है और उसकी ऊँचाई कन्धों तक लगभग १ गज़ की होती है।

चीतल बहुधा बड़े बड़े झुण्डों में रहते हैं। प्रभात-समय जंगल के खुले स्थानों में चरते दिखाई पड़ते हैं किन्तु धूप होते ही वे जङ्गल के भीतर घुस रहते हैं।

काश्मीर का बारहसिंगा

(Cervus Wallichii)

यह बड़ा और शानदार बारहसिंगा काश्मीर में और मध्य एशिया के पहाड़ी भू-भागों में और पश्चिम की ओर फ़ारस से क़ाफ़ पर्वत तक होता है। इसकी ऊँचाई १२-१३ मुट्ठी होती है और

पुराने नरों की गरदन के बाल लम्बे और झबरे होते हैं, सींगों की लम्बाई एक गज़ से सवा गज़ तक होती है। यह जन्तु असल 'बारह-सिंगा' है क्योंकि उसके सींगों में प्रायः १२ शाखायें हुआ करती हैं। किसी किसी के सींगों में १५ या १६ शाखायें तक हुआ करती हैं।

काश्मीर का बारहसिंगा योरप के लाल बारहसिंगे से भी बड़ा होता है। यह जन्तु चीड़ के सघन वनों में १०-१२ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक वास किया करता है।

अक्टूबर के महीने में इनके नये सींग पूरी वृद्धि पर पहुँच चुकते हैं और तब इनके नर जङ्गलों में सारे दिन धाड़ें मारा करते हैं।

माहा

(RUCERVUS DUVAUCELLII)।

यह बड़ा बारहसिंगा हिमालय की तराई में क्यारदा दून से भूटान तक होता है जहाँ उसको 'माहा' का नाम दिया जाता है और कहीं कहीं उसको 'झिन्कार' भी कहते हैं। मध्यहिन्द के जङ्गलों में भी होता है जहाँ वह 'गोइन' कहलाता है। आसाम में भी बहुत ज़्यादा होता है।

इस बृहत्, शानदार जीव का शरीर ६ फ़ुट लम्बाई में, और ऊँचाई ११-१२ मुट्ठी होती है। रंग कुछ पीलापन लिये बादामी होता है। मादा का रंग नर से हलका होता है। उसके बृहत् सींगों की लम्बाई ३ फ़ुट या कुछ और अधिक होती है जिनमें १४-१५ शाखायें तक देखी जाती हैं।

माहा न तो पर्वतों पर चढ़ता है न घने जङ्गलों में जाता है। बहुधा वह घने जङ्गलों के किनारे पर दलदलों और ऊँची घास में वास किया करता है।

माहा सर्वथा बड़े बड़े दल में सङ्ग रहता है जिनमें ४०-५० जन्तु तक होते हैं। पीछा किये जाने पर सब मिल के भागते और जङ्गल की शरण लेते हैं।

पारा

(THE HOG DEER OR AXIS PORCINUS)

बारहसिंगा-वंश की इस छोटी जाति के जन्तु उत्तरी हिन्द, पञ्जाब और सिन्ध में विशेषकर नदियों के किनारे मिलते हैं। बंगाल, आसाम तथा ब्रह्मा में भी ये जन्तु होते हैं।

पारा घने जङ्गलों में नहीं रहता वरन् खुले मैदानों में ऊँची ऊँची घास में और झाऊ की झाड़ियों में छिपा रहा करता है। रंग चमकदार गहरा भूरा होता है। सींगों की लम्बाई १५-१६ इंच से अधिक नहीं होती। शरीर की ऊँचाई दो फ़ुट से कम होती है। पारा झुण्ड में कभी नहीं रहता वरन् वह एकान्तवासप्रिय है।

काकुर

(THE BARKING DEER OR CERVULUS AUREUS)

बारहसिंगे की यह छोटी जाति भारतवर्ष में हिमालय से दक्षिणी कोने तक सघन वनों में मिलती है। उसकी ऊँचाई दो फ़ुट से कुछ अधिक, और सींग ८-१० इंच के होते हैं। नर और मादा दोनों के ऊपरी जबड़े के कीले बहुत लम्बे और बाहर निकले हुए होते हैं। काकुर की जीभ अति लम्बी होती है और उसमें बढ़ने की भी शक्ति होती है। उससे वह अपना सारा मुँह चाट सकता है। एक अनुभवी शिकारी बतलाते हैं कि जब यह जन्तु दौड़ता है तो एक विचित्र शब्द होता है जैसे कि दो हड्डियाँ बजाई जा रही हों। उसको अँगरेज़ी में "भूकनेवाला बारहसिंगा" इस कारण कहने लगे हैं कि उसका कण्ठस्वर लोमड़ी के भूकने के समान होता है।

कस्तूरा-वंश

(MOSCHIDÆ)

इस विषय पर सहमति नहीं है कि कस्तूरा को बारहसिंगा-वंश ही में स्थान दिया जाय या कि एक अलग वंश में। कस्तूरा और असली बारहसिंगों में मुख्य भेद यह होता है कि कस्तूरा के सींग नहीं होते और शरीर में कस्तूरी की थैली पाई जाती है। इन भेदों के आधार पर कोई कोई विद्वान् कस्तूरा को एक पृथक् वंश में स्थान देते हैं। कुछ लोगों का मत है कि ये भेद उसको एक अलग वंश में स्थान दिये जाने के लिए यथेष्ट नहीं हैं। अस्तु।

कस्तूरा-वंश में दो जातियाँ हैं, अर्थात्—

(१) कस्तूरा (Musk Deer)

(२) पिसूरी (Mouse Deer)

दोनों जाति के जन्तु बहुत छोटे होते हैं और एशिया में, विशेषकर हिन्दुस्तान में मिलते हैं।

कस्तूरा

(THE MUSK DEER OR MOSCHUS MOSCHIFERUS)

कस्तूरा हिमालय-पर्वत-श्रेणी की ऊँची चोटियों पर सघन वनों में मिलता है। ग्रीष्मऋतु में नीचे उतर आता है किन्तु ७०००-८००० फ़ुट से नीचे कभी नहीं आता। मध्य और उत्तरी एशिया में सायबेरिया तक भी मिलता है।

उसके शरीर की लम्बाई लगभग एक गज़ और ऊँचाई २ फ़ुट के क़रीब होती है। शरीर का रङ्ग कई प्रकार का होता है, किसी का मटमैला भूरा, किसी का बादामी और किसी का कुछ पीलापन लिये। बच्चों के शरीर पर सफेद धब्बे होते हैं।

कस्तूरा के बाल लम्बे, मोटे और कड़े होते हैं। कान बड़े और खड़े हुए, दुम बहुत छोटी सी, किन्तु मादा की दुम बालदार

और झबरी होती है, इसके विपरीत नर की दुम के केवल छोर पर एक गुच्छा बालों का होता है। नर की दुम के तले एक ग्रन्थि होती है जिसमें से गोंद के समान एक पदार्थ निकला करता है।

कस्तूरा एकान्तवासी है और जंगल के भीतर चट्टानों के पास रहता है। मादा के प्रतिबार एक या दो बच्चे होते हैं जो लगभग ६ सप्ताह में अपना निर्वाह स्वयं करने के योग्य हो जाते हैं और तब माँ उनको भगा दिया करती है। लगभग एक वर्ष की आयु होने पर उनकी वृद्धि पूरी हो चुकती है। कस्तूरा के बच्चे सहज ही पालित किये जा सकते हैं।

कर्नल मार्कहम (Col. Markham) कस्तूरे के विषय में बतलाते हैं कि उसके कुछ स्वभाव ख़रगोश के समान होते हैं। वह एक विशेष स्थान अपने रहने के लिए चुन लिया करता है और सारे दिन उसी के निकट पड़ा सोता रहता है। सन्ध्या होते ही भोजन की खोज में और घूमने फिरने को बाहर आता है किन्तु सूर्य्योदय के पूर्व ही वासस्थान पर लौट के पहुँच जाता है। कस्तूरा या तो बहुत धीरे धीरे चला करता है या छलाँगें भर के भागता है।

जब वह भरपूर तेज़ी से भागता है तो उसकी छलाँगें आश्चर्य्यजनक होती हैं। जहाँ भूमि कुछ ढालू होती है वहाँ वह एक छलाँग में ६० फुट तक कूद जाया करता है। छलाँगों पर छलाँगें भरता है और झाड़ियों आदि को कूदता जाता है। ऊँची-नीची, पथरीली भूमि पर उसके पैर कभी धोखा नहीं खाते। उनके बच्चे जून या जुलाई के महीने में उत्पन्न होते हैं। प्रतिबार प्रायः दो बच्चे होते हैं। माँ सर्वथा एक एक बच्चे को अलग अलग स्थान में जन्म दिया करती है जो एक दूसरे से बहुत अन्तर पर होते हैं। माँ स्वयं दोनों बच्चों से अलग रहती है और उनके पास केवल दूध पिलाने को जाती है। बच्चों को संग लेके कभी बाहर नहीं निकलती।

नरों की नाभि में से वह बहुमूल्य वस्तु और ओषधि निकलती है जिसको कस्तूरी या मुश्क कहते हैं। कस्तूरा मनुष्य को देखते ही भागता है, इसलिए बहुधा उसको खटके के द्वारा पकड़ा करते हैं। कस्तूरी की थैली नाभि के पास मुर्ग़ी के अण्डे के बराबर होती है। उस पर बाल होते हैं और बीच में एक छोटा सा छिद्र होता है। थैली को दबाने से इसी छिद्र में से कस्तूरी टपक आती है। दो एक वर्ष की आयु तक कस्तूरी एक श्वेत रंग का तरल पदार्थ होता है। तत्पश्चात् वह गाढ़ा और दानेदार हो जाता है। प्रत्येक नाभि में लगभग एक औंस कस्तूरी निकल आती है। नर के गोबर में कस्तूरी की गंध होती है किन्तु कस्तूरे के शरीर में उसकी गंध नहीं होती। कस्तूरी जब थैली से निकाली जाती है तो उसकी गन्ध ऐसी तीक्ष्ण और असह्य होती है और उसका प्रभाव इतना गरम होता है कि नाक से रुधिर बहने लगता है, इसलिए उसको निकालते समय नाक और मुँह पर कपड़ा बाँध लेते हैं।

पिसूरी

(THE MOUSE DEER—MEMINA INDICA)

भारतवर्ष के सब जंगलों में हिमालय की तराई से दक्षिणी कोण तक यह जन्तु मिलता है। हिन्द के दक्षिण में वह बहुत होता है। मालाबार एवं पूर्वी घाट पर भी कसरत से होता है।

यह छोटा सा जन्तु केवल एक फुट ऊँचा होता है और बोझ केवल ३ सेर के क़रीब। उसकी टाँगें अति पतली होती हैं। भिन्न भिन्न स्थानों में उनके शरीर का रंग भी अलग अलग होता है। पिसूरी का पिछला धड़ कुछ ऊँचा होता है जिसके कारण उसकी चाल भद्दी होती है।

पिसूरी अत्यन्त घने जंगलों में घुसा रहता है, बाहर कभी नहीं आता।

इस जन्तु को पिसोरा अथवा पिसाई का भी नाम देते हैं। बंगाल में 'जित्री हरन' और मध्यहिन्द में मूँगी कहलाता है।

गो-वंश

(The Bovidæ)

साधारण विवरण

इस वंश के सब जन्तुओं के सींग दोहरे और अपतनशील होते हैं। सींग का भीतरी भाग ठोस हड्डी का होता है और उसके ऊपर एक खोखला खोल सींग का चढ़ा होता है। गौ-वंश के जन्तुओं में यह विशेषता है कि नर और मादा दोनों ही के सींग होते हैं। इससे वे पूर्वोक्त बारहसिंगा-वंश से विभिन्न होते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से हरिण, बकरा, भेड़ और गाय-बैल सभी का स्थान गो वंश में है, परन्तु सुविधा के लिए उनको तीन उपवंशों में विभक्त कर देते हैं, अर्थात्—

(१) हरिण-उपवंश
(२) बकरी-उपवंश
(३) गो-उपवंश

गो-वंश के जन्तुओं के मुँह में बहुधा कीले नहीं होते। बहुधा चारों पैरों में गड्ढे होते हैं जिनकी ग्रन्थियों में से चिकनाई निकला करती है। आँखों में भी गडढे होते हैं, जिनमें से कीचड़ के समान एक द्रव पदार्थ बहा करता है।

दक्षिणी अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया में इस वंश की कोई जाति नहीं होती। पृथ्वी के अन्य सभी भू-भागों में गो-वंश की बहुत-सी जातियाँ पाई जाती हैं।

हरिण-उपवंश

(SUB-FAMILY ANTILOPINÆ)

हरिण की किसी जाति के जन्तुओं के सींगों में शाखायें नहीं होतीं। इस उपवंश के जन्तुओं के शरीर बारहसिंगों से भी अधिक छरहरे और टाँगें अधिक पतली होती हैं। आँखें बहुत बड़ी और सुन्दर होती हैं और उनका रंग गहरा बादामी अथवा काला होता है। दाँतों की संख्या निम्न-लिखित होती है:—

कृंतक दाँत $\frac{०-०}{३-३}$, कीले $\frac{०-०}{१-१}$, दूध-डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$, डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$ = ३२ हरिणों के बाल बारहसिंगों के समान रूखे और कड़े नहीं होते, वरन् पतले और चिकने होते हैं।

हरिण-उपवंश के जीव विशेषकर अफ़्रीका एवं एशिया के निवासी हैं। योरप में केवल एक जाति शेमाय की मिलती है।

मृग या हरिण

(ANTELOPE CERVICAPRA)

यह सुन्दर जन्तु हिन्द में सर्वत्र मिलता है। प्राय: इनके छोटे छोटे दल खेतों और मैदानों में चरते दिखाई पड़ते हैं, जिनमें एक काला नर होता है। भारत के किसी किसी भाग में जहाँ चारा बहुतायत से होता है इनके बहुत बड़े बड़े दल भी देखे जाते हैं। एक सज्जन बतलाते हैं कि पञ्जाब में हिसार के पास उन्होंने हरिणों के दल देखे जिनमें ८ या १० हज़ार जन्तुओं से कम नहीं थे।

हरिण के सींग प्राय: १½ से दो फ़ुट तक के होते हैं। मादाओं के सींग नहीं होते। नर का रंग भूरा होता है किन्तु जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है क्रमश: उसका रंग गहरा होता जाता है। लगभग ६—७ वर्ष की अवस्था पर वह एक-दम काला हो जाता है, केवल मुँह, गला और पेट सफ़ेद या भूरे रह जाते हैं। मादा का रंग हलका पीला होता है।

प्रत्येक दल में प्राय: कई कई नर भी हुआ करते हैं। अपनी अपनी आयु के अनुसार उनके रंग की घनता में विभिन्नता होती है, किन्तु काले रंग का केवल एक ही नर होता है। यही दल का नेता और स्वामी होता है। दल की सारी मादाओं को एवं अन्य सब अल्पवयस्क नरों को उसकी अध्यक्षता माननी होती है। कामवश यदि कभी कोई दूसरा नर, यौवन और सौन्दर्य्य के मद में, किसी मादा की ओर दृष्टि डालता है, तो काला नर ऊपर को मुँह उठा, तुरन्त अपराधी को दंड देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। यदि संयोगवश किसी दल में ऐसे काले नर दो या अधिक पहुँच जाते हैं तो भीषण युद्ध हुआ करते हैं। मिस्टर एलियट (Mr. Eliot) बतलाते हैं कि वसन्त-ऋतु में कभी कभी कोई नर किसी एक मादा को दल से अलग कर लेता है। फिर मादा चाहे कितने ही प्रयत्न झुण्ड में मिलने के करे किन्तु वह नर उसका मार्ग घेर लेता है और दल के पास नहीं जाने देता। यह जोड़ा तत्पश्चात् फिर बहुत दिन तक अकेला ही रहता है।

हरिण की छलाँगें और तीव्र गति विख्यात हैं। चरते फिरते कोई खटका होते ही झुण्ड का झुण्ड छलाँगें भरने लगता है और ऐसा प्रतीत होता है मानों उनकी टाँगों में कमानियाँ लगी हों। सर सैम्युअल बेकर का अनुमान है कि भरपूर तेज़ी से भागने पर हरिण ६० मील प्रति घंटा भाग सकता है।

बहुधा हरिण रक्षा के लिए अपनी तीव्र गति ही पर अवलम्बन करता है परन्तु भागने का अवकाश न पा के प्राण बचाने के लिए बड़ी चतुराई से काम लेता है। जन्तुशास्त्रवित् मिस्टर एलियट बतलाते हैं कि एक हरिण पीछा किये जाने पर एक खेत में घुस पड़ा और अदृश्य होगया। बहुत खोज किये जाने पर पता लगा कि सिर झुका के वह भूमि से चिपटा पड़ा था। एक अन्य अवसर पर एक जोड़े के

संग एक छोटा सा बच्चा भी था। तीनों भागे। माता-पिता ने बहुत चाहा कि बच्चा कहीं घुस के छिप जाय किन्तु वह उनके पीछे लगा ही रहा। यह देख नर घूमा और बच्चे को मार मार के एक कपास के खेत में गिरा दिया। तत्पश्चात् माता-पिता खुले मैदान में आ कर, शिकारियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर भागे। यदि भयभीत हो के झुण्ड भागता है और कोई मादा पीछे रह जाती है तो नर रुक जाता है और उनको आगे बढ़ाने की चेष्टा करता है।

नील-गाय

(PORTAX PICTUS)

हरिण की यह एक बहुत बड़ी जाति है जो केवल हिन्दुस्तान में मिलती है। शारीरिक गठन में हरिण और गाय दोनों ही के जाति-लक्षण उसमें दिखाई पड़ते हैं। ये जन्तु उत्तरी भारत से दक्षिण में मैसूरराज तक मिलते हैं। मध्यहिन्द में और सतलज एवं यमुना नदियों के बीच में बहुत होते हैं। वह प्रायः खुले मैदानों में जहाँ थोड़ी बहुत झाड़ियाँ होती हैं वास किया करता है।

नील-गाय का रंग स्लेट के समान हलका नीला होता है, किन्तु मादा का रंग भूरा होता है। शरीर की लंबाई ६-७ फ़ुट होती है और ऊँचाई कन्धों तक ४½ फ़ुट। गरदन पर काले लम्बे बाल होते हैं और छाती पर भी लम्बे लम्बे बाल लटकते होते हैं। दुम गाय की पूँछ के समान लम्बी-सी होती है। और सिरे पर बालों का एक गुच्छा होता है। नर के छोटे छोटे सींग होते हैं जो ८-६ इंच से अधिक नहीं होते।

नील-गाय छोटे छोटे दलों में रहनेवाले जीव हैं। उनके बच्चे पालतू हो जाते हैं किन्तु उनका स्वभाव विश्वसनीय नहा होता। कभी कभी उद्दण्ड हो वे मनुष्यों पर आक्रमण कर बैठते हैं। आक्रमण करते समय प्रायः वे पहले घुटनों पर टिक जाते हैं और

अकस्मात् उछल के दौड़ पड़ते हैं। घास चरने में भी कभी कभी वे घुटने टेक के बैठ जाते हैं।

चिकारा

(THE GAZELLE OR ANTELOPE DORCAS)

हरिण की इस सुन्दर, प्रसिद्ध जाति की कई उपजातियाँ अरब हिन्दुस्तान तक मिलती हैं। अफ़्रीका महाद्वीप में भी इस जाति की कुछ उपजातियाँ होती हैं। बहुधा इनका रंग भूरा होता है। कन्धे तक ऊँचाई दो फुट से कुछ अधिक और सींग लगभग १ फुट के होते हैं। मादा के भी सींग होते हैं किन्तु बहुत छोटे। अपनी आँखों के सौन्दर्य के लिए चिकारा प्रसिद्ध है। अरबी भाषा में इसको ग़िज़ाला कहते हैं।

भारतवर्ष में मिलनेवाली उपजाति चिकारा के नाम से प्रसिद्ध है (Gazella Bennetti)। चिकारा हिन्दुस्तान के कई प्रदेशों में होता है विशेषकर सिन्ध, राजपूताना और हरियाना में। विशाल, खुले मैदानों में इनके झुंड चरते दिखाई पड़ा करते हैं। छोटी पथरीली पहाड़ियों पर भी चिकारा वास किया करता है।

चौसिंगा

(ANTELOPE QUADRICORNIS)

जैसा कि उसके नाम ही से ज्ञात हो जाता है इस हरिण के चार सींग होते हैं। यह विचित्र जन्तु हिन्दुस्तान से बाहर कहीं नहीं होता। मद्रास के उत्तर से मध्यहिन्द के जंगलों तक बहुत होता है। पश्चिमीघाट के तले जङ्गलों में और मैसूर में भी होता है। हिमालय की तराई में कहीं कहीं चौसिंगा पाया जाता है। यह जन्तु सघन वनों के किनारों पर अथवा जङ्गल के भीतर किसी खुले स्थान में निवास करता है, किन्तु झुंड में नहीं रहता।

रंग हलका भूरा, ऊँचाई कन्धे तक लगभग दो फुट और सिर पर चार सींग होते हैं। एक जोड़ा सींग उसके कानों के पास लगभग ४-५ इंच की लम्बाई के होते हैं। दूसरा जोड़ा आँखों से कुछ ऊपर होता है किन्तु इनकी लम्बाई १-१½ इंच से अधिक नहीं होती। प्राय: ये सींग गिर भी जाया करते हैं।

ब्यूबेलिस

(ANTELOPE BUBALIS)

अफ्रीका का यह बड़ा हरिण सुन्दर कत्थई रंग का होता है। इसके सिर की हड्डी की रचना विलक्षण होती है क्योंकि माथे की हड्डी आँखों के ऊपर ३-४ इंच बाहर को निकली होती है और इसी हड्डी पर उसके सींग स्थित होते हैं। हड्डी पर दृढ़ता से जमे हुए ये सींग आक्रमण के लिए प्रबल हथियार हैं। उनकी तीव्र नोकें पीछे को मुड़ी होती हैं। आक्रमण करते समय जब वह सिर को नीचे झुकाता है तो ये नोकें शत्रु के सामने आ जाती हैं।

ब्यूबेलिस का बोझ क़रीब ६ मन के होता है किन्तु इतना भारी होते हुए भी वह अत्यन्त तेज़ दौड़नेवाले हरिणों में है। कोई घोड़ा उसको नहीं पकड़ सकता, इसलिए हमरान, अरब जातीय लोग उसका कभी पीछा नहीं करते।

ब्यूबेलिस भी झुंड में रहता है किन्तु उसके पास पहुँचना अति कठिन है क्योंकि दल का एक व्यक्ति संतरी वन के किसी ऊँचे स्थान पर सर्वथा खड़ा रहता है।

ब्यूबेलिस का चमड़ा बहुत मोटा और दृढ़ होता है। नाज भरने के लिए उसके बोरे बनाये जाते हैं।

इलैण्ड

(BOSELAPHUS OREAS)

हरिण-वंश का सबसे बड़ा जन्तु होने का इलैण्ड को गौरव प्राप्त है। क़द में वह लगभग घोड़े के बराबर होता है और शरीर बैल के समान भरा हुआ होता है। गर्दन छोटी और मोटी और रंग हलका लाल होता है। दक्षिणी अफ़्रीक़ा में कभी यह जन्तु बहुत थे, किन्तु दुर्भाग्यवश उनका मांस स्वादिष्ठ होता है और यही उनके विध्वंस का कारण हुआ। वह दिन दूर नहीं है जब उनकी स्मृति-मात्र रह जायगी। इलैण्ड के शरीर पर चर्बी की बहुत बड़ी मात्रा होती है और उसके शरीर का बोझ १,५०० पौंड से २,००० पौंड तक का होता है। अपने भारी शरीर के कारण इलैण्ड में अन्य हरिणों के समान भागने दौड़ने का भी सामर्थ्य नहीं होता, वरन् पीछा किये जाने पर वह शीघ्र ही हाँप कर गिर जाता है। इलैण्ड अत्यन्त सीधी प्रकृति का जन्तु है और सहज ही पालित हो जाता है।

अफ़्रीक़ा के चिकारे

हिन्दुस्तान की चिकारा या गिज़ाला जाति की कई प्रसिद्ध उपजातियाँ अफ़्रीक़ा में भी पाई जाती हैं, जिनमें से कुछ मुख्य का वृत्तान्त दिया जाता है।

(१) **स्प्रिंगबक** (Gazelle Euchore)

स्प्रिंगबक का अर्थ है "उछलनेवाला हरिण"। इस हरिण की अद्भुत छलाँगों के कारण दक्षिणी अफ़्रीक़ा के बोअर-निवासियों ने उसको यह नाम दिया है। मार्ग पर चलते चलते यदि कहीं मनुष्य की गन्ध पा जाता है तो अकस्मात् वह १०-१२ फ़ुट ऊँचा उछल जाता है और १५ फ़ुट आगे जा के गिरता है।

नर की ऊँचाई कन्धों तक लगभग २ फुट ८ इंच होती है और शरीर की लम्बाई ५ फुट से कुछ कम। शरीर का रंग हलका बादामी होता है, किन्तु पेट सफ़ेद होता है और दोनों रंगों के बीच में एक चौड़ी धारी हलके लाल बालों की होती है। हरिण उपवंश का यह एक अत्यन्त सुन्दर जीव है और कोई अन्य जाति इतनी ज्यादा नहीं मिलती।

अफ्रीका की जनसंख्या क्रमश: बढ़ती जाती है, साथ ही साथ जीव-जन्तुओं की संख्या कम होती जाती है, किन्तु कुछ ही समय पहले अफ्रीका के निर्जन सुविशाल जंगल पशु-संसार के क्रीड़ास्थल थे। सुप्रसिद्ध शिकारी और यात्री गार्डन कमिंग को एक बार स्प्रिंगबक के एक बड़े दल को देशान्तरगमन करते देखने का सुयोग हुआ था और उस अद्भुत दृश्य का उक्त शिकारी ने मनोमोहक वृत्तान्त दिया है :—

"२८ तारीख़ को प्रथम बार मुझे स्प्रिंगबक का दल देखने का अवसर प्राप्त हुआ। वे देश के एक भाग को त्याग के किसी दूसरे को जा रहे थे। मैं समझता हूँ कि मैंने ऐसा असाधारण और प्रभावशाली दृश्य कभी नहीं देखा था। सूर्य्योदय के दो घंटे पूर्व से मैं अपनी गाड़ी में पड़ा जाग रहा था और हरिणों के शब्द सुन रहा था। मैंने समझा कि कैम्प के निकट हरिण का कोई बड़ा दल चर रहा होगा। किन्तु प्रभात होते ही मुझे ज्ञात हुआ कि उत्तर की दिशा में स्प्रिंगबक का एक बड़ा दल निकल रहा है। उत्तर-पूर्व दिशा में लगभग एक मील के अन्तर पर एक छोटी सी पहाड़ी पर चढ़ के स्प्रिंगबक दृश्य से विलीन होते जा रहे थे। दल की चौड़ाई भी लगभग आधे मील की थी। इस अपूर्व तथा विस्मयकर दृश्य से आश्चर्य्यान्वित हो मैं क़रीब दो घण्टे तक खड़ा देखता रहा, किन्तु स्प्रिंगबक का दल समाप्त न हुआ।" सुविख्यात शिकारी सर

विलियम हैरिस (Sir William Harris) भी एक ऐसे ही अव-सर का वृत्तान्त देते हैं जिसका सारांश नीचे दिया जाता है :—

"ऐसे अवसर पर हरिणों की संख्या का कोई अन्दाज़ करना असम्भव है। कृषि आदि का सर्वनाश वे टिड्डी-दल के समान ही कर डालते हैं। अपनी जन्मभूमि के मैदानों में से वे निकलते चले आते हैं मानो नदी में बाढ़ आ रही हो। अनावृष्टि के कारण प्रवाह-हीन जलाशयों का रुका हुआ जल भी जब समाप्त हो जाता है तो, जल के अभाव से, हरिणों के संख्यातीत दल शुष्क भूभागों को छोड़ कर निकल पड़ते हैं। फिर जिधर उनका मुँह उठ जाता है उधर सर्वनाश ही सर्वनाश दिखाई पड़ता है। दल का अग्रभाग ही सब चाट के इस प्रकार साफ़ कर देता है कि पिछला भाग भूखों मरने लगता है। दल के संग शेर भी लग जाते हैं और निस्सहाय हरिणों को प्राण बचाने का कोई उपाय नहीं रह जाता। कभी कभी पालतू भेड़ों का कोई गल्ला उनके बीच में पड़ जाता है। फिर एक भेड़ का भी कहीं पता नहीं चलता। खेतों में खड़ी हुई फ़सल, जो आज संध्या समय हरी भरी लहलहा रही थी, कल प्रभात-समय उसका कहीं चिह्न तक नहीं रह जाता। सारे भूभाग पर घास की एक पत्ती तक नहीं रह जाती और चरवाहे अपने गल्लों को लिये मारे मारे फिरने लगते हैं।"

अफ़्रीका की काफिर जाति के लोग इसको "ज़िपी" कहते हैं।

ब्लेसबक (Gezella albifrons)—यह हरिण मटाबली प्रदेश में तथा वाल नदी के दक्षिण में मिलता है। इसके शरीर का रंग विचित्र होता है। सिर और गर्दन गहरे कत्थई, पीठ हलके नीले वर्ण की, शरीर के पार्श्व लाल और पेट सफ़ेद होता है। उसको

देख के ऐसा जान पड़ता है मानो किसी ने रँग दिया हो । इसका देशीय नाम "नुन्नी" है ।

गेम्सबक (Gazella Oryx)—यह हरिण भी दक्षिणी अफ़्रीका के निर्जल मैदानों में होता है और जल के अभाव को रसीली जड़ें खाकर पूरा किया करता है। जड़ों के रस से उसको कई कई दिन तक जल की आवश्यकता नहीं होती। उसके शरीर का ऊपरी भाग भूरा और निम्नभाग श्वेत होता है। दोनों रंगों के मेल पर एक मोटी काली धारी होती है जो शरीर के दोनों पार्श्व से आकर गर्दन के नीचे मिल जाती है। तत्पश्चात् यह धारी मुँह तक चली जाती है और फिर दो भाग में विभक्त हो के आँखों के ऊपर से निकलती हुई सींगों के पास समाप्त हो जाती है । गेम्सबक का देशीय नाम "कूकम" है।

बॉन्टिबक (Gazella pygarga)—अफ़्रीका में लिम्पोपो तथा ज़ेम्बेसी नदियों के बीच में बॉन्टिबक हरिण के झुण्ड मिलते हैं । इसका शिर लम्बा और पतला और थूथन चौड़ा होता है । इसका शिर और गर्दन कत्थई, शरीर के पार्श्व और पुट्ठे काले, पीठ पर नीलवर्ण की कुछ झाईं होती है, और पेट तथा टाँगों का कुछ भाग सफ़ेद होता है।

हार्टबीस्ट (Acronotus Caama)—हार्टबीस्ट बहुत बड़ा हरिण है, उसके कन्धों तक की ऊँचाई ५ फुट और देह की लम्बाई, दुम-सहित, लगभग ९ फुट तक होती है।

हार्टबीस्ट का शिर लम्बा और पतला होता है और उसके शरीर में हरिण की सी चपलता और सौंदर्य्य का कोई अंश नहीं होता। हार्टबीस्ट की चाल ढाल भी भद्दी होती है । उसके शरीर

का रंग नारंगी का सा होता है किन्तु एक काली धारी माथे से नाक तक और अगली टाँगों पर होती है।

हार्टबीस्ट के देशीय नाम "इन्टूसल" और "कामा" हैं।

नू
(THE GNU OR CATOBLEPAS GNU)

इस अद्भुत जन्तु की रचना जन्तुशास्त्रवेत्ताओं के लिए एक समस्या है। उसके बाह्यरूप को देख के यह निश्चय करना कठिन है कि वह हरिण है या घोड़ा या बैल। नू का मुँह और थूथन बैल का सा, टाँगें हरिण की सी, और गर्दन तथा अयाल घोड़े के से होते हैं। उसके सींग भी एक विलक्षण रीति से निकलते हैं। कानों के पास से निकल के पहले वे नीचे को जाते हैं, आँखों के पास पहुँच के बाहर को मुड़ जाते हैं और तब ऊपर को घूम के नुकीले हो जाते हैं। नू के सींग जड़ पर इतने चौड़े होते हैं कि सम्पूर्ण माथे को ढाँक लेते हैं। नर और मादा दोनों के सींग होते हैं। गर्दन के ऊपर काले और सफेद रंग के लम्बे लम्बे बाल होते हैं और ठोड़ी से भूरे बालों की डाढ़ी सी लटकती होती है। नू की लम्बी दुम घोड़े की सी होती है और उसके बाल सफ़ेद होते हैं। आँखों से नाक तक पर भी सीधे, खड़े और मोटे मोटे बाल होते हैं। डील डौल में नू गधे के बराबर होता है।

असाधारण शारीरिक रचना के साथ नू के स्वभाव भी निराले होते हैं। यदि कोई शिकारी उनके दल के पास पहुँच जाता है तो वे विचित्र कौतुक करते हैं। सफ़ेद दुम को फटकारते हैं और नाना प्रकार से उछलते कूदते हैं। कभी आपस ही में लड़ने लगते हैं और कभी एक के पीछे एक घेरा बाँध के चक्कर काटते हैं। अन्त में पंक्तिबद्ध होकर एक के पीछे एक धूल उड़ाते भागते चले जाते हैं।

नू (Catophlepas Gou)
पृष्ठ २२८

शेमाँय (Rupicapra Tragus)
पृष्ठ २२९

गुरल (Nemo-
rhædus
Gooral)
पृष्ठ २३१

ताहिर (Hemitragus Jemlaicus) पृष्ठ २३२

मारखोर (Capra Megaceros) पृष्ठ २३२

इबेक्स (Capra ibex) पृष्ठ २३४

एक यात्री लिखता है कि दक्षिणी अफ़्रीका में उनके कैम्प के निकट आकर नू के झुण्ड घंटों तक टकटकी लगाये खड़े देखा करते थे। बन्दूक़ का शब्द होते ही सारा झुण्ड तुरन्त भाग जाया करता था।

आक्रमण करते समय नू पहले अपने घुटने धरती पर टेक लेता है और तब सवेग उछल के दौड़ता और सींग मारता है। नू मनुष्य से डरता है, केवल अपनी रक्षा के लिए घात कर बैठता है। कामोद्दीपनकाल में नर नू घोर नाद करते हुये अकेले घूमते फिरते हैं। नू की पूँछ के कोमल बाल चँवर बनाने के काम में आते हैं।

आरेन्ज नदी के उत्तर में नू की एक दूसरी उपजाति भी होती है जिसकी दुम और गर्दन पर के बाल काले होते हैं।

शेमॉय

(THE CHAMOIS—RUPICAPRA TRAGUS)

शेमॉय हरिण योरप महादेश का निवासी है। एल्प्स पर्वत-श्रेणी पर और दक्षिणी योरप के पहाड़ों पर इस सुन्दर हरिण के झुण्ड मिलते हैं। शरीर की रचना में बकरी और हरिण दोनों ही के लक्षण उसमें पाये जाते हैं।

शेमॉय का क़द छोटे बकरे का सा होता है। वह प्रायः हिमाच्छादित शिखरों के पास ही वास करता है और शीत के सहन करने के लिए प्रकृति ने उसके शरीर को बालों की दुहरी तह से ढक दिया है। उनमें से एक तह के बाल ऊनी होते हैं। गगनचुम्बी चोटियों पर वह एक चट्टान से दूसरी पर ऐसी दक्षता से भागता फिरता है जैसे मछली जल में तैरती हो। इसी से शेमॉय के शिकार में भयानक जोखमों का सामना करना पड़ता है और शेमॉय के शिकारी कभी न कभी अपने प्राण खोते हैं।

बकरी उपवंश

(THE CAPRINÆ)

यह वंश 'बोवाईडे' अर्थात् गो-वंश का दूसरा उपवंश है। इस उपवंश के नर और मादा दोनों ही के सींग होते हैं। सींग की भीतरी हड्डी का भाग मोटा होता है। मुँह में कीले नहीं होते। बहुधा मादा के केवल दो थन होते हैं। इस उपवंश के जन्तु तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं, यथा—

(१) केप्रिकार्न अथवा हरिणवत् बकरे
(२) बकरे, और
(३) भेड़

केप्रिकार्न विभाग

केप्रिकार्न (Capricorn) विभाग के जन्तुओं के सींग गोल, पीछे को घूमे हुए, और छोटे होते हैं। सींग नर और मादा दोनों के होते हैं। हरिणों की अपेक्षा इनके शरीर भारी, टाँगें मोटी और खुर बड़े होते हैं। जन्तु-जगत् में ये जीव हरिण और बकरे के बीच की मध्य अवस्था के द्योतक हैं। कोई कोई इनको हरिण की उपजाति में स्थान देते हैं। जन्तुशास्त्र-वेत्ता ब्लाईथ, हॉजसन तथा डाक्टर जर्डन सब एकमत हैं कि इनको बोवाईडे (Bovidæ) वंश की बकरी की उपजाति में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

इस विभाग में बहुत सी उपजातियाँ (genera) हैं जिनमें से मुख्य मुख्य का उल्लेख नीचे किया जाता है।

सेरू

(NEMORHÆDUS BUBALINA)

काश्मीर से शिकिम तक, पर्वतराज हिमालय पर ६,००० फुट की ऊँचाई से १२,००० फुट तक यह बकरा घने जंगलों में

मिलता है। उनके शरीर का ऊपरी भाग काला, निम्नभाग श्वेत और टाँगें भूरी होती हैं। ऊँचाई लगभग एक गज़ और वज़न दो मन से कुछ अधिक होता है। गरदन पर मोटे और कड़े बालों के अयाल होते हैं। सींग पीछे को बहुत झुके हुए लगभग एक फ़ुट के होते हैं। यद्यपि बाह्यरूप से सेरू एक भद्दा सा जन्तु प्रतीत होता है तथापि उसमें फुर्ती की कमी नहीं होती। सेरू साहसी प्रकृति का जन्तु है। वह जंगली कुत्तों का बड़ी वीरता से सामना करता है और यदि मादा को कोई घायल कर देता है तो नर भागता नहीं है वरन् भीषण होकर शिकारी पर टूट पड़ता है।

काश्मीर में यह बकरा 'रामू' के नाम से प्रसिद्ध है और नैपाल में उसको 'थार' कहते हैं।

गुरल

(NEMORHÆDUS GOORAL)

हिमालय-पर्वत-श्रेणी पर काश्मीर से भूटान तक गुरल सर्वत्र मिलता है। गुरल सेरू के समान ऊँचे दुर्गम पहाड़ों पर नहीं रहता। वह बहुधा केवल ५-६ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर मिला करता है।

रङ्ग गहरा बादामी, जो शरीर के अधोभाग पर कुछ हलका होता है। गले पर श्वेत रङ्ग का एक बड़ा धब्बा होता है। ऊँचाई २½ फ़ुट या कुछ कम और सींग छोटे होते हैं। बकरे की शारीरिक रचना की समता गुरल में स्पष्ट दिखाई देती है। गुरल छोटे छोटे दलों में, जिनमें केवल ५-६ जन्तु होते हैं, रहा करते हैं। धूप में गुरल चट्टानों की छाया में पड़ा रहता है, केवल प्रातःकाल या संध्या हो जाने पर चरने को निकलता है, किन्तु यदि किसी दिन आकाश बादलों से आच्छादित होता है तो गुरल सम्पूर्ण दिन बाहर चरते रहते हैं।

बकरा

ताहिर

(HEMITRAGUS JEMLAICUS)

यह बकरा काश्मीर में 'जगला' कहलाता है, नैपाल में 'झारल' के नाम से प्रसिद्ध है और कहीं कहीं उसको 'भूला' अथवा 'थार' भी कहते हैं। यह हिमालय पर सर्वत्र मिलता है किन्तु मुख्यत: विकट हिमाच्छन्न चोटियों पर रहता है। रङ्ग गहरा-बादामी, ऊँचाई लगभग एक गज़ और सींग छोटे छोटे होते हैं। मादा के चार स्तन होते हैं, बकरों के वंश में किसी अन्य जाति की मादा के चार स्तन नहीं होते। चट्टानों और ढालू पहाड़ों पर चढ़ने में यह ऐसा कुशल होता है कि यदि शिकारी उसको गोली से मार भी ले तो भी बहुधा उसका मृतशरीर हाथ नहीं लगता। ताहिर कलहप्रिय जन्तु है और नरों में प्राय: युद्ध हुआ करते हैं।

मारख़ोर

(CAPRA MEGACEROS)

यह सुन्दर बकरा हिमालय-पर्वत की पीर-पञ्चाल एवं गिलगिट-श्रेणियों पर, अफ़ग़ानिस्तान के पहाड़ों पर, विशेषकर सुले मान श्रेणी पर मिलता है। उसके भारी, बड़े, और पेंच के समान घूमे हुए सींग, पूरे ४ फ़ुट लम्बे होते हैं। नर के लम्बी सी काली डाढ़ी होती है और गरदन तथा छाती भी लम्बे बालों से ढकी होती है जो घुटनों तक लटकते हैं। रंग ग्रीष्म-ऋतु में भूरा होता है किन्तु शरद् काल में धुमैला श्वेत हो जाता है। ऊँचाई कन्धों तक लगभग ३॥ फ़ुट होती है। उसके सींगों के लिए शिकारी उसको बहुत मारते हैं। "मारख़ोर" शब्द का अर्थ है साँप खानेवाला।

वह इस नाम से क्यों प्रसिद्ध है इसका कारण कुछ समझ में नहीं आता।

साकिन

(CAPRA SIBIRICA)

यह शानदार बड़ा बकरा हिमालय-पर्वत पर काश्मीर से नैपाल तक, और तिब्बत के ढालों पर बहुत मिलता है। यह मध्य एशिया और सायबेरिया में भी पाया जाता है।

एक पूरे नर की ऊँचाई कन्धे तक ४२ इंच की होती है, और शिर-सहित देह की लम्बाई लगभग ५ फुट होती है। नर की अपेक्षा मादा बहुत छोटी होती है। नर के सींग ३६ इंच से ५० इंच तक लम्बाई में होते हैं और उनकी परिधि ८ इंच से १३ इंच तक की देखी गई है। किन्तु मादा के सींग एक फुट से बड़े नहीं होते। नर का रंग कुछ पीलेपन के साथ भूरा होता है, पीठ पर बीच में एक धारी गहरे रंग के बालों की होती है। मादा के रंग में कुछ सुर्ख़ी होती है।

साकिन के गले से काले बालों की डाढ़ी लटकती होती है जो ६ से ८ इंच तक लम्बाई में होती है।

साकिन एक सुन्दर और फुर्तीला जन्तु होता है और हिमाच्छादित चोटियों के निकट ही रहता है। शीत से उनको बहुत कम कष्ट होता है। ग्रीष्म-ऋतु में नर, मादाओं को छोड़ कर, ऊँचे दुर्गम पहाड़ों पर चले जाते हैं, और वहाँ नरों के झुण्डों में ५०-६० अथवा अधिक के दल देखे जाते हैं।

साकिन बड़ा चौकन्ना जानवर है, पर शिकारी लोग एक युक्ति से काम लेते हैं। प्रातःकाल किसी ऐसे शिखर पर चढ़ जाते हैं जो साकिन के वासस्थान से भी ऊँचा होता है। साकिन के झुण्ड

नीचेवाले ढालों पर तो बराबर ताक लगाये रहते हैं पर ऊपर से उनको कोई खटका नहीं रहता।

योरप का इबेक्स

(CAPRA IBEX)

योरप का इबेक्स साकिन का ही भाई-बन्धु है। यह एल्प्स पर्वत-श्रेणी की चोटियों पर मिलता है। इबेक्स भी पहाड़ों ही पर रहता है, वह एक चट्टान से दूसरी पर ऐसी आसानी से कूदता फिरता है जैसे कि मछली जल में तैरती फिरती है। २०-३० फ़ुट ऊँचाई से चट्टानों की ऐसी नोकों पर वह निःसंकोच कूद पड़ता है जिन पर केवल इतना ही स्थान होता है कि वह अपने चारों पैर मिला के खड़ा हो सके।

क़ाफ़ का इबेक्स

(CAPRA ÆGAGRUS)

इबेक्स की एक उपजाति क़ाफ़ पर्वत पर भी मिलती है। किसी किसी का मत है कि हमारे घरेलू बकरे की उत्पत्ति इसी उपजाति से हुई है।

घरेलू बकरा

(CAPRA HIRCUS)

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हमारे घरेलू बकरे किस जङ्गली जाति की नसल हैं। पृथ्वी का कदाचित् कोई ऐसा देश न होगा जिसमें घरेलू बकरे न हों। दूध, खाल, मांस, बाल, और ऊन के लिए वह मनुष्योपयोगी जन्तुओं में से है। ग़रीब आदमी की बकरी ही उसकी गाय है।

भारतवर्ष में कई नसलें घरेलू बकरों की मिलती हैं। लोग मांस और दूध के लिए उनको पालते हैं किन्तु उनके शरीर पर ऊन

नहीं होता। घरेलू बकरे की वंश-वृद्धि बड़ी शीघ्रता से होती है। बकरी प्रतिवर्ष दो बार बच्चे देती है और केवल ६-७ महीनों में ही बच्चों की वृद्धि पूरी हो जाती है।

घरेलू बकरे की एक अति उपयोगी नसल एशिया माइनर और टर्की में पाई जाती है जिसको अंगोरा का बकरा कहते हैं। इसका शरीर बहुत बड़े बड़े ऊनी बालों से ढका होता है। अंगोरा का ऊन अत्यन्त कोमल रेशम का सा होता है। अंगोरा के शरीर पर एक भीतरी तह बालों की भी होती है। यद्यपि उसके बाल कुछ मोटे होते हैं तथापि अंगोरा के ऊन के साथ ये बाल भी काम में आ जाते हैं। मादा का ऊन नर से भी उत्तम होता है। अंगोरा बकरा बहुमूल्य जन्तु है। इस जाति के जन्तु साधारणतः ६०० या ७०० रुपये में बिकते हैं।

घरेलू बकरे की एक दूसरी उत्तम नसल काश्मीर, तिब्बत और मंगोलिया में पाई जाती है। उसके ऊन में मुलायमियत और रेशमी चमक सम्भवतः अंगोरा के बकरे से भी अधिक होती है। काश्मीरी बकरे के शरीर पर भी बालों की दो तह होती हैं। इनमें से भीतरी तह ऊनी होती है। प्रति वर्ष काश्मीरी बकरों का ऊन अपने आप झड़ जाता है। अंगोरा के ऊन के समान उसको काटना नहीं पड़ता। जब ऊन झड़ने का समय आता है तो उनके शरीर कंघों से काढ़ते हैं। इस प्रयत्न से ऊन सहज ही में निकल आता है। काश्मीर के जगत्-प्रसिद्ध अलवान इसी ऊन के बनाये जाते हैं।

भेड़ (Ovis)

भेड़-जाति के जन्तुओं के सींग, भारी, तिकोने और नीचे को घूमेहुए होते हैं। उनके डाढ़ी नहीं होती। बकरे की अपेक्षा उनकी

टाँगें पतली होती हैं। शिर बड़ा और भारी होता है। बकरे की अपेक्षा इनके कान लम्बे और नुकीले होते हैं। भेड़ एशिया, दक्षिणी योरप और उत्तरी अफ़्रीक़ा में होती है।

भारल

(OVIS NAHURA)

भारल भेड़ तिब्बत और शिकिम में तथा कमायूँ और गढ़वाल के पहाड़ों पर मिलती हैं। उनके शरीर का धुमैला नीला रंग कुछ कुछ स्लेट के रंग से मिलता है किन्तु टाँगें काली होती हैं और दुम सफ़ेद। ऊँचाई २½-३ फ़ुट की। घूमे हुए सींगों की गोलाई के ऊपर की नाप लगभग दो फ़ुट होती है। नर से मादा छोटी होती है। जंगली बकरों के समान भारल भी पहाड़ों पर चढ़ने में अत्यन्त कुशल होती हैं और दुर्गम चट्टानों पर उछलती फिरती हैं। भारल १० हज़ार फ़ुट से नीचे पहाड़ों पर शायद ही कहीं मिलती हैं। भेड़ की सभी जातियों के समान भारल भी भीरु होती हैं। दल की रक्षा के लिए सर्वथा दो एक व्यक्ति पहरा देते रहते हैं। किसी प्रकार का भय होने पर सीटी का सा शब्द करके दल को ये सचेत कर देते हैं।

उरिया या उरियल

(OVIS CYCLOCEROS)

उरियल पञ्जाब के पहाड़ों पर और सुलैमान श्रेणी पर मिलता है, किन्तु भारल के समान यह ऊँची चोटियों पर नहीं वरन् हज़ार दो हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर वास किया करता है। शरीर का रंग हलका, भूरा और गले और छाती पर लम्बे काले बाल होते हैं, किन्तु मादा के नहीं। इसकी एक नसल तिब्बत में भी होती है जो ऊँचे पहाड़ों पर रहती है। तिब्बत में इस नसल को 'शा' कहते हैं।

न्यान

(OVIS AMMON)

यह उपजाति हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों पर लगभग १५,००० फ़ुट ऊँचाई पर मिलती है। इसके सींग बहुत मोटे होते हैं। कर्नल मार्कहम बतलाते हैं कि न्यान के सींग २४ इंच के घेरे के देखे गये हैं और वे इस प्रकार घूमे हुए होते हैं कि कोई कोई न्यान समतल भूमि पर घास भी नहीं चर सकते क्योंकि सिर झुकाने से सींगों की नोकें भूमि से अड़ जाती हैं। न्यान हरिण के समान द्रुत-गति से दौड़ सकता है और छलाँगें भी भरता है। किन्तु भारल भेड़ के समान चट्टानों पर उछलने कूदने में दक्ष नहीं होता।

घरेलू भेड़

(OVIS ARIES)

अधिकांश घरेलू जन्तुओं के समान घरेलू भेड़ के विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता कि किस जंगली उपजाति से, या किन जंगली उपजातियों के मेल से उसकी उत्पत्ति हुई है। अन्य घरेलू जन्तुओं के समान मनुष्य ने भेड़ की भी बहुत सी नसलें पैदा कर ली हैं। घरेलू भेड़ की पहिचान दुम के द्वारा तुरन्त की जा सकती है क्योंकि जंगली भेड़ों की अपेक्षा घरेलू भेड़ की सभी नसलों की दुम बड़ी होती है। प्राकृतिक जीवन से वंचित होने और पराधीन रहने के कारण घरेलू भेड़ में जंगली उपजातियों की सी फुरती और तेज़ी का कोई अंश अवशिष्ट नहीं रहा है प्रत्युत उसकी चाल-ढाल धीमी और भद्दी हो गई है। जंगली भेड़ की कोई भी उपजाति मैदानों की रहनेवाली नहीं है, सब पहाड़ों की रहनेवाली हैं। घरेलू भेड़ की बुद्धि भी बहुत मंद होगई है। "भेड़िया-धसान" प्रसिद्ध

है। यदि गोल की आगेवाली भेड़ कुएँ में गिर जाय तो एक के पीछे दूसरी सब उसी में गिरती जायँगी।

अनेक देशों में भेड़ ऊन की प्राप्ति के लिए पाली जाती है। स्पेन में विख्यात मेरिनो (Merino) भेड़ मूर मुसलमानों के द्वारा लाई गई थी। अब उसकी नसलें योरप, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में सर्वत्र फैल गई हैं। मेरिनो के सारे शरीर पर उत्तम प्रकार का ऊन होता है।

मिस्र, सीरिया और एशिया के अन्य देशों में एक भेड़ होती है जिसकी दुम में चर्बी और मांस की बहुत बड़ी मात्रा निकलती है। इस भेड़ को दुम्बा कहते हैं। अफ़्रीक़ा में कहीं कहीं दुम्बे की दुम इतनी भारी और बड़ी होती है कि उसको साधने के लिए भेड़ के पीछे एक छोटी सी गाड़ी बाँध दी जाती है। यदि दुम गाड़ी पर न रक्खी रहे तो वह भूमि से रगड़ खाती है और भेड़ को चलने फिरने में कष्ट होता है। दुम्बे के दुम का मांस अत्यन्त स्वादिष्ट समझा जाता है और उसका बोझ २५-३० सेर तक होता है।

हिन्द में एक नसल घरेलू भेड़ की है जिसके केवल एक मोटा सा सींग शिर के बीच में होता है।

ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में भेड़ पालने का बहुत बड़ा व्यवसाय है। उनका ऊन और मांस बाहर भेजा जाता है। अनुमान किया जाता है कि आस्ट्रेलिया में लगभग ६ करोड़ भेड़ें होंगी। प्रत्येक कृषक के पास इतनी भूमि है कि भेड़ें मीलों के घेरों में चरती रहती हैं और उनकी वंशवृद्धि होती रहती है।

अमेरिका का बिसन (Bison Americanus) पृष्ठ २३६

बिसन (The Bison) पृष्ठ २३६

कस्तूरी बैल (The Musk Ox) पृष्ठ २४४

योरप की बिना कूबड़वाली गाय (Bos Taurus) पृष्ठ २४६

गौर या जङ्गली खुलगा (G. Gaurus) पृष्ठ २४७

गो-उपवंश

(SUB-FAMILY BOVINÆ)

रोमन्थकर श्रेणी के बोवाइडे (Bovidæ) वंश का यह तीसरा उपवंश है। इस उपवंश के जन्तु तीन भागों में विभक्त किये जा सकते हैं, अर्थात्—

(१) बिसन-भाग (Bisontine)

(२) गो-भाग (Taurine)

(३) भैंसा-भाग (Bubaline)

बिसन

(THE BISON)

बिसन विभाग के अन्तर्गत केवल एक जाति (Genus) बिसन की है जिसकी दो उपजातियाँ पृथ्वी पर मिलती हैं, अर्थात्—

(१) अमेरिका का बिसन (Bison Americanus)

(२) योरप का बिसन (Bison Bonassus)

अमेरिका का बिसन

यह विशाल बलवान् जन्तु उत्तरी अमेरिका का निवासी है। कुछ ही वर्ष पहले इस जन्तु के अगणित दल अमेरिका के विस्तृत घास के मैदानों में स्वच्छन्द विचरते फिरते थे, किन्तु बड़े खेद से कहना पड़ता है कि अब उसके दर्शन भी दुर्लभ होते जाते हैं। एक एक दल में उनकी संख्या लाखों तक पहुँचती थी। केवल ६० वर्ष की बात है कि कानसास-पैसिफ़िक रेलवे लाइन के किनारे बिसन का एक दल देखा गया था जो सौ मील की लम्बाई में फैला हुआ था।

बिसन के शरीर का सबसे ऊँचा भाग उसके कन्धे होते हैं। अपने भारी शिर को वह सदा नीचे लटकाये रहता है। शरीर का

अग्रभाग, मुँह, गरदन, शिर और कन्धे, सब लम्बे लम्बे बालों से ढके होते हैं। गरदन से लटकती हुई लम्बी डाढ़ी और झबरे बालों के कारण उसकी आकृति अत्यन्त गंभीर और डरावनी प्रतीत होती है।

बिसन के अग्र भाग के लम्बे बालों का रंग धुमैला या काला होता है, शेष शरीर पर छोटे, घने, भूरे बाल होते हैं।

बिसन के काले सींग बहुत छोटे छोटे होते हैं और एक दूसरे से बहुत अन्तर पर होते हैं। दुम छोटी सी और उसके सिरे पर बालों का एक गुच्छा होता है। शरीर आगे से पीछे को ढालू होता है। बिसन को देखते ही मालूम हो जाता है कि उसका सारा बल शरीर के अग्रभाग में है, पिछला भाग बहुत निर्बल होता है। ऐसे दीर्घ शरीर की अपेक्षा उसके खुर बहुत छोटे होते हैं।

यद्यपि बिसन की आकृति डरावनी होती है तथापि उसकी प्रकृति हिन्दुस्तान के अरना भैंसे और केप के भैंसे के समान भीषण नहीं होती। बिसन पूर्णतया निर्दोषी और सीधा जीव होता है। घायल हो जाने पर भी यथासंभव भाग कर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता है, केवल घिर जाने पर उत्तेजित हो कर कभी कभी अपने अपूर्व बल से सामना करने को तैयार हो जाता है।

मनुष्य के हाथ से ऐसा विध्वंस शायद ही किसी जन्तु का हुआ होगा जैसा कि बिसन का। कुछ ही वर्ष पहले जिस जन्तु के दल १००-१०० मील भूमि को आच्छादित कर देते थे उसी के विषय में आज यह चिन्ता हो रही है कि वह पृथ्वी पर से लुप्त न हो जाय और कनाडा एवं अमेरिका की संयुक्त रियासतों के द्वारा अब इस जाति के अवशिष्ट जन्तुओं की रक्षा की जाने लगी है।

अमेरिका के आदिम निवासी सदा से ही बिसन के शत्रु थे। उसके मांस को खाते थे और खाल के वस्त्र, जूते तथा डेरे बनाया

करते थे। ये लोग निपुण अश्वारोही होते हैं, घोड़े को बिसन के दल के पास तक ले जाकर ऐसा तीर मारते थे कि वह जड़ तक शरीर में घुस जाता था और एक ही तीर से बिसन का काम पूरा हो जाता था। वे केवल खाल और पीठ पर के कूबड़ का मांस ले लेते थे। मृत शरीर के शेष अंश पड़े सड़ते रहते थे अथवा गिद्ध और भेड़ियों के बाँटे पड़ते थे।

कभी कभी इन आदिम-निवासियों की बड़ी बड़ी मण्डलियाँ शिकार को जाती थीं और बिसन के दल को किसी पहाड़ी के खड्ड की ओर को हाँक ले जाती थीं। आगे बढ़ने का मार्ग न पाकर बिसन ऐसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते थे कि उनमें से सैकड़ों स्वयं नीचे कूद पड़ते थे और प्राण खोते थे।

सभ्यताभिमानी योरोपियन लोगों के आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के पहुँचने पर इस जाति का विध्वंस पूरा होगया। बन्दूक के सामने बिसन के से निर्दोषी और निर्बुद्धि जीव का सर्वनाश अनिवार्य था। कर्नल डॉज लिखते हैं कि एक शिकारी के हाथ से दिन भर में कई सौ बिसनों का वध साधारण बात थी। जहाँ सहस्रों जन्तु पास पास चर रहे हों वहाँ निशाना लगाने की भी आवश्यकता नहीं होती थी। बुद्धिहीन बिसन में इतनी समझ भी नहीं होती है कि गोली चलने पर वह भाग कर अपनी रक्षा करे। बन्दूक से जब एक गिर पड़ता है तो सबके सब चौंक उठते हैं, चारों दिशा में आँखें फाड़ फाड़ कर देखते और फुनकारें मारते हैं। कोई कोई उद्विग्नता के आवेश में इधर उधर दस पाँच क़दम दौड़ते और भागते हैं। किन्तु उनका भय क्षणस्थायी होता है। शीघ्र ही वे शान्त हो फिर चरने लगते हैं। इस प्रकार शिकारी अपने स्थान पर बैठा बैठा सारे दल को मार लेता है।

सन् १८७२ ई० में इस बात का पता लगा कि बिसन की खाल उपयोगी होती है और बिक भी सकती है। तभी से बन्दूकधारी

लोग उसके विनाश पर उतारू होगये। अमेरिका के सुविशाल घास के प्रअरी (Prairies) नामक मैदानों में बिसन के वध के कारण निस्तब्धता छा गई, क्योंकि उन विस्तीर्ण मैदानों में बिसन और रेड इण्डियन जाति के मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य कोई जीवधारी बसते ही न थे। सारा वायुमण्डल सड़े मांस की दुर्गन्ध से दूषित होगया। कर्नल डॉज बतलाते हैं कि उन्होंने एक जगह में ११२ बिसनों के मृत शरीर पड़े देखे थे जिनको अकेले एक शिकारी ने, एक जगह बैठे बैठे ४५ मिनट में मारा था। उक्त कर्नल साहब का अनुमान है कि सन् १८७२ से सन् १८७४ ई० तक ५३,७३,७३० बिसनों का संहार बन्दूकों के द्वारा हुआ।

इसमें कोई अत्युक्ति भी नहीं मालूम होती। मेजर लेविसन लिखते हैं कि "लीविनवर्थ नगर के एक कारख़ाने में ३०,००० खालें प्रति मास पहुँचा करती थीं, और कानसास नगर के दो कारख़ानों में पन्द्रह पन्द्रह हज़ार खालें प्रति मास आती थीं। अर्थात् इन कारख़ानों के लिए प्रतिदिन २,००० बिसन का संहार किया जाता था। कानसास पैसिफ़िक रेलवे के स्टेशनों पर बिसन की खाल के बृहत् ढेरों से पता चलता है कि उनका कितना वध निरन्तर किया जा रहा है। बिसन की खालों के दो सबसे बड़े ग्राहक हैं लीविनवर्थ के मेसर्ज़ डर्म्फी और सेंट लुई के मिस्टर बाट्स। कहा जाता है कि एक वर्ष में उनके हाथों से २,००,००० खालों का क्रय-विक्रय हुआ। न्यूयार्क नगर के बड़े बड़े व्यापारी इन खालों का मूल्य इस प्रकार देते हैं:—१६½ डॉलर प्रथम दर्जे की खालों का, १२½ डॉलर दूसरे दर्जे की, और ८½ डॉलर साधारण खालों का।

योरप का बिसन

(BISON BONASUS)

इस बृहत्काय जन्तु के शरीर की लम्बाई दुम छोड़ कर लगभग १० फ़ुट होती है और कन्धों की ऊँचाई ६ फ़ुट को।

उसके सींग बड़े बड़े होते हैं और शरीर के अग्रभाग पर मोटे, कड़े, भूरे बाल होते हैं। गले से लंबे लंबे बाल लटकते हैं। शेष सारे शरीर पर छोटे काले रंग के बाल होते हैं। इनकी संख्या क्रमशः घटती जा रही है और इस जाति के शीघ्र ही लुप्त हो जाने में अब कोई सन्देह नहीं है। लिथुवेनिया के जंगल में इस जाति के लगभग १,००० जीव शेष रह गये थे, किन्तु १८७२ ई० में उनमें से भी केवल ५२८ ही जीवित रह गये थे। इस उद्देश्य से कि योरप का बिसन पृथ्वी पर से लुप्त न हो जाय उनको पालतू जन्तु बनाने की भी चेष्टा की गई किन्तु इसमें सफलता न हुई।

बनचौंर

(THE YAK OR BISON GRUNIENS)

याक या "बनचौंर" एशिया का निवासी है और हिमालय के पार चीनी तातार के निकटवर्ती पर्वतों पर मिलता है। स्तनपोषित समुदाय के जन्तुओं में बनचौंर सबसे अधिक ऊँचाई पर रहने-वाला जीव है। वह २०,००० फ़ुट ऊँचे पहाड़ों पर भी मिलता है और अत्यधिक शीत का प्रेमी है।

याक का रूप घने बालों के कारण असाधारण प्रतीत होता है। शरीर का सारा ऊपरी भाग घने, ऊनी बालों से ढका होता है और दोनों पार्श्व में लंबे लंबे बालों की घनी झालर लटकती है। उसके बाल क्रमशः बढ़ते रहते हैं। चलने में भूमि से लगते हैं और टाँगों तक को ढाँक लेते हैं। बनचौंर की सुन्दर लम्बी सफ़ेद दुम में बहुत बड़े बड़े बाल होते हैं। भारतवर्ष में उसकी दुम के बाल, चँवर बनाने के काम में आते हैं।

याक का रंग बहुधा काला होता है, किन्तु कभी कभी उसके बगल के बाल सफ़ेद और शेष शरीर काला होता है। याक का

क़द एक छोटे से बैल के बराबर होता है। बनचौंर मनुष्योपयोगी जन्तु है और सहज ही पालतू हो जाता है। पथरीली, ऊँची-नीची पहाड़ियों पर चढ़ने उतरने में उसकी निपुणता आश्चर्यजनक होती है। वह सवारी का भी काम देता है और कृषि में भी काम आता है।

कस्तूरी बैल

(THE MUSK OX, OR OVIBOS MOSCHATUS)

कस्तूरी बैल के शरीर की रचना में बैल और भेड़ दोनों ही के जाति-लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसी से विज्ञान में उसको "भेड़-बैल" (Ovibos) का नाम दिया गया है। यह जन्तु घरेलू बैल से बहुत छोटा होता है और बाह्यरूप में एक बड़ी-सी भेड़ के समान होता है।

कस्तूरी बैल उत्तरी अमेरिका के उत्तरी पथरीले चट्टानों का निवासी है। उसके शरीर में से एक प्रकार की दुर्गन्ध निकला करती है, जिसके कारण उसको कस्तूरी बैल के नाम से प्रसिद्ध किया जाता है। यह दुर्गन्ध नर, मादा और बच्चे सभी के शरीर से आया करती है।

कस्तूरी के शरीर पर लंबे बादामी रंग के बाल होते हैं जो शरीर के दोनों बग़ल लटकते रहते हैं किन्तु कन्धों के ऊपरवाले बाल छोटे, मोटे और घूँघरदार होते हैं। उसके मोटे सींग जड़ पर एक दूसरे से मिले होते हैं।

कस्तूरी बैल झुण्ड में रहा करते हैं जिनमें प्राय: २ -२५ जन्तु होते हैं किन्तु प्रत्येक दल में नर केवल दो ही तीन होते हैं, शेष मादाएँ होती हैं।

गो

(TAURINE)

गो उपवंश के गोभाग में तीन जातियाँ हैं, अर्थात्—

(१) हिन्दुस्तान के कूबड़वाले गाय-बैल (Bos),

(२) योरप के बिना कूबड़ के गाय-बैल (Taurus),
(३) गेवियूज़ (Gavæus),

हिन्दुस्तान के कूबड़वाले बैल

(Bos Indicus)

कूबड़वाले गाय-बैलों की बहुत सी नसलें (Varieties) हिन्दुस्तान में मिलती हैं। हिन्द से बाहर चीन तथा पूर्वी अफ्रीका में भी कूबड़वाले बैल मिलते हैं। हमारे घरेलू गाय-बैल सब इसी जाति के जन्तु हैं परन्तु इस जाति के कोई जीव जंगली दशा में नहीं मिलते।

किसी देश के लिए किसी जन्तु का अस्तित्व इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि गाय-बैल का भारतवर्ष के लिए है। ९० प्रतिशत भारतवासियों की जीविका का सहारा उन्हीं पर है। अत: यदि भारतवासी उनको पूज्य और पवित्र मानते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

हिन्दुस्तान के अनेक भागों में गाय-बैल जंगली होगये हैं किन्तु वे सब पालतू जन्तु ही थे जो संयोगवश स्वामिहीन हो स्वाधीनता पा गये हैं।

हमारे घरेलू गाय-बैल उतने बलवान् जन्तु नहीं रह गये हैं जितने कि गो-वंश की जंगली जातियों के जन्तु होते हैं। यह स्वाभाविक है क्योंकि पराधीनता से सब प्रकार की अवनति ही होती है। उनकी इन्द्रियाँ भी जंगली जातियों की सी बलवती नहीं रह गई हैं क्योंकि खूँटे से बँधे बँधे सब अभावों की पूर्त्ति हो जाने के कारण सभी इन्द्रियों की शक्तियाँ मंद पड़ जाती हैं।

योरप के बिना कूबड़ के बैल

(Bos Taurus)

योरप के सब गाय-बैलों की रचना में यह विशेषता है कि उनकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता।

प्राचीन काल में इँगलंड तथा योरप के अन्य देशों के जंगलों में गाय-बैलों की एक जंगली जाति फैली हुई थी, जिनको ऑरक्स (Aurochs) का नाम दिया जाता था। योरप के आधुनिक घरेलू गाय बैलों की उत्पत्ति उन्हीं से हुई है। मिस्टर लिडेकर बताते हैं कि इस जाति के जीव योरप में बारहवीं शताब्दी में लुप्त होगये। रोम के सम्राट्, विजयी जूलियस सीज़र, ने लिखा है कि उनके समय में इँगलैंड के जंगली बैल क़द में हाथी से कुछ ही छोटे होते थे। तब वीरों की वीरता का अनुमान इसी से किया जाता था कि उसने कितने बैलों का शिकार किया।

रोन नदी के मुहाने पर एक बृहत् भूभाग दलदलों और जंगलों से आच्छादित है जिसको केमार्ग (Camargue) कहते हैं। इस दलदली भूखण्ड में अब भी गाय-बैलों के बड़े बड़े झुण्ड हैं जो प्राय: जंगली हैं। इनका रंग काला, शरीर साधारण और सींग बहुत बड़े होते हैं।

दक्षिणी अमेरिका पर जब योरोपियन लोगों ने अधिकार किया था तब वहाँ के वनों में उन्होंने कुछ गाय-बैल छोड़ दिये थे। इनकी सन्तानों के बहुत से झुण्ड लाप्लाटा नदी के किनारे बड़े बड़े मैदानों में फैल गये हैं। कुछ दिन पहले वहाँ असंख्य गाय-बैल केवल चमड़े के लिए मार डाले जाते थे, और सारे संसार में उनकी खालें बिकती थीं। किन्तु अब ब्वेनस आयरीज़ देश में इन चौपायों को मार कर उनके मांस का सत तैयार किया जाने लगा है और योरप के देशों में उसकी बड़ी बिक्री है।

गेवियुज़

(GAVÆUS)

गो-उपवश के गो-भाग की तीसरी जाति Genus) गेवियुज़ है। इनका शिर बहुत बड़ा और भारी होता है; इनके बड़े बड़े सींगें एक तरफ़ कुछ चपटे होते हैं। ये सींग बहुत मोटे, एक दूसरे से दूर और फैले हुए होते हैं। इनके गले के नीचे की लटकती हुई खाल या तो होती ही नहीं या छोटी होती है। इनकी दुम भी घरेलू गाय-बैलों से छ टी होती है।

गेवियुज़ जाति की तीन उपजाति पूर्वी-दक्षिणी एशिया में मिलती हैं, अर्थात्—

(१) गौर (G. Gaurus)
(२) गयाल (G. Frontalis)
(३) जावा का बैल G. Sondaicus)

गौर

(GAVÆUS GAURUS)

गो-उपवंश में बहुत से दीर्घकाय प्राणी हैं किन्तु गौर से बड़ा कोई नहीं होता। उसके शरीर की लंबाई ९-१० फ़ुट की, और कन्धों तक की ऊँचाई ६ फ़ुट या अधिक होती है। उसका शिर विशाल और गोल होता है। आँखें छोटी, मुँह भारी और भरा हुआ और कान चौड़े होते हैं। आँखों की पुतलियों का रंग हलका नीला होता है। समूचा शिर छोटे, घने, गहरे बादामी रंग के बालों से ढका होता है। गरदन छोटी भारी और बड़ी मोटी होती है। सीना चौड़ा, कन्धे ऊँचे और सुडौल और अगली टाँगें बहुत छोटी छोटी होती हैं। कन्धों के ऊपर कूबड़ उठा होता है और शरीर का अग्रभाग पिछले भाग की अपेक्षा अधिक बलशाली और ऊँचा

होता है। उसका रंग गहरा बादामी किन्तु टाँगें सफ़ेद होती हैं। मादा के कूबड़ नहीं होता।

गौर के सींग चिकने और चमकदार होते हैं जिनका रंग कुछ हलका हरापन लिये होता है। उसके बड़े बड़े सींगों की परिधि जड़ पर १½ फ़ुट से भी अधिक होती है।

मिस्टर हिक्स ने एक गौर मारा था जिसका नाप वे निम्न-लिखित बताते हैं।*

कन्धों तक की ऊँचाई.........६ फ़ुट ६ इंच

सींगों की परिधि............१८ इंच

सींगों की लबांई............२७ इंच, किन्तु लगभग ६ इंच सींग ऊपर टूट गया था।

गौर हिन्दुस्तान का निवासी है और पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों पर, दक्षिणी हिन्द के जंगलों में, उड़ीसा, नैपाल और हिमालय की तराई के पूर्वी भाग में मिलता है। ब्रह्मा से मलय प्रायद्वीप तक भी गौर होता है।

गौर बहुधा छोटे छोटे झुण्डों में रहा करता है जिनमें प्राय: एक नर और १०-१५ मादाएँ हुआ करती हैं। हाथी के समान गौर का भी कोई कोई नर दल से निकाल दिया जाता है। ऐसे निकाले हुए नर बड़ा उपद्रव किया करते हैं और निष्कारण सब पर आक्रमण करते हैं। किन्तु साधारणत: गौर सीधे स्वभाव का होता है और कृषकों के सिवाय और किसी को उनसे हानि नहीं पहुँचती। केवल अनाज के खेतों पर वे डाकू के समान टूटते हैं और खेतवालों को भगा कर खेतों का नाश कर डालते हैं।

---

* Hick's "Forty Years Among the Wild Beasts of India."

गौर पहाड़ियों पर सुविधा से चढ़ जाते हैं। ग्रीष्मकाल में पहाड़ियों से नीचे आजाते हैं और इनके अलग अलग कई झुण्ड एक ही जंगल में निवास करते हैं और वर्षा हो जाने पर फिर पहाड़ों पर रहने लगते हैं। किन्तु नमक उनके स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है और नमक चाटने के लिए उनको बार बार नीचे उतरना पड़ा करता है।

बलवान् और दीर्घकाय होते हुए भी गौर अत्यन्त कायर और चौकन्ना जन्तु होता है। मनुष्य की उपस्थिति का पता, दल के जिस जन्तु को सबसे पहले चलता है वह तुरन्त खुर उठा उठा के भूमि पर पटकने लगता है और सारा दल जंगल के भीतर को, पेड़, पौधे, झाड़ियाँ तोड़ते कुचलते भाग पड़ते हैं। जब वे विश्राम करने को बैठते हैं तो घेरा बना लेते हैं। सबके मुँह बाहर को रहने के कारण उनको चारों दिशाओं का दृश्य मिलता रहता है।

मिस्टर स्टेबिंग लिखते हैं, "यद्यपि हिन्द का बिसन सुदीर्घ पशु होता है, तथापि हिन्द के जंगलों में जितने जन्तुओं से हम परिचित हुए उनमें सबसे भीरु और सबसे चौकन्ना बिसन ही होता है। उसकी श्रवण शक्ति की तीक्ष्णता अलौकिक सी होती है। केवल यही नहीं वरन् उसकी घ्राणेन्द्रिय भी ऐसी तीव्र होती है कि शत्रु की गन्ध उसको बहुत दूर से मालूम हो जाती है। इसके अतिरिक्त उसने शरीर भी विशाल और बलशाली पाया है। उसके शिर पर बहुत बड़े और भारी सींग होते हैं जिनसे वह घिर जाने पर काम लेता है। घायल होने पर वह शत्रु पर भयानक आक्रमण करता है।*

* "Jungle By-ways in India," by Mr. E. P. Stebbing, F.R.G.S., F.Z.S.

गौर बाँस की कोमल पत्तियाँ बहुत खाता है। गौर के बच्चे पालने के बहुत उपाय किये गये किन्तु वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहते।

गौर को 'गौरी गाय', 'जंगली खुलगा', 'बनगो', 'बनपड़ा' आदि नाम भी भिन्न भिन्न भागों में दिये जाते हैं।

गयाल

(GAVÆUS FRONTALIS)

गयाल या मिथन ब्रह्मपुत्र नदी से पूरब के प्रदेशों में, तथा आसाम में और मिशमी पहाड़ियों पर होता है।

गयाल के नर और मादा दोनों का रंग कुछ कालिमा लिये होता है किन्तु टाँगों का रंग भूरा या सफ़ेद होता है।

गयाल एक भारी और कुछ भद्दा जन्तु होता है। उसका शिर चौड़ा और मस्तक चपटा होता है। उसकी शारीरिक गठन कुछ कुछ गौर हो से मिलती जुलती है किन्तु क़द में गयाल बहुत छोटा होता है, उसकी टाँगें भी छोटी होती हैं। सींग भारी और मोटे होते हैं और उनका रंग काला होता है। गयाल सहज ही पालतू हो जाता है और उन प्रदेशों में घरेलू गाय-बैल के समान बहुत पाला जाता है।

जंगली दशा में गयाल बहुधा पहाड़ियों पर रहता है और पथरीली पहाड़ियों पर चढ़ने में निपुण होता है।

गयाल को भी नमक, और खारवाली मिट्टी, बहुत प्रिय होती है। चिटगाँव के पास जंगली गयाल पकड़ने के लिए यह प्रयत्न करते हैं कि नमक और खारवाली मिट्टी के गोले बना के जंगल में डाल देते हैं। गयाल के झुण्ड इनके लोभ से फिर जंगल छोड़ कर नहीं जाते। तब पकड़नेवाले अपने पालतू गयालों को

गयाल (Gavaeus Frontalis) पृष्ठ २५०

स्लॉथ (Bradipodidae) पृष्ठ २५७

दो उँगलीवाले स्लॉथ (Cholopus Didactylus) पृष्ठ २५८

आर्माडिलो (Dasypus or Armadillo) पृष्ठ २५८

बड़ा चींटीखोर (Myrmecophaga Jubate) पृष्ठ २६०

साल (Manis Pentadaetyla) पृष्ठ २६२

उनके पास हाँक देते हैं और शीघ्र ही दोनों में परिचय हो जाता है। तब पकड़नेवाले स्वयं जाते हैं और पालतू गयालों को प्यार करते हैं। शीघ्र ही मनुष्य की उपस्थिति से जंगली गयाल चौकन्ना और झिझकना छोड़ देते हैं और तब कुछ सप्ताहों के उपरान्त, नमक ही का लालच देते हुए, जंगली और पालतू जन्तुओं के मिले हुए झुण्ड को पकड़नेवाले हाँक लाते हैं।

जावा का बैल

(Gavæus Sondaicus)

यह उपजाति ब्रह्मा, मलय प्रायद्वीप, और स्याम में मिलती है। जावा, बोर्नियो और बालि नामक द्वीपों में वह होता है। यह गयाल के समान भारी जन्तु नहीं होता। उसके शिर और सींग भी छोटे होते हैं। रंग काला, किन्तु पिछला भाग और टाँगें नीचे की ओर सफ़ेद होती हैं। ये बैल सदा समतल भूमि पर जंगलों में रहा करते हैं, पहाड़ियों और पथरीली भूमि पर नहीं जाते।

जावा द्वीप में उनके झुण्ड के झुण्ड पाले जाते हैं।

अरना

(Bubalus Buffalus)

बोवाइडे-वंश के बेब्यूलस अर्थात् भैंसाभाग की प्रधान जाति अरना है। अरना भी भारतवर्ष ही का निवासी है। हिमालय की तराई में, बंगाल के सुन्दरबन में, आसाम में तथा ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे अरना मिलता है। मध्य हिन्द के जंगलों से गोदावरी नदी के किनारे तक और लंका के उत्तरी भाग में भी यह विशाल जन्तु पाया जाता है।

अरना का क़द गौर से छोटा नहीं होता। शरीर का रंग धुँधला स्लेट का सा कुछ कालिमा लिये हुए होता है। पूँछ छोटी

और माथे और घुटनों पर बालों के गुच्छे होते हैं। अरना के अत्यन्त बड़े सींगों के कारण उसकी आकृति बड़ी भयानक जान पड़ती है। आसाम में अरना के सींग सीधे और बहुत बड़े होते हैं। लंदन के अजायबघर में अरना का एक सींग है जो ६½ फुट लम्बा है। अरना के एक सींग की गुलाई जड़ पर १ फुट ८ इंच थी। यह जन्तु आसाम में मारा गया था। किन्तु अन्य स्थानों में अरना का सींग एक गज़ से लम्बा नहीं होता।

दिन भर अरना किसी झील अथवा दलदल के किनारे ऊँची ऊँची घास और झाड़ियों में पड़ा सोता रहता है क्योंकि सूर्य्यताप में उसको बहुत कष्ट होता है। रात्रि होने पर वह बाहर आता और चरता फिरता है।

अरना बड़े बड़े दलों में रहा करता है। केवल एक विशेष ऋतु में प्रत्येक नर कई मादाओं को लेकर अलग चला जाता है और बड़ा दल कई छोटे छोटे दलों में विभक्त हो जाता है।

अरना भैंसे की प्रकृति की भयंकरता और क्रूरता अवर्णनीय है। शत्रु के सामने वह क्रोधांध हो जाता है। घायल हो जाने पर उसकी भीषणता का ठिकाना नहीं रहता। संभवत: घायल शेर के हृदय में भी कुछ अंश भय का विद्यमान होता होगा और भीषण प्रतिघात करते समय अपनी रक्षा का कुछ थोड़ा बहुत ध्यान शेर के मन में भी रहता होगा। किन्तु घायल भैंसा क्रोधाग्नि में जलने लगता है और लाल लाल आँखें विस्फारित कर, अपनी कुशल का ध्यान और जीवन का मोह छोड़, शत्रु के ऊपर टूटता है। भैंसे के आक्रमण के सामने बड़े बड़े शिकारियों के दिल दहल जाते हैं और जो पूर्णतया सावधान और शान्त रह कर अचूक निशाना नहीं लगा सकते उनके प्राण बचने का कोई ठिकाना नहीं रह जाता।

शत्रु को परास्त कर लेने पर भैंसा अपनी राक्षसी प्रकृति का परिचय देता है। शत्रु को मार डालने पर भी उसको संतोष नहीं होता वरन् क्रोधावेश से वह घंटों शत्रु के मृतशरीर को पैरों से कुचलता और सींगों से छेदता रहता है। कभी उसको घुटनों से दबाता है और कभी ठोकरें मारता है। शिकारी को कुचल कुचल के वह ऐसा विरूप कर देता है कि उसकी आकृति पहचानी नहीं जा सकती।

अरना की भयंकरता के कारण लोग प्रायः उसके शिकार के लिए हाथी पर जाते हैं। मिस्टर हॉजसन बतलाते हैं कि कभी कभी उसके प्रचण्ड धक्के से हाथी भी ज़मीन पर गिर जाता है। अरना बड़ा कलहप्रिय होता है और नरों में प्रायः मुठभेड़ हो जाया करती है। उनके विशाल शिरों की टक्करें देखने योग्य होती हैं। हारने-वाला रणक्षेत्र को छोड़ कर भाग पड़ता है किन्तु विजयी भैंसा उसका सहज में पीछा नहीं छोड़ता। शत्रु को पूर्णतया परास्त कर देने पर जब वह शिर उठा कर नथुने फुला और लाल लाल आँखें फाड़ कर डौंकता है तब उसकी भीषण मूर्त्ति और भी अतीव भयकर हो जाती है।

हमारी घरेलू भैंस और परिश्रमी भैंसे अरना जाति के ही जन्तु हैं। खूँटे से बँध कर घरेलू भैंस और भैंसे का शरीर स्वभावतः उतना बलवान् और सुदीर्घ नहीं रह जाता जितना कि जंगल के स्वतंत्र अरना का होता है। मिस्टर हॉजसन का मत है कि युगों तक मनुष्याधीन रहने पर भी अरना जाति के पालतू जन्तुओं में क़द के सिवा किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है।

लंका का अरना हिन्द के भैंसे से भी अधिक भीषण और बलिष्ठ होता है। उक्त टापू के निवासी हरिण आदि के शिकार में पालतू अरने से बड़े विचित्र रूप से सहायता लेते हैं। भैंसे की गरदन में घण्टा लटका कर, उसकी पीठ पर एक बकस बाँध देते हैं

जो केवल सामने को खुला रहता है। बकस में एक मोम का दिया जला कर रख देते हैं। शिकारी बकस को आड़ में छिपा रहता है और भैंसे को जंगल की ओर हाँक ले चलता है। घंटे और रोशनी का कुछ ऐसा प्रभाव जंगली जन्तुओं पर होता है कि वे कुतूहलवश उसके पास आ जाते हैं। सर इमर्सन टेनेन्ट लिखते हैं कि हरिण और सुअर के सिवा प्रायः साँप और तेन्दुए भी भैंसे का तमाशा देखने को पास आ जाया करते हैं।*

केप का भैंसा

(THE CAPE BUFFALO—BUBALUS CAFFER)

बोवाइडे-वंश के भैंसा भाग को यह प्रसिद्ध जाति अफ़्रीक़ा में पाई जाती है। केप का भैंसा मध्य और दक्षिणी अफ़्रीक़ा में होता है। क़द, बल तथा स्वभावों में इस जाति के जीव भी बहुत कुछ अरना के समान होते हैं।

गॉर्डन कमिंग बतलाते हैं कि पृथ्वी पर किसी जीव के सींग केप के भैंसे के सींगों से बड़े और भारी नहीं होते। उसके सींगों का घेरा अरना के सींगों से भी अधिक होता है और जड़ पर दोनों सींग मिल के सम्पूर्ण माथे को ढाँक लेते हैं। उसके माथे में गोली नहीं घुस सकती। केप के भैंसे के सींग पुराने वृक्षों की छाल के समान खुरदरे होते हैं।

केप का भैंसा भी जल के पास रहता है और कीड़े-मकोड़ों से शरण पाने के लिए कीचड़ की मोटी तह शरीर पर लपेट लिया करता है। गैंडे के समान केप के भैंसे के संग भी एक प्रकार के पक्षी लगे रहते हैं जो खाल पर के कीड़े चुन चुन के खाया करते हैं और शिकारी के आने पर भैंसे को चेतावनी दे देते हैं।

---

* "Sketches of the Natural History of Ceylon," by Sir Emerson Tennent.

केप का भैंसा बड़े बड़े झुण्डों में रहा करता है किन्तु कोई कोई नर दुराचरणों के कारण दल से निकाल दिये जाते हैं। ऐसे बहिष्कृत नर असीम भयंकर हो जाया करते हैं। जिस किसी जीवधारी को वे देख पाते हैं उसी पर आक्रमण कर बैठते हैं।

सुविख्यात शिकारी मिस्टर सेलूस कहते हैं कि पैदल शिकार में किसी जन्तु से इतना भय नहीं होता जितना कि भैंसे से। शेर बबर भी केप के भैंसे पर आक्रमण करने का सहज ही साहस नहीं करता। भैंसे के सामने से प्राय: शेर को दुम दबा कर भागना पड़ता है। बहुधा दो शेर मिल के ही भैंसे पर आक्रमण किया करते हैं।

भैंसा कभी कभी बड़े छल से काम लेता है। घायल होकर जब वह कभी जंगल के भीतर घुस पड़ता है तो उसका पीछा करने में बड़ा ख़तरा रहता है। उसको आदत है कि कुछ दूर चल कर थोड़ा सा मुड़ जाता है और फिर पीछे को लौट कर किसी झाड़ी में छिप रहता है। शिकारी उसके पैरों के चिह्न देखता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है तब भैंसा सहसा निकल कर पीछे से घात करता है।

दंतविहीनश्रेणी

(THE EDENTATA)

साधारण विवरण

दंतविहीनश्रेणी के जन्तुओं की मुख्य विशेषता यह है कि उनके कृतक दंत नहीं होते। जबड़ों में सामने के दाँत न होने से वे सब दंतविहीन प्रतीत होते हैं। किन्तु प्रायः उनके जबड़ों में डाढ़ें होती हैं। डाढ़ें भी सब एक ही आकार की नुकीली होती हैं और सब में केवल एक जड़ होती है।

चींटीख़ोर और पेंगोलिन पूर्णतया दंतविहीन जन्तु हैं क्योंकि उनके मुँह में किसी प्रकार का कोई दाँत नहीं होता।

दंतविहीनश्रेणी के जीवों की टाँगें और पञ्जे अत्यन्त पुष्ट होते हैं। पञ्जे पेड़ों पर चढ़ने, डालों से लटकने और कड़ी भूमि को खोदने के लिए उपयुक्त होते हैं। अधिकतर इनकी चाल ढाल भद्दी और शरीर भारी होता है। दंतविहीन जन्तु सब छोटे क़द के प्राणी हैं, उनके शरीर की लम्बाई प्रायः एक गज़ से अधिक नहीं होती।

किसी किसी का शरीर लम्बे लम्बे बालों से ढका होता है और किसी किसी के शरीर पर मोटे, पुष्ट छिलकों की तहें या प्लेटें चढ़ी होती हैं।

दंतविहीनश्रेणी के जन्तु निम्न-लिखित वंशों में विभक्त किये जाते हैं:—

स्लॉथ-वंश (Bradipodidæ)

आर्माडिलो-वंश (Dasypodidæ)

चींटीख़ोर-वंश (Myrmecophagidæ)

साल-वंश (Manididæ)
आर्डवार्क-वंश (Orycteropodidæ)

स्लॉथ-वंश

(BRADIPODIDÆ)

स्लॉथ

दंतविहीनश्रेणी का यह छोटा सा जीव दक्षिणी अमेरिका का निवासी है।

स्लॉथ के शरीर की लम्बाई लगभग दो फ़ुट होती है। खाल मोटे, घने, लम्बे बालों से ढकी होती है। उसका थूथन छोटा सा और मुँह में तीक्ष्ण कीले, और कुछ गोल गोल डाढ़ें होती हैं। अगली टाँगें पिछली से बड़ी होती हैं। किसी के पैरों में ३ भाग और किसी के दो भाग होते हैं प्रत्येक भाग पर बहुत बड़ा, और भीषण नख होता है। कान और दुम का पता भी नहीं होता। शरीर का रङ्ग बादामी-भूरा होता है। दिन में स्लॉथ एक आलस्य-परायण जन्तु प्रतीत होता है, जिसका मुख्य कारण यह है कि रोशनी की चमक में उसकी आँखें काम नहीं देतीं।

स्लॉथ अपना सारा जीवन वृक्षों के ऊपर व्यतीत किया करता है और अधिकांश समय डालों को अपने भीषण नखों से पकड़ कर उलटा लटका रहता है। दिन में वह वृक्ष की घनी पत्तियों में छिपा रहता है। स्लॉथ पूर्णतया शाकभोजी जीव है और जहाँ तक जाना जा सका है वह जल के लिए भी पेड़ों से नहीं उतरता। सम्भव है कि रसीले फल फूल और पत्तियों ही से वह प्यास बुझा लेता हो।

इस वंश में दो जातियाँ पाई जाती हैं अर्थात्—

(१) तीन उँगलीवाले स्लॉथ (Bradypus tridactylus) जो ब्रेज़ील, गायना, पेरू आदि देशों में मिलता है। इनके अगले पैर ३ भाग में विभक्त होते हैं।

(२) दो उँगलीवाले स्लॉथ (Cholopus didactylus) यह भी दक्षिणी अमेरिका में मिलता है। इसके अगले पैरों में केवल दो भाग होते हैं।

आर्माडिलो-वंश

(आर्माडिलो—Dasypus)

स्तनपोषितसमुदाय के कुछ ही जन्तु ऐसे हैं जिनके शरीर को प्रकृति ने कड़े छिलकों की प्लेटों से सुरक्षित कर दिया है और आर्माडिलो उन्हीं में से एक है।

आर्माडिलो के शिर, पीठ, शरीर के पार्श्वभाग और दुम सब पर अत्यन्त कड़ी प्लेटें चढ़ी होती हैं। उसकी खाल एक विशेष विधि से परिवर्तित होकर कड़े छिलकों का रूप धारण कर लेती है। सिर, और शरीर के अगले तथा पिछले भागों पर ये प्लेटें स्थिर और जमी हुई होती हैं, किन्तु पीठ के ऊपर की प्लेटें आगे पीछे को हट सकती हैं और थोड़ी बहुत एक दूसरे पर चढ़ जाती हैं। पीठ की इन प्लेटों के कारण उसका शरीर झुकाया जा सकता है और भयभीत होने पर वह अपने शरीर को गोलाई में लपेट कर मुँह छिपा सकता है।

आर्माडिलो का चौड़ा, चपटा शरीर कछुवे के शरीर के समान प्रतीत होता है। उसकी टाँगें बहुत छोटी छोटी, किन्तु मोटी और

पुष्ट होती हैं। उसकी लम्बी जीभ मुँह से बाहर बहुत दूर तक निकल आती है।

आर्माडिलो का शरीर भारी और भद्दा होता है किन्तु अपनी रक्षा के लिए वह तेज़ी से भाग सकता है और उसके शरीर में बल भी होता है।

आर्माडिलो दक्षिणी अमेरिका के विस्तृत मैदानों में रहा करता है। भाँटा खोदने में वह पूरा प्रवीण होता है, और भाँटें में प्रवेश करने को वह कई रास्ते रखता है। उसकी प्रकृति सीधी और निर्दोष होती है।

आर्माडिलो अपना निर्वाह वनस्पति एवं कीड़े मकोड़ों पर किया करता है। किन्तु प्रायः साँप, गिरगिट, मेंढक आदि को भी मार लेता है। कोई कोई जातियाँ मनुष्यों के शव को भी क़बरों से खोद कर खा डालती हैं।

आर्माडिलो के जबड़ों में प्रत्येक ओर ७ या ८ डाढ़ें होती हैं जो आकार में गोल और ऊपर को नुकीली होती हैं।

दक्षिणी अमेरिका में आर्माडिलो की कई जातियाँ और उनकी अनेक उपजातियाँ मिलती हैं। सबसे बड़ी उपजाति ब्रेज़ील में होती है (Dasypus Gigas) इसके शरीर की लम्बाई पूरे एक गज़ की होती है। सबसे छोटी उपजाति (Dasypus Minutus) बड़े चूहे के बराबर होती है।

चींटीख़ोर-वंश

(MYRMECOPHAGIDÆ)

नाम ही से ज्ञात होता है कि इस वंश के जन्तु नाना प्रकार की चींटियाँ खा के अपना निर्वाह किया करते हैं। छोटी छोटी चींटियों को इकट्ठी करके अपनी क्षुधा का निवारण कर लेने के लिए

प्रकृति ने चींटीख़ोर को कैसा उत्तम मुँह और जीभ दी है! जबड़ों में दाँतों का कहीं पता भी नहीं होता और सिर के आगे एक नली सी निकली होती है। नली में चींटीख़ोर की लम्बी सर्पाकार जीभ होती है। यह रबड़ के समान विचित्र ढंग से बढ़ जाती है और बाहर बहुत दूर तक निकल सकती है। जीभ के ऊपर ऐसा लस होता है कि नन्हे जीव उस पर तुरन्त चिपक जाते हैं। छोटी छोटी सँदों और दरारों में अजीब फ़ुर्ती से चींटीख़ोर की जीभ घुस जाती है और आँख झपकते सैकड़ों चींटियाँ, दीमक आदि उस पर चिपकी चली आती हैं। दीमक का छत्ता पाकर वह अपने पुष्ट पञ्जों से ऊपर की मिट्टी खोद, क्षण भर में छत्ते की सारी दीमक साफ़ कर डालता है। दीमक के से हानिकर जीवों को नष्ट कर देने के कारण चींटीख़ोर भी बड़ा उपयोगी जन्तु होता है।

इस वंश का सबसे प्रसिद्ध जन्तु "बड़ा चींटीख़ोर" (Myrmecophaga Jubata) कहलाता है। दंतविहीनश्रेणी में यह सबसे बड़ा जन्तु है, और उसके शरीर की लम्बाई दुम छोड़ कर लगभग चार फ़ुट होती है। उसकी दुम पर बहुत ही घने और लम्बे, चँवर के समान बाल होते हैं। दुम पूरे एक गज़ की होती है और चींटीख़ोर उसको उठा कर खड़ा कर लिया करता है। शरीर का रंग धुमैला ख़ाकी होता है। उसके पञ्जों में पुष्ट नुकीले नख होते हैं। इस जन्तु की चाल विचित्र होती है क्योंकि वह तलवों को भूमि पर नहीं रखता वरन् नखों को नीचे को मोड़ कर उन्हीं पर चलता है। बड़े चींटीख़ोर की देह में बहुत बल होता है और वह जैग्वार जैसे भयंकर शत्रु का सामना करने को तैयार हो जाता है। अपने शत्रु को वह भालू के समान दबा लेता है और नुकीले पञ्जों से चीर-फाड़ डालता है।

बड़ा चींटीख़ोर केवल रात ही में बाहर आता है। स्वभाव का वह आलसी और चाल ढाल में सुस्त होता है। उसकी प्रकृति अहिंसक होती है और जब तक आक्रमण न किया जाय वह किसी को नहीं सताता। दिन में वह झाड़ियों में छिपा पड़ा रहता है।

मादा के केवल एक बच्चा होता है जिसका पालन वह बड़े प्रेम से करती है, जब माँ बाहर निकलती है तो बच्चे को पीठ पर बिठा लेती है।

बड़ा चींटीख़ोर केवल दक्षिणी अमेरिका में मिलता है। चींटीख़ोर की अन्य सब जातियाँ भी दक्षिणी अमेरिका की निवासी हैं।

साल-वंश

(PANGOLIN OR MANIDIDÆ)

साल या पैंगोलिन-वंश के जन्तु आर्माडिलो के भाई बन्धु हैं क्योंकि इनका लम्बा शरीर भी मोटी, दुर्भेद्य प्लेटों से रक्षित होता है। यह विचित्र जन्तु भारतवर्ष में भी अनेक स्थानों में मिलता है। दक्षिणी भारत में उसको 'साल' और उत्तरी हिन्द में 'सिल्लू' कहते हैं। बंगाल में उसको 'काठपैहू' और दक्खिन में 'बनरोहू' का नाम दिया जाता है।

साल के शरीर की दुर्भेद्य प्लेटें, एक पर एक, खपरों के समान रक्खी होती हैं। उसकी लम्बी चौड़ी दुम और टाँगों के बाहरी भाग भी प्लेटों से ढके होते हैं। इन प्लेटों की धारें छेनी के समान तीक्ष्ण होती हैं। अपनी रक्षा के लिए साल जब चाहता है शरीर को लपेट कर गोल गेंद सा बना लेता है। फिर किसी जीव जन्तु की मजाल नहीं कि उस पर मुँह मार सके। साल की प्लेटें इतनी कड़ी होती हैं कि एक बार देखा गया है कि एक साल के दो गोलियाँ पिस्तौल से मारी गईं किन्तु गोलियाँ प्लेटों को न तोड़ सकीं।

साल की टाँगें बहुत छोटी होती हैं। पैरों में अत्यन्त पुष्ट खनित्र नख होते हैं। उसके मुँह में किसी प्रकार का कोई दाँत नहीं होता। थूथन और जीभ उतनी लम्बी नहीं होती जितनी कि चींटीख़ोर की होती है। साल की चाल में भी वही विचित्रता होती है जो आर्माडिलो की चाल में होती है अर्थात् वह भी अपने अगले पैरों के नखों को मोड़ के नीचे दबा के चला करता है।

एशिया में साल भारतवर्ष, मलय प्रायद्वीप और चीन के दक्षिण में होता है। अफ़्रीक़ा के अधिकांश भाग में भी साल पाया जाता है।

भारतीय साल

(MANIS PENTADACTYLA)

हिन्दुस्तान के पहाड़ी भू-भागों में साल सब जगह मिलता है किन्तु बहुत कम। इसके शरीर की लम्बाई लगभग २ या २½ फ़ुट होती है और मोटी, चौड़ी दुम भी कोई १½ फ़ुट की होती है।

पेट और गले के अतिरिक्त इस जन्तु के सारे शरीर पर प्लेटें चढ़ी होती हैं। प्लेटों का रंग कुछ पीलापन लिये बादामी होता है।

साल केवल रात्रि ही में बाहर निकलता है और चींटियों के छत्तों की खोज में घूमता है। विशेषकर दीमक खाने का बड़ा प्रेमी होता है।

साल भाँटे में रहता है जिसको वह अपने लम्बे, पुष्ट नखों से बड़ी सुविधा से खोद लेता है। भाँटा ढालू होता है और ८-१० फ़ुट की गहराई पर साल का वासस्थान होता है जिसकी परिधि कोई ६ फ़ुट की होती है। भाँटे में बहुधा जोड़ा रहा करता है और भीतर घुस जाने पर वे उसके द्वार को मट्टी से बन्द कर लेते हैं।

जाड़े में मादा के एक या दो बच्चे होते हैं। छोटे बच्चों की प्लेटें कड़ी नहीं होतीं वरन् जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है वे कड़ी पड़ती जाती हैं।

शिकिम का साल

(MANIS AURITA)

यह उपजाति भारतीय साल से छोटी होती है। शिकिम, मलय प्रायद्वीप, और चीन में मिलता है। चीन में उसका मांस खाया भी जाता है और उसके शरीर के छिलकों से ओषधियाँ बनाई जाती हैं।

आर्डवार्क-वंश

(ORYCTEROPODIDÆ OR AARD VARK)

आर्डवार्क अपने वंश में अकेली ही जाति है और यह जन्तु केवल अफ्रीका में होता है।

आर्डवार्क की टाँगें छोटी, नख पुष्ट और खनितृ, खाल मोटी और शरीर पर छितरे बिथरे बाल होते हैं। उसका लम्बा, नुकीला थूथन, और लसदार जीभ देख कर तुरन्त पता लग जाता है कि वह बड़े चींटीख़ोर का सम्बन्धी है। आर्डवार्क के जबड़ों में केवल कुछ डाढ़ें होती हैं।

आर्डवार्क की देह की लम्बाई लगभग ३ फ़ुट की होती है, दुम १½ फ़ुट की और ऊँचाई भी १½ फ़ुट होती है। वह भाँटे में रहता है जिसको वह बड़ी जल्दी खोद लेता है। दिन भर अपने भाँटे में छिपा रहता है, रात में बाहर आकर दीमक की खोज में निकलता है। दीमक खाते खाते उसका मांस तक खट्टा हो जाता है, फिर भी हॉटेन्टॉट जाति के लोग उसका शिकार करते हैं और उसका मांस खाते हैं।

मांसभुक् श्रेणी

(ORDER OF THE CARNIVORA)

साधारण विवरण

पृथ्वी के हिंस्र और शिकारी जन्तु मांसभुक श्रेणी के प्राणी हैं। बहुधा उनके शरीर शक्तिशाली और प्रकृति भीषण, क्रूर, एवं रक्तप्रिय होती है। क्योंकि उनको अपने आहार के लिए नित्य अन्य जीवों की हिंसा करनी होती है। ये शाकभोजियों की वृद्धि सर्वदा कम करते रहते हैं और इसलिए पृथ्वी पर मांसभोजियों का भी होना उपयोगी और आवश्यक है। यदि शाकभोजियों की वृद्धि में कोई बाधा न हो तो संभवतः पृथ्वी की उपज अकेले उन्हीं के लिए पूरी न पड़े।

मांसभुक श्रेणी में अधिकतर स्थल पर रहनेवाले प्राणी हैं, परन्तु कुछ जल के भी जीव हैं, जैसे ह्वेल। ये जल के मांसभोजी छोटी छोटी मछलियों तथा अन्य जल के जीवों से अपना निर्वाह करते हैं। इन जल के मांसभोजियों का अलग प्रकरणों में वृत्तान्त दिया गया है।

यद्यपि मांसाहारी होना इस श्रेणी के प्राणियों का मुख्य लक्षण है तथापि उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे भी जन्तु हैं जो मांस के अतिरिक्त अन्य खाद्य भी खाते हैं। उदाहरणार्थ भालू फल, शहद, जड़ें इत्यादि भी बड़ी रुचि से खाया करता है।

मांसभोजी श्रेणी के जन्तुओं के कृन्तक दंत (Incisors) छोटे छोटे होते हैं और उनकी संख्या प्रत्येक जबड़े में ६ होती है। कृंतक दाँतों के इधर-उधर प्रत्येक जबड़े में एक एक कीला (Canine) होता है। ये लम्बे और पुष्ट होते हैं। और शिकार को जकड़ लेने में उपयोगी होते हैं डाढ़ों की संख्या बहुधा इस प्रकार होती है:—दुधडाढ़ें $\frac{४—४}{४—४}$, डाढ़ें $\frac{२—२}{३—३}$ परन्तु किसी किसी वंश के डाढ़ों की संख्या और आकार इससे विभिन्न होते हैं। डाढ़ें सामने से पीछे को बड़ी होती जाती हैं।

उनकी मांसडाढ़ (Carnassial tooth) सबसे बड़ी भी होती है और इसके ऊपर तीक्ष्ण धारें उठी होती हैं। ऊपरवाली और नीचेवाली मांसडाढ़ें एक दूसरे से कैंची के समान रगड़ खाती हैं और मांस के टुकड़े करने में उपयोगी होती हैं।

मांसभोजी श्रेणी के जन्तु बहुधा छरहरे शरीर के और बड़े फुर्तीले होते हैं। दौड़ने भागने में स्तनपोषितसमुदाय का शायद ही कोई प्राणी उनसे बढ़ के हो। जीवित शिकार का पीछा करके पकड़ लेने के लिए फुर्ती और तीव्रगति का होना प्रयोजनीय भी था।

लगभग सभी मांसभोजी जन्तुओं के पैरों में बड़े और पुष्ट नख होते हैं। किसी किसी वंश के जन्तुओं के नख, विशेषकर उनके जो अपना निर्वाह जीवित शिकार पर करते हैं, सिकुड़नेवाले (Retractile) होते हैं। ऐसे नखों की नोकें साधारणतया मांस की गद्दी पर रक्खी रहती हैं और घिसके भुथरी नहीं होने पातीं। शिकार पर पञ्जा चलाते ही ये नोकें तुरन्त बाहर को निकल आती हैं।

मांसभोजी श्रेणी के कतिपय वंश अंगुलचर (Digitigrade) अर्थात् उँगलियों की गद्दियों पर चलनेवाले हैं। इस आदत से वे तेज़ भी दौड़ सकते हैं और उनकी चाल में किञ्चिन्मात्र आहट भी नहीं होती। शेर, बाघ, कुत्ता, सिवेट आदि सब अंगुलचर जन्तु हैं।

मांसभोजी श्रेणी के मस्टिलिडे वंश (Mustelidæ) के जन्तुओं का आधा तलवा चलने में भूमि पर पड़ता है। भालू-वंश के जन्तु पदतलचर (Plantigrade) हैं अर्थात् वे पूरा तलवा भूमि पर रखते हैं। भालू के तलवों के चिह्न बिलकुल मनुष्य के पदचिह्नों के समान होते हैं।

इस श्रेणी के जन्तुओं की श्रवणेन्द्रिय तथा घ्राणेन्द्रिय दोनों ही तीव्र होती हैं। उनकी जीभ खुरदरी होती है। विशेषकर बिल्ली और सिवेट-वंश की जीभ पर कड़े काँटे (Papillæ) होते हैं।

हड्डी को खुरदरी जीभ से चाटने से उसका लगा लिपटा मांस साफ़ छूट आता है।

इस श्रेणी के कतिपय छोटे छोटे जन्तुओं के शरीर पर अत्यन्त कोमल समूर होता है जो मनुष्योपयोगी और मूल्यवान् होता है।

बहुत से जन्तुओं की पूँछ के पास ग्रन्थियाँ हुआ करती हैं जिनमें गन्धमय द्रव उत्पन्न होता है।

आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त लगभग सारी पृथ्वी पर मांसभुक् श्रेणी के प्राणी मिलते हैं। इस श्रेणी के सब दीर्घाकार और भीषण जन्तु विशेषकर अफ़्रीका और एशिया के उष्ण देशों में मिलते हैं। मांसाहारी जीव आस्ट्रेलिया में भी हैं किन्तु वे सब थैलीवाले जन्तु (Marsupials) हैं और उनको थैलीवाली श्रेणी में स्थान दिया जाता है।

मांसभोजी श्रेणी के जन्तु निम्नलिखित वंशों में विभक्त किये जाते हैं :—

(१) बिल्ली-वंश (Felidæ)

(२) कुत्ता-वंश (Canidæ)

(३) सिवेट-वंश (Viverridæ)

(४) लकड़बघा-वंश (Hyenidæ)

(५) मस्टिलिडे-वंश (Mustelidæ)

(६) भालू-वंश (Ursidæ)

बिल्ली-वंश

(THE FELIDÆ)

साधारण विवरण

मांसभोजी श्रेणी का यह प्रधान वंश है जिसके जन्तुओं में मांसभोजियों के सारे जाति-लक्षण पूर्णतया उपस्थित हैं। ये पक्के मांसभोजी हैं अर्थात् मांस के अतिरिक्त और कुछ नहीं खाते। बिल्ली-वंश के जन्तुओं के दाँतों की रचना से पता चल जाता है कि वे केवल मांस ही पर निर्वाह करते होंगे। उनके मुँह में डाढ़ों की संख्या अन्य सब जन्तुओं से कम होती है क्योंकि शाकभोजियों के समान उनको अपना भोजन पीसना नहीं होता। उनके दाँत विशेष रूप से तीक्ष्ण धार के होते हैं और वे मांस को काटने और टुकड़े करने के लिए ही रचे गये हैं। उनके कीले (Canines) अन्य सब जन्तुओं से बड़े, नुकीले और पुष्ट होते हैं। इस वंश के जन्तुओं की दंत-रचना इस प्रकार है :—

कृंतक $\frac{३—३}{३—३}$; कीले $\frac{१—१}{१—१}$; दूध-ढाढ़ें $\frac{३—३}{२—२}$, डाढ़ें $\frac{१—१}{१—१}$ = ३० डाढ़ों की संख्या कम होने के कारण उनके जबड़े छोटे किन्तु अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं। खोपड़ी गोल और जीभ पर काँटे होते हैं जिनके द्वारा केवल चाट कर ही वे बहुत से जन्तुओं की खाल को फाड़ देते हैं। सामनेवाले पैरों में बहुधा ५-५ और पिछलों में ४-४ उँगलियाँ होती हैं। उँगलियों की तली में मांस की गद्दियाँ होने के कारण उनकी चाल में नाम-मात्र को भी आहट नहीं होती। जीवित शिकार पकड़ने में इस कारण उनको बड़ी सुविधा होती है। वे रात में शिकार किया करते हैं और उनकी आँखों की रचना ऐसी है कि वे रात्रि में भली भाँति देख सकते हैं। बिल्ली-वंश के सभी जन्तुओं में आँखों की पुतलियों को फैला के बड़ी कर लेने की शक्ति होती है।

अँधेरे में उनकी पुतलियाँ बहुत बड़ी हो जाती हैं, और चमक उठती हैं। रोशनी की जो थोड़ी बहुत किरणें होती हैं, वे अधिक संख्या में उनकी आँखों में प्रवेश करने लगती हैं और अँधेरे में भी उनको थोड़ा बहुत दिखाई पड़ने लगता है।

लगभग सभी के शरीर छरहरे और फुरतीले होते हैं और वे बड़ी बड़ी छलाँगें मार सकते हैं। श्रवणेन्द्रिय अति तीव्र होती है, और उनकी मूँछों के बाल स्पर्शेन्द्रिय का काम बड़ी उत्तमता से देते हैं।

बिल्ली-वंश के जन्तु सहवास पसन्द नहीं करते। वे या तो अकेले ही रहते हैं या एक नर और मादा संग रह कर जीवन व्यतीत करते हैं।

पृथ्वी के पूर्वी गोलार्द्ध में बिल्ली-वंश की निम्न-लिखित जातियाँ (Genera) मिलती हैं—

(१) शेर बबर, (२) बाघ, (३) बघर्रा वा तेंदुआ, (४) बिल्ली, (५) स्याहगोश या लिंक्स बिल्लियाँ, (६) चीता।

आॅस्ट्रेलिया महाद्वीप में इस वंश का कोई जन्तु नहीं होता।

पश्चिमी गोलार्द्ध अर्थात् अमेरिका में बिल्ली-वंश के केवल दो जन्तु मिलते हैं अर्थात्—

(१) जेग्वार, (२) प्यूमा।

शेर बबर

(The Lion—Felis Leo)

शेर बबर मांसभोजी श्रेणी (Order of Cornivora) के 'बिल्ली-वंश' (Felidæ) की एक जाति (Genus) है।

शेर बबर जंगल का सरदार और जन्तु-जगत् का राजा कहलाता है। उसकी शान्त और गंभीर आकृति, राजसी चाल, और

शेर बबर (Felis Leo)
पृष्ठ २६८

बाघ (Felis Tigris)
पृष्ठ २८२

तेंदुआ (Felis Pardus) पृष्ठ २६१

चीता (Leopard) पृष्ठ २९२

काला तेंदुआ (Felis Diardi)
पृष्ठ ३०१

बरफ़ का तेंदुआ
(Felis
Uncia)
पृष्ठ ३०२

अद्भुत देहबल सब उसके उच्च पद का प्रमाण देते हैं। सृष्टि का कोई जीव उसके शारीरिक बल से तुलना नहीं कर सकता। समस्त प्राणिवर्ग में कोई पशु ऐसा नहीं है जो शेर के सामने भयाक्रान्त हो सहम न जाय। अपने विकराल पंजे के एक थप्पड़ से बैल की रीढ़ की हड्डी तोड़ डालते और भरपूर तीव्रता से भागते हुए घोड़े को एक चोट से पीछे को लुढ़का देते शेर देखा गया है।

इस समय शेर समस्त अफ़्रीक़ा में मिलता है। एशिया में मेसोपोटेमिया तथा ईरान में होता है। हिन्द में शेर बबर अब केवल काठियावाड़ में पाया जाता है। किन्तु अभी १०० वर्ष भी नहीं हुए जब शेर हिन्द के उत्तरी-पश्चिमी भाग में बहवलपुर और सिन्ध से यमुना नदी तक मिलता था। बुन्देलखण्ड में, नर्मदा के किनारे, और दक्षिण में ख़ानदेश तक होता था। प्राचीन समय में शेर अरब, सीरिया, और योरप के दक्षिणी भाग में भी होता था। किन्तु शेर बबर की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है, और यदि यही दशा रही तो शीघ्र ही शिकारियों की गोलियों से उसकी रक्षा करनी होगी, नहीं तो यह महान् जाति भी पृथ्वी पर से लुप्त हो जायगी।

कतिपय प्राणिशास्त्र-विशारदों का विश्वास था कि अफ़्रीक़ा और एशिया के शेर अलग अलग उपजाति के जन्तु हैं, किन्तु अब बहुधा यही मत है कि यह विश्वास निर्मूल था। वस्तुतः दोनों में कोई ऐसा भेद नहीं है कि वे दोनों अलग अलग उपजाति के जन्तु माने जायँ। केवल इतना भेद अवश्य है कि अफ़्रीक़ा के शेर की गरदन के बाल अधिक बड़े और शोभायमान होते हैं और उनके पेट पर एक धारी लम्बे बालों की होती है जो एशिया के शेर में नहीं पाई जाती।

एक सुविख्यात शिकारी का कहना है कि अफ़्रीक़ा के शेर की लम्बाई दुम-सहित लगभग १० फ़ुट हुआ करती है। हिन्द के शेर

की नाप डाक्टर जर्डन के कथनानुसार अग्र-लिखित होती है:—

लम्बाई ८½ से ९½ .फुट तक, ऊँचाई ३½ .फुट, पंजे का घेरा ६⅓ इंच।

शेरनी क़द में छोटी होती है, और उसकी गरदन पर बाल भी नहीं होते। शेर का रंग भूरा होता है, शरीर पर धारी या धब्बे नहीं होते। शेर बबर को गरदन के बाल उसकी रचना की विशेषता है और उनके कारण उसकी आकृति विशेषरूप से गंभीर और प्रभावशालिनी प्रतीत होती है। उसका शिर बहुत बड़ा और आँखें चमकती हुई होती हैं। शरीर का पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा पतला और दुर्बल होता है। लम्बे पुष्ट कीले और सिकुड़नेवाले पंजे (Retractile claws) जीवित जन्तुओं को जकड़ लेने और उनके मोटे चमड़े को चीरने फाड़ने में विशेषरूप से उपयुक्त होते हैं।

शेर की जीभ काँटों (Papillæ) के कारण अत्यन्त खुरदरी होती है। ये काँटे बीच जीभ पर लगभग ⅙ इंच लम्बे और ठोस होते हैं और ऐसे पुष्ट होते हैं कि जीभ से चाटते ही बहुतेरे जन्तुओं की खाल से रक्त बहने लगता है।

शेर की दुम के अन्त पर बालों का गुच्छा होता है जिसके भीतर, छोटा सा सींग के समान, एक काँटा होता है। कहावत यह है कि उत्तेजित होने पर शेर इसको अपनी देह पर मार मार के क्रोध के वेग को बढ़ाता है। किन्तु यह बात विश्वासयोग्य नहीं जान पड़ती, और न इस काँटे का कोई विशेष उपयोग समझ में आता है।

शेर का गर्जन अत्यन्त डरावना शब्द है। रात्रि के सन्नाटे में जिस समय वह निविड़ वन को गुंजाता है तो छोटे बड़े सभी जीव भय से काँप उठते हैं। जब शेर और शेरनी दोनों संग होते हैं तो, माँद से निकलते ही, सर्वथा शेरनी पहले गर्जन करती है। तब

शेर बोलता है। इस प्रकार लगभग प्रत्येक १५ मिनट पर बारी बारी से बोलते हुए वे उस स्थान तक पहुँचते हैं जहाँ कि उनको शिकार मारने की आशा होती है। क्षुधा का निवारण हो जाने पर वे फिर गर्जना आरम्भ कर देते हैं और जंगल के सारे जन्तुओं को भयभीत करते रहते हैं।

फ्रांस के सुप्रसिद्ध शेर के शिकारी, जूल्स जेरार्ड (Jules Gerard, the lion-killer), जिन्होंने शेर का इतना शिकार किया था कि लोकमत के अनुसार उनको "शेरनाशक" की उपाधि दी गयी थी, बतलाते हैं कि शेर की बोली में १२ भिन्न भिन्न शब्द होते हैं। उसका गर्जन निःश्वासों के साथ आरम्भ होता है और उत्तरोत्तर स्वर भारी और ऊँचा होता जाता है, और प्रत्येक शब्द के बीच में थोड़ा अन्तर होता है।

विख्यात शिकारी गार्डन कमिंग (Gordon Cumming) शेर की आवाज़ का सविस्तर वर्णन देते हुए लिखते हैं:—

"शेर के विषय में सबसे विचित्र बात उसकी आवाज़ है जो अत्यन्त महान् तथा विशेष प्रभावशालिनी होती है। कभी कभी वह गंभीर धीमी आह का रूप धारण करती है, जो पाँच या छः बार होती है और मन्द निःश्वासों के साथ समाप्त होती है। कभी कभी वह उच्च तथा गंभीर गर्जनाओं से वन को चौंका देता है। ये उत्तरोत्तर, शीघ्र शीघ्र पाँच या छः बार होती हैं और तीसरी गर्जना तक एक दूसरे से अधिक उच्च होती जाती हैं। इसके पश्चात् उसका शब्द पाँच या छः ऐसी गूँजती हुई और गंभीर आवाज़ों के रूप में, शनैः शनैः घट के, समाप्त हो जाती है जो बहुत कुछ दूर के मेघ-गर्जन के समान होती है। प्रायः ऐसा होता है कि शेरों का समूह मिलकर गरजता हुआ सुनाई देता है। समूह का एक व्यक्ति सबसे अग्रसर होता है और दो, तीन या चार शेर अधिक नियमपूर्वक बारी बारी

इस प्रकार गर्जन करते हैं जैसे कि मनुष्य किसी गीत के टेक को गाता हो।"

अफ़्रीक़ा के निवासी शेर की आवाज़ से ऐसे अभिज्ञ होते हैं कि सुन के तुरन्त बता देते हैं कि वह भूखा है अथवा उसकी क्षुधा की तृप्ति हो चुकी है। काम क्रोध आदि के शब्दों को भी वे पहिचान लेते हैं। सुप्रसिद्ध पादरी मोफ़ट (Mofatt) लिखते हैं:—

"एक शेर हमारे पास से निकला। वह थोड़ी थोड़ी देर पर गर्जन करता जाता था, जो विस्तृत मैदान में फैल के शनैः शनैः मन्द हो जाता था। उसका प्रत्युत्तर भी कोई दूसरा शेर दूर से दे रहा था। मैंने उन 'बलालाओं' का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट किया और उनकी राय पूछी कि कोई भय है अथवा नहीं। उन्होंने अपने कान आवाज़ की ओर फेरे मानो वे कोई परिचित शब्द सुन रहे हों। क्षण दो क्षण सुनकर उन्होंने उत्तर दिया "कोई भय नहीं है, वह खाकर तृप्त हो चुका है और सोने जा रहा है।" वे ठीक कहते थे। तब हम लोग भी सो रहे। सवेरा होने पर हमने पूछा कि उनको कैसे ज्ञात होगया था कि शेर सोने जा रहा है। उन्होंने उत्तर दिया 'हम उन्हीं के संग रहते हैं। वे तो हमारे साथी हैं।"

शेरनी के प्रत्येक बार दो से पाँच बच्चे तक होते हैं जिनका पालन वह बड़े प्रेम से करती है। बच्चों को वह लगभग ६ मास तक दूध पिलाती है और उनको अकेला छोड़ कर, भोजन खोजने के सिवाय, और कहीं नहीं जाती। शेरनी का स्वभाव ऐसे समय में अत्यन्त भयंकर हो जाता है और वह अपने बच्चों की रक्षा के लिए प्राण तक दे देती है। बच्चों को वह किसी गुप्त और शून्य स्थान में जन्म दिया करती है। बच्चे जन्म के समय लगभग छोटी बिल्ली के बराबर होते हैं और दो मास में चलने फिरने लगते हैं। जब वे बड़े हो जाते हैं तो शेरनी उनको अपने संग ले जाती और शिकार करना

सिखाया करती है। तब फिर आस-पास के किसी छोटे जीव की कुशल नहीं, क्योंकि बच्चे भोजन ही के लिए नहीं वरन् सीखने और अभ्यास करने के लिए भी, बीसों जन्तुओं को प्रतिदिन मार डाला करते हैं।

शेर के बच्चों के रंग में यह विशेषता होती है कि उनके शरीर पर छोटी छोटी बादामी धारियाँ होती हैं। ये धारियाँ यौवनावस्था तक रहती हैं तदनन्तर धीरे धीरे मिट जाती हैं।

शेर बबर साधारणतः दल में नहीं रहा करते वरन् नर और मादा जोड़ा बनाकर एक संग रहकर अपना निर्वाह किया करते हैं। कुछ मास तक तो शेरनी बच्चों को शेर से अलग रखती है तत्पश्चात् शेर, शेरनी तथा बच्चे सब उस समय तक साथ रहते हैं जब तक कि बच्चे स्वयं अपना निर्वाह करने के योग्य नहीं हो जाते। शेर पर सारे कुटुम्ब के निर्वाह का भार होता है। एक साहब को अफ्रीक़ा में एक बार सुयोग से एक शेर के कुटुम्ब को शिकार मारते और खाते देखने का अवकाश हुआ था, उसका उल्लेख उन्होंने निम्न-लिखित प्रकार से दिया है:—

"मेरा कैम्प जूलूलैन्ड में पड़ा था। संध्या-समय मैं टहलने को आधे मील निकल गया था कि ज़ेबरा घोड़े का एक दल सामने भागता हुआ दिखाई दिया। जब वे मुझसे लगभग २०० गज़ के अन्तर पर थे तो मैंने देखा कि दल के सबसे पहले ज़ेबरा पर, वज्र के समान, कोई पीला जन्तु तड़पा; जिसके धक्के से घोड़ा तुरन्त गिर गया। मुझसे कोई ६० गज़ पर एक ऊँचा पेड़ था। इससे पूर्व कि शेर को इधर-उधर देखने का अवकाश मिले, मैं, कुतूहलवश दौड़ के उस पर चढ़ गया। ऊपर चढ़ कर जब मैंने देखा तो शेर उस सुन्दर धारीदार जन्तु के प्राण ले चुका था किन्तु

अभी खाना आरम्भ नहीं किया था। पहले वह ज़ोर ज़ोर से गर्जा और उसके गर्जन का उत्तर भी मिला। कुछ मिनटों में एक शेरनी दौड़ती हुई, चार बच्चों सहित, उसी ओर से आई जिधर से ज़ेबरा का दल आया था। निःसन्देह शेरनी उन जन्तुओं को खदेड़ कर इस स्थान पर लाने ही के लिए भेजी गई थी।

"शेर का कुटुम्ब ज़ेबरा के चारों तरफ़ खड़ा हुआ बड़ा सुहावना मालूम होता था। बच्चे शिकार को चीरने-फाड़ने की चेष्टा करने लगे परन्तु मोटी खाल में उनके दाँत नहीं घुसते थे। शेर बैठ गया और शेरनी भी बच्चों को शिकार से हटा के चार पाँच गज़ के अन्तर पर बैठ गई। तब शेर उठा और ज़ेबरा के मृतशरीर को खाना आरम्भ किया। शीघ्र उसने शिकार की एक पिछली जांघ खा डाली। तब वह हटके कुछ दूर जा बैठा। तत्पश्चात् शेरनी उठी और उसने ज़ेबरा की खाल के चिथड़े चिथड़े कर दिये और मांस के बड़े बड़े टुकड़े, मुँह भर भरके, निगलने लगी। बच्चों को भी खाने से नहीं रोकती थी। ये छोटे छोटे शेर एक दूसरे पर गुर्राते थे और परस्पर झगड़ा करते थे। कभी कभी आपस में लड़ाई भी हो पड़ती थी। किन्तु शेरनी इन झगड़ों की ओर कुछ ध्यान न देती थी। हाँ यदि कोई बच्चा उसके खाने में बाधा डालता था तो पंजे का थप्पड़ मार देती थी। शीघ्र ज़ेबरा की केवल थोड़ी सी हड्डियाँ ही शेष रह गई जिनका मांस नोचने के लिए सहस्रों गिद्ध आकाश में चक्कर लगाने लगे थे। तब शेर का कुटुम्ब चल दिया, शेरनी सबसे आगे और शेर सबसे पीछे था। शेर घूम घूम कर देखता जाता था कि उनका कोई पीछा तो नहीं कर रहा है।"

साधारणतः शेर दिन में शिकार नहीं करता। संध्या होते ही भोजन प्राप्त करने की चिन्ता उसको घेरती है। किन्तु बिल्ली-वंश के अन्य जन्तुओं के समान जब तक कि वह भूख के कारण अत्यन्त

व्याकुल नहीं हो जाता शेर भी अपने शिकार पर खुले मैदान आक्रमण नहीं करता। प्राय: वह जल के निकट किसी झाड़ी में छिपा रहता है या किसी मार्ग के किनारे, जिस पर से जानवर निकला करते हैं, छिप कर बैठ रहता है। और जब तक शिकार पास नहीं पहुँच जाता वह दुबका पेट के बल पड़ा रहता है। ज्योंही कोई जन्तु उसके पास पहुँचता है त्योंही वह एक बड़ी छलाँग भरकर उस पर जा टूटता है। शिकार के अन्तर का ठीक ठीक अनुमान न कर सकने पर वह कभी कभी चूक भी जाता है। चूक जाने पर शेर दो एक छलाँगें और भर कर जन्तु को पकड़ने की चेष्टा करता है किन्तु पहली बार चूक जाने पर फिर उसको सफलता बहुत कम होती है। बहुधा वह अपना सा मुँह लेकर लौट आता है और फिर छिप रहता है। प्रकृति की दूरदर्शिता का यह प्रमाण है कि उसने शेर जैसे बलवान् और हिंसक जन्तु को शिकार का पीछा करने को, बहुत दौड़ने भागने का सामर्थ्य नहीं दिया, नहीं तो छोटे, निर्बल जीवों को उससे बचने का कोई उपाय न रह जाता।

भूख से पीड़ित होकर शेर अत्यन्त ढीठ हो जाता है और दिन के प्रकाश में भी ग्राम-बस्तियों में घुस के गाय बैल बकरी आदि को मार ले जाता है। किसी प्रकार का भय उसको नहीं रह जाता। एक प्रसिद्ध शिकारी इस सम्बन्ध में एक भीषण घटना सुनाते हैं। अफ़्रीका में वह कैम्प लगाये पड़े थे। कैम्प के चारों ओर काँटों का ऊँचा घेरा बना लिया था। हिंसक जन्तुओं के डराने को कैम्प में आग भी जलाई जा रही थी। रात में एक शेर काँटों के ऊँचे घेरे को फाँद के भीतर कूद आया। दो आदमी आग के पास ही एक कम्बल ओढ़े पड़े थे। उनमें से एक को मुँह में दाब के शेर बाहर कूद गया। आश्चर्य्ययुक्त बात यह थी कि उस अभागे मनुष्य के संग जो दूसरा आदमी कम्बल ओढ़े सो रहा था उसने बड़े साहस से

आग में से एक मोटी जलती हुई लकड़ी खींच ली और उससे शेर के सिर पर बहुत चोटें मारीं किन्तु कुछ फल न निकला। भूख के कारण शेर को आग का भी भय न रह गया था। बाहर कूद जाने पर शेर ने उस मनुष्य के मृत-शरीर को दूर ले जाने का भी कष्ट न उठाया वरन् घेरे के समीप ही उसको खाना आरम्भ कर दिया। हड्डियों के टूटने चटकने के शब्द तक कैम्प के भीतर सुनाई पड़ते थे।"

पूर्वी अफ़्रीक़ा में, जिसका अधिकांश भाग सघन वनों से ढका है, शेर बबर बहुसंख्यक हैं। योरपीय महायुद्ध में कई वर्ष तक इस प्रदेश में अँगरेज़ी और जर्मन सेनाओं में युद्ध होता रहा था। शेरों की ढिठाई की यह दशा थी कि जहाँ सम्पूर्ण दिन गोलियों की वर्षा होती रहती थी और तोपों के गर्जन से भूमि काँपा करती थी वहाँ से भी वे भागे नहीं, वरन् रात होते ही खाइयों के आस-पास धाड़ें मारा करते थे। सैनिकों को इन्हीं खाइयों में रात को सोना पड़ता था। शेरों के भय से सैनिक बिछौनों की चादरें खाइयों पर फैला लिया करते थे, खुले रहने की अपेक्षा उनको पतली चादरों का आश्रय ही अपनी रक्षा के लिए यथेष्ट प्रतीत होता था। बेचारे संतरी को प्रतिक्षण प्राणों का भय रहता था। एक अफ़सर ने वहाँ का वृत्तान्त देते हुए लिखा है:—

यद्यपि जर्मन-सैनिकों के पास ही होने के बहुत से चिह्न पाये जाते थे तो भी उन्होंने हम पर कभी आक्रमण नहीं किया, किन्तु शेरों ने तो ठान लिया था कि हम लोगों को किसी समय कल न लेने देंगे। वे अपने भयानक गर्जन से रात्रि को भयंकर कर देते थे।...नटोव नामक स्थान में एक छोटा सा कैम्प था जिसके बीच में तीन सैनिक एक घास की झोपड़ी में सो रहे थे। एक शेर बिना आहट या गर्जन किये झोपड़ी के भीतर घुस गया और सोते सैनिकों

में से एक को पकड़ लिया और ले चला। बेचारे सैनिक के कण्ठ से केवल एक दु:खमय शब्द निकला, तत्पश्चात् सन्नाटा होगया।"

यद्यपि शेर दल में रहनेवाला जन्तु नहीं है तथापि अफ्रीका के शेर कभी कभी मिल के शिकार किया करते हैं और चतुराई से एक दूसरे को सहायता देते हैं। विशेषकर जिन स्थानों में शिकार का अभाव होता है उनमें शेर ऐसे प्रयत्नों से प्राय: काम लेते हैं। दिन के प्रकाश ही में १० या २० शेर मिल के शिकार को पहाड़ों की तंग घाटियों में घुसा ले जाते हैं। इन घाटियों में पहले ही से दल के कुछ जन्तु छिपे रहते हैं और ज्योंही शिकार पास पहुँचता है उस पर टूट पड़ते हैं।

शेर का शारीरिक बल आश्चर्यजनक होता है। किसी ने कहा है कि शेर का पञ्जा, ह्वेल की दुम, और जिराफ़ की टाप जन्तु-जगत् में सबसे शक्तिशाली अंग हैं। अपने बृहत् पंजे के एक थप्पड़ ही से शेर बड़े बड़े जन्तुओं की रीढ़ की हड्डी चूर कर डालता है। पूरे गाय-बैल को उठा के चौड़ी चौड़ी खाइयाँ फाँद जाना, अथवा १०-१२ फ़ुट ऊँची भीति कूद जाना शेर के लिए साधारण बात है। फिर भी शेर के देह-बल की अत्युक्ति भी प्रसिद्ध है। जैसे प्राय: कहा जाता है कि शेर गाय-बैल को उठा के इस तरह ले जाता है जैसे कि बिल्ली चूहे को ले जाती है। ऐसी बातें विश्वास-योग्य नहीं हो सकतीं। यह मान लेना भी भ्रम है कि शेर गाय-बैल को मुँह में दाब कर भाग सकता है। वास्तव में गाय-बैल का अग्रभाग ही उठा रहता है, पिछला भाग भूमि पर घसीटता जाता है। शेर के आ जाने पर सर्वथा ऐसी हलचल मचती है, ऐसी घबराहट और भगदड़ होती है कि कोई व्यक्ति इतना शान्त नहीं रह जाता कि वह कह सके कि उसने स्वयं देखा कि शेर गाय-बैल को चूहे के समान उठाये भागा जा रहा था।

शेर बड़ा हानिकारक जन्तु होता है और इसी लिए मनुष्य ने निर्दयी होकर उसकी संख्या क्षीण करने में कोई त्रुटि नहीं की है। एक विख्यात फ्रांस के शिकारी का अनुमान है कि एलजीरिया प्रदेश में प्रत्येक शेर प्रतिवर्ष ६,००० फ्रैंक (लगभग ३,७५०) मूल्य के घरेलू जन्तु जैसे ऊँट, गाय, बैल, भेड़, बकरी मार ले जाता है। साधारणत: शेर की आयु ३५-४० वर्ष की होती है। इससे पता चल सकता है कि अपने जीवन में प्रत्येक शेर मनुष्य की कितनी हानि पहुँचा सकता है।

शेर की प्रकृति तथा स्वभावों के विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। पहले तो शेर को एक उदारहृदयी और उत्कृष्ट जन्तु मान लिया था। वन्य पशुओं का राजा बल और भीषणता की साक्षात् मूर्त्ति है और मानवी हृदय पर चिरकाल से उसका बड़ा प्रभाव रहा है। अनेक देशों की भाषा में बल, साहस, गर्जन, कठोरता की उपमा शेर ही के बल आदि से देते रहे हैं। फल यह हुआ कि शेर बबर बहुत से ऐसे गुणों से भूषित किया जाने लगा जो वास्तव में उसमें विद्यमान नहीं होते। उदाहरणार्थ जीवविज्ञानशास्त्र के विख्यात फ्रांसीसी विद्वान् बफ़ां (Buffon) का मत है कि अत्यन्त क्रूरता, साहस और शारीरिक बल के साथ शेर में श्रेष्ठता, उदारता, कृतज्ञता और दया के प्रशंसनीय भाव भी विद्यमान होते हैं।

किन्तु हाल के बहुत से शिकारियों के अनुभव से शेर के सद्गुणों का पर्दा उठता जा रहा है। उसके अधिकांश गुण कल्पित ही माने जाने लगे हैं और वह उच्च पद से गिरकर एक साधारण पशु के पद पर आता जाता है।

डाक्टर लिविंगस्टन (Dr. Livingstone) कहते हैं "शेर के स्वभावों से परिचित होकर मुझे ज्ञात हुआ कि उसमें न वह क्रूरता ही

है न वह श्रेष्ठता जो उसकी प्रकृति में बताई जाती है।" सर सैम्युअल (Sir S. Baker) बेकर लिखते हैं "बहुत सी घटनायें बताई जा सकती हैं जब कि शेर ने न वह उत्कृष्टता दिखाई न साहस ही प्रकट किया जिनके लिए वह प्रसिद्ध किया जाता है।"

मिस्टर सेलूस (Mr. Selous) शेर के एक नवीन निन्दक हैं। आप लिखते हैं "जंगली दशा में शेर को शानदार कहना बहुत अनुचित है। मेरी सर्वदा यही राय रही है। जब कभी वह दिन में दृष्टिगोचर होता है तो उसकी चाल-ढाल चोर और भगेड़ू की सी होती है जिसका शान से कोई सम्बन्ध नहीं होता। शानदार प्रतीत होने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना शिर ऊँचा उठा के चले। किन्तु शेर ऐसा बहुत कम करता है। चलते समय उसका शिर पीठ से नीचा रहा करता है। केवल जब मनुष्य की उपस्थिति का उसको पता लगता है तो वह कभी कभी शिर उठाकर देखता है किन्तु प्रायः तुरन्त ही फिर झुकाकर भाग खड़ा होता है। हाँ जब भागने का अवकाश न पाकर, शत्रु के सामने वह जमकर खड़ा हो जाता है, और मुँह फाड़कर, चमकीली आँखें विस्फारितकर, और शिर को कन्धों से झुका, नीचे स्वर से गुर्राता है तब मनुष्य को व्याकुल करनेवाला उससे अधिक और कोई दृश्य नहीं होता। किन्तु शान अथवा उच्चता का तो उसकी आकृति में कोई अंश पाया नहीं जाता।"

एक बहुत पुरानी कहावत शेर बबर के विषय में यह थी कि वह कुणपभोजी नहीं होता। पड़ा हुआ मांस कभी नहीं खाता वरन् जीवित शिकार को स्वयं मार कर खाता है। यह बात भी कल्पनामूलक प्रमाणित हुई। भूख से पीड़ित हो शेर भी पड़ा हुआ मांस साफ़ हड़प कर जाता है।

कोई कोई तो शेर की यहाँ तक निन्दा करते हैं कि उसको भीरु और डरपोक बताने में भी संकोच नहीं करते। यथार्थ में बात यह है कि अन्य जन्तुओं के समान शेर भी भिन्न भिन्न प्रकृतियों के पाये जाते हैं। उनका भी स्वभाव अनेक कारणों से बनता बिगड़ता है। उदाहरणार्थ जिन स्थानों में भोजनों का अभाव होता है वहाँ शेर साहसी, भयङ्कर और क्रूर हो जाता है, किन्तु जहाँ क्षुधा का निवारण सुविधा से होता रहता है वहाँ शेर न कष्ट उठाना चाहता है न साहस और क्रूरता प्रकट करने का अभ्यासी ही रह जाता है। आत्मरक्षा की चिन्ता शेर को भी होती है और भागने का अवकाश पाकर वह भी निष्कारण भिड़ना नहीं चाहता। इसलिए यदि शेर मनुष्य के सामने से कभी भाग जाय तो भी उसको भीरु कहना अनुचित होगा।

एक प्रशंनीय गुण शेर में अवश्य होता है कि वह निष्कारण रक्तपात नहीं करता और पेट भरे होने पर बहुधा छोटे बड़े किसी जन्तु से नहीं बोलता।

निश्चितरूप से यह तो नहीं कहा जा सकता कि शेर मनुष्य से डरता ही है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह मानव-जाति की श्रेष्ठता स्वीकार करता है। साधारणत: जब तक बहुत भूखा नहीं होता वह मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता। यदि भाग जाने का अवकाश उसको मिलता है तो निहत्थे मनुष्य के सामने से भी वह हट जाने ही में बुद्धिमानी समझता है। डाक्टर लिविंग्स्टन बताते हैं कि यदि शेर अचानक किसी मनुष्य के सामने आ पड़ता है तो पहले खड़ा हो, क्षण दो क्षण उसकी ओर घूरता है, तब घूमकर शान्त भाव और धीमी चाल से लौट पड़ता है, किन्तु घूम घूम के देखता जाता है कि उसका पीछा तो नहीं किया जा रहा है। कुछ दूर निकल जाने पर वह पग बढ़ाता है और धीरे धीरे भागने लगता है। अन्त में जब

निश्चय कर लेता है कि वह मनुष्य की दृष्टि से बाहर निकल गया है तो ख़रगोश के समान दुम दबाकर भाग निकलता है। सर विलियम हैरिस लिखते हैं:—"कदाचित् कोई दिन ऐसा न होता होगा जब दो, तीन शेरों से हमारी भेंट न होती हो, किन्तु, सृष्टि के अन्य सब जीव-जन्तुओं के समान, वे भी मनुष्य के आ पड़ने से उद्विग्न हो सर्वथा भाग पड़ते थे। शेरों से भेंट हो जाना हमारे लिए कष्टकर तो अवश्य होता था, परन्तु यदि हमारी ओर से कोई शत्रुता प्रकट नहीं की जाती थी तो वे हमसे कभी छेड़-छाड़ नहीं करते थे।"

मनुष्य को जब कभी नीचे गिरा लेता है तो भी शेर अपने परास्त शत्रु की अद्वितीय शक्तियों से झिझकता है और सहसा उसके प्राण ले डालने का साहस नहीं करता, वरन् कुछ देर तक गुर्राता, दुम हिलाता उसके ऊपर खड़ा रहता है। एक बार शेर के इस स्वाभाविक भय के कारण ही डाक्टर लिविंग्स्टन के प्राण बच गये। उनको भूमिगत कर शेर उनके ऊपर खड़ा होगया। और उनके एक साथी को गोली चलाने का अवसर मिल गया। गोली चलते ही शेर उनको छोड़ अपने घातक की ओर झपट पड़ा।

मनुष्य की बोली में दुष्ट से दुष्ट जन्तु को भी भयभीत कर देने की विचित्र शक्ति होती है, किन्तु व्यर्थ चिल्लाने अथवा नाद करने से कोई प्रभाव नहीं होता। पशुओं पर प्रभाव होता है शब्दों के उच्चारण का। सुविख्यात शिकारी गॉर्डन कमिंग को एक बार इसका अनुभव हुआ था। एक शेरनी को उन्होंने घायल किया। शेरनी भयंकर हो उन पर उछलने ही को थी कि उन्होंने पुकार के कहा "देख सँभल के"। इन शब्दों के उच्चारित होते ही शेरनी ठिठक गई। शिकारी तब बहुत धीरे धीरे पीछे हटे और शेरनी को संबोधन करते हुए कुछ शब्द बोलते गये। शेरनी खड़ी देखती रही किन्तु आक्रमण न कर सकी।

अपने बुद्धि-बल से मनुष्य शेर जैसे भीषण जन्तु को भी वशीभूत कर सकता है और शेर अपने पालक से डरता ही नहीं वरन् प्रेम भी करने लगता है। एक भयानक घटना कुछ समय हुआ पेरिस में होगई। एक कटहरे में १६ शेर बन्द थे और उसमें घुस कर एक मनुष्य को तमाशा करना था। इन शेरों में से केवल ६ शेर स्वयं उसी मनुष्य के शिक्षित किये हुए थे, शेष सब शिक्षित तो थे किन्तु किसी दूसरे आदमी ने उनको सिखाया था। तमाशा करने-वाला ज्यों ही कटहरे में घुसा उसका पैर फिसल गया। उसके गिरते ही सब अपरिचित शेर उस पर टूट पड़े। उसकी यह दुर्दशा देख उसका एक पुराना शेर तुरन्त उसकी सहायता को आ गया और सब शेरों को मार मार कर भगा दिया।

बाघ

(The Tiger—Felis Tigris)

बाघ को देखते ही ज्ञात हो जाता है कि वह बिल्ली-वंश का जन्तु है, क्योंकि शारीरिक गठन में दोनों इतने समान हैं कि यदि बाघ को बड़ी बिल्ली कहा जाय तो भी अनुचित न होगा। यह दीर्घ-काय, शानदार मांसभोजी एशिया महादेश का निवासी है, पृथ्वी के अन्य किसी भाग में नहीं होता। हिन्दुस्तान में उत्तर से दक्षिण तक प्राय: सभी जंगलों में बाघ पाया जाता है। हिन्दुस्तान के अतिरिक्त बाघ चीन, कोरिया और मलय प्रायद्वीप में भी होता है। जावा और सुमात्रा के द्वीपों में भी मिलता है। हिन्दुस्तान से पश्चिम में बाघ ईरान से जार्जिया देश तक होता है। परन्तु इस जाति के सबसे बड़े और बलवान् जन्तु उत्पन्न करने का गौरव बंगाल-प्रान्त को प्राप्त है।

बाघ ऊँचाई में लगभग शेर के बराबर ही होता है। देह की लम्बाई ९—९½ फुट तक होती है, किन्तु कभी कभी इससे भी

अधिक लम्बाई के बाघ मारे जाते हैं। उसकी अगली टाँगों का घेरा लगभग दो फुट होता है और गर्दन वृक्ष के तने के समान मोटी होती है। प्रबल पञ्जे और भीषण दाँत देख कर मानों साक्षात् काल के ही दर्शन मिलते हैं। शेर बबर के सिवा और किसी जन्तु का अगला पञ्जा इतना बड़ा और भयंकर नहीं होता।

बाघ के शरीर का रंग हलका पीला होता है जिस पर बादामी अथवा काली धारियाँ होती हैं। इन धारियों का आकार सब जन्तुओं में भिन्न भिन्न होता है, और कभी कभी ये धारियाँ सारे शरीर पर दुहरी, अर्थात् दो दो समानान्तर पर हुआ करती हैं। जो बाघ गरम देशों में होते हैं उनके शरीर पर धारियाँ चमकती हुई होती हैं। किन्तु ठण्ढे प्रदेशों में जो बाघ मिलते हैं उनकी धारियाँ धुँधली और रंग हलका होता है। वहाँ बाघ के शरीर पर बाल भी कुछ बड़े होते हैं।

बाघ की पृथ्वी पर एक ही उपजाति है। भारतवर्ष के अनेक भागों में तीन प्रकार के बाघ माने जाते हैं अर्थात् (१) लोदिया बाघ, (२) ऊँटिया बाघ, और (३) नरभोजी बाघ। परन्तु ये भेद केवल स्वभाव और आहार के आधार पर किये जाते हैं।

लोदिया बाघ का नाम उन बाघों को दिया जाता है जो सघन वन में वास करते और अपना निर्वाह जंगल के जन्तुओं को मार कर किया करते हैं। ये बाघ ग्राम-बस्तियों के निकट कभी नहीं आते और आदमी को देखकर तुरन्त भागते हैं। इसके विपरीत ऊँटिया बाघ सर्वथा जंगल के किनारे पर रहके नित्य ग्राम-बस्तियों में भ्रमण किया करता है और गाय, बैल, भेड़-बकरी आदि से अपना निर्वाह करता है। पालतू जन्तुओं को पकड़ लेने में बहुत दौड़ धूप नहीं करनी पड़ती अतः वह जंगली जन्तुओं को पकड़ने का कष्ट नहीं उठाना चाहता। तीसरे प्रकार के बाघ बहुधा बुड्ढे होते हैं। उनके

डाढ़ मनुष्य का मांस लग जाता है। ये सबसे भयंकर और ख़तर-नाक होते हैं और नरभोजी कहलाते हैं।

पशुशालाओं में बन्दी बाघों के दुर्बल, छरहरे शरीर देखके इस बलवान् जन्तु का कोई अनुमान नहीं किया जा सकता। जंगल में पला हुआ बाघ छरहरे शरीर का जन्तु नहीं होता वरन् उसके सारे शरीर पर बड़े बड़े पुट्ठों की ढालें सी चढ़ी होती हैं जो लोहे के समान कड़ी और पुष्ट होती हैं। टाँगों की मुटाई और पञ्जों की परिधि आश्चर्य्यजनक होती है। शरीर का बोझ ५-६ मन से कम नहीं होता। ऐसा विशाल जन्तु जब तड़प कर गाय, बैल, हरिण आदि पर जा टूटता है तो उसके धक्के ही से वे मूर्च्छित हो जाते हैं। किन्तु बाघ शेर के समान पञ्जे का थप्पड़ नहीं मारता वरन् दोनों पञ्जों से शिकार की देह को जकड़ लेता है जिससे कि उसके नख मांस में गहरे घुस जाते हैं, और तब अपने दाँतों से चीर-फाड़ करता है।

बाघ साधारणत: घने जंगलों में वास करनेवाला जन्तु है, किन्तु ग्रीष्मकाल में प्यास से व्याकुल हो वह जंगलों से बाहर निकल आता है और किसी जलाशय के निकट झाड़ियों में छिपा पड़ा रहता है। यदि कोई टूटा फूटा मकान जंगल में मिल जाता है तो उसी में बाघ रहने लगता है और दीवालों पर धूप में पड़ा देखा जाता है। बाघ अपने वासस्थान से बहुत प्रेम करता है और भोजन की खोज में चक्कर लगाने के पश्चात् सर्वथा उसी स्थान पर लौटकर विश्राम करता है।

मिस्टर वालटर एलियट लिखते हैं "दक्षिणी हिन्द में बाघ जंगलों तथा पहाड़ी भूभागों में अपने बच्चों को जन्म देते हैं और जब फ़सल खेतों में तैयार हो जाती है तो खुले मैदानों में निकल आते हैं। कहीं कहीं वे बड़ी हानि पहुँचाते हैं और बरामदों में सोते हुए

ग्राम-निवासियों को उठा ले जाते हैं। मादा के दो से चार तक बच्चे होते हैं। बच्चे उत्पन्न होने की कोई विशेष ऋतु नहीं होती। अधिकतर वे घरेलू गाय-बैलों का शिकार किया करते हैं किन्तु कभी कभी जंगली सुअर आदि भी मार लेते हैं। स्वभावतः बाघ डरपोक जन्तु होता है और जब तक कि घायल नहीं हो जाता, अथवा उससे छेड़-छाड़ नहीं की जाती, तब तक वह सामना नहीं करता। बहुत सी घटनायें ऐसी हुई हैं जब कि गाय-बैलों के झुण्ड ने उसको भगा दिया। एक बार एक सरकारी रिपोर्ट हुई थी कि भैंसों का एक गल्ला एक बाघ पर दौड़ पड़ा और उसके मुँह से चरवाहे लड़के को छुड़ा लिया। यद्यपि बाघ प्रायः जंगली सुअर को मार लेता है तथापि कभी कभी वह स्वयं सुअर का शिकार बन जाता है। मैंने एक बार एक बाघ का मृतशरीर देखा था जिसकी मृत्यु हुए बहुत देर नहीं हुई थी। उसके घाव को देख के स्पष्ट प्रकट होता था कि उसका शरीर सुअर ने फाड़ा है। ऐसी ही दो घटनाओं का वृत्तान्त मुझे एक साहब ने सुनाया था जिन्होंने कि उन घटनाओं को स्वयं देखा था। प्रायः यह विश्वास फैला हुआ है कि बाघ केवल उसी जन्तु का मांस खाता है जिसको वह स्वयं मारता है और वह कुणपभोजी नहीं होता। इसके विपरीत मुझे एक बार प्रमाण मिला कि एक मादा बाघ और उसके दो बड़े बड़े बच्चों ने एक बैल का मृतशरीर खा डाला। जो रोग से मरा था। मैंने मरा हुआ बैल शाम को देखा था और दूसरे दिन सुना कि रात्रि में बाघों का गर्जन सुनाई पड़ा था। तब मैंने पदचिह्नों के सहारे खोज की। मैंने देखा कि मरे हुए बैल को बाघनी एक नाज के खेत के बीच में घसीट ले गई थी और हड्डियों का सारा मांस नोच नोच कर खा डाला था। इसके पश्चात् उसने एक दूसरा जीवित बैल भी मारा किन्तु उसका कुछ ही भाग खाकर छोड़ दिया। खानदेश से मुझे एक प्रसिद्ध शिकारी ने एक

घटना का वृत्तान्त लिखा था। उन्होंने एक बाघनी मारी और अपने डेरों पर लौटकर उसका मृत शरीर लाने को एक हाथी भेजा। हाथीवाले लौट आये और सूचना दी कि बाघनी को उन्होंने जीवित पाया। दूसरे दिन सबेरे शिकारी फिर गये तो देखा कि मृत बाघनी के शरीर को एक दूसरा बाघ एक नाले में घसीट ले गया था और उसे आधा खा डाला था। यह दूसरा बाघ भी शिकारियों को पास ही मिल गया और उन्होंने उसको भी मार लिया।"*

बिल्ली-वंश के अन्य जन्तुओं की प्रकृति के विपरीत बाघ को जल से प्रेम होता है और वह ग्रीष्मकाल में प्रायः जल में तैरा करता है। सिंगापुर में कभी कभी बाघ तैरते हुए समुद्र तक पहुँच जाते हैं। जोहोर के टापू से कूदकर, बीचवाले छोटे छोटे टापुओं में होते हुए समुद्र को ये जन्तु पार कर आते हैं।

बाघ पेड़ पर चढ़ते तो नहीं किन्तु संभवतः (यदि चाहें तो) चढ़ सकते हैं, क्योंकि देखा गया है कि जब नदियों के किनारों के जंगल बाढ़ आने पर डूब जाते हैं तो बाघ पेड़ों पर चढ़कर शरण लेते हैं।

माँ अपने बच्चों से बड़ी प्रीति करती है और बच्चों की रक्षा के लिए बड़ी चौकन्नी रहा करती है। लगभग दो वर्ष तक वह बच्चों को साथ रखकर उनका पालन-पोषण करती है। परन्तु एक अनुभवी शिकारी और ग्रन्थकर्त्ता लिखते हैं "भूख से पीड़ित होकर वह कभी कभी बच्चों को खा भी लेती है। जब बच्चों को माँ के दूध के सिवा अन्य खाद्य की आवश्यकता होने लगती है तो बाघनी जन्तुओं को मारके उन्हें दिखाती है और शिकार करने की शिक्षा देती है। ऐसे समय में बाघनी अकारण ही हत्या किया करती

* Catalogue of Mammalia, South Mahratta Country.

है। सम्भवत: वह यह क्रूरता बच्चों को उत्तेजित करने और उनको हिंस्र बनाने के लिए प्रकट किया करती है। बच्चे भी बड़े हिंसक हो जाते हैं और तीन चार गाय-बैल एक संग मार डालना उनके लिए एक सामान्य बात है।"*

बिल्ली-वंश के अन्य जन्तुओं के समान बाघ भी किसी गुप्त स्थान में छिपे रह कर एकाएक शिकार पर टूट पड़ता है। गाय-बैल आदि को मारकर बहुधा उसी स्थान पर नहीं खाता वरन् मृत शरीर को किसी निरापद शून्य स्थान में घसीट ले जाता है और पहले शरीर के पिछले भागों को खाना आरम्भ करता है और इसके बाद पेट भर कर पानी पीता है और तब किसी झाड़ी में सो रहता है। खाया पिया पचाकर फिर लौटता है और शिकार के शरीर के शेष भागों को खाता है।

बाघ की प्रकृति के बारे में भी बहुत सी झूठी किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। चिरकाल से शेर बबर को जितना उत्कृष्ट जन्तु माना गया है उतना ही बाघ को निकृष्ट समझते हैं। लोकमत यह है कि बाघ को अकारण ही रक्तपात करने में आनन्द आता है और वह चाहे भूखा हो या नहीं जिस जीवित जन्तु को देख पाता है उसी के प्राण लेने पर उद्यत हो जाता है। किन्तु यह भी एक किंवदन्ती ही है। बाघ और शेर दोनों ही की प्रकृति स्वभावत: भीरु होती है, और वे अपने को अकारण किसी जोखों में नहीं डालना चाहते। किन्तु शेर की अपेक्षा बाघ ज़्यादा ढीठ होता है और भूखा होने पर वह खुल्लमखुल्ला आक्रमण करता है। जो जीवधारी सामने आ पड़ता है उसी पर आँख मूँदकर जा टूटता है। उसको अपनी रक्षा का भी कुछ ध्यान नहीं रह जाता। मनुष्य से सभी

---

* "The Royal Tiger of Bengal," by Sir J. Fayrer.

जन्तुओं के समान बाघ भी डरता है। आदमी को देखकर यथा-सम्भव वह किसी घनी झाड़ी में दबक कर बैठ रहता है, और यदि उसको यह निश्चय हो जाय कि मनुष्य की आँख उस पर नहीं पड़ी है तो धीरे से चोर की तरह खिसक जाता है। यदि सहसा कोई आदमी उसके सामने आ पड़ता है तो चौंककर गुर्राता और दौड़ पड़ता है। किन्तु तब भी उसका आशय यह नहीं होता कि मनुष्य से भिड़ ही पड़े, वरन् वह आत्मरक्षा के लिए घुड़की देना चाहता है। एक बार चिल्ला देने ही से वह भाग पड़ता है।

फिर भी पशु पशु ही हैं और प्रायः बाघों का स्वभाव ऐसा भीषण भी देखा जाता है कि वे अकारण ही मनुष्य पर आक्रमण कर बैठते हैं। सारांश यह "जितना ही अधिक जंगलों में कोई घूमे फिरे और अनुभव प्राप्त करे, उतना ही उसको सिद्ध होता जायगा कि बिल्ली-वंश के जन्तुओं के स्वभाव के बारे में कोई बात निश्चित रूप से नहीं कही जा सकती। उनकी भी प्रकृतियाँ उतनी ही विभिन्न होती हैं जितनी कि हमारे घरेलू कुत्तों की।"*

बाघ की गरज तथा आक्रमण में झूठी बन्दर-घुड़की बहुत होती है। यदि शिकारी दृढ़ता से उसके सामने डटा रहे तो बाघ आधी ही दूर पर ठिठक जाता है और मुँह फेरकर भाग पड़ता है। किन्तु यदि मनुष्य उससे डरकर भाग पड़े तो किसी प्रकार कुशल नहीं।

कोई कोई बाघ नरभोजी हो जाते हैं और मनुष्य से डरने की कौन कहे उसकी खोज में फिरा करते हैं। अधिकतर बूढ़े बाघ नर-भोजी हो जाते हैं। उनके दाँत गिर गये होते हैं और उनमें दौड़ भागकर जंगल के जीवों को पकड़ने का सामर्थ्य नहीं रह

---

* Hicks' "Forty Years Among the Wild Beasts of India."

जाता। ये नरभोजी बाघ ग्राम और बस्तियों को ऊजाड़ कर देते हैं क्योंकि उनके भय से आदमी का निकलना बैठना तक बन्द हो जाता है। अब तो जंगल कम होते जाते हैं किन्तु डाक्टर जर्डन लिखते हैं कि सन् १८५६ ई० में और उससे पिछले वर्षों में मध्य-प्रदेश के एक अकेले मण्डला ज़िले में प्रतिवर्ष दो सौ तीन सौ मनुष्यों के प्राण नरभोजी बाघ ले डाला करते थे। आप लिखते हैं "मुझे बस्तर-प्रदेश में, जो नागपुर से दक्षिण-पूरब की दिशा में है, भ्रमण करने का अवकाश हुआ था। मैंने देखा कि नरभोजी बाघों के उपद्रव के कारण कई भूभागों में ग्राम बिलकुल ऊजड़ पड़े थे। इन ग्रामों में से किसी किसी में ऊँचे लट्ठे गाड़ के घेरे भी खींच लिये गये थे।"

मनुष्य की बुद्धि का सामना करते करते नरभोजी बाघ ऐसा चतुर, चौकन्ना और साहसी हो जाता है कि उसका पता लगाना और मारना अत्यन्त कठिन हो जाता है। उसे मारने के लिए उसका पीछा करना प्राय: निष्फल होता है क्योंकि वह अधिक समय तक किसी एक स्थान में ठहरता ही नहीं। नरभोजी बाघ भली भाँति समझता है कि जिस स्थान में वह किसी मनुष्य के प्राण लेगा वहाँ उसकी पूरी खोज की जायगी और उसको नष्ट करने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न और उपाय किये जायँगे। यही कारण है कि नरभोजी बाघ मनुष्य की हत्या करके उस स्थान से तुरन्त भाग पड़ता है और रात ही रात भागकर बीस या पचीस मील पर विश्राम लेना उसके लिए सामान्य बात है। कोई कोई तो मनुष्य को मारकर चालीस मील पर जाकर ठहरते देखे गये हैं। जो बाघ केवल पशुओं का शिकार किया करते हैं वे इस प्रकार भागते कभी नहीं देखे जाते।

बाघ का देहबल आश्चर्य्यजनक होता है। गाय-बैल को मुँह में दाबकर वह ऊँची ऊँची झाड़ियाँ आसानी से पार कर जाता

हैं। एक अफ़सर मेजर कैम्बेल इस सम्बन्ध में एक घटना लिखते हैं। तुंगभद्रा नदी के निकट एक बाघ ने एक बड़े बैल को एक खेत के भीतर मार डाला। खेत की मेड़ों पर चारों ओर छः फ़ुट ऊँची झाड़ी लगी हुई थी। मेजर साहब घटनास्थल के निकट ही उपस्थित थे और ख़बर पाते ही उस स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उनको ज्ञात हुआ कि बाघ बैल को उठाकर खेत के बाहर कूद गया था। बैल का मृत शरीर घसीटे जाने के कोई चिह्न खेत में नहीं थे न झाड़ियाँ ही कहीं टूटी थीं, केवल बाघ के पञ्जों के चार गहरे चिह्न खेत में बने थे। स्पष्टतः बाघ ने उचक ही कर झाड़ी को पार किया था। हिन्द में बाघ बड़ा विनाशकारी होता है। यद्यपि वह बहुधा घने वनों में रहता है तो भी निकटवर्ती बस्तियों में चक्कर लगा कर यथासंभव अपना निर्वाह घरेलू गाय-बैल पर किया करता है। इनको पकड़ लेने में जंगली जन्तुओं की अपेक्षा कम कष्ट उठाना पड़ता है। इसी से जंगलों के समीप गाय-बैलों के दल के दल हमेशा साथ साथ चरने निकलते हैं और ऐसे धृष्ट हो जाते हैं कि बाघ के आक्रमण से ज़रा नहीं डरते और अपनी रक्षा स्वयं कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में मेजर कैम्बेल ने एक उल्लेखनीय घटना वर्णित की है। मध्य हिन्द में एक छोटा सा लड़का भैंसें चराने को नित्य एक जंगल में जाया करता था। जंगल में एक भयंकर बाघनी चार बच्चों सहित प्रायः देखी जाती थी। बाघनी ने बारंबार उस लड़के को पकड़ना चाहा किन्तु भैंसें उसकी सदा रक्षा कर लेती थीं। बाघनी को आते देख सब भैंसें एक संग उस पर दौड़ पड़ा करती थीं और बाघनी को भगा देती थीं। बालक को भी भैंसों पर इतना भरोसा था कि वह निःसंकोच उनके संग चला जाया करता था।

दुर्भाग्यवश बालक को एक दिन खेल की धुन समाई और वह एक दूसरे लड़के को भी अपने संग ले गया। खेल-कूद में दोनों

बालक ऐसे निमग्न होगये कि उनको यह ध्यान न रह गया कि भैंसों का साथ न छूटना चाहिए। उस दिन बाघनी को घात का अच्छा अवसर मिल गया। बाघनी और उसके बच्चों को आते देख बेचारे बालक भैंसों की ओर भागे और भैंसें भी उनकी रक्षा के लिए तुरन्त दौड़ पड़ीं। किन्तु बाघनी को उस दिन सफलता होगई और वह नये बालक को उठा ले गई।

मेजर कैम्बेल का कैम्प घटनास्थल से निकट ही था। सूचना पाते ही मेजर साहब वहाँ जा पहुँचे और दूसरे दिन बाघनी को उन्होंने मार लिया। आश्चर्य्ययुक्त बात यह थी कि मेजर साहब ने दूसरे दिन भी उस निर्भय बालक को भैंसों के संग जंगल में उपस्थित पाया। उससे पूछा जाने पर लड़के ने उत्तर दिया कि मुझे बाघनी का ज़रा भी डर नहीं है और एक बड़ी भैंस की ओर संकेत कर बोला कि जब तक वह मेरे पास है तब तक कोई बाघ मुझे नहीं मार सकता।*

तेंदुआ व चीता

(THE PANTHER AND LEOPARD—FELIS PARDUS)

तेंदुआ और चीता दोनों बिल्ली-वंश के गुलदार जन्तु हैं। गुलों के द्वारा उनकी पहिचान धारीदार बाघ से सहज की जा सकती है।

दोनों की रचना बहुत कुछ समान है किन्तु दोनों में परस्पर भेद भी हैं। इस विषय में बहुत कुछ मतभेद है कि दोनों एक ही उपजाति की दो नसलें (Varieties) हैं या कि भिन्न भिन्न उपजातियों (Species) के जन्तु हैं। विद्वान् कुवे (Cuvier) ने उनको अलग अलग उपजातियों का जन्तु माना है। किन्तु हिन्दुस्तान में इन दोनों

* "Field Sports of India," by Major Walter Campbell.

जन्तुओं का परिचय प्राप्त करके कतिपय अनुभवी विशेषज्ञों का मत है कि ये दोनों एक ही उपजाति की दो नसलें हैं।

दोनों की पहिचान निम्नलिखित भेदों से की जा सकती है।

(१) तेंदुआ (Panther) चीते से बड़ा होता है। इसका रंग हलका पीला होता है, केवल पेट सफ़ेद होता है। खाल पर बाल छोटे छोटे किन्तु घने होते हैं। कपाल की बनावट लंबी होती है और यही उसकी सबसे उत्तम पहिचान है। दूसरी नसल की अपेक्षा तेंदुआ बड़ा भी होता है और ऊँचा भी, किन्तु शरीर भारी नहीं वरन् छरहरा होता है। शरीर की लम्बाई बहुधा ४$\frac{१}{२}$ फ़ुट से ५ फ़ुट तक होती है और दुम २$\frac{३}{४}$ फ़ुट से ३ फ़ुट तक। यह बड़ा जन्तु जंगलों में रहता है और विशेषत: ग्राम-बस्तियों में नहीं घुसता। तेंदुआ बलवान् जन्तु होता है और बैल तक की गर्दन तोड़ डालता है।

हिन्दुस्तान के अतिरिक्त तेंदुआ पश्चिमी एशिया में कॉकेशस पर्वत-श्रेणी तक होता है। मलय प्रायद्वीप में तथा अफ़्रीका में भी वह पाया जाता है।

(२) चीता (Leopard) छोटा होता है। उसका रंग कुछ गहरा होता है। बाल तेंदुये की अपेक्षा बड़े होते हैं किन्तु तेंदुये के से घने नहीं होते। शरीर उससे भारी होता है, लम्बाई ३ से ३$\frac{१}{२}$ फ़ुट तक और दुम २$\frac{१}{२}$ फ़ुट की होती है। ऊँचाई २ फ़ुट से २$\frac{१}{२}$ फ़ुट तक। चीता की खोपड़ी गोल, कुछ कुछ बुलडॉग की सी होती है।

मिस्टर हिक्स (Mr. Hicks), जो एक अनुभवी शिकारी हैं, कहते हैं कि यदि दोनों जन्तुओं को ऐसे नाम दिये जायँ कि जिनसे विदित हो जाय कि दोनों एक ही उपजाति के जन्तु हैं, और यह

कि उनमें केवल बड़ाई छुटाई का भेद है, तो उत्तम हो। दोनों के भेदों का ब्योरा वे इस प्रकार देते हैं :—

(१) तेंदुआ (जिसको उन्होंने Felis Panthera का नाम दिया है) :—बोझ लगभग १५० पौंड—लंबाई दुम छोड़कर, लगभग ५ फुट—गुलों के फूल स्पष्ट—बाल चिकने और चमकीले।

(२) चीता (जिसको उन्होंने Felis Panthereta का नाम दिया है) :—बोझ—केवल ५० पौंड—लंबाई दुम छोड़कर, लगभग ३ फ़ुट—गुलों के फूल अस्पष्ट या टूटे-फूटे, बालों का रंग धुँधला।

चीता हिन्दुस्तान में सब जगह होता है। यही जन्तु है जो ग्रामों में घुसके घरेलू जन्तुओं को मार ले जाता है। इसके द्वारा किसी किसी स्थान में जो हानि पहुँचती है उससे बहुत लोग परिचित होंगे। शेर और बाघ से तो बहुधा उन्हीं को भय रहता है जो जंगल में जाते हैं किन्तु चीता तो ग्रामों और घरों में घुसके उपद्रव किया करता है। न वह छोटे जन्तु को छोड़े, न बड़े को। मुर्ग़ा, मुर्ग़ी, भेड़, बकरी, हरिण जो कुछ मिल जाता है उसी को लेकर भाग जाता है। कुत्ते का मांस तो उसको इतना प्रिय है जिसकी सीमा नहीं। डाक्टर जॉर्डन लिखते हैं कि लंका के माननटाँडो नगर में चीतों ने एक भी कुत्ता न छोड़ा था।

चीता और तेंदुआ दोनों के शरीर पर काले काले गुल पड़े होते हैं, किन्तु दोनों नसलों के गुलों में थोड़ा भेद होता है। चीता के शरीर पर पाँच पाँच छ: छ: गुल मिलकर फूल से बने होते हैं और संख्या में भी बहुत होते हैं। किन्तु तेंदुआ के गुलों की संख्या कम होती है और उनके फूल टूटे फूटे होते हैं।

चीता और तेंदुये अत्यन्त ख़तरनाक जन्तु हैं। उनके छोटे क़द, अद्भुत फ़ुर्ती, और विशेषकर गुलदार शरीर सब उनकी हिंसक

शक्तियों को बढ़ाते हैं। चीता पेड़ पर चढ़ने में भी अत्यन्त कुशल होता है और घात के लिए प्रायः वृक्षों ही पर छिपा बैठा रहता है। उन स्थानों का तो कुछ बोध हो सकता है जहाँ शेर और बाघ छिपा करते हैं किन्तु चीते का ठिकाना नहीं कि किस वृक्ष से अकस्मात् ऊपर टूट पड़े। इसके अतिरिक्त उनके शरीर भी इस प्रकार रंग दिये गये हैं कि वर्णसाम्य से उनको घात करने में दूनी सुविधा होती है। सूर्य्य के प्रकाश में, वृक्षों के नीचे तथा डालों पर, धूप और छाया के जो गोलाकार धब्बे पड़ते हैं, उनमें इन जन्तुओं का रंग एक-दम मिल जाता है और कुछ ही दूर से उनकी उपस्थिति का पता नहीं चलता। जर्मन शिकारी हरस्किलिङ्स इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं कि ये जन्तु पास से निकल जाते हैं किन्तु दिखाई नहीं पड़ते।

तेंदुआ, जो चीते की अपेक्षा भारी शरीर का होता है, बहुधा वृक्षों पर नहीं चढ़ा करता।

शेर और बाघ की यह आदत होती है कि शिकार का कुछ भाग खाकर सो रहते हैं और खाया पिया पचाकर फिर लौटते हैं, इसलिए प्रायः मांसभोजी चोर और डाकू, जैसे स्यार अथवा लकड़बघा, शिकार के शेष भागों को, मैदान साफ़ पाकर, चट कर जाया करते हैं। किन्तु चतुर चीता इस प्रकार कभी नहीं लुटता। उसकी यह विलक्षण रीति होती है कि खा पीकर जो कुछ बचता है उसको घसीट कर किसी पेड़ के ऊपर ले जाता है और वहाँ उसको सुरक्षित स्थान में रख देता है। फिर कई दिन तक लौट लौटकर उसको खाया करता है। सड़े गले मांस को पञ्जों से पकड़ के दाँतों से चीरता-फाड़ता है, इसलिए उसके पञ्जे विषमयी हो जाते हैं और चीते द्वारा पहुँचाये हुए घावों की यदि तुरन्त चिकित्सा न की जावे तो वे प्रायः सड़ जाते हैं।

चीता व तेंदुआ शिकार मारकर हमेशा पहले उसकी गरदन का मांस खाते हैं। उनका यह स्वभाव बिल्ली-वंश के बड़े मांसभोजियों से बिलकुल उलटा है क्योंकि शेर और बाघ शिकार का पिछला भाग पहले खाया करते हैं।

ये दोनों जन्तु मनुष्य के लिए बड़े हानिकारक हैं। शेर वा बाघ का सा बल तो उनमें नहीं होता, किन्तु हानि पहुँचाने की शक्तियों में इनका नम्बर बढ़-चढ़ के है। बड़े फुरतीले शरीर के अतिरिक्त, उनकी चोर चाल, ढीठपन, वृक्षों पर छिपा रहना, ग्राम-बस्तियों में घुस जाने का साहस करना, इन सब स्वभावों के कारण उनको घात करने के अवकाश बहुत मिलते हैं। कुत्ते का मांस तो इन जन्तुओं को इतना प्रिय है कि कोई भय उनको रोक नहीं सकता। कुत्ता स्वयं अत्यन्त चौकन्ना होता है और आहट होते ही चौंक पड़ता है किन्तु तेंदुये की चोर चाल के कारण कुत्ते को उसके आने का पता नहीं चलता। चीता सर्वथा अकस्मात् उछलकर कुत्ते की गरदन पकड़ लेता है और उसको ऐसा निरुपाय कर देता है कि वह चीख़ भी नहीं पाता। पूर्वी अफ़्रीक़ा में एक स्थान पर एक कैम्प पड़ा था। संध्या समय जब कि लोग चल फिर रहे थे और आग भी जल रही थी, अकस्मात् एक चीता कूद आया और एक कुत्ते को उठा के क्षणमात्र में उछल गया। लोग उसके पीछे दौड़े किन्तु कहीं कुछ पता न चला। इस दिन की सफलता से चीते को ऐसा साहस होगया कि दूसरे दिन रात होते ही वह फिर आ पहुँचा और कैम्प में से एक हब्शी स्त्री को उठाकर भागा। पहले दिन की घटना के कारण आज सब लोग चौकन्ने थे। बन्दूकें भरी तैयार थीं और चलाये जाने पर उसने अभागी स्त्री को कोई ८० पग पर छोड़ दिया किन्तु गले के घावों के कारण स्त्री के प्राण निकल चुके थे।*

---

* "With Flashlight and Rifle," by Herr Schillings.

यद्यपि बिल्ली-वंश के सभी जन्तु फुरतीले होते हैं तथापि फुरती में चीते और तेंदुये से कोई तुलना नहीं कर सकता। उनका पैदल शिकार करने में शेर और बाघ के शिकार से भी अधिक भय होता है। चीते के शिकार में अत्यन्त चौकन्ना रहना आवश्यक होता है। कुशल इसी में है कि या तो वह तुरन्त मर जाय या निशाना बिलकुल चूक जाय क्योंकि घायल चीते से भयानक अन्य कोई शत्रु नहीं होता। एक बार एक चीते घायल होके एक झाड़ी में घुस गया। चारों ओर से शिकारियों ने झाड़ी को घेर लिया और बड़ी बड़ी कठिनाइयों से उसको बाहर निकाला। शिकारियों को पूरा विश्वास होगया था कि चीता इतना डर गया है कि वह किसी को हानि नहीं पहुँचा सकता। किन्तु वह घायल जन्तु ज्यों ही निकला तो उछल के एक शिकारी के कन्धे पर चढ़ गया। फिर तो वह एक के कन्धे से दूसरे के कन्धे पर उछलता फिरा। भूमि पर आने से पूर्व उसने अद्‌भुत फुरती से तीन मनुष्य की गरदनें चबा डालीं। शिकारियों की बन्दूकें और तलवारें एक भी काम न आईं। शिकारियों ने अन्त में उसको मार डाला किन्तु प्राण देने से पहले उसने सात आदमियों को घायल कर डाला, जिनमें से दो तो शीघ्र ही मर गये। बॉम्बोनल (Bombonell) फ्रांस के एक सुप्रसिद्ध शिकारी हुए हैं जो केवल चीते और तेंदुओं ही का शिकार किया करते थे। एक बार अफ्रीक़ा के एलजीरिया देश में उनको एक तेंदुये ने बुरी तरह से घायल कर मृतप्राय कर दिया था। इस दुर्घटना का वृत्तान्त उन्होंने इस प्रकार दिया है:—"आठ बजे रात का समय था। हम लोग भोजन कर रहे थे कि कुछ अरब हाँपते हुए पहुँचे और संवाद दिया कि सूर्य्यास्त के समय एक तेंदुआ एक बकरी को चरवाहे के सामने से उठा ले गया है और एक खड्ड में छिपा हुआ है। भोजन छोड़ मैंने तुरन्त हथियार लिये और उनके

साथ चल दिया। अरब लोग लगभग चौथाई मील पर एक चौड़े गहरे खड्ड के किनारे मुझे ले गये और दूर से ही वह स्थान दिखा दिया जहाँ तेंदुआ बकरी को लेके छिप गया था। खड्ड के बग़ल में बहुत से ढाल थे। उसके किनारे एक झाड़ी में मैं छिप गया। झाड़ी से लगभग २० फ़ुट के अन्तर पर उन लोगों ने एक बकरी बाँध दी, तत्पश्चात् तेंदुये के भय से वे सब वहाँ से भाग गये। मैं झाड़ी में बैठ गया। नियमानुसार मैंने अभी अपना छुरा निकाल के बाहर भी न रख पाया था जिससे कि आवश्यकता के समय उस पर तुरन्त हाथ पड़ जाय कि तेंदुआ झाड़ियों को फाड़, वज्र के समान, बकरी पर आ टूटा। सन्नाटा खींचकर मैंने साँस तक रोक ली, किन्तु अभी गोली नहीं चलाई। चन्द्रमा मेघाच्छन्न हो रहा था। और मैं यही राह देख रहा था कि चन्द्रमा का प्रकाश हो तो गोली चलाऊँ। इतने में सहसा तेंदुआ मेरे पास ही से निकलता हुआ दिखाई दिया। बकरी को ऐसी सुगमता से दाबे था जैसे बिल्ली चूहे को उठा लेती है। घोर अन्धकार होने से तेंदुआ का शिर पैर मुझे कुछ न दिखाई दिया। अधीर हो मैंने बन्दूक़ चला दी। गोली लगते ही बघर्रा गिरा और बकरी को छोड़ गर्जन करने लगा। गोली से उसकी दोनों अगली टाँगें टूट गईं किन्तु उसने यह न देख पाया कि गोली किधर से आई। मैं यह तो समझ गया था कि यदि मैं किञ्चिन्मात्र हिला-डुला तो वह दुष्ट तुरन्त देख लेगा किन्तु मुझे यह भय भी हुआ कि कहीं अकस्मात् मेरे ऊपर वह घात न कर बैठे। अतएव मैंने निश्चित किया कि उठकर खड़ा हो जाना चाहिए। ज्यों ही मैं खड़ा हुआ तो तेंदुआ चुप होगया और उसने झाड़ी की ओर टकटकी लगाई। एक दो क्षण तक अन्धकार के कारण मुझे कुछ दिखाई या सुनाई न दिया जिससे मुझे यह विश्वास होगया कि तेंदुआ मर गया। तब मैं झाड़ी से बाहर निकला। मैं अति चौकन्ना था। जैसे ही पशु ने मुझे देखा दस फ़ुट

की छलाँग भरकर वह मेरे ऊपर आया। मैंने दूसरी गोली उसके सिर पर मारी किन्तु उसकी फुरती के कारण मेरा निशाना चूक गया। गोली उसकी गरदन को झुलसाती हुई निकल गई। भयङ्कर तेंदुये ने आँख झपकते मुझे चित गिरा लिया और क्रोध के वेग में पहले उसने मेरी गरदन चबा डालना चाहा। भाग्यवश मेरे कालर और वस्त्रों ने मेरी गरदन बचा दी। अब बायें हाथ से तो मैं उसको रोकता था और सीधे हाथ से उन्मत्त सा हो अपना छुरा निकालने की चेष्टा करता था। छुरा मेरी पेटी में पीछे की ओर लटका हुआ था और चित गिरने के कारण मेरे नीचे दब गया था। मेरे बायें हाथ को तो उसने आरपार चबा डाला और मुँह को भी भयानक रूप से घायल कर डाला। उसके ऊपर के जबड़े का एक दाँत मेरी नाक में घुस गया और एक दाँत मेरी बाईं आँख के पास से घुसा और जबड़े की हड्डी तोड़ डाली।

"जब मुझे विश्वास होगया कि केवल एक हाथ से मैं उसको न हटा पाऊँगा तो मैंने छुरे की निष्फल खोज त्याग दी और भरपूर बल लगा के दोनों हाथों से दुष्ट की गरदन पकड़ ली। तब उसने मेरा मुँह पकड़ा और अपने भीषण दाँत मांस में घुसाकर मेरे जबड़े को चूरचूर कर दिया। हड्डी के चटकने से मुझे ऐसी पीड़ा हुई मानो कोई मेरा भेजा पीस रहा हो। मेरा मुँह उसके मुँह में था जिसमें से गरम गरम दुर्गन्धमयी श्वास निकलती थी और मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मेरी श्वास घुट जायगी। अन्त में निराश हो मैंने अपना सारा बल लगाकर उसका मुँह हटा ही दिया। तब फिर उसने मेरा बायाँ हाथ पकड़ा और कुहनी के पास बारंबार काटा। यदि मैं बहुत से वस्त्र न पहिने होता तो हाथ की हड्डी भी काँच के समान चूरचूर होगई होती।

"मैं अब तक चित पड़ा था। तेंदुआ ने फिर मेरा मुँह पकड़ने की चेष्टा की। मैंने उसको रोकना चाहा किन्तु अब मैं बहुत थक

गया था। उस पशु ने मेरा सिर पकड़ लिया। तब निराशा से मुझमें नये बल का सञ्चार हुआ और मैंने मन ही मन ठाना कि रहा सहा बल लगाकर एक बार और अपनी रक्षा के लिए प्रयत्न करूँगा। पशु को अलग कर मैंने ऐसे बल से धक्का मारा कि खड्ड के ढालू पार्श्व पर वह लुढ़क चला। अगले दोनों पञ्जे टूट जाने के कारण वह ऐसा निस्सहाय होगया था कि ढाल पर रुक न सका वरन् लुढ़कता, गरजता नीचे तक चला गया। उस दुष्ट से छुटकारा पाकर मैं उठा। थूका तो चार दाँत और बहुत सा रक्त बाहर निकल पड़ा।

"क्रोधान्ध हो मैं अपना बदला लेने के लिए उन्मत्त होगया। मैंने अपना छुरा निकाला और तेंदुये की खोज करने लगा। घावों के कारण मुझे बहुत देर जीवित रहने की आशा न थी। इतने में अरब लोग भी आ पहुँचे। तेंदुये के गर्जन के शब्द तो उन्होंने सुने थे किन्तु यह समझा था कि वह घायल होके चिल्ला रहा है। इसलिए उन्होंने निश्चित कर लिया था कि जब उसका गर्जन बन्द हो जायगा तो निकल के चलेंगे। अरब लोग मुझे ज़बरदस्ती पकड़कर ले गये।

"इस दुर्घटना से पूर्व मैं प्रायः कहा करता था कि मेरे जीवन में सबसे आनन्द का वह दिन होगा जब मैं केवल एक छुरा लेकर किसी घायल चीते अथवा शेर का सामना करूँगा, मुझे अपने बल पर ऐसा भरोसा था। किन्तु अब जब किसी को कहते सुनता हूँ कि बड़े बड़े मांसभोजी जन्तु कुल्हाड़ी या छुरे से मारे जा सकते हैं तो मुझसे हँसी नहीं रुकती। मुझे इसमें सन्देह है कि बन्दूक़ के सिवाय किसी अन्य हथियार से तेंदुये जैसे बड़े जन्तु का सामना किया जा सकता है जिसके बोझ का धक्का उसकी लंबी सवेग छलाँग से चौगुना प्रचण्ड हो जाता है, और जो विद्युत्-वेग से ऊपर टूटता है और आत्मरक्षा के हेतु हाथ पैर हिलाने तक का अवकाश नहीं देता।

"यदि ऐसी भीषण लड़ाई में मेरे प्राण बच गये तो उसका कारण यह समझना चाहिए कि जितनी भयंकरता से वह दुष्ट मुझ पर आक्रमण करता था उतनी ही दृढ़ता से मैं अपनी रक्षा करता था। मेरे प्राण ईश्वर ही ने बचा दिये।" प्राणिशास्त्रवित् ब्लाईथ कहते हैं। "ये जन्तु बहुत चुप रहनेवाले जीव हैं और ऐसी छोटी छोटी जगह में छिपे रहते हैं जिसमें इतने बड़े शरीरवाले अन्य किसी जन्तु का छिपना संभव नहीं होता।"

कोई कोई तेंदुये भी बाघ और शेर के सदृश नरभोजी हो जाते हैं। मध्य-प्रदेश के मण्डला ज़िले में एक मादा थी जिसने दो चार ही नहीं वरन् ११६ मनुष्यों को यमलोक पहुँचाकर अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की थी। अन्त में इसको मिस्टर हिक्स ने खटका लगा-कर मारा और उन्होंने अपनी पुस्तक में उसका वृत्तान्त दिया है। सर्वसाधारण उसको बाघिन समझते थे। एक वर्ष से उसने हलचल मचा रक्खी थी और लगभग १०० आदमियों के प्राण ले चुकी थी। औसत से प्रति तीन दिन में वह एक मनुष्य को मार डालती थी। कई बार घरों में घुसकर वह आदमी और स्त्रियों को उठा ले जा चुकी थी। आस पास के ग्रामों में कोई ऐसा आदमी न था जिसको सोते जागते उसका भय प्रति क्षण न लगा रहता हो। कृषकों ने अपनी मचानें लगभग २४ फुट ऊँची बना रक्खी थीं क्योंकि वह मचानों पर भी सहज ही में चढ़ जाती थी। उसके साहस और निर्भीकता की यह दशा थी कि आदमी का भय तो उसको ज़रा भी न रह गया था। एक बार वह एक झोपड़ी की छत पर कूदकर चढ़ गई और निश्चिन्त रूप से बैठकर पञ्जों से छप्पर में बड़ा सा छेद किया और उसमें से भीतर कूद गई। झोपड़ी के भीतर एक कृषक और उसकी स्त्री थी। स्त्री को उसने तुरन्त मार डाला, कृषक बेचारा भय

से स्थान पर जमके रह गया और अपनी स्त्री की रक्षा के लिए हाथ-पैर हिलाने का भी साहस न कर सका। स्त्री को मार लेने पर जन्तु को यह चिन्ता हुई कि किसी प्रकार उसके शव को बाहर घसीट ले जाय। अतः उसने इधर-उधर देख भाल की। झोपड़ी के पीछे की ओर एक द्वार था जो केवल चटाई से मढ़ा था। उसको फाड़ के उसने छेद किया और उसमें से मृत शरीर को घसीट ले गई।

ऐसे ही एक बार यह घटना हुई कि सात कृषक इसी जन्तु के भय से इकट्ठा होकर एक मचान पर बैठे अपने खेत रखा रहे थे। इन लोगों ने मिट्टी की एक बोरसी में अग्नि भी जला रक्खी थी। बहुत रात व्यतीत हो जाने पर सब के सब मचान ही पर सो गये। दुर्भाग्यवश उनमें से एक की टाँग नीचे लटक गई। लागू मादा तुरन्त आ पहुँची और टाँग पकड़ ली। यदि वह मनुष्य पूरे बल से मचान से न चिपट गया होता तो वह उसको अवश्य घसीट ले गई होती। उसके चिल्लाने पर अन्य सब कृषक भी तुरन्त जाग पड़े। भाग्यवश उनमें से एक ने बड़ी सावधानी से काम किया। तेंदुये की प्रबल पकड़ से अपने साथी की टाँग छुड़ा लेने की कोई आशा न देख उसने बोरसी उठाकर उस जन्तु पर गिरा दी। कृषक की टाँग छोड़कर उस समय तो मादा तुरन्त भाग गई किन्तु आग से जलकर भी उसने इतना साहस किया कि प्रभात काल से पूर्व कई बार लौट लौटकर आई।*

चीते की कई उपजातियाँ (Species) पृथ्वी पर मिलती हैं।

काला चीता (Felis Diardi)—भूटान में इसको ज़ीक कहते हैं। कहीं कहीं पहाड़ों पर उसको लमछिटिया का नाम भी देते हैं। हिन्दुस्तान की सीमा के भीतर यह जन्तु हिमालय पर्वत के

---

* "Forty Years Among the Wild Beasts of India," by Mr. F. C. Hicks.

पूर्वी भाग में ५,००० फ़ुट की उँचाई से १०,००० फ़ुट की ऊँचाई तक मिलता है। नैपाल, शिकिम, ब्रह्मा और मलय प्रायद्वीप में भी यह होता है। आगे सुमात्रा, जावा तथा बोरनियो के टापुओं में भी इस उपजाति के जीव पाये जाते हैं।

इस उपजाति के सब जन्तुओं का रंग एक सा नहीं होता। अधिकतर उनका रंग हलका भूरा कुछ हरापन लिये होता है। पीठ पर और शरीर के पार्श्व भाग पर धुमैले धब्बे पड़े होते हैं। गालों और गरदन पर कुछ काली काली धारियाँ होती हैं। दुम पर काले छल्ले होते हैं और उस पर घने बाल होते हैं। शरीर और हाथ पैर भारी होते हैं।

बरफ़ का चीता—(Ounce of Felis Uncia)—यह सुन्दर जन्तु हिमालय पर लगभग ९,००० फ़ुट से १९,००० फ़ुट की ऊँचाई तक बरफ़ से ढकी चोटियों पर मिलता है। तिब्बत की तरफ़ ये जन्तु ज़्यादा होते हैं और मध्य एशिया के पहाड़ों पर भी पाये जाते हैं।

इसका रंग हलका भूरा पीलापन लिये होता है। शिर तथा गरदन पर काले काले धब्बे होते हैं, शरीर पर काले छल्ले से पड़े होते हैं। बाल अति घने, और दुम मोटी और झबरी होती है। इसकी सुन्दर खाल अच्छे दामों को बिकती है।

भूटान में इसको 'साह' कहते हैं और तिब्बत में 'इकर'।

बिल्ली

(THE CAT)

यदि पाठक को शेर और बाघ जैसे बड़े हिंस्र जन्तुओं को देखने का कभी अवकाश न हुआ हो, यदि उक्त जन्तुओं का शारीरिक गठन, संकुचनशील पञ्जे, काँटेदार जीभ और दन्त-रचना देखने की अभिलाषा हो, यदि पाठक शेर और बाघ के स्वभावों एवं उनके

शिकार मारने की रीति से परिचय प्राप्त करना चाहते हों, तो अपनी छोटी सी घरेलू बिल्ली को देख लेना यथेष्ट होगा। वह अपने वंश के महान् जन्तुओं का पूरा नमूना है, बिल्ली में शेर और बाघ के अधिकांश जातिलक्षण पूर्णतया विद्यमान होते हैं।

बिल्ली के लिए यह अभिमान की बात है कि पृथ्वी के प्रधान हिंस्र मांसभोजियों का वंश उसी के नाम से प्रसिद्ध है।

बिल्ली-जाति (Genus) की दो उपजाति पाई जाती हैं, अर्थात्—

(१) घरेलू बिल्ली (Felis Domestica)

(२) वनबिल्ली (Felis Catus)

इन दोनों उपजातियों (Species) की बहुतसी नसलें (Varieties) पृथ्वी पर मिलती हैं।

घरेलू बिल्ली—घरेलू बिल्ली, बिल्ली जाति की एक अलग उपजाति है। यह मान लेना भ्रम होगा कि जो बिल्लियाँ किसी प्राचीन काल में मानव-जाति के संग रहने लगी होंगी उन्हीं को घरेलू बिल्ली मान लिया होगा। वन-बिल्लियों की प्रकृति ऐसी भीषण होती है कि यदि मनुष्य के संग वे एक युग तक भी रहें तो भी पालतू नहीं की जा सकतीं। मनुष्य के संग रहकर शेर और बाघ तो कुछ सीमा तक शिक्षित हो जाते हैं, किन्तु वन-बिल्लियाँ अपनी स्वाभाविक भीषणता को कभी नहीं छोड़तीं। घरेलू बिल्ली की उत्पत्ति किन उपजातियों से हुई थी इसका केवल अनुमान किया जा सकता है। इतिहास अथवा प्राचीन ग्रन्थों से इस विषय में हमको सहायता नहीं मिलती। प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों से प्रमाण मिलता है कि घरेलू बिल्लियाँ उस समय भी पृथ्वी पर विद्यमान थीं। दो हज़ार वर्ष पूर्व की संस्कृत-पुस्तकों में उनका उल्लेख पाया जाता है।

प्राचीन काल में मिस्र देश में बिल्ली को चन्द्रमा की देवी मानकर उसकी मूर्त्तियाँ पूजते थे और ओषधियों की सहायता से बिल्लियों के

"ममी" (Mummy अर्थात् रक्षित मृत शरीर) बना कर रखते थे। मिस्र में बिल्लियों के ममी और पत्थरों पर खुदे हुए चित्र २,००० वर्ष से भी पुराने मिलते हैं।

इतने दीर्घ काल तक मनुष्य के संग रह कर भी यह अद्भुत बात है कि बिल्ली ने न तो मनुष्य की अधीनता ही पूरी तरह स्वीकार की, न अपनी स्वतंत्रता ही हाथ से दी। ग्रामों और बस्तियों में रहते हुए भी बिल्ली मानव-जाति से कुछ अलग ही सी रहती है। कुत्ते का सा स्नेह और आत्मीयता उसमें नहीं होती। पालित किये जाने पर भी बिल्ली के आचार-व्यवहार अविश्वास-पूर्ण प्रतीत होते हैं।

घरेलू बिल्ली को यदि प्रीति होती है तो अपने वासस्थान से। उसको छोड़ कर वह कहीं जाना नहीं चाहती। बिल्ली से छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है। कोई कोई बिल्लियाँ बड़ी दुखदायी हो जाती हैं। बिल्ली को मारना हिन्दुस्तान में भी कोई नहीं चाहता अतः एक ही उपाय रह जाता है कि किसी प्रकार उसको पकड़ के दूर छुड़वा दिया जाय। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि बिल्ली मूँछों पर ताव देती शीघ्र ही फिर अपने पुराने स्थान में आ पहुँचती है। आँखें बाँध कर अथवा बोरे में बन्द कर के ले जाये जाने पर भी बिल्ली किसी अपूर्व शक्ति से अपने पुराने स्थान का पता लगा लेती है इस पर विज्ञानवेत्ताओं ने आश्चर्य्य प्रकट किया है और भिन्न भिन्न सम्मतियाँ दी हैं। "परन्तु इस विषय पर विद्वानों के मत में से कोई संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। हाल में मिस्टर ए० आर० वालेस (A. R. Wallace) ने इस सम्बन्ध में "नेचर" (Nature) नामक मासिक पत्र में एक लेख लिखा है। आपका मत है कि जब आँखों पर पट्टी बाँध कर बिल्ली ले जाई जाती है तो दृष्टि के स्थान पर उसकी तीव्र घ्राणशक्ति काम करने लगती है। जो जो गन्ध उसको रास्ते में

घरेलू बिल्ली (Felis Domestica)
पृष्ठ ३०३

मिस्र की बिल्ली (Egyptian Cat)
पृष्ठ ३०४

वन-बिल्ली (Felis Catus)
पृष्ठ ३०५

वन-बिलार (Felis Chaus) पृष्ठ ३०८

तेंदुआ बिल्ली (Felis Bengalensis) पृष्ठ ३०८

बंगाल की बड़ी बिल्ली (Felis Viverrina) पृष्ठ ३०८

मिलती जाती हैं उनको वह एक पर एक, क्रमानुसार, अपने ध्यान में रखती जाती है। जिस प्रकार कि प्रत्येक वस्तु का चित्र, जो हमको दृष्टिगोचर होते हैं, हमारे हृदयपट पर अंकित होता जाता है वैसे ही बिल्ली के हृदय-पट पर, घ्राण के द्वारा, चित्र अंकित होते जाते हैं। जब वह छोड़ी जाती है और अपने वासस्थान की ओर अग्रसर होती है तो उन्हीं गन्धों का ध्यान क्रमानुसार उलटी ओर से करती है। क्रमानुसार एक पर एक गन्ध का स्मरण करके उनको खोजती है और उन्हीं के सहारे मार्ग का पता लगाती है।"*

हमारी छोटी सी बिल्ली की प्रकृति में भी वैसी ही क्रूरता और भीषणता होती है जैसी कि बड़े मांसभोजियों में; अतः उसको किसी घिरे स्थान में मारने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिए।

वन-बिल्ली—इस उपजाति की बहुत सी नसलें पृथ्वी के अनेक स्थानों में पाई जाती हैं। वन की बिल्ली की पहिचान उसकी दुम की विशेष बनावट से तुरन्त की जा सकती है। घरेलू बिल्ली की सुडौल दुम जड़ से धीरे धीरे पतली होती जाती है और लम्बी भी होती है। किन्तु जंगली बिल्लियों की दुम सर्वथा ऊपर से नीचे तक एक सी होती है और ठूँठ सी बेढंगी दीख पड़ती है।

वन-बिल्लियों की कुछ मुख्य नसलों का संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

योरप की वन-बिल्ली—ये कई रंग की होती हैं किन्तु अधिकतर उनके घने बालों का रंग कुछ पीला सा होता है जिस पर काली काली धारियाँ होती हैं। झबरी दुम पर काले काले घेरे बने होते हैं। उसको देखते ही ज्ञात हो जाता है कि उसके शरीर में बल वा फुरती कूट कूटकर भरी है। उसकी प्रकृति अत्यन्त भीषण और

* See the Encyclopædia Britannica, Article on 'Cat.'

जंगली होती है। यह जन्तु किसी प्रकार पालित नहीं होता। इंग्लैंड में यह बिल्ली पहाड़ी स्थानों में एवं जंगलों में रहती है और उस देश का यह सबसे भीषण और हानिप्रद जन्तु है, क्योंकि कोई बड़ा मांसभोजी वहाँ नहीं होता।

तेंदुआ-बिल्ली

(THE LEOPARD CAT—FELIS BENGALENSIS)

यह बिल्ली सारे हिन्दुस्तान में पहाड़ी भूभागों में तथा जंगलों में होती है। आसाम, ब्रह्मा तथा मलय प्रायद्वीप में और जावा वा सुमात्रा के द्वीपों में भी होती है। रङ्ग किसी का हलका पीला, किसी का कुछ बादामी, और किसी का भूरा कुछ हरापन लिये होता है। माथे पर चार खड़े खड़े धब्बे होते हैं। शरीर पर छोटे बड़े धब्बे होते हैं जिनकी अधिकतर पाँच छः पंक्तियाँ बनी होती हैं। दुम पर ऊपर की तरफ़ धब्बे होते हैं और भीतर को धुँधले छल्ले से बने होते हैं।

यह भयङ्कर बिल्ली वृक्षों पर रहा करती है और पक्षियों तथा छोटे छोटे जन्तुओं का शिकार किया करती है। एक शिकारी बतलाते हैं कि वह वृक्षों पर से हरिण जैसे बड़े बड़े जन्तुओं पर भी कूद पड़ती है और गरदन से चिपट जाती है। फिर हरिण छूटने को लोटता भी है और झटके भी देता है किन्तु बिल्ली किसी प्रकार मुँह नहीं खोलती। धीरे धीरे वह गरदन चबा कर हरिण को मार डालती है। एक जन्तु-शास्त्रवित् कहते हैं—"मेरे पास एक तेंदुआ-बिल्ली थी जिसका स्वभाव इतना जङ्गली था कि उसको छूने का साहस मुझे कभी नहीं होता था।"

बाघ दशा

(THE TIGER CAT OR FELIS VIVERRINA)

इस बड़ी बिल्ली को बंगाल में बाघदशा या मच्छबगरूल कहते हैं। बंगाल के सिवाय वह हिन्द के दक्षिणी कोने में और लंका में भी होती है। ब्रह्मा, चीन और मलय प्रायद्वीप में भी पाई जाती है। उसका रङ्ग भूरे चूहे के रंग के समान होता है और शरीर पर गहरे रंग के धब्बे होते हैं। गाल सफ़ेद और छाती पर पाँच या छः धारियाँ होती हैं। शरीर की लम्बाई कोई २½ फ़ुट की या कुछ अधिक होती है और ऊँचाई लगभग १¼ फ़ुट की होती है।

प्रायः वह तराई में या पानी के समीप दलदलों में रहा करती है और मछलियाँ भी पकड़ा करती है। मिस्टर ब्लाईथ बतलाते हैं— "एक नर ने जो हाल ही में पकड़ा गया था, चीता की एक मादा को मार डाला जो बिल्ली से दुगुने शरीर की थी।"

यह बिल्ली प्रायः कुत्तों को मार लेती है और कोई कोई कहते हैं कि बालकों को भी उठा ले जाती है। भेड़ और बकरियों के छोटे छोटे बच्चे तक वह मार कर खा जाया करती है। मिस्टर ब्रायरले इस जन्तु का वृत्तान्त देते हुए लिखते हैं, "वह रात्रि ही में बाहर निकलता है। केवल प्रभात-समय अथवा साँझ को अँधेरा हो जाने पर यह जन्तु दृष्टिगोचर होता है। प्रायः ऐसा होता है कि जिस भूभाग में वह वर्षों से वास करता रहता है वहाँ के किसी भी निवासी को उसके कभी दर्शन नहीं होते। कभी शीतकाल की बरफ़ में उसके पदचिह्न दीख जाते हैं और साथ ही साथ उसके उपद्रव से उसकी उपस्थिति का पूरा पता चल जाता है। अपने परिभ्रमण के पश्चात् वह सर्वदा किसी न किसी नये मार्ग से अपने भाँटे को लौटता है और सम्पूर्ण दिन सुख-चैन की नींद सोया

करता है। नर और मादा दोनों ऐसे रक्तप्रिय होते हैं कि जितना खाते हैं उससे दुगुने जीवों की हत्या करते हैं। "*

वन-बिलाव (Felis Chaus)—यह हिन्दुस्तान की जंगली बिल्ली है जो हिमालय पर्वत से, दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक, मैदानों में, और पहाड़ों पर सात आठ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक, सब जगह मिलती है। प्राय: वह लम्बी घास और नरकुलों में या नाज और ईख के खेतों में छिपी रहती है।

उसका रंग कुछ पीलापन लिये भूरा होता है। कानों में घने बाल होते हैं। कान भीतर सफ़ेद और बाहर को धुमैले काले रंग के होते हैं। टाँगों पर भीतर की ओर दो या तीन धुमैली सी धारियाँ पड़ी होती हैं और बाहर को भी कुछ धुँधले निशान होते हैं। तीतर, बटेर, ख़रगोश इत्यादि का इन बिल्लियों से बढ़कर कोई शत्रु नहीं होता। इनके बच्चों का भी स्वभाव ऐसा जङ्गली और असभ्य होता है कि वे कदापि पालतू नहीं होते। जंगली बिल्ली तथा घरेलू बिल्ली के दोगले बच्चे प्राय: ग्रामों के निकट देखे जाते हैं।

इस जन्तु को उत्तरी हिन्द में वनबेराल अथवा जंगली बिल्ली भी कहते हैं। बंगाल में उसको कटास कहते हैं।

बंगाल की बड़ी बिल्ली (Felis Viverrina)—इस बड़ी बिल्ली का रंग चूहे के समान भूरा होता है और शरीर पर गहरे रंग के बड़े बड़े धब्बे होते हैं, दुम पर गोल गोल छल्ले पड़े होते हैं। यह जन्तु सारे बंगाल में और दक्षिण में ट्रावनकोर के पास जलाशयों के निकट ऊँची ऊँची घास और नरकुलों में मिलता है और मछली और पक्षियों का शिकार करता है।

तेंदुआ-बिल्ली (Felis Bengalensis)—भारतवर्ष के पहाड़ी भूभागों में यह बिल्ली सर्वत्र मिलती है। बंगाल में सुन्दरवन में तथा

* Mr. Harwood Brierley in "The Animal World."

लिंक्स (The Lynx)
पृष्ठ ३०६

स्याहगोश (Caracal) पृष्ठ ३०६

प्यूमा (F. Concolor)
पृष्ठ ३१३

न्यूफ़ाउराडलैंड डॉग (New-foundland Dog)
पृष्ठ ३३१

पायन्टर (The Pointer) पृष्ठ ३३३

फ़ाक्स हाउंड
(Fox-hound)
पृष्ठ ३३२

कुर्ग और वायनाद में भी बहुत होती है। आसाम, ब्रह्मा और मलय में भी होती है।

तेंदुआ-बिल्ली कई रंगों की होती हैं। उनका शरीर पीला, बादामी, भूरा अथवा कुछ हलका हरापन लिये होता है। शरीर का निम्नभाग श्वेत होता है। गहरे रंग की बहुत सी धारियाँ भी उसके मुँह और देह पर होती हैं। इसकी प्रकृति अत्यन्त भीषण और बर्बर होती है।

नमाली बिल्ली (Felis Rubiginosa)—यह बिल्ली भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में मिलती है। शरीर का ऊपरी भाग हलका हरापन लिये हुए भूरे रंग का होता है, निम्न भाग श्वेत, शिर पर धारियाँ और शरीर पर धुमैले धब्बे होते हैं। इस नसल के बच्चे पालतू हो जाते हैं।

लिंक्स (THE LYNX)

बिल्ली-वंश के जिन जिन जन्तुओं से अब तक हमने परिचय प्राप्त किया है वे सब शारीरिक संगठन में बिलकुल बिल्ली के समान होते हैं। अब हम उक्त वंश की एक ऐसी जाति का वर्णन देते हैं जिनकी लम्बी टाँगें, कुछ झबरे बाल, और खड़े हुए नुकीले कान देखकर, स्पष्ट विदित हो जाता है कि वह बिल्ली से विभिन्न हैं। परन्तु उनकी दंत-रचना वैसी ही है जैसी कि बिल्ली-वंश के अन्य सब जीवों की। आस्ट्रेलिया को छोड़कर प्राय: सभी महाद्वीपों में लिंक्स की उपजातियाँ पाई जाती हैं। उनमें से कुछ मुख्य का वर्णन आगे होगा।

स्याहगोश (Felis Caracal)—लिंक्स की यह उपजाति एशिया के पश्चिमी देशों में हिन्दुस्तान तक मिलती है। हिन्दुस्तान के पश्चिमी

प्रान्तों में, अर्थात् गुजरात, कच्छ और ख़ानदेश में स्याहगोश बहुत होते हैं। तिब्बत में और समस्त अफ्रीका में भी यह उपजाति पाई जाती है। उसका रंग लाल और भूरे रंग का मेल होता है। दुम छोर पर काली होती है। कान बाहर को काले होते हैं, और इसी से उसका नाम स्याहगोश पड़ा है। फ़ारसी भाषा में स्याह का अर्थ है काला और गोश का अर्थ है कान। कानों का भीतरी रङ्ग सफ़ेद होता है। शरीर की लम्बाई दो से ढाई फुट तक होती है और ऊँचाई लगभग १½ फुट की। स्याहगोश ख़रगोश और पक्षियों का शिकार किया करता है और पेड़ों पर बड़ी फुरती से चढ़ जाता है। प्राय: वह घनी, ऊँची घास में छिपा रहता है और दबे पाँव से शिकार के पास तक बड़ी चतुराई से पहुँचता है।

उत्तरी लिंक्स (Felis Lynx)—यह उपजाति योरप और एशिया में होती है। गरम और ठंढे दोनों प्रकार के जलवायु में वह सानन्द जीवन व्यतीत कर सकती है। दूर दूर के देशों में होने के कारण उनके शरीर के रङ्ग में कुछ भेद होते हैं। दक्षिणी देशों में उनका रङ्ग गहरा लाल और उत्तर में कुछ हलका होता है। उनके शरीर पर कुछ धुमैले धब्बे भी होते हैं। इस जन्तु का शरीर कुछ भारी होता है और उसमें बहुत दौड़ भाग करने की सामर्थ्य नहीं होती। योरप के देशों में इससे बड़ी हानि पहुँचती है। वह केवल रात्रि में अपने गुप्त स्थानों से निकल कर भेड़ बकरियों का शिकार करता है। प्रकृति की क्रूरता और भीषणता में वह किसी मांसभोजी से कम नहीं होता। खाता तो थोड़ा है किन्तु प्राण बहुतों के ले डालता है। यह जन्तु शिकार का ताज़ा, गरम गरम रक्त पीने का बड़ा शौकीन होता है। रक्त पीकर और भेजा खाकर बहुधा शिकार के मृत शरीर को छोड़ जाता है।

चीता

(FELIS JUBATA)

यद्यपि चीता बिल्ली-वंश की एक उपजाति (Genus) मानी जाती है तथापि स्वभावों में एवं अंगों की रचना में उसमें बिल्ली-वंश और कुत्ता-वंश दोनों ही के जाति-लक्षण विद्यमान होते हैं और इस कारण जन्तुशास्त्र के विद्वान् उसको उपरोक्त दोनों वंशों के बीच की सीढ़ी मानते हैं।

बिल्ली-वंश के जन्तुओं की रचना के विपरीत चीते की खोपड़ी छोटी और गोल होती है। बिल्ली-वंश के जन्तुओं की टाँगें छोटी और भारी होती हैं किन्तु चीते की पतली और लंबी। ऊपर के जबड़े की "मांस-डाढ़" (Carnassial tooth) की बनावट में भी कुछ भेद होता है। चीते के नख भी पूर्णरूप से "संकुचनशील" (Retractile) नहीं होते और उनकी नोकें घिस के भुथरी हो जाती हैं। शरीर के बाल कुछ रूखे से होते हैं। बिल्ली-वंश के अन्य जन्तुओं के बालों के समान उन पर चमक और चिकनाहट नहीं होती। चीते की पूँछ अन्त पर बाहर को घूमी रहती है। यह लक्षण कुत्ता-वंश के जन्तुओं का है। बिल्ली-वंश के किसी जीव की पूँछ इस प्रकार मुड़ी हुई नहीं होती।

चीता सहज में पालतू हो जाता है, कुत्ते का सा स्नेहशील होता है, और अपने पालक से प्रीति करता है।

चीते के हलके भूरे रंग पर काले धब्बे होते हैं किन्तु चीते और जेग्वार के समान धब्बों के फूल नहीं बने होते। लंबी दुम पर भी काले धब्बे होते हैं। पेट और गले पर कुछ झबरे बाल होते हैं। शरीर की लंबाई लगभग ४½ फुट, ऊँचाई २½ फुट या कुछ अधिक, और दुम २½ फुट की होती है।

चीता समस्त अफ्रीका में तथा पश्चिमी और दक्षिणी एशिया में मिलता है। हिन्दुस्तान के भीतर सिंध, राजपूताना, मध्यहिन्द और दक्षिण में कहीं कहीं मिलता है।

दौड़ में उससे तुलना करनेवाला पृथ्वी के चार पैरवाले जन्तुओं में से कोई नहीं है। ताज़ी कुत्तों की गणना पृथ्वी के अत्यन्त शीघ्रगामी जीवों में की जाती है किन्तु चीते की तीव्र गति का वे भी सामना नहीं कर सकते। चीते का यह लक्षण भी बिल्ली-वंश के जन्तुओं से नहीं मिलता। बिल्ली-वंश के जन्तुओं में बहुत दौड़ने-भागने का सामर्थ्य नहीं होता जिसके कारण उनको शिकार पकड़ने के लिए झाड़ी आदि में छिपा रहना पड़ता है। एशिया के पूर्वी देशों में, अर्थात् चीन, फ़ारस, हिन्दुस्तान आदि में चिर काल से राजा महाराजा इस जन्तु को पालते आये हैं और उसको हरिण का शिकार करना सिखाते हैं। कहते हैं कि चीते के द्वारा शिकार खेलने की रीति फ़ारस के राजा होशंग ने प्रचलित की थी, तत्पश्चात् वह ऐसी सर्वप्रिय हुई कि मंगोल जाति के सम्राटों में से किसी किसी के संग शिकार में एक एक हज़ार चीते तक ले जाये जाते थे।

शिकार के लिए चीते की आँखों पर पट्टी बाँधकर गाड़ी पर ले जाते हैं। ज्योंही हरिण दिखाई पड़ते हैं तो आँखों पर से पट्टी उठा दी जाती है। हरिण को देखते ही चीता वायुवेग से नीचे कूदता है और तीर के समान उसका पीछा करता है। हरिण के पास पहुँच कर उछलता और पञ्जे के थप्पड़ से उसको गिरा देता है। तब वह हरिण की गरदन पकड़ कर बैठ जाता है और अपने रखवालों के पहुँचने की राह देखता है। ज्योंही रखवाले पहुँचते हैं तो हरिण की गरदन काट के उसका रक्त एक लकड़ी के चमचे में जमा करते हैं और चीते के सामने कर देते हैं। चीता

रक्त को पीकर सन्तुष्ट हो जाता है, तब फिर पट्टी आँखों पर बाँध दी जाती है। सर सैम्युअल बेकर ने बड़ौदा-नरेश के चीतों को हरिण का शिकार करते स्वयं देखा था और उसका अति रोचक वृत्तान्त दिया है। जिसका कुछ भाग नीचे उद्धृत किया जाता है:—

"समतल विस्तृत मैदान मेज़ के समान चिकना था। इस बड़े मैदान में कुल दो या तीन छोटे छोटे पेड़ थे। हम लोग धीरे धीरे चले जा रहे थे कि हरिणों का एक झुण्ड जिसमें ३०-४० जन्तु थे दृष्टिगोचर हुआ। इनमें दो बिलकुल काले नर थे। हम लोगों ने यह निश्चय किया कि घोड़ों को गाड़ी की आड़ में कर लें और घूम के चलें और झुण्ड के जितने पास हो सके पहुँच जायँ। इस प्रयत्न से हमको सफलता हुई और हम हरिणों से ३०० गज़ के अन्तर पर पहुँच गये। हरिण कभी कभी चरना छोड़कर हम लोगों की ओर देख लेते थे। फिर वे कुछ दूर भागे और सब मिलकर खड़े हो गये। इतने में एक नर दूसरे पर निष्कारण ही दौड़ पड़ा। कदाचित् वह उसको मादाओं के पास से भगा देना चाहता था। दूसरे नर ने इस अपमान का तुरन्त उत्तर दिया और दोनों में घोर युद्ध आरम्भ होगया। मादायें, दोनों वीरों की वीरता पर मुग्ध सी हो, इस युद्ध के देखने में लगी थीं। गाड़ीवानों ने अब गाड़ी को झुण्ड की ओर दौड़ाया। मादायें भयभीत हो भागीं और दोनों मूर्खों को लड़ता हुआ वहीं छोड़ दिया। हम लोग जब इन योद्धाओं से लगभग १२० गज़ पर रह गये थे तब उन्होंने हमको देखा। तुरन्त लड़ना छोड़कर उन दोनों ने एक आश्चर्य्ययुक्त दृष्टि हम पर डाली और तड़पकर एक सीधे हाथ को और दूसरा बायें को भाग पड़ा। तत्क्षण एक चीता भी, जो तैयार कर लिया गया था, गाड़ी पर से हवा के समान कूदा और सीधे

हाथवाले नर के पीछे चला। यह हरिण चीते से कोई ११० गज़ आगे था। चीते के पालक ने हम लोगों से प्रार्थना की कि अभी हम घोड़े न दौड़ायें। जिस गति से कि चीता और हरिण दौड़ रहे थे सो देखने ही योग्य थी। हरिण पक्षी के समान समतल भूमि पर उड़ा चला जा रहा था और चीता गरदन फैलाये और दुम उठाये उसका पीछा कर रहा था। जब वे दोनों लगभग २०० गज़ दौड़ चुके होंगे तो पालक ने हम लोगों को भी पीछे दौड़ने की आज्ञा दे दी। समतल मैदान पर अब हम लोग भी जितनी तीव्रता से संभव था घोड़ों पर दौड़े। हरिण और चीते की सी तीव्रगति से भागते मैंने कभी किसी को न देखा था। यद्यपि हमारे घोड़े अपनी भरपूर तेज़ी से दौड़ रहे थे तथापि उनसे कोई तुलना न की जा सकती थी। हाँ इतना अवश्य हुआ कि वे हमको दिखाई पड़ते रहे।

चीता भूमि पर उड़ा चला जा रहा था और शनैः शनैः हरिण से उसका अन्तर कम होता जाता था। हरिण भी भली भाँति जानता था कि इसी दौड़ पर उसके जीवन-मरण का फ़ैसला निर्भर है, इस लिये उसने भी कोई कसर उठा न रक्खी। लगभग चौथाई मील दौड़ने के पश्चात् हरिण ख़रगोश के समान सहसा एक ओर को मुड़ गया। चीता जो अब हरिण से केवल ३० गज़ पर रह गया था तीर के समान आगे निकलता चला गया और दोनों में अन्तर कुछ बढ़ गया। अपने शरीर को समेट के चीता रुका। दौड़ पहले की अपेक्षा और भी तेज़ी से आरम्भ हुई। चीते ने दृढ़ रूप से ठान लिया था कि वह किसी प्रकार इस दौड़ में हार न मानेगा। इस भयानक पीछा करनेवाले से अपने प्राण बचाने के लिए हरिण ने एक बार फिर मोड़ ली किन्तु चीता अब सावधान था। वह भी उतनी ही शीघ्रता से मुड़ गया जैसे कि

हरिण मुड़ा था। शीघ्र ही चीते ने वह थोड़ा सा अन्तर भी पार किया जो दोनों में रह गया था और देह को समेटकर छलाँग भरी और तीर के समान हरिण पर टूटा। क्षण भर और वे दोनों अलग अलग दिखाई दिये तत्पश्चात् हरिण चित था और चीते के दाँत उसके गले में जकड़े हुए थे।"

जेग्वार

(THE JAGUAR OR FELIS ONCA)

बिल्ली-वंश के जितने जन्तुओं का वर्णन दिया जा चुका है वे सब पूर्वी गोलार्द्ध के निवासी हैं।

उनकी जगह अमेरिका में उक्त वंश के दो अन्य बलवान् प्राणी होते हैं अर्थात् (१) जेग्वार और (२) प्यूमा।

जेग्वार अमेरिका महादेश के अतिरिक्त और कहीं नहीं होता और वहाँ यह बिल्ली-वंश की सबसे बड़ी जाति (Genus) है। उत्तरी अमेरिका के गरम भागों में और सारी दक्षिणी अमेरिका में जेग्वार फैला हुआ है। विख्यात स्पेन के निवासी अज़ारा Don Felix De Azara) ने लिखा है कि जब स्पेन के लोग पहले पहल अमेरिका में जाकर बसे थे तो वहाँ जेग्वार की संख्या इतनी अधिक थी कि किसी किसी स्थान में दो दो हज़ार तक जेग्वार प्रतिवर्ष मार लिये जाते थे और उनके द्वारा हानि भी बहुत पहुँचती थी।

साधारणतः इस जन्तु के शरीर की लम्बाई दुम छोड़कर ४ फ़ुट की होती है किन्तु प्रायः उनके क़द में परस्पर बहुत भेद होता है और किसी किसी की लम्बाई छः फ़ुट से भी अधिक होती है। उसके बाहरी शरीर का रंग चमकीला गहरा बादामी होता है और भीतरी भाग सफ़ेद होता है। शरीर पर काले काले धब्बों के फूल से बने होते हैं। जेग्वार और चीते के गुलों में एक भेद होता

है। जेग्वार के फूलों के बीच में भी एक गुल होता है जो चीते के फूलों में नहीं होता।

चीते अथवा तेंदुये से जेग्वार अधिक डरावना प्रतीत होता है क्योंकि उसकी खोपड़ी और मुँह बहुत चौड़े होते हैं और शरीर भी भारी और गठा हुआ होता है।

बाघ के सदृश जेग्वार भी जल का प्रेमी है। वह कुशलता से तैरता और मछलियों तथा अन्य जलचर जीवों का शिकार किया करता है। संध्या होते ही भोजन की खोज में बाहर निकलता है। अमेरिका के विस्तृत मैदानों में भोजन की कमी नहीं है। अपने प्रबल पञ्जे के एक ही थप्पड़ से वह बड़े बड़े जन्तुओं की रीढ़ की हड्डी को तोड़ देता है।

जेग्वार की हानिप्रद शक्तियों की सीमा नहीं है। जल और थल पर तो जीवधारियों का प्रभु बना घूमता ही है, किन्तु उससे वृक्षों पर चढ़े हुए जीव भी नहीं बचते क्योंकि वह पेड़ों पर भी पूरी फुरती से चढ़ जाता है।

इस जन्तु का कण्ठस्वर बहुत डरावना, भारी, और कर्कश होता है। उसकी बोली में केवल पू-पू-पू का शब्द निकला करता है।

प्यूमा

(THE PUMA, OR FELIS CONCOLOR)

मांसभुक्-श्रेणी के बिल्ली-वंश की दूसरी जाति जो अमेरिका में होती है प्यूमा है। उसके रंग के कारण उसको अमेरिका का शेर भी कभी कभी कहते हैं।

प्यूमा का रंग, शेर से कुछ मिलता जुलता, भूरा बादामी होता है और शरीर पर किसी प्रकार के धब्बे अथवा लकीरें नहीं होतीं। शरीर के भीतरी भाग धुमैले श्वेत रंग के होते हैं। उसकी

रचना में बिल्ली-वंश के सारे जाति-लक्षण उपस्थित होते हैं। क़द, प्रकृति और स्वभावों में प्यूमा चीते से बहुत कुछ मिलता जुलता है। एक समय था जब कि उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में कोई ऐसा स्थान नहीं था जहाँ यह जन्तु न मिलता हो, परन्तु योरप के लोगों के पहुँचने के बाद उसकी संख्या बहुत कम होगई है। अब प्यूमा विशेषकर मध्य अमेरिका के पहाड़ों पर ८ या ९ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक, और घने जंगलों में भी मिलता है।

चीते के समान प्यूमा की प्रकृति भी अत्यन्त भयंकर होती है। यदि कभी भेड़, बकरियों के किसी ग़ल्ले में पहुँच जाता है तो एक दो को मार लेने से उसका संतोष नहीं होता, वरन् वह बीसों को अकारण ही मार डालता है। अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसिडेण्ट, कर्नल रूज़वेल्ट, अपने ग्रन्थ में लिखते हैं—"साधारणतया प्यूमा बारहसिंगे का शिकार किया करता है। अधिकतर तो वह बारहसिंगा को तुरन्त मार लेता है किन्तु कभी कभी दोनों में युद्ध भी हो पड़ता है। युद्ध में कभी कभी प्यूमा चोट भी खा जाता है किन्तु बारहसिंगा उसको बहुत घायल कभी नहीं कर पाता। भेड़, सुअर, गाय के बछड़ों, और विशेषकर घोड़ों के बछेड़ों का वह भयानक शत्रु होता है, किन्तु क्षुधापीड़ित होकर बड़े नर घोड़ों को या गाय को अथवा बृहत्काय वापिटी बारहसिंगे को भी मार लेता है।"*

ऐसे बड़े बड़े जन्तुओं का शिकार कर लेनेवाले जन्तु में देहबल की कमी नहीं हो सकती। किन्तु यह एक विचित्र बात है कि प्यूमा मनुष्य पर कभी घात नहीं करता। जंगलों में यात्री लोग यह जानते हुए भी कि प्यूमा मौजूद है खुले मैदानों में निर्भय सो रहा करते हैं। सुप्रसिद्ध जन्तुशास्त्र-वित् हड्सन लिखते हैं—"अज़ारा

---

* "Out-door Pastimes of an American Hunter," by Ex-President Roosevelt.

का कथन ठीक है। मनुष्य या मनुष्य के बालक को सोता हुआ पाकर भी न प्यूमा कभी हानि पहुँचाता है न हानि पहुँचाने की चेष्टा करता है। केवल इतना ही नहीं। अपनी रक्षा के लिए भी वह मनुष्य का सामना करने को तैयार नहीं होता।"*

घोड़े और कुत्ते के मांस के बराबर प्यूमा को किसी दूसरे जन्तु का मांस स्वादिष्ट नहीं लगता। पहिले अमेरिका के विस्तृत घास के मैदानों में अगणित जंगली घोड़े थे। उनके कम हो जाने का मुख्य कारण प्यूमा ही हुआ। कुत्ते को देखकर प्यूमा की जीभ से लार टपकती है। एक बार एक हास्यजनक घटना हुई। एक पालतू प्यूमा कुछ तमाशे दिखाया करता था। एक दिन उसको कटहरे के बाहर तमाशा करने के लिए निकाला गया। कुछ देर तो सब प्रकार कुशल रही। तदनन्तर प्यूमा को भीड़ में कहीं एक कुत्ता दिखाई पड़ गया। बस खेल तमाशा छोड़ वह कुत्ते के पीछे दौड़ा। दर्शकगण बेचारे चीख़ चीख़ कर उलटे सीधे भागे। प्यूमा ने झट उस कुत्ते को मार डाला और एक दूसरा कुत्ता दिखाई पड़ जाने पर उसको भी ख़तम किया। तत्पश्चात् एक कुत्ते को मुँह में दबा कर तमाशे के स्थान को लौट आया।

प्यूमा के बच्चे सहज ही में पालतू हो जाते हैं।

---

* "The Naturalist in La Plata," by W. H. Hudson.

कुत्ता-वंश

(THE CANIDÆ)

साधारण विवरण

मांसभोजी श्रेणी (Order of the Carnivora) के कुत्ता-वंश के जन्तु, बिल्ली-वंश के जन्तुओं की तरह, अपने निर्वाह के लिए केवल जीवित शिकार पर ही निर्भर नहीं रहते। उनमें से कोई तो सर्वभक्षी होगये हैं जैसे घरेलू कुत्ता और कोई कोई कुणपभुक् हैं जैसे स्यार। इसी से कुत्ता-वंश के जन्तुओं के अंग शिकार को पकड़ने और मारने में उतने उपयुक्त नहीं होते जितने कि बिल्ली-वंश के।

कुत्ता-वंश के जन्तुओं के पञ्जे संकुचनशील नहीं होते, उनकी नोकें बिलकुल एकदम बाहर रहने के कारण भुथरी हो जाती हैं। जीभ पर भी इन जन्तुओं के काँटें नहीं होते।

इस वंश के प्राणी भी अंगुलचर (Digitigrade) हैं। बहुधा उनके अगले पैरों में ५-५ और पिछले में ४-४ नख होते हैं। कुत्ता-वंश के किसी किसी जन्तु के पिछले पैरों में भी ५-५ नख होते हैं किन्तु यह पाँचवाँ नख केवल खाल से लटकता होता है।

कुत्ता-वंश के जन्तुओं की घ्राणेन्द्रिय विशेषरूप से तीक्ष्ण होती है। और बुद्धि में इस वंश के जन्तु मांसभोजी श्रेणी के सब जीवों से उच्चतर हैं।

बिल्ली-वंश के जन्तु बहुधा अकेले रहना पसन्द करते हैं, किन्तु कुत्ता-वंश के जन्तुओं को सहवास प्रिय होता है और वे

प्रायः दल बनाकर रहते हैं। कुत्ता-वंश के जन्तुओं के दाँतों की संख्या भी बिल्ली-वंश की अपेक्षा अधिक होती है अर्थात्,

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{४-४}$, डाढ़ें $\frac{२-२}{३-३}$ = ४२

कुत्ता-वंश के अन्तर्गत चार जातियाँ मानी जाती हैं, अर्थात् कुत्ता, भेड़िया, स्यार या गीदड़, और लोमड़ी।

किसी किसी विद्वान् का मत है कि इन चारों जन्तुओं में इतने सूक्ष्म भेद हैं कि यदि वे पृथक् पृथक् जाति के माने जायँ तो उनके पारस्परिक भेद बताना कठिन हो जाय। इस लिये वे इस वंश में केवल एक ही जाति, "कुत्ता" मानते हैं और वंश के अन्य जीवों को उसकी उपजातियाँ मानते हैं।

कुत्ता

(CANIS)

कुत्ते से कौन परिचित नहीं है। धनवान् और निर्धन, छोटे और बड़े, सभी का वह मित्र है। सारे प्राणिवर्ग में मानव-जाति का उससे सच्चा हितचिन्तक और कोई नहीं है। प्राचीनकाल ही से मनुष्य ने कुत्ते की स्वामिभक्ति एवं अन्य गुणों की परीक्षा कर के उसको अपना साथी बना लिया और उसकी नाना प्रकार की नसलें उत्पन्न कर ली हैं।

एक जन्तुशास्त्रवित् बतलाते हैं कि इस समय पृथ्वी पर घरेलू कुत्तों की कम से कम १८९ नसलें विद्यमान हैं। इतनी बहुसंख्यक नसलें होने के कारण उनमें पारस्परिक भेद होना स्वाभाविक है। यद्यपि सब घरेलू कुत्ते एक ही जाति की नसलें हैं तथापि उनकी बनावट, क़द और बाह्यरूप में ऐसे भेद होते हैं जैसे कि एक जाति की उपजातियों में भी नहीं होते। कोई नसल इतनी छोटी होती है कि उसके जीव कोट की जेब में आनन्द से बैठे रह सकते हैं। और

फिर किसी किसी नसल के कुत्ते भेड़िये की बराबर या उससे भी बड़े होते हैं। शरीर की लँबाई में कोई कोई कुत्ते अन्य नसलों से छः गुने बड़े होते हैं। स्तनों की संख्या में और दंत-रचना में भी विभिन्नता पाई जाती है।

मनुष्य के सत्संग से कुत्ते की बुद्धि ने ऐसी उन्नति कर ली है कि पशु-संसार में उससे तुलना करनेवाले बहुत कम जन्तु हैं। "मनुष्य के मनोभाव और चित्तवृत्तियाँ ऐसी बहुत कम हैं जो कुत्ते में विद्यमान न हों। मनुष्य के समान कुत्ते में भी क्रोध, ईर्ष्या, प्रीति, घृणा, और शोक के भाव पाये जाते हैं। वह कृतज्ञता, गर्व, उदारता, और भय के भाव भी प्रकट करता है। संकट में वह मनुष्य के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है, और ऐसी घटनायें भी बहुत सी हुई हैं जब कि उसने अपनी जाति के जीवों के संग भी सहानुभूति प्रकट की है।"

यह सर्वमान्य है कि अपने स्वामी से कुत्ते की सी प्रीति करनेवाला कोई पशु नहीं है। वह मनुष्य के समान स्वार्थी नहीं होता। कुत्ता हमारे सुख और दुःख दोनों में साथी होता है। स्वामी को चाहे सारे मित्र छोड़ जायँ किन्तु कुत्ते की भक्ति में कभी कमी नहीं होती। शत्रु की पहिचान वह अपनी बुद्धि से कर लेता है और उससे स्वामी की रक्षा करता है। प्राणिशास्त्रवित् कुवे ने ठीक कहा है कि कुत्ते को अधीन कर लेने में पशु-संसार पर मनुष्य की सबसे बड़ी, उपयोगी और विचित्र जीत हुई है।

सर सैम्युअल बेकर कुत्ते और हाथी की बुद्धि की तुलना करते हुए कहते हैं—"मैं अपने अनुभव से बिना संकोच कहूँगा कि कुत्ता मनुष्य का साथी होता है और हाथी दास। कुत्ते की स्नेहशीलता और विश्वासपूर्ण भावों से हम सब परिचित हैं, ऐसा जान पड़ता

है कि कुत्ता मानव-जाति की मित्रता ही के लिए उत्पन्न किया गया था।"

प्रथमतः सभी कुत्ते जंगली थे और अब भी देखा जाता है कि स्वामिहीन होकर वे फिर अपने पूर्वजों की दशा को प्राप्त हो जाते हैं और जीवित शिकार मारने, खाने लगते हैं। सबसे विचित्र बात यह है कि घरेलू कुत्ते जंगली हो जाने पर भूकना भूल जाते हैं। जंगली कुत्ते भूकते नहीं बरन् वे एक विचित्र ध्वनि से चिल्लाया करते हैं। घरेलू कुत्ते भी स्वाधीन हो, भूकने की जगह, उसी प्रकार चिल्लाने लगते हैं। एक निर्जन द्वीप पर कुछ घरेलू कुत्ते छूट गये थे। ३० वर्ष तक उस द्वीप पर कोई मनुष्य न पहुँचा। ये कुत्ते बिलकुल जंगली होगये, अपना निर्वाह स्वयं करने लगे थे और भेड़ियों के समान ही मिलकर शिकार मारने लगे थे।

कोई कोई स्वभाव घरेलू कुत्तों में अब भी पाये जाते हैं जिनके द्वारा उनके पूर्वजों का जंगली होना स्पष्टतः प्रमाणित हो जाता है। उदाहरणार्थ, घरेलू कुत्तों में एक विचित्र स्वभाव होता है कि लेटने से पहले वे कई बार घूम घूमकर अपने शरीर को चक्कर देते हैं। यह स्वभाव जंगली कुत्तों का है और वंशानुक्रम के द्वारा संक्रमित हो घरेलू कुत्तों में भी आज तक विद्यमान है। प्राचीन काल में जब कुत्तों के पूर्वज जंगल में रहा करते थे, जहाँ बहुधा ऊँची ऊँची घास खड़ी होती थी, तो उनको लेटने के लिए स्थान समतल करना पड़ता था और इस उद्देश्य से वे घूम घूमकर घास को दबाते थे। यद्यपि स्वच्छ, समतल भूमि पर घरेलू कुत्तों को इस स्वभाव से अब कोई लाभ नहीं होता तो भी वह परम्परागत होगया है।

युगों तक मनुष्य के संग रहने पर भी पालतू कुत्तों की कुछ ऐसी नसलें हैं जो अपने जंगली कुटुम्बी भाइयों (अर्थात् भेड़िया और गीदड़) से इतनी मिलती जुलती हैं कि उनमें पहिचान करना

कठिन हो जाता है। उत्तरी अमेरिका के एस्किमो नसल के कुत्ते उन प्रदेशों के भेड़ियों से बाह्यरूप में इतने मिलते जुलते हैं कि प्रायः धोखा हो जाता है। हिन्दुस्तान के ग्रामों में प्रायः ऐसे कुत्ते देखने में आते हैं जिनमें गीदड़ से कोई भेद प्रतीत नहीं होता।

कुत्ते जैसे पशु को, जिसकी प्रकृति में जंगलीपन के बीज ऐसी शीघ्रता से अंकुरित हो जाते हैं, मानव जाति ने अधीन कर लेने में और उसकी बुद्धि में उन्नति कर देने में वस्तुतः बड़ी विजय प्राप्त की। वह अपने स्वामी की रक्षा करता है, उसके शत्रु को तुरन्त पहिचान लेता और बिना आदेश पाये आक्रमण करता है। खेल-तमाशों और शिकार में स्वामी का सहयोगी बनकर उनका आनन्द उठाता है। हिममय प्रदेशों में बोझ घसीटता है, पर्वतों पर यात्रियों की रक्षा करता है। हालैण्ड और बेलजियम में दूध और शाक बेचनेवालों की गाड़ियाँ घसीटता है, भेड़-बकरियों के गल्ले चरा लाता है, चन्दा जमा कर लाता है, सारांश यह कि कुत्ते की सेवाओं का यथेष्ट वर्णन नहीं किया जा सकता। सबसे आश्चर्य्ययुक्त बात यह है कि कुत्ता मनुष्य के गाने में भी आनन्द पाने लगा है। यह मनगढ़ंत नहीं है। शायद पाठकों ने स्वयं सुना होगा कि संध्या समय जब मन्दिरों में घंटे, घड़ियाल और शंख बजाये जाते हैं तो आस पास के कुत्ते बड़े विचित्र स्वर से उनके साथ चिल्लाने लगते हैं। यथार्थ में वे स्वर मिलाने ही की चेष्टा करते हैं। कतिपय वैज्ञानिकों ने इस विषय में अनुसन्धान किया है। "पशुओं का खेल" नामक पुस्तक में डॉक्टर कार्ल ग्रूस लिखते हैं:— "प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य के गाने का और बाजा बजाने का कुत्तों पर एक विचित्र प्रभाव पड़ता है और वे गाने के संग स्वयं धाड़ें मार मारकर स्वर छेड़ते हैं। कुत्तों के ये शब्द बहुधा रोने के से और दुःखमय प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तव में वे कष्ट के सूचक नहीं होते।

जब किसी कमरे में पियानो (बाजा) बजाया जाता है और कुत्ता स्वेच्छा से भीतर आकर उसके संग अपना स्वर छेड़ता है तो यह नहीं माना जा सकता कि कुत्ता अपने कष्ट या दुःख को प्रकट करने को आ जाता है।"

"मैं कह चुका हूँ कि मुझे यह स्वीकार करने में संकोच होता है कि कुत्ते की धाड़ें दुःख की द्योतक होती हैं। मैं यह निश्चय-रूप से कह सकता हूँ कि गाने के संग धाड़ें मारने में कुत्ते को आनन्द आता है। कुतूहल-वश वह मनुष्य की नक़ल करने की चेष्टा करता है। इसके अतिरिक्त ऐसे उदाहरण भी देखने में आये हैं कि कुत्ते ने अपने कण्ठस्वर से गाने के उतार-चढ़ाव में साथ देने की चेष्टा की। मेरे एक मित्र के पास एक कुतिया थी जिसका तमाशा वह प्रायः अपने मित्रों को दिखाया करते थे। जब वह गाने में ऊँचे स्वर खींचते थे तो कुतिया उनका साथ धाड़ें मार मारकर देती थी। कुतिया के ये स्वर निःसन्देह गाने के ऊँचे स्वरों से मिलते-जुलते हुआ करते थे। यद्यपि उसकी धाड़ों में ध्वनि का पता नहीं होता था तथापि सुनने से यही प्रतीत होता था कि कुतिया गाने का साथ दे रही है।"

"रोमानीज़ (Romanes) कहते हैं:—इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि 'गानेवाले बन्दर' के अतिरिक्त अन्य किसी स्तनपोषित जन्तु को ऊँचे, नीचे स्वर की पहिचान होती है। किन्तु मैंने टेरियर नसल का एक कुत्ता देखा है जो अपनी धाड़ों के द्वारा गीत में संग देता था और मनुष्य के लम्बे खिंचनेवाले स्वरों से ऐसी ध्वनि मिलाता था कि दोनों के कण्ठस्वर कुछ कुछ एक तान हो जाते थे। डॉक्टर हगिन्स (Dr. Huggins), जिनको राग की अच्छी पहिचान थी, मुझे बतलाते हैं कि उनका बड़ा मास्टिफ़ कुत्ता भी अर्गन बाजे के लम्बे खिँचनेवाले स्वरों के संग ऐसा ही किया करता है।"

"एलिग्ज़ (Elix) इस सम्बन्ध में कुछ ऐसे कुत्तों का वृत्तान्त देते हैं कि जिसको पढ़कर जादू का खेल स्मरण हो आता है। वे लिखते हैं कि पियर पारडीज़ (Pere Pardies) ने दो कुत्तों का उल्लेख किया है जिनको गाना सिखाया गया था। उनमें से एक अपने स्वामी के संग गाया करता था। परकिन ड गेम्ब्लो (Perkin de Gembloux) एक कुत्ते का वर्णन देते हैं जो सरगम के सातों स्वरों के संग स्वर मिलाता था और मोज़र्ट (Mozart) का बैठाया हुआ राग 'My heart, it sighs at Eve' मधुरता से गा सकता था।"*—

गानेवाले कुत्तों का हाल तो आश्चर्य्यजनक है ही, परन्तु हेक्टर नामक एक कुत्ते की बुद्धिमानी का वृत्तान्त इससे भी अधिक अविश्वसनीय सा प्रतीत होगा। इस कुत्ते का वर्णन अमेरिका के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'सायंटिफ़िक अमेरिन' में प्रकाशित हुआ था। यदि ऐसे विश्वस्त सूत्र से इसका हाल प्राप्त न हुआ होता तो हम उसको सत्य मानने में भी संकोच करते। हेक्टर गणित-विद्या सीख गया था और मनुष्य की बोली पूर्णतया समझता था। जो आज्ञा उसको दी जाती थी उसका पालन अक्षरश: कर देता था। कई योग्य और सुशिक्षित सज्जनों ने मिलकर इस कुत्ते की परीक्षा की थी। यह देखने को कि हेक्टर मनुष्य की बोली समझता है या नहीं उससे कहा गया। "हेक्टर, अपनी पिछली टाँगों पर चल के कुरसी के चारों ओर घूमो। जब कुरसी की पीठ के सामने पहुँचो तो खड़े हो के भूको। वहाँ से लौटकर कुरसी की परिक्रमा करो और तब अपने स्थान पर जाके बैठ जाओ।" हेक्टर ने आज्ञानुसार यह सारे काम कर दिये। तत्पश्चात् उसको आज्ञा दी गई कि रद्दी काग़ज़ की टोकरी

---

* "The Play of Animals," by Dr. Carl Groos.

को अपने मुँह से गिरा दो, तो उसने मुँह से धक्का देकर टोकरी गिरा दी। फिर उसको आज्ञा दी गई कि अब टोकरी को पञ्जे से गिराओ, तो उसने तुरन्त टोकरी को पञ्जे से गिरा दिया।

इसके अनन्तर एक घंटी लाई गई जिसकी चाबी दबाने से एक बार शब्द होता था। हेक्टर से पूछा गया कि चार तिये कितने होते हैं। उत्तर में उसने बारह दफ़ा घंटी दबा दी। इसी प्रकार पहाड़ों के उससे कई प्रश्न किये गये। उसने सबका उत्तर दिया। कभी कभी वह भूल भी कर जाता था। परन्तु घंटी का शब्द कुत्ता इतनी जल्दी जल्दी करता था कि उनका गिनना कठिन था, अतएव यह भी संभव है कि घंटियाँ गिननेवालों ही से भूल हो जाती हो। जोड़, बाक़ी, गुणा इत्यादि के प्रश्न भी उसने ठीक ठीक हल कर दिये। ९ का वर्गमूल पूछा गया तो उसने ३ बार घंटी बजा दी।

हेक्टर में न जाने कौन सी अलौकिक शक्ति उपस्थित थी!

कुत्तों में शिक्षा ग्रहण करने की अद्भुत योग्यता होती है और शिक्षित किये जाने पर वे खेल-कूद ही नहीं करने लगते वरन् महान् कार्य्यों में भी मनुष्य को सहायता देने लगते हैं। योरप के महायुद्ध में रणभूमि के अनेक स्थानों में इतनी अत्यधिक तोपें चलती रहती थीं कि समाचार लेकर एक स्थान से दूसरे को जाना असंभव सा होगया था। अतएव यह काम कुत्तों को सौंपा गया था। दूत का काम कुत्ते, केवल ५-६ सप्ताह शिक्षा दी जाने पर, उत्तमता से करने लगते थे। इतने अल्पसमय में ही वे गोले गोलियों का भय त्याग देते थे। स्माइलर नाम के एक कुत्ते की वीरता पर सारा सेना को गर्व था। यह कुत्ता सदरस्थान को, जो तीन मील दूर था, एक संदेशा लेकर भेजा गया। साधारणतया स्माइलर अपने काम को शीघ्रता से किया करता था किन्तु उस दिन बहुत समय व्यतीत होगया और वह सदरस्थान पर न पहुँचा। अन्त में लगभग एक घंटे के उपरान्त

वह घसिटता हुआ आते दिखाई दिया। एक गोले के टुकड़े ने उसके नीचे के जबड़े को चूर चूर कर दिया था। घाव की असह्य पीड़ा भी स्माइलर को उसके कर्तव्य से विमुख न कर सकी। थैली खोल के पत्र निकाला ही जा रहा था कि कुत्ते ने प्राण त्याग दिये।

एक जन्तुशास्त्रवित् लिखते हैं—"मेरे एक मित्र के पास एक कुत्ता था जिसको जब पेनी या आधी पेनी दी जाती थी तो उसको मुँह में दबाकर नानबाई की दुकान को दौड़ जाता था। दरवाज़े की घंटी बजाकर नानबाई को बाहर बुला लेता था और उससे बिस्कुट या रोटी मोल ले आता था। आधी पेनी के बदले कुत्ता बिस्कुट ले लेता था किन्तु पूरा पेनी में बिना मीठी रोटी लिये न मानता था। कुत्ते के बारंबार आने के कारण एक बार तंग आके नानबाई ने उससे पेनी ले ली किन्तु बदले में कुछ न दिया। तब से कुत्ता यह चतुराई करने लगा कि पेनी को भूमि पर दूर रख देता था और जब तक बदले में उसको रोटी नहीं मिल जाती थी नानबाई को उसके पास नहीं आने देता था।"

इँगलैंड में धर्म्मकार्य्यों के लिए चन्दा वसूल करने का काम प्राय: कुत्तों से लिया जाता है। कुत्ता अकेला जाता है और आदमियों की अपेक्षा अधिक चन्दा जमा कर लाता है। साधारणतया जो लोग चन्दा नहीं भी देना चाहते वे भी कुत्ते की चतुराई देख कुछ न कुछ दे दिया करते हैं। कुत्ते ख़ुशामद करना, आकृति से दीनता दिखाकर किसी का मन आकृष्ट करना, चन्दा मिल जाने पर चेहरे की चेष्टा से धन्यवाद देना; ताँबे, चाँदी और सोने के सिक्कों की आवाज़ पहिचानना, ताँबे का सिक्का देनेवाले से चाँदी का सिक्का देने-वाले को अधिक धन्यवाद देना, और सोने का सिक्का देनेवाले को सबसे अधिक धन्यवाद देना, इत्यादिक बातें सब पूर्णतया सीख लेते हैं।

कुत्ते की पीठ पर बकस बाँध दिया जाता है। जिस धर्मकार्य अथवा परोपकारी संस्था के लिए चन्दा माँगा जाता है उसका नाम बकस पर लिखा रहता है।

महाराजा सप्तम एडवर्ड का "सीज़र" नामक कुत्ता लंदन के अस्पतालों के लिए चन्दा जमा किया करता था। वह जहाँ ही जाता था उसको बहुत सा द्रव्य मिल जाया करता था।

लन्दन के वाटरलू नामक स्टेशन पर एक कुत्ता चन्दा वसूल किया करता था जो प्रतिवर्ष सात-आठ हज़ार रुपया वसूल कर लाता था। इस कुत्ते की मृत्यु हो जाने पर इस काम के लिए एक दूसरा कुत्ता शिक्षित किया गया था। यह कुत्ता जब किसी गाड़ी में घुसकर देखता था कि यात्री अख़बार पढ़ने में लगा है तो वह अपना पञ्जा मुसाफ़िर के घुटने पर धीरे से प्रेमपूर्वक रख देता था और ऐसा दीनवदन होकर देखता था कि मुसाफ़िर को कुछ न कुछ देना ही पड़ता था। ताँबे, चाँदी, और सोने के सिक्कों का शब्द पहिचान लेता था और दान के अनुसार ही वह यात्री को धन्यवाद देता था। ताँबे का सिक्का देनेवाले की ओर एक दृष्टि डालकर वह साधारण धन्यवाद दिया करता था। चाँदी का सिक्का देनेवाले से हाथ मिलाने को अपना पंजा आगे को बढ़ा दिया करता था। सोने का सिक्का देनेवाले से वह हाथ भी मिलाता था और मुँह बनाकर अपनी प्रसन्नता और कृतज्ञता भी प्रकट करता था।

कुत्ता मांसभुक् श्रेणी का प्राणी है किन्तु वह अपना निर्वाह अन्य खाद्य पर भी कर सकता है।

पसीना कुत्ते को कभी नहीं आता वरन् पसीने की जगह उसके मुँह से थूक टपका करता है।

कुत्ते को एक भयानक रोग पागलपन का होता है। इस रोग के सबसे पहले चिह्न आलस्य, भोजन से अरुचि, और आँखों का

सूजना हुआ करते हैं। यद्यपि प्यास के कारण रोगी कुत्ता व्याकुल रहता है तथापि पानी से डरता और दूर भागता है। न किसी को वह पहिचानता है, न किसी का भय मानता है और निष्कारण इधर-उधर भागा भागा फिरता है। उसकी प्रकृति में विचित्र परिवर्तन हो जाता है। जीवन भर की शिक्षा, स्वाभाविक प्रीति और दीनता सब त्याग देता है। जो आदमी या जानवर सामने पड़ जाता है उसी को काट लेता है और मुँह से बहते हुए झाग के द्वारा रोग के विष को सबके शरीरों में पहुँचा देता है। ऐसा कुत्ता तुरन्त नष्ट कर दिया जाना चाहिए।

कुत्ता-जाति (Genus) की दो उपजाति (Species) मानी जाती हैं, अर्थात्—

(१) घरेलू कुत्ता।

(२) जंगली कुत्ता।

घरेलू कुत्तों की बहुत सी नसलें निम्नलिखित भागों में विभक्त की जा सकती हैं :—

(१) भेड़िया-सदृश कुत्ते (Wolf-dogs), (२) स्पैनियल (Spaniels), (३) शिकारी कुत्ते (Hounds), (४) मैस्टिफ़ कुत्ते (Mastiffs), (५) टेरियर (Terrier), और (६) ताज़ी कुत्ते (Grey-hound)।

भेड़िया-सदृश कुत्तों की एक अत्यन्त उपयोगी नसल 'चरवाहे कुत्तों' (Shepherd Dogs) की है। योरप में ये झबरी दुमवाले बड़े कुत्ते भेड़-बकरियों के गल्ले चराया करते हैं। महामान्य डार्विन लिखते हैं "घोड़े की सवारी में दूर निकल जाने पर प्रायः भेड़ों के गल्ले मिल जाया करते हैं जिनके संग रखवाली के लिए केवल एक दो कुत्ते हुआ करते हैं और मीलों तक किसी मनुष्य का अथवा बस्ती का कहीं पता भी नहीं होता।" भेड़ों के गल्ले को ये कुत्ते चराने को ले जाते हैं, उनकी रक्षा चोरों से तथा हिंसक जन्तुओं से

करते हैं और सन्ध्या होने पर भेड़ों को एकत्रित कर घर लौटा लाते हैं। कभी कभी दो या अधिक गल्ले पास पास चरते हैं और सब गल्लों की भेड़ें एक दूसरे में मिल जाती हैं। पर ये चतुर कुत्ते लौटते समय अपने अपने गल्ले की भेड़ों को सहज अलग कर लेते हैं। भेड़िया-सदृश कुत्तों में एक दूसरी उपयोगी नसल 'एस्किमो' कुत्तों (Esquimaux Dogs) की है। एस्किमो जाति के लोग जो न्यूफ़ाउंडलैंड में तथा उत्तरी शीतमेखला के अन्य ठण्ढे प्रदेशों में रहते हैं इनको पाला करते हैं। छोटे खड़े कान, घने ऊनी बाल और झबरी दुम के कारण ये कुत्ते भेड़िये से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं और उनको देखकर प्राय: भेड़ियों का धोखा हो जाता है।

इन कुत्तों को अर्द्धपालित ही समझना चाहिए क्योंकि स्वतन्त्रता पाते ही वे तुरन्त जङ्गली हो जाते हैं और भेड़ियों के से दल बना-कर बारहसिंगों आदि का शिकार करने लगते हैं। बहुधा ग्रीष्मऋतु में वे स्वतन्त्र मारे मारे फिरते हैं और स्वयं शिकार मारकर अपना निर्वाह कर लेते हैं। शरद्काल में अपने स्वामी के पास लौट आते हैं।

सम्भवत: पृथ्वी के किसी भाग में कुत्ते इतने उपयोगी नहीं होते जितने कि एस्किमो देश में। वे अपनी तीक्ष्ण घ्राणेन्द्रिय के द्वारा अपने पालक को सील (Seal) की खोज में सहायता देते हैं और उसके लिए बारहसिंगे का शिकार करते हैं। भालू और अन्य जन्तुओं से उसकी रक्षा करते हैं और भारी भारी बोझ बरफ़ पर घसीटते हैं। शीतकाल में उनकी खाल तीन चार इंच लम्बे बालों से ढक जाती है। इसके अतिरिक्त बालों की एक भीतरी तह भी उनको ठण्ढ से बचाने के लिए प्रकृति प्रदान करती है। बालों की घनी तहों के कारण वे बरफ़ में भी सानन्द जीवन व्यतीत करते हैं।

ये कुत्ते बड़े परिश्रमी होते हैं। एस्किमो लोगों के स्लेज (अर्थात् बिना पहियों की गाड़ियाँ) प्राय: ८-१० फ़ुट लंबे और दो फ़ुट चौड़े हुआ करते हैं। स्लेज में कुत्तों के कई जोड़े जोत दिये जाते हैं। जो कुत्ता सबसे चतुर और बुद्धिमान् होता है उसे अगुवा बनाके सबसे आगे जोतते हैं। स्लेज हाँकनेवाला उसीका नाम लेकर दाहने बायें मुड़ने का आदेश देता है। चिकनी बरफ़ के विशाल समतल मैदानों पर छ: सात कुत्ते लगभग १० मन का बोझ खींच लेते हैं। स्लेज लेकर वे भागते हैं और ७-८ मील प्रतिघंटे की गति से दिन में ५० या ६० मील की यात्रा कर लेते हैं। न्यूफ़ाउण्डलैण्ड टापू का कुत्ता (Newfoundland Dogs)—भेड़िया-सदृश कुत्तों की यह भी एक प्रसिद्ध नसल है। इन बड़े कुत्तों के शरीर पर बाल घूँघरवाले होते हैं। दुम बहुत मोटी और झबरी होती है। उनकी आकृति और प्रकृति दोनों ही शान्त होती हैं, और अपने पालक की रक्षा के लिए वे प्राण तक दे देते हैं। ये कुत्ते भी स्लेज में जोते जाते हैं।

सेंटबरनार्ड कुत्ता (St. Bernard Dogs)—योरप की एल्प्स पर्वतश्रेणी पर यह बृहत् और बलशाली नसल मिलती है। स्विजर-लैंड और इटली के बीच में एल्प्स पर्वत के बहुत से ऊँचे शिखर हैं जिन पर प्राय: बरफ़ गिरा करता है और सम्पूर्ण वर्ष भूमि हिमाच्छादित रहती है। सेंटबरनार्ड नामक एक ऊँचे शिखर पर बरफ़ के भयंकर तूफ़ान आया करते हैं जिनमें फँसकर प्राय: यात्री रास्ता भूल जाते और निस्सहाय भटकते फिरते हैं। असह्य ठंढ और क्लेश पाकर प्राय: यात्री वहीं मरकर रह जाते हैं। इस शिखर के पास ही एक मठ है। इस मठ के करुणात्मक और दयालु पादरी यात्रियों की रक्षा के लिए इस जाति के कुत्ते रखते हैं। दो कुत्ते संग संग मठ से जाया करते हैं। एक की गरदन में शराब की बोतल लटकी होती है

और दूसरे कुत्ते की पीठ पर ऊनी वस्त्र बँधे होते हैं। जिस किसी भटकते हुए यात्री से उनकी भेंट हो जाती है उसको वे वस्त्र तथा शराब देते हैं और मठ में पहुँचा देते हैं। कोई कोई यात्री शीत के कारण निश्चेष्ट हो बरफ़ में गिर जाते हैं और उनके शरीर पर बरफ़ जमने लगता है। अपनी तीव्र गन्ध-शक्ति से कुत्ते ऐसे अभागे यात्री का पता लगा लेते हैं, पञ्जों से उसके शरीर पर से बरफ़ हटा देते हैं और अपने भारी, कर्कश कण्ठस्वर से मठ के पादरियों को दुर्घटना की सूचना देते हैं। प्रतिवर्ष ये कुत्ते बहुतों के प्राण बचा लिया करते हैं। इन कुत्तों में से एक को २२ मनुष्यों के प्राण बचाने के लिए एक स्वर्णपदक मिला था।

(२) दूसरे भाग में स्पैनियल कुत्तों को स्थान दिया जाता है। ये दो प्रकार के होते हैं, जलस्पैनियल और थलस्पैनियल। जलस्पैनियल का रंग बहुधा कत्थई और श्वेत हुआ करता है। थलस्पैनियल अधिकतर काले और श्वेत होते हैं।

लटकते हुए बड़े बड़े कान, लंबे रेशम से कोमल घूँघरवाले बाल इनकी रचना की विशेषता हैं। स्पैनियल कुत्ता अति सुन्दर और स्वभाव का सीधा होता है।

(३) तीसरे भाग में हाउंड (Hound) नसल के शिकारी कुत्ते रक्खे जाते हैं जिनमें सबसे बड़ा, भीषण और रक्तप्रिय "ख़ूनी हाउँड" (Blood-hound) होता है। ख़ूना हाउंड का क़द बहुत बड़ा और आकृति डरावनी होती है। उनके लटकते हुए बड़े कान ८ या ९ इंच के होते हैं। वक्षःस्थल चौड़ा, थूथन भारी, टाँगें सुगठित वा पुष्ट और कण्ठस्वर गंभीर और गूँजता हुआ होता है। ख़ूनी हाउंड की गन्धशक्ति अद्वितीय होती है। जिस जीव-जन्तु के पीछे डाला जाता है उसको कहीं शरण नहीं मिलती। घंटों पहिले जहाँ से उनका शिकार निकल गया होता है उस भूमि को सूँघ के भी ये कुत्ते तुरन्त

पता लगा लेते हैं कि जन्तु किधर गया है। कुछ शताब्दी पहिले इँगलैंड तथा स्काटलैंड में इन कुत्तों को भागे हुए क़ैदियों वा अपराधियों का पता लगाने के काम में लाते थे। जब इँगलैंड और स्काटलैंड के राज्य अलग अलग थे तो दोनों देशों में प्राय: युद्ध और मार काट होती रहती थी और एक दूसरे का पीछा करने में इन कुत्तों की सहायता ली जाती थी। स्काटलैंड का राणा प्रताप, देशभक्त ब्रूस, को अनेक बार इन कुत्तों से प्राण बचाना कठिन होगया था। पीछा किये जाने पर प्राय: अपराधी जल में कूद पड़ा करते थे जिसमे कि अनुभावक कुत्ते मार्ग सूँघ के उनकी खोज न कर सकें। महाराणी एलिज़बेथ के शासन-काल में आयरलैंड के राजविद्रोह दमन के लिए जो सेना भेजी गई थी उसके साथ ८०० ख़ूनी हाउंड भी थे।

फ़ाक्स हाउंड (Fox-hound)—शिकारी कुत्तों की यह एक छोटी नसल है। इँगलैंड में ये कुत्ते विशेषकर लोमड़ी के शिकार के लिए पाले जाते हैं और उनके पालन-पोषण में बड़ा धन व्यय किया जाता है। दौड़ने में एवं सहनशीलता में ये कुत्ते अद्वितीय होते हैं। एक फ़ाक्स हाउंड सात मिनट में चार मील दौड़ते देखा गया है और उनके एक दल ने लोमड़ी का पीछा लगातार दस घंटे तक किया है।

पायन्टर कुत्ते (Pointer)—गरदन और मुँह की विचित्र बनावट के कारण इनको पायन्टर अर्थात् 'संकेत करनेवाला' का नाम दिया गया है। पायन्टर की गरदन और मुँह को देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों वह किसी वस्तु की ओर संकेत कर दिखा रहा हो। यदि वह शिकार में शिकारियों से आगे निकल जाता है तो ज्योंही उसको किसी जन्तु की गन्ध मिल जाती है तत्क्षण उसी स्थान पर ठिठक जाता है और पत्थर की मूर्ति के समान जमा खड़ा रहता है। जब तक पीछे से शिकारी आ नहीं जाते वह किञ्चिन्मात्र हिलता-

डुलता नहीं है। स्थान पर जमकर खड़े रहने की कैसी विचित्र शक्ति इनमें होती है इसके प्रमाण में एक जन्तुशास्त्रवेत्ता एक अद्‌भुत घटना सुनाते हैं। दो पॉयन्टर कुत्तों को संकेत करते खड़ा पाकर एक चित्रकार उनका चित्र खींचने लगा। चित्रकार को पूरा सवा घंटा लगा किन्तु कुत्ते बराबर जैसे के तैसे ही खड़े रहे।

एक पॉयन्टर कुतिया एक दीवाल कूदने को उछली। उछलते ही गन्धशक्ति के द्वारा उसको ज्ञात हुआ कि दीवाल के दूसरी ओर तीतर हैं जो उसके कूदते ही उड़ जायँगे। उसने तुरन्त अपनी छलाँग के वेग को तोड़ दिया और दीवाल पर गिरकर अगले पञ्जों से लटक गई। जब शिकारी पहुँचे तो उसको इस प्रकार लटका देखकर यह समझे कि उसके पञ्जे फँस गये हैं। दीवाल के पार तीतर देखे जाने पर उनको विदित हुआ कि इतना कष्ट कुतिया किस कारण सहन कर रही थी।

(४) चौथे भाग में मैस्टिफ़ (Mastiff) कुत्ते हैं और इसमें तीन नसलें सम्मिलित हैं अर्थात् मैस्टिफ़, बुलडॉग और पग। इनका शरीर भारी और थूथन अत्यन्त छोटा और चौड़ा होता है। इनके जबड़े का बल अद्वितीय होता है।

मैस्टिफ़—ये बड़े कुत्ते लगभग २½ फ़ुट ऊँचे होते हैं। उनकी आकृति डरावनी किन्तु प्रकृति शान्त होती है। मैस्टिफ़ का कण्ठस्वर विशेषरूप से भारी होता है। तिब्बत में मैस्टिफ़ की एक अत्युत्तम नसल होती है। ये बड़े बालोंवाले कुत्ते ऊँचाई में प्रायः सब नसलों के कुत्तों से बड़े होते हैं।

बुलडॉग—कुत्ते की जाति में केवल यही नसल है जिसकी मित्रता व स्नेहशीलता पर पूरा विश्वास कभी नहीं किया जा सकता। बुलडॉग की प्रकृति का कुछ ठिकाना नहीं होता, न जाने किस समय थोड़ी सी ही छेड़ छाड़ से वह रुष्ट होकर भीषण हो जाता है। उसके

बुलडांग (The Bull Dog)
पृष्ठ ३३४

स्यार (Canis Aureus)
पृष्ठ ३३७

भेड़िया (The Wolf) पृष्ठ ३४८

बरफ़ की लोमड़ी गरमी में (Arctic Fox in summer dress) पृष्ठ ३४९

(ध्रुव की लोमड़ी C. Lagopus) पृष्ठ ३४९

बरफ़ की लोमड़ी जाड़े में (Arctic Fox in winter dress) पृष्ठ ३४९

स्वभाव में बड़ी हठ होती है और उसकी बुद्धि भी अन्य नसलों की अपेक्षा कुछ मंद होती है। बुलडॉग के जबड़े की पकड़ लोकप्रसिद्ध है, वे बन्द होकर फिर खुलना नहीं जानते। एक सज्जन बतलाते हैं कि उन्होंने एक बार देखा कि एक बुलडॉग ने अमेरिका के विशाल बिसन भैंसे का थूथन पकड़ लिया। कुत्ते ने भैंसे का सिर भूमि से मिला दिया। अपने थूथन के छूटने की आशा न देख भैंसे ने एक पिछली टाँग आगे बढ़ाकर कुत्ते को कुचलकर मार डाला। ऐसी तीव्र वेदना होते हुए भी कुत्ते ने अपना जबड़ा न खोला। इसके पश्चात् भैंसे ने कुत्ते को खींचकर अपना थूथन छुड़ाया, किन्तु फिर भी कुत्ते का जबड़ा न खुला वरन् थूथन में से मांस का लोथड़ा मृत कुत्ते के दाँतों के भीतर रह ही गया।

(५) पाँचवें भाग में टेरियर कुत्ते हैं। यही छोटे कुत्ते हैं जो बहुधा घरों में पाले जाते हैं।

(६) छठे भाग में शिकारी ताज़ी कुत्ते हैं। इनके दुर्बल शरीर के अंगप्रत्यङ्ग से उनकी फुरती और तेज़ी प्रकट होती है। शरीर का कोई भाग मोटा या भारी नहीं होता वरन् देखकर ऐसा जान पड़ता है कि उनके शरीर में खाल व हड्डी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दुर्बलता ही उनकी सुन्दरता मानी जाती है। ताज़ी कुत्ते बहुत तेज़ भागनेवाले होते हैं। उनकी प्रकृति बहुत शान्त और आज्ञापालक होती है।

जंगली कुत्ते या ढोल (Coun Rutilans)

कुत्ता-जाति की यह दूसरी उपजाति है जिसकी कई नसलें पृथ्वी पर पाई जाती हैं। हिन्द में इन कुत्तों के दल के दल किसी किसी स्थान में मिलते हैं। उत्तरी हिन्द में इनको "जंगली कुत्ता" और मध्य हिन्द में "सोना कुत्ता" कहते हैं। कहीं कहीं इनको "ढोल" भी

कहते हैं और अँगरेज़ी वैज्ञानिकों ने भी इसको प्राय: यही नाम दिया है।

ढोल की रचना कुत्तों से कुछ विभिन्न होती है। उसके जबड़े में कुत्ता-जाति के अन्य जन्तुओं से दो दाँत कम होते हैं और स्तनों की संख्या में भी भेद होता है। इससे प्राय: विद्वान् ढोल को एक अलग जाति (Genus) का जन्तु मानते हैं।

ढोल सर्वथा दल में रहते हैं और मिलकर शिकार करते हैं। जिस जंगल में वे रहते हैं उसको छोड़कर छोटे बड़े सब जीव भाग जाते हैं। उनके भयंकर दल के सामने अरना भैंसे के से विशाल जन्तु भी निरुपाय होते हैं। हरिण का पीछा इनके मरभुक्के दल ऐसे धैर्य्यपूर्वक करते हैं कि सम्पूर्ण रात्रि लगातार भागने पर भी वह उनसे पीछा नहीं छुड़ा पाता। जंगल के बड़े और हिंसक जन्तुओं का भी सामना करने का ढोल साहस करते हैं और जहाँ ढोल का दल पहुँच जाता है वहाँ से बाघ तक भाग जाते हैं। हिन्द के ढोल का रंग हलका पीला अथवा गहरा लाल होता है, कान खड़े और गोल, दुम झबरी, टाँगें पुष्ट और शरीर लंबा होता है। ऊँचाई लगभग २० इंच होती है।

नैपाल में जंगली कुत्तों को बुआनसू कहते हैं। मिस्टर हॉजसन (Mr. Hodgson) ने बुआनसू का वृत्तान्त विस्तार से दिया है जिसका सारांश नीचे दिया जाता है :—

बुआनसू क़द में भेड़िया और गीदड़ के बीच में होता है और गरदन नीचे झुकाकर चला करता है। असभ्यता एवं जंगलीपन के समस्त लक्षण उसमें विद्यमान होते हैं। शरीर का अगला भाग पिछले से कुछ ऊँचा होता है। खोपड़ी उठी नहीं होती वरन् थूथन की सीध में होती है। अगली टाँगें सीधी और पिछली टेढ़ी और पीठ कुछ गोल होती है। बुआनसू बहुधा दिन में शिकार किया करते हैं।

शिकार का पीछा करने में वे अपनी दृष्टि से उतना काम नहीं लेते जितना कि गन्धशक्ति से।

उनका मूत्र विशेष रूप से नुनखार होता है और उसमें बड़ी तीक्ष्ण दुर्गन्ध होती है। कहा जाता है कि उससे कभी कभी ये जन्तु शिकार में विचित्र सहायता लेते हैं। नीची नीची झाड़ियों को वह मूत्र से भिगो देते हैं और समीप ही छिपे रहते हैं। कहते हैं कि जो जन्तु उधर से निकलता है वही नुनखरे मूत्र की झरप से आधा अन्धा हो जाता है और तब बुआनसू उसको घेर कर मार लेते हैं।"

अफ़्रीक़ा का बन-कुत्ता—मध्य और दक्षिणी अफ़्रीक़ा में भी एक नसल जंगली कुत्तों की होती है। इनका रंग कुछ पचमेल सा होता है जिसमें भूरा, काला, पीला और श्वेत सभी रंग मिले होते हैं। शरीर के पार्श्वभाग में कुछ धुँधले धब्बे भी होते हैं। ये कुत्ते देखने में अति कुरूप और हीनकाय से प्रतीत होते हैं किन्तु शिकार में उनके पराक्रम विस्मयकर होते हैं। सुप्रसिद्ध शिकारी गॉर्डन कमिंग लिखते हैं, "डच जाति के बोअर लोगों के गल्लों को जितनी हानि इन कुत्तों के दल पहुँचाते हैं सो सुनकर अविश्वसनीय सा जान पड़ता है। ज्यों ही चरवाहा शहद की खोज में या अन्य किसी काम से गल्ले के पास से हट जाता है त्यों ही इन प्राणघातक जन्तुओं के दल आ टूटते हैं।" ये मरभुक्के जन्तु उदरानल की ज्वाला शान्त कर लेने पर भी सन्तुष्ट नहीं होते वरन् रक्तपात के आनन्द के लिए भी सैकड़ों भेड़ों को चीर फाड़कर क्षण भर में डाल देते हैं।

स्यार

(CANIS AUREUS)

कुत्ता-वंश का यह वही निकृष्ट जन्तु है जिसको यदि पाठकों ने देखा न होगा तो भी उसका कर्कश कण्ठस्वर तो सुना ही होगा।

किन्तु यह कुणपभुक्, नीच जन्तु भी उन उपयोगी जीवों में से है जो नाना प्रकार की सड़ी गली वस्तुएँ खा जाते हैं और पृथ्वी को स्वच्छ रखते हैं। शिकार के अभक्ष्य भाग, जो बड़े जन्तु छोड़ देते हैं, स्यार पूर्ण रुचि से चटकर जाता है और जलवायु को बिगड़ने नहीं देता। लकड़बघा के समान स्यार भी कभी कभी, क़बरें खोद-कर मनुष्य के शव को निकाल के खा जाता है।

स्यार एशिया, अफ्रीका तथा योरप के दक्षिणी देशों में पाया जाता है। लंबाई लगभग दो फुट और ऊँचाई १¼ फुट की होती है। उसका रंग पीलापन लिये भूरा होता है। बंगाल में किसी किसी का रंग काला भी होता है।

हिन्दुस्तान और लंका में प्राय: यह कहावत है कि किसी किसी स्यार के सिर पर एक सींग होता है जिसमें बड़े विचित्र गुण बताये जाते हैं। सर इमर्सन टेनेन्ट इसका समर्थन करते हुए लिखते हैं कि यह एक छोटा सा, खोखले सींग के आकार का, काँटा होता है जो बालों में छिपा रहता है।*

मांस के अतिरिक्त स्यार फल आदि भी रुचि से खाता है। ईख की खेती तो बिलकुल उजाड़ देता है। गन्ने को जड़ के पास चबाकर उसका सारा रस चूस लेता है। अंगूर, बेर आदि भी इससे नहीं बचते। डाक्टर जर्डन लिखते हैं कि वायनाद तथा लंका टापू में स्यार कॉफ़ी के फल खा जाते हैं। इन फलों के बीजों का पाचन तो होता नहीं वरन् वे उसके पेट से साबित ही निकल जाते हैं। कुली लोग इन बीजों को जमाकर लाते हैं और कहा जाता है कि इन बीजों को पीस के जो कॉफ़ी बनती है उससे उत्तम कॉफ़ी कोई नहीं होती!

---

* "Sketches of the Natural History of Ceylon," by Sir Emerson Tennent.

बहुत से मिलकर प्राय: स्यार छोटे छोटे जन्तुओं को अथवा किसी रोगी या बुड्ढे हरिण को भी मार लेते हैं।

भारतवर्ष में एक चिरकालीन विश्वास गीदड़ के विषय में यह चला आता है कि शेर और बाघ के संग एक गीदड़ लगा रहता है और शिकार का पता लगाकर एक विशेष आवाज़ के द्वारा उसको सूचित कर दिया करता है और शेर या बाघ कृतज्ञ होकर शिकार का कुछ भाग गीदड़ के लिए छोड़ देता है। जन्तुशास्त्रवेत्ता पहिले इसको केवल दंतकथा मानते थे किन्तु कतिपय अनुभवी शिकारी अब इसका समर्थन करते हैं। और इसमें कोई आश्चर्य्य की बात भी मालूम नहीं होती। तुच्छ स्यार भी इतना विवेकशून्य नहीं होता कि उसको यह सोचने समझने की शक्ति न हो कि महान् हिंसक जन्तु शिकार मारकर उसका कुछ भाग अवश्य ही छोड़ जायँगे जिससे स्यार का उदरपालन सहज ही हो सकता है।

इस सम्बन्ध में एक सुप्रसिद्ध शिकारी निम्न-लिखित घटना का उल्लेख करते हैं:—

"शीघ्र ही बाघ हमारे सामने कुछ गज़ के अन्तर पर निकला। उसके निकल जाने के एक दो मिनट के अनन्तर हमने गीदड़ को प्रत्यक्षरूप से देखा। जब वह हमारे समीप आ गया तो उसको चिल्लाते भी सुना। मैंने प्राय: सुना था कि स्यार सदा बाघ के आगे रहा करता है परंतु इस अवसर पर वह पीछे था। अन्य अवसरों पर भी मैंने उसको बाघ के पीछे ही देखा है। यह मैं नहीं कह सकता कि स्यार शेर का पीछा किस लालच से करता है। न जाने उसको शिकार में भाग पाने का लोभ होता है या वह निष्कारण ही बाघ के पीछे लगा रहता है जैसे छोटे छोटे पक्षी शिकारी पक्षियों के पीछे पीछे उड़ते फिरा करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे अवसर पर स्यार की बोली उसकी साधारण

बोली से विभिन्न होती है और जब ऐसी बोली सुनाई पड़ती है तो अन्य कोई स्यार नहीं बोलता। यह भी निश्चय है कि हिन्दुस्तान के किसी ऐसे भाग में जहाँ बड़े शिकारी जन्तु नहीं होते स्यार की यह विशेष बोली कभी नहीं सुनाई पड़ती।" *

जर्मन शिकारी हर स्किलिङ्स भी लिखते हैं कि अफ्रीका में भी गीदड़ कभी कभी शेर के संग निडर होकर रहते देखे जाते हैं।

भेड़िया

(Canis Lupus)

कुत्ते के वंश का यह सबसे बड़ा जन्तु है। भेड़िया एशिया, योरप, तथा उत्तरी अमेरिका में होता है। हिन्दुस्तान में सभी जगह इस हानिकारक जन्तु के दुष्कर्म जब तब सुनाई पड़ा करते हैं। भेड़िया घने जंगलों में जहाँ बाघ, शेर, हाथी जैसे महान् जन्तु वास किया करते हैं नहीं रहता, वरन् खुले मैदानों की झाड़ियों अथवा भाटों में घुसा रहता है।

भिन्न भिन्न जलवायु में तथा दूर दूर देशों में होने के कारण स्थान स्थान के भेड़ियों के रंग, क़द और बालों की लम्बाई में कुछ भेद पाये जाते हैं। किन्तु ये भेद इतने कम हैं कि विद्वानों का मत है कि पृथ्वी पर भेड़िये की केवल एक ही उपजाति है।

साधारणतः भेड़िये का रंग पीलापन लिये भूरा होता है किन्तु काले और सफ़ेद भेड़िये भी कभी कभी देखे जाते हैं।

भेड़िया निकृष्ट स्वभाव का जन्तु है। निर्बल व निस्सहाय के लिए भीषण और बलवान् के सामने से दुम दबा के भागता है। वह छल और चोरी से घात करना चाहता है, सामने आने का

---

* Johnson's "Field Sports of India."

साहस नहीं करता। अमेरिका के एक शिकारी उसके नीच स्वभावों का वर्णन करते हुए लिखते हैं:—"भेड़िये की भीरुता तथा कायरता की कोई सीमा नहीं। अकेले होने पर तो उसमें इतना साहस नहीं होता कि वह भेड़ पर भी घात करे। जब दल में बहुत से होते हैं और भूख से पीड़ित होते हैं तो भले ही गाय बैल पर आक्रमण करते हैं। घायल हो जाने पर भी उसको मनुष्य पर आक्रमण करने का साहस नहीं होता। पीछा करते हुए कुत्तों पर केवल मुँह मारकर रह जाता है। कायरता के कारण वह अपने तीक्ष्ण दाँतों वा प्रबल जबड़ों से कोई लाभ नहीं उठा पाता, और भागने का अवकाश पाते ही भाग जाता है।"*

इसी से भेड़िये सर्वथा कई कई मिलकर शिकार किया करते हैं। मनुष्य से वह डरता है। अत्यन्त भूखा होने पर आदमी पर कभी घात करे तो करे। तो भी बहुधा आदमी के सामने नहीं आता वरन् यह देखा गया है कि मीलों तक पीछे लगा चला जाता है और आकस्मिक घात करने का अवसर ढूँढता है। शेर और बाघ के समान कोई कोई भेड़िये भी नरभोजी हो जाते हैं। यह एक विचित्र बात है कि नरभोजी भेड़ियों के दल मध्यप्रान्त में कई कई वर्षों के अंतर से देखे जाते हैं। उनका एक दल उक्त प्रान्त में सन् १६२० ई० में दिखाई दिया था और उसका वृत्तान्त एक अनुभवी साहब ने इस प्रकार प्रकाशित किया था:—"यदि मुझे ठीक पता लगा है तो नरभोजी भेड़िये केवल संयुक्त-प्रान्त में और उसके आस-पास हुआ करते हैं और कहीं नहीं होते। इन पशुओं के दल कई कई वर्षों के उपरांत मध्यप्रान्त के उत्तरी भाग में, विशेषकर सागर और मुड़वारा की तहसीलों में आ जाया

---

* "The Hunting Grounds of the Great West," by Lieutenant-Colonel Dodge.

करते हैं। मुड़वारा तहसील में नरभोजी भेड़िये सन् १८६८ ई० में दिखाई दिये थे जो संभवतः उस वर्ष के अकाल के कारण नरभोजी होगये थे। तदनन्तर उनके दल इस वर्ष में (अर्थात् १९२० ई०) दिखाई दिये हैं। भेड़िया साधारणतः नरभोजी नहीं होता किन्तु उसमें यह दुर्वृत्ति सहज ही आ जाती है। और जब भेड़िया नरहत्या करने लगता है तो वह नरभोजी बाघ और तेंदुये से भी अधिक भयदायक हो जाता है। भेड़िये दल में रहनेवाले प्राणी हैं और जब दल का एक व्यक्ति नरभोजी हो जाता है तो वह स्वभाव रोग के समान फैलता है और दल के सारे व्यक्ति नरहत्या करने लगते हैं। बाघ और तेंदुये, चाहे कितने ही साहसी और ढीठ क्यों न हों, तो भी वे नरभोजी भेड़िये से तुलना नहीं कर सकते। कारण यह कि भेड़िया घात करने के दावपेच में उनसे कहीं अधिक चतुर होता है। दूसरी बात यह है कि भेड़िया अकेला नहीं होता वरन् कम से कम नर और मादा तो अवश्य संग संग घात किया करते हैं।"

नरभोजी भेड़ियों के दलों ने उपरोक्त तहसीलों में ऐसा उपद्रव मचाया था कि सरकार ने प्रत्येक भेड़िये को मारने का ५०) रुपया इनाम नियत कर दिया था और बहुत से शिकारी अपनी जान इनाम के लोभ से ख़तरे में डालने को प्रस्तुत होगये थे। किसी किसी शिकारी की जान पर आ बनती थी। दो भेड़ियों को अपनी तरफ़ आते देख एक शिकारी पेड़ की आड़ में छिप रहा। वह बड़े हर्ष के साथ राह देख रहा था कि भेड़िये बन्दूक़ की मार के भीतर आ जायँ। जब भेड़िये १०० गज़ के अन्तर पर रह गये होंगे तो शिकारी को अपने पीछे एक सूखी टहनी चटकने का शब्द सुनाई पड़ा। शिकारी ने घूम के देखा कि दो अन्य भेड़िये उसके पीछे आ पहुँचे थे और उछलने ही को थे। स्वयं शिकारी ही का शिकार होना चाहता था। न जाने भय से या किस कारण से उसकी बन्दूक़ की दोनों

गोलियाँ छूट गईं। भेड़िये मरे तो नहीं किन्तु भाग गये और शिकारी के प्राण बच गये।

जब भेड़ियों का दल शिकार पर घात करता है तो वे प्रायः छल और युक्तियों से काम लेते हैं और एक दूसरे को सहायता देकर बुद्धिमत्ता से काम करते हैं। हरिण को घेर के वे नालों में घुसा ले जाते हैं जहाँ दूसरे भेड़िये पहिले से छिपे रहते हैं। इसी प्रकार जब वे भेड़ों के गल्लों पर टूटते हैं तो दो एक व्यक्ति कुत्तों से लड़ते, और शेष भेड़ों को उठा उठा के भागते हैं।

योरप और एशिया के उत्तरी प्रदेशों के बरफ़ से आच्छादित जन-शून्य मैदानों में भेड़ियों के दल, भूख के कारण भयङ्कर होकर, भोजन की खोज में मारे मारे फिरते हैं। कोई छोटा बड़ा जन्तु दृष्टिगोचर हुआ नहीं कि भेड़िये उसके पीछे लगे। फिर वे अद्भुत सहनशीलता दिखाते हैं, थकने का नाम तक नहीं लेते और मीलों तक पीछा करते हैं।

प्रायः स्लेज पर यात्रा करनेवालों को भेड़ियों के दल से भेंट हो जाती है। यात्री घोड़ों को भरपूर तेज़ी से भगाते हैं। यदि क्षण-मात्र को घोड़े रुक जायँ अथवा किसी विघ्न-बाधा के कारण उनकी चाल धीमी हो जाय तो फिर यात्रियों की कुशल नहीं। घोड़े स्वयं भय से उन्मत्त हो बेतहाशा भागते हैं। कभी कभी दल का एक व्यक्ति जो औरों से अधिक साहसी तथा शीघ्रगामी होता है दौड़कर स्लेज के पास पहुँचता है और उस पर कूद जाने की चेष्टा करता है। यात्री लोग ऐसे भयानक दुष्टों को गोली से मारते चलते हैं। बड़ा लाभ यह होता है कि ज्योंही एक व्यक्ति मरकर गिरता है तो सारा दल रुक जाता है क्योंकि मरभुक्के भेड़िये अपने साथी ही की मृत-देह पर जुट पड़ते हैं और स्लेज का पीछा छोड़ पहिले उसको चट कर जाते हैं। कभी कभी यात्रियों को अपनी रक्षा के हेतु एक

घोड़े से हाथ धोना पड़ता है। घोड़ा छूटकर अपने प्राण बचाने को बेतहाशा भागता है और भेड़ियों का दल स्लेज का पीछा छोड़कर घोड़े के पीछे लग जाता है।

भेड़िया अत्यन्त चालाक होता है। खटकों के द्वारा अनेकानेक जन्तु पकड़ जाते हैं या मार डाले जाते हैं किन्तु भेड़िया खटकों के पास नहीं फटकता। यदि किञ्चिन्मात्र आशङ्का हो जाती है तो भेड़िया दूर ही रहता है। गाड़ी पर जाते हुए कुछ यात्रियों का एक बार भेड़ियों ने पीछा किया। यात्रियों ने एक रस्सी गाड़ी की खिड़की में से लटका दी। रस्सी भूमि पर घसिटती चलती थी। उस रस्सी के कारण भेड़िये ऐसे भयभीत हुए कि फिर गाड़ी के पास नहीं आये।

इँगलैण्ड का पीछा तो इस हानिकारक जन्तु से, बहुत दिन हुए छूट गया किन्तु उत्तरी अमेरिका में भेड़िये अब भी बहुत हैं। एक ग्रन्थकार बतलाते हैं कि मैडावास्का नदी में, जो प्राकृतिक शोभा के कारण उटावा प्रान्त की रानी कहलाती है, एक स्थान है जहाँ भेड़िये प्राय: हरिणों का पीछा किया करते हैं। हरिण प्राण बचाने को जल में कूद पड़ते हैं और नदी की धार में आगे बह चलते हैं। कुछ दूर पर एक ऐसा स्थान है जहाँ ऊपर तो बरफ़ की मोटी तह जमी रहती है और बरफ़ के नीचे एक दर्रा सा है जिसमें नदी का जल घुस जाता है। चतुर भेड़िये दौड़कर तुरन्त इस दर्रे के ऊपर बरफ़ पर जा डटते हैं और ज्यों ही हरिण बहता हुआ पहुँचता है तो उसको ऊपर खींच लेते हैं।*

लोमड़ी

(Canis Vulpes)

मांसभुक् श्रेणी के कुत्ता-वंश की लोमड़ी सबसे छोटी जाति है। आस्ट्रेलिया महाद्वीप को छोड़कर पृथ्वी का कोई ऐसा भाग नहीं है

---

* Mr. W. P. Lett, "The Big Game of North America."

जहाँ लोमड़ी न पाई जाती हो। लोमड़ी की २४ भिन्न भिन्न उप-जातियां हैं। कुत्ता-वंश का एक यही जन्तु है जो सहवास पसन्द नहीं करता। लोमड़ी या तो अकेली रहती है या उनका एक जोड़ा संग रहता है।

लोमड़ी भाँटे में रहा करती है किन्तु चतुर लोमड़ी भाँटा खोदने का कष्ट नहीं उठाना चाहती। प्राय: वह बिज्जू या ख़रगोश के से सीधे सादे जन्तुओं का भाँटा छीन लिया करती है और यदि भाँटा छोटा होता है तो उसको खोदकर बढ़ा लेती है। इसी कारण कभी कभी बिज्जू और लोमड़ी एक ही भाँटे में रहते पाये जाते हैं। बिज्जू बेचारा इस बिना बुलाये अतिथि को यथासंभव निबाहता रहता है किन्तु लोमड़ी और बिज्जू का अनमेल संग चिरस्थायी नहीं हो सकता। बिज्जू अपने भाँटे को साफ़-सुथरा रखता है, प्रत्युत लोमड़ी अपने निवासस्थान को अत्यन्त मैला-कुचैला रखती है। उसके भोजनादि के टुकड़े चारों ओर पड़े सड़ते रहते हैं। लोमड़ी के अपवित्र स्वभाव बिज्जू को इतना कष्ट देते हैं कि शीघ्र ही, घृणित हो, वह भाँटा छोड़कर भाग जाता है।

दक्षिणी अमेरिका में विज़काचा (Vizcacha) नाम का एक छोटा सा निर्दोषी जन्तु होता है उसके संग भी लोमड़ी इसी प्रकार का व्यवहार करती है। जन्तुशास्त्रवित् मिस्टर हड्सन बतलाते हैं कि लोमड़ी विज़काचा के भाँटे में बलात् घुस पड़ती है। कुछ देर लड़ाई झगड़ा रहता है तत्पश्चात् लोमड़ी असली मालिक को निकाल बाहर करती है और भाँटे पर अधिकार जमा लेती है। विज़काचों के झुण्ड के झुण्ड साथ साथ रहा करते हैं और एक ही स्थान में उनके सैकड़ों भाँटे होते हैं। इस लिये एक भाँटे के छिन जाने से उनको कोई बड़ी हानि नहीं होती और शीघ्र ही वे लोमड़ी का अत्याचार क्षमा करके उससे परिचय कर लेते हैं और पड़ोसियों के

समान संग रहने लगते हैं। किन्तु बसन्त ऋतु में जब विज़काचों के छोटे छोटे बच्चे भाँटों के बाहर निकलने लगते हैं तो लोमड़ी उनका शिकार करना आरम्भ कर देती है।*

फर्वरी अथवा मार्च के महीने में लोमड़ी प्रसव करती है और प्रति-बार ५ से ८ तक बच्चे देती है। बच्चों का पालन वह बड़े स्नेह से करती है और उनकी रक्षा के लिए, अपनी विचित्र चतुराई से, बड़े बड़े प्रयत्न किया करती है। भाँटे के आस पास यदि किसी के पदचिह्न देख लेती है तो बच्चों को उठाकर तुरन्त किसी दूसरे स्थान में पहुँचा देती है। कभी कभी ऐसी चतुराई करती है कि बच्चों को दो या तीन अलग अलग स्थानों में रखती है। बच्चों की रक्षा के लिए भीषण होकर लड़ने को तैयार हो जाती है। प्राय: देखा जाता है कि जो कुत्ते साधारणत:, निर्भय रूप से, लोमड़ी के भाँटे में घुस जाया करते हैं, वह, उसको बच्चों-सहित देखकर, भीतर घुसने का साहस नहीं करते।

मांसभुक् श्रेणी के कुछ अन्य जीवों के समान लोमड़ी के भी बच्चे अंधे पैदा होते हैं। वे अत्यन्त खिलाड़ी होते हैं और प्राय: अपनी ही झबरी दुम को पकड़ने के लिए घंटों चक्कर लगाया करते हैं।

लोमड़ी अपना निर्वाह छोटे छोटे पशु-पक्षियों पर किया करती है। कीड़े-मकोड़े और गिरगिट भी खाया करती है। बस्तियों में घुस के मुर्ग़े मुर्ग़ी पकड़ने के लिए चक्कर लगाया करती है।

बिल्ली-वंश के कतिपय जन्तुओं के सम्बन्ध में बताया गया है कि रक्तपात करने में उनको स्वाभाविक आनन्द प्राप्त होता है और वे क्षुधानिवारण ही के लिए नहीं वरन् निष्कारण भी बहुत से जन्तुओं के प्राण ले डाला करते हैं। लोमड़ी की भी यही रीति है। यदि

---

* "A Naturalist in La Plata," by Mr. W. H. Hudson.

कभी मुर्ग़ों के घर में घुस जाने का सुयोग हो जाता है तो सबको मार डालती है। किन्तु यह जघन्य भीषण कृत्य लोमड़ी अकारण नहीं करती, किन्तु भविष्य के भोजनादि का वह प्रबन्ध करना चाहती है। मुर्ग़े-मुर्ग़ियों को मार के पड़ा नहीं रहने देती वरन् लौट लौटकर आती है और सबको उठाकर अपने भाँटे में पहुँचा देती है।

छल, चालाकी, चतुराई और धोखा देने में लोमड़ी से बढ़कर सारे प्राणिवर्ग में कदाचित् कोई जन्तु नहीं होता। यदि ये शक्तियाँ बुद्धि की उत्कृष्टता की द्योतक हों तो लोमड़ी की बुद्धि को बहुत ऊँचा स्थान मिलना चाहिए। प्राय: देखा जाता है कि भाग जाने का उपाय न देखकर लोमड़ी मरी हुई सी बन जाती है। तब वह ठोकरें खाकर, कान पकड़के उठाये जाने पर और इधर-उधर फेंके जाने पर भी न आँख खोलती है न साँस लेती है और शिकारी वा उनके कुत्ते ज्योंही कुछ दूर निकल जाते हैं त्यों ही उठकर भाग जाती है।

एक साहब बतलाते हैं कि जब लोमड़ी काँटेदार चूहे (Hedgehog) को पकड़ती है तो अपनी अद्भुत चतुराई का अच्छा परिचय देती है। चूहा अपने काँटों को खड़ा कर लेता है और फिर किसी जन्तु का साहस उस पर मुँह मारने का नहीं होता। किन्तु काँटेदार चूहा पानी से बहुत डरता है और उसके शरीर से जल छूते ही बेचारे के काँटे गिर जाते हैं। चूहे के इस स्वभाव को लोमड़ी भली भाँति जानती है। यदि कहीं पानी समीप में होता है तो चूहे को लुढ़काकर ले जाती है और पानी में गिराकर उसको पकड़ लेती है। किन्तु यदि जल कहीं आस पास नहीं मिलता तो लोमड़ी अपने मूत्र से जल का काम ले लेती है।*

लोमड़ी की आश्चर्यजनक चतुराई का एक अच्छा उदाहरण यह है कि बच्चों को जन्म देने के बाद वह अपने भाँटे के आस-पास

---

* Houssay's "The Industries of Animals."

वास करनेवाले किसी जीव-जन्तु को नहीं मारती। तीतर, बटेर आदि के अण्डे भूमि पर घोंसलों में रक्खे रहते हैं किन्तु वह उनको नहीं छूती। खरगोश उसके भाँटे के पास वास करते हैं किन्तु लोमड़ी उनको भी नहीं सताती। इसमें लोमड़ी का उद्देश्य यह होता है कि खोज करनेवाले शिकारियों को उसके भाँटे का पता न चले क्योंकि पक्षियों एवं अन्य छोटे छोटे जन्तुओं को आस-पास रहते देखकर शिकारियों को विश्वास हो जाता है कि वहाँ पर किसी लोमड़ी का वासस्थान होना सम्भव नहीं।

लोमड़ी की अद्भुत चालाकियों के कारण उसके शिकार में शिकारियों को बड़ा आनन्द आता है और इँगलैंड में बहुमूल्य घोड़े और फॉक्सहाउण्ड कुत्तों के दल विशेषकर लोमड़ी के शिकार के लिए रक्खे जाते हैं। लोमड़ी उनको बड़ा नाच नचाती है और कभी कभी अपनी चतुराई से प्राण बचा लेती है। एक लोमड़ी पीछा किये जाने पर एक छोटी सी भीत फाँद ईग और भीत की जड़ में दबककर बैठ गई। ऐसा करने में उसके लिए बहुत जोखिम था क्योंकि अनुधावक कुत्तों में से यदि किसी की भी आँख उस पर पड़ जाती तो कुशल नहीं थी। किन्तु चतुर लोमड़ी को भली भाँति ज्ञान होगा कि वहाँ छिप रहने की शंका किसी कुत्ते अथवा शिकारी को न होगी। कुत्ते दौड़ते-भागते आये और भीत को फाँद फाँदकर आगे निकलते चले गये। तब लोमड़ी निकली और मूर्खों की मूर्खता पर हँसती दूसरी ओर खिसक गई। यह एक सच्ची घटना है और लोमड़ी के लिए ऐसी चालाकियाँ बायें हाथ के खेल हैं।

लोमड़ी को खटकों के द्वारा पकड़ने की चेष्टा करना सर्वथा निष्फल होती है क्योंकि उसकी बुद्धि इतनी मंद नहीं होती कि अन्य जन्तुओं के समान एक टुकड़ा मांस के लोभ में अपने प्राण खो दे।

वह खटके के चारों ओर चक्कर लगा लगाकर उसके रहस्य को जान लेती है और पास नहीं फटकती।

ध्रुव की लोमड़ी—(Canis Lagopus) लोमड़ी की यह अति सुन्दर उपजाति ध्रुवों के समीप बरफ़ में मिलती है। ग्रीष्मऋतु में उसका रंग भूरा अथवा हलका नीला होता है किन्तु ऋतु के संग उसके रंग में भी परिवर्तन हो जाता है। शीतकाल के आरम्भ होते ही उसके शरीर को लम्बे सफ़ेद बाल ढाँक लेते हैं। इस उपजाति की लोमड़ी के रंग का परिवर्तन घातार्थ वर्ण-साम्य एवं रक्षार्थ वर्ण-साम्य (Aggressive and Protective General Resemblance) का उत्तम उदाहरण है।

बरफ़ की लोमड़ी क़द में कुछ छोटी होती है और उसमें यहाँ की लोमड़ी के समान चालाकी और चतुराई भी नहीं होती। वह सहज खटकों में फँस जाती है। ऐसी सुन्दर खालवाले जन्तु का सबसे बड़ा शत्रु मनुष्य होता है। प्रतिवर्ष इस जन्तु की कोई १०,००० खालें केवल इँगलैंड को भेजी जाती हैं।

काली लोमड़ी—यह उपजाति उत्तरी अमेरिका में मिलता है। उसका रंग गहरा काला होता है किन्तु बालों के सिरे श्वेत होते हैं। इसकी खाल बड़े मूल्य को बिकती है। एक ग्रन्थकार बतलाते हैं कि रूस के किसी सम्राट् का एक शाही वस्त्र, जो काली लोमड़ियों की गरदन की खालों का बना था सन् १८५१ ई० में लण्डन की हाइडपार्क की प्रदर्शनी में रक्खा गया था। उसका मूल्य साढ़े तीन हज़ार पौंड (अर्थात् ५२,५००) रुपया) कूता गया था।

लाल लोमड़ी—यह उपजाति भी उत्तरी अमेरिका में मिलती है। उसके लम्बे कोमल बालों का रंग चमकीला लाल होता है। इस लोमड़ी की खाल की भी बहुत माँग रहती है और अनुमान किया जाता है कि केवल लण्डन में प्रतिवर्ष इसकी ६०,००० खालें बिक जाती हैं।

मस्टिलिडे-वंश

(THE MUSTELIDÆ)

मस्टिलिडे-वंश छोटे छोटे मांसभोजियों का एक समूह है जिनकी रचना, रूपरंग और क़द में बहुत कम समानता है। अतः सुविधा और पहिचान के लिए उसके जन्तुओं को कई उपवंशों में विभाजित करना पड़ता है। जन्तुशास्त्रवित् ब्लाइथ ने मस्टिलिडे-वंश के जन्तुओं को तीन उपवंशों (Sub-families) में बाँटा है, अर्थात्—

(१) मस्टिलिने उपवंश (Sub-family Mustelinæ)—

इस भाग में छोटे छोटे जीव हैं जिनके शरीर बड़े न्योले के समान होते हैं। इनके शरीर लम्बे और टाँगें छोटी छोटी होती हैं। प्रत्येक पैर में पाँच भाग, और नख तीव्र होते हैं। चलने में इनके तलवे का कुछ भाग भूमि पर पड़ता है। अधिकतर के शरीर पर घने कोमल बाल होते हैं। ये छोटे छोटे मांसभोजी अत्यन्त रक्तप्रिय हैं। दाँतों की संख्या निम्नलिखित है :—

कृंतकदंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$, डाढ़ें $\frac{१-१}{२-२}$ = ३४

मस्टिलिने उपवंश में विज़िल, मार्टिन, अर्मिन, फ़ेरेट इत्यादि जन्तुओं को स्थान दिया जाता है।

(२) लटरीने-उपवंश (Sub-family Lutrinæ)—

इस भाग की मुख्य जाति ऊदबिलाव है। इस उपवंश के जन्तुओं का शरीर लम्बा, किन्तु चपटा सा प्रतीत होता है। टाँगें छोटी और मोटी होती हैं। इनका बहुत सा समय जल में व्यतीत होता है। भोजन और शरण के लिए वे जल के आश्रित रहते हैं। पैरों के भाग

फैले हुए और एक ही झिल्ली में मढ़े होते हैं। इस झिल्ली से उनको जल में तैरने में सहायता मिलती है। उनके शरीर पर बालों की दो तहें होती हैं, एक छोटे, घने, कोमल बालों की और दूसरी लम्बे चमकदार की।

दाँतों की संख्या यह है :—

कृंतकदंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{३-३}$, डाढ़ें $\frac{१-१}{२-२}$ = ३६

(३) मेलिने-उपवंश (Sub-family Melinæ)—

इस भाग में बिज्जू और उसके भाई-बन्धु हैं। इनके शरीर भारी, टाँगें मोटी, चाल भद्दी, नख खनितृ (fossorial) और बाल मोटे और रूखे होते हैं। यह पूर्णतया स्थलचर जीव है। जितनी जातियाँ इस उपवंश के अंतर्गत हैं सभी की दंत-रचना विभिन्न है।

मस्टिलिडे-वंश में कुछ जीव ऐसे भी हैं जिनमें मस्टिलिने एवं मेलिने दोनों ही उपवंशों के जातिलक्षण उपस्थित हैं जैसे ग्लटन और स्कंक (Glutton and Skunk) अतः इस ग्रन्थ में इन जन्तुओं को मस्टिलिने-उपवंश के जन्तुओं के बाद ही स्थान दिया गया है।

वीज़ल

(THE WEASEL—MUSTELLA)

भयंकर वीज़ल बड़े न्योले का सा एक जन्तु है और वह मस्टिलिने-उपवंश की एक जाति (Genus) है। वीज़ल योरप तथा उत्तरी अमेरिका में, और एशिया के उत्तरी तथा मध्यवर्ती भाग में भी होता है।

मांसभोजी प्राणियों में यह जन्तु प्रायः सभी से छोटा है किन्तु उसका स्वभाव बड़े से बड़े मांसभोजियों से भी भयंकर होता है, और हिंसा तथा रक्तपात से उसको कभी तृप्ति नहीं होती। साहसी भी ऐसा होता है कि अपने से दुगुने बड़े जन्तुओं पर बेधड़क आँख मूँद

के दौड़ पड़ता है। उसका शरीर न्योले के समान बल खानेवाला होता है। जहाँ से चाहता है शरीर को मोड़ लेता है और छोटे छोटे छिद्र और कन्दराओं में घुस जाता है।

एक बार एक वीज़ल एक बड़े से ईगल पर आक्रमण करते देखा गया है। ईगल वीज़ल सहित ऊँचा उड़ गया, किन्तु वीज़ल ने उसका गला न छोड़ा और वायुमण्डल में लटकता हुआ अपने तीक्ष्ण दाँतों से उसको कुतरता ही रहा। अन्त में ईगल भूमि पर गिरा। वीज़ल को कोई हानि न पहुँची किन्तु ईगल का काम समाप्त हो चुका था।

वीज़ल का शरीर लगभग ८ इंच लम्बा और दुम २$\frac{1}{2}$ इंच की होती है। रंग कुछ सुर्ख़ी लिये भूरा होता है। परीर पर घने, कोमल बाल होते हैं। उसका समूर यद्यपि बहुमूल्य नहीं होता तथापि उपयोगी होता है।

कथिया न्याल—(Mustella Kathia)—वीज़ल की यह उपजाति नैपाल और भूटान में मिलती है। इसकी दुम के नीचे दो छिद्र होते हैं जिनमें से एक द्रव पदार्थ निकला करता है। इस द्रव की दुर्गन्ध असह्य होती है।

नैपाल-निवासी इस सुन्दर जन्तु को घरों में से चूहे भगाने को बहुत पालते हैं। चूहों को उसका कुछ ऐसा स्वाभाविक भय होता है कि ज्योंही कथिया न्याल घर में पहुँचता है तो चूहे निकल निकल-कर भागते देखे जाते हैं। निस्सन्देह उसकी उपस्थिति का पता चूहों को उसकी विशेष दुर्गन्ध से चल जाता होगा।

वीज़ल की भयंकरता का तमाशा देखने को प्रायः वह भेड़ बकरी के पास छोड़ दिया जाता है। विद्युत्वेग से वह भेड़ बकरी की टाँग पर होकर चढ़ जाता है और गले की बड़ी नस पकड़ लेता है।

वीज़ल उसका रक्त पी लेता है और भेड़ बकरी शीघ्र ही मर जाती है।

वीज़ल की एक उपजाति योरप के समशीतोष्ण प्रदेशों में मिलती है। (Mustella Vulgaris)। यह छोटा सा जीव ग्रामों की बस्तियों के आसपास बहुत होता है और उसके शरीर की लंबाई केवल छः इंच होती है। इसकी प्रकृति अत्यन्त भयंकर और भीषण होती है। वीज़ल को अपने उदरपालन के लिए बहुत रक्तपात करना होता है क्योंकि बहुधा वह शिकार का केवल भेजा खाकर और रक्त चूसकर छोड़ देता है।

पोलकैट (Polecat or mustella putorius) वीज़ल की एक प्रसिद्ध उपजाति है जो योरप में सर्वत्र पाई जाती है। क्रोधित होने पर पोलकैट के शरीर में से एक ऐसी तीक्ष्ण दुर्गन्ध निकलती है कि जो केवल मनुष्य ही के लिए नहीं वरन् सब जीवधारियों के लिए असह्य होती है। बस्तियों के निकट ही वास करके वह छोटे छोटे घरेलू जन्तुओं का बहुत रक्तपात करता है।

हिमालय का वीज़ल Mustella Sub-hemachalana)—यह उपजाति हिमालय पर काश्मीर से दारजीलिंग तक, विशेषकर बीच की और उत्तरी श्रेणियों पर मिलती है। इसका रंग हलका भूरा होता है, शरीर की लंबाई लगभग १२ इंच होती है और दुम लगभग आधे फ़ुट की। इसको भूटान में "ज़िमियंग" और उत्तरी पहाड़ों पर "सांग किंग" का नाम दिया जाता है।

मार्टेन

(THE MARTEN)

मार्टेन भी मस्टिलिने-उपवंश का एक जन्तु है। यह वीज़ल से बड़ा होता है और उसके शरीर की लम्बाई लगभग २० इंच

होती है। मार्टेन जाति के जन्तु वृक्षों पर चढ़ने में कुशल होते हैं। उनका स्वभाव उतना भयंकर और रक्तप्रिय नहीं होता जितना कि वीज़ल का। प्राय: वह पेड़ों के खोखलों में या घनी झाड़ियों में रहा करता है और नाना प्रकार के छोटे छोटे जन्तु तथा पक्षियों को मारकर खाता है।

मार्टेन की एक उपजाति हिमालय पर्वत पर होती है जिसको नैपाल में "माल सम्परा" और कमायूँ के पहाड़ों पर "तुतुराला" कहते हैं (Martes Flavigula)। हिन्दुस्तान के दक्षिण में यह जन्तु नीलगिरि पहाड़ पर भी होता है और लंका के टापू में भी मिलता है। चूहे, गिरगिट, साँप जो कुछ मिल जाता है उसी पर निर्वाह कर लेता है किन्तु उसका मुख्य खाद्य पक्षियों के अण्डे हैं।

योरप और अमेरिका के उत्तर में भी मार्टेन की उपजाति होती हैं। मार्टेन के शरीर से भी दुर्गन्ध आती है किन्तु वह वीज़ल की सी तीक्ष्ण और असह्य नहीं होती है।

मार्टेन की सबसे प्रसिद्ध उपजाति पृथ्वी के उत्तरी भूभागों में बरफ़ में मिलती है। इसको सेबिल कहते हैं (Martes Zibellina) शरद्-ऋतु में सेबिल की खाल अत्यन्त घने और कोमल काले रंग के बालों से ढक जाती है और इस अवस्था में उसकी खाल अच्छे दामों में बिकती है। उत्तरी अमेरिका में खटके लगाकर सेबिल को पकड़ते हैं और अनुमान किया जाता है कि वहाँ से कम से कम एक लाख खालें प्रतिवर्ष इँगलैंड को भेजी जाती हैं।

अर्मिन

(THE ERMINE—MUSTELLA ERMINEA)

मस्टिलिने-उपवंश की सबसे प्रसिद्ध जाति अर्मिन है जो उन्हीं भूभागों में होती है जिनमें कि सेबिल मिलता है। अर्मिन एक प्रकार

मार्टेन The Marten
ष्ठ ३५३

अर्मिन (Mustella ermine
पृष्ठ ३५४

फ़रेट (The Ferret) पृष्ठ ३५५

गलटन (Glutton) पृष्ठ ३५६

वीज़ल (The Weasel) पृष्ठ ३५७

स्कंक (Skunk) पृष्ठ ३५९

का बड़ा वीज़ल होता है और दोनों के स्वभाव एक से ही होते हैं।

ग्रीष्म-ऋतु में उसकी खाल का रंग भूरा लाल रहता है किन्तु जाड़ा आते ही उसके रंग में परिवर्तन हो जाता है और खाल पर सफ़ेद, दूध के समान, बाल निकल आते हैं। इसी ऋतु में ये जन्तु खाल के लिए मारे जाया करते हैं। सहस्रों खटके बरफ़ में लगा दिये जाते हैं और बहुतेरे लोगों की जीविका यही हो जाती है। सायबेरिया, रूस, नॉरवे, स्वीडन इत्यादि देशों से सहस्रों खालें इस सुन्दर जन्तु की बाहर भेजी जाती हैं।

अर्मिन की सुन्दर, बहुमूल्य, खाल से योरप के राजा महाराजाओं, जजों, और अन्य उच्चपदाधिकारी लोगों के लिबास सुसज्जित किये जाते हैं। पहिले इँगलैंड में अर्मिन की खाल से सजे हुए वस्त्र को राजकुल का विशेष चिह्न समझा जाता था और एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में, राजपरिवार के अतिरिक्त, किसी को अर्मिन की खाल से वस्त्र सुसज्जित करने की आज्ञा नहीं थी।

अर्मिन की दुम के अन्त पर काले बालों का एक गुच्छा होता है जिसका रंग हमेशा काला ही रहता है। उसके सफ़ेद बालों में इन काले बालों के सितारे टाँक दिये जाते हैं। भिन्न भिन्न पदों की पहिचान के लिए अब भी यह प्रयत्न किया जाता है कि काले सितारों के फूल भिन्न भिन्न आकारों के बनाये जाते हैं।

फ़ेरेट

(The Ferret—Mustella Furo)

मस्टिलिने-उपवंश की फ़ेरट एक जाति है जिसके जन्तु योरप के अनेक देशों में पालित दशा में मिलते हैं किन्तु अब वह जंगली दशा

में कहीं नहीं होता। पहिले यह जन्तु अफ़्रीका से स्पेन में लाया गया था और वहाँ से योरप के अन्य देशों में फैला।

फ़ेरेट का रंग कुछ पीलापन लिये सफ़ेद होता है। शरीर की लम्बाई लगभग १४ इंच और दुम चार इंच की होती है। शारीरिक गठन वीज़ल के समान होती है और उसका स्वभाव भी वीज़ल ही सा भयंकर होता है।

योरप में फ़ेरेट को रैबिट के शिकार के लिए पालते हैं। उसको रैबिट के भाँटे में घुसा देते हैं और भाँटे के मुँह पर जाल फैला दिये जाते हैं। रैबिट उसकी गन्ध पाते ही भय से पागल हो बाहर को भागते हैं और जाल में फँसते जाते हैं। भाँटे में घुसाने से पूर्व फ़ेरेट का मुँह एक जाली से कस देते हैं क्योंकि यदि उसका मुँह खुला रहे तो वह रैबिट को भाँटे के भीतर ही मार के उसका रक्त चूस ले। गरम गरम रुधिर से तृप्त होकर कभी कभी फ़ेरेट भाँटे के भीतर ही लेटकर सो रहता है और कई कई दिन तक बाहर नहीं निकलता।

यद्यपि फ़ेरेट पालतू जन्तु होगया है तो भी उसकी प्रकृति पर कभी भरोसा नहीं किया जा सकता। अपरिचित मनुष्य को काट खाना उसके लिए कोई विशेष बात नहीं है और कभी कभी ऐसी दुर्घटनायें भी हुई हैं कि सोते हुए बालक पर फ़ेरेट आक्रमण कर बैठा।

ग्लटन

(GLUTTON OR GULO LUSCUS)

ग्लटन मांसभोजी-श्रेणी के मस्टिलिडे-वंश की एक जाति (Genus) मानी जाती है। शारीरिक रचना में वह मार्टेन और बिज्जू के बीच की सीढ़ी है। मस्टिलिडे-वंश के प्राणियों में यह

सबसे बड़ी जाति है। उसके शरीर पर छोटे ऊनी बाल होते हैं। दुम पर और शरीर के दोनों पार्श्व भागों में बाल घने और लंबे होते हैं इससे ग्लटन बहुत झबरा जान पड़ता है। ग्लटन की टाँगें छोटी और मोटी होती हैं। पञ्जे बड़े बड़े जिनमें नुकीले, पुष्ट और बहुत घूमे हुए नख होते हैं। सिर चौड़ा, आँखें छोटी और दृष्टि-शक्ति निर्बल होती है। रंग गहरा भूरा और पीठ ऊपर को उठी होती है। मस्टिलिडे-वंश के कुछ अन्य जन्तुओं के समान ग्लटन की भी दुम के नीचे ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें एक दुर्गन्धमय पीला द्रव पदार्थ उत्पन्न होता है। उसकी लंबाई लगभग २½ फ़ुट होती है।

ग्लटन पृथ्वी के उत्तरी भूभागों में मिलता है। अपने भारी, भद्दे शरीर एवं मंद चाल के कारण ग्लटन बहुधा जीवित शिकार नहीं मार पाता और मरे हुए जन्तुओं के मृत शरीर ही पर अपना निर्वाह किया करता है। तो भी अवसर पाने पर वह छोटे छोटे जन्तुओं की बहुत हत्या करता है। भारी और भद्दा होते हुए भी इस जन्तु की हानिकर शक्तियों का इससे अनुमान किया जा सकेगा कि नार्वे देश की सरकार प्रत्येक ग्लटन के मारने पर उतना ही पुरस्कार देती है जितना कि भेड़ियों और भालू को मारने के लिए।

अँग्रेज़ी शब्द ग्लटन (Glutton) का अर्थ है 'बहुत खानेवाला'। इस जन्तु को बहुत खानेवाले का नाम देकर क्यों अपमानित किया जाता है? कारण यह है कि उसके विषय में यह विश्वास है कि शिकार मार लेने पर वह माँस का एक टुकड़ा भी नहीं छोड़ना चाहता और उसकी क्षुधा की तृप्ति बड़ी कठिनाई से होती है। एक जन्तुशास्त्रवित् लिखते हैं—"इस जन्तु की भीषणता में तो अत्युक्ति की गई है किन्तु उसके अत्याहार में नहीं। खाते खाते

वह अपने पेट को कितना फुला लेता है इसका वर्णन ओलॉस मैगनस (Olaus Magnus) ने दिया है। उदरतृप्ति के पश्चात्, वह प्राचीन रोम-निवासियों की भाँति, तुरन्त फिर लौटकर भोजन आरम्भ कर देता है।"*

ग्लटन स्वभावत: छिपा रहना पसन्द करता है और केवल रात ही में बाहर आता है। प्राय: देखा गया है कि जिन स्थानों में ग्लटन वास करते हैं वहाँ, वर्षों तक रहने पर भी, किसी को इस अद्भुत जीव के दर्शन नहीं होने पाते ।

यद्यपि ग्लटन देखने में अत्यन्त भद्दा सा जान पड़ता है तथापि उसकी बुद्धि उसके शरीर के समान भद्दी नहीं होती। वह चतुर और चालाक होता है। उन्हीं भूभागों में जहाँ ग्लटन होता है एक छोटा सा जन्तु सेबिल भी होता है (देखिए मस्टलिडे-वंश की मार्टिन जाति का वर्णन)। जो लोग सेबिल पकड़ने को खटके लगाते हैं वे ग्लटन के बड़े शत्रु होते हैं। सेबिल पकड़नेवाले जनशून्य मैदानों में एक-दम चालीस पचास मील तक थोड़े थोड़े अन्तर पर खटके लगा दिया करते हैं। ग्लटन एक ओर से चलता है और खटकों में से मांस के टुकड़े निकाल निकालकर खाता जाता है। यदि किसी में सेबिल फँस चुका होता है तो उसको भी चट कर जाता है। भूख की तो ग्लटन को कमी होती ही नहीं है। खटकों में ग्लटन अद्भुत चतुराई से उलटी ओर से घुसता है अत: यदि खटका चल भी जाता है तो भी उसको कोई हानि नहीं होती। ग्लटन को जब एक बार खटके लगाये जाने का पता चल जाता है तो वह किसी प्रकार पीछा नहीं छोड़ता। सेबिल पकड़नेवालों को पहिले ग्लटन को पकड़ लेने के उपाय सोचने पड़ते हैं। किन्तु इसमें सहज सफलता नहीं होती क्योंकि ग्लटन को खटकों

---

* "Mammalia," by Mr. F. E. Beddard, F. R. S.

की तरकीब पूर्णतया मालूम रहती है और वह उनसे दूर ही रहता है।

पेटू होने के अतिरिक्त ग्लटन में एक और भी अवगुण है। आप पक्के चोर भी होते हैं। यदि वह केवल खाद्य वस्तुएँ ही चुराया या छुपाया करता तब भी कोई बात न थी, किन्तु विलक्षण बात यह है कि ग्लटन प्रायः ऐसी वस्तुएँ भी चुरा लेता है जिनसे उसको किसी प्रकार का लाभ नहीं हो सकता। नीचे उल्लेख की हुई घटना से इसका पूरा प्रमाण मिलता है। एक शिकारी कुटुम्ब-सहित अपना घर अकेला छोड़कर चला गया। जब लौटा तो क्या देखता है कि उसका घर बिलकुल लुट गया है। कमरों की दीवालें ही खड़ी रह गई थीं, माल असबाब कुछ न बचा था। कम्बल, बन्दूकें, केतलियाँ, छुरियाँ, टीन के डब्बे इत्यादि किसी वस्तु का पता न था। भाग्यवश कहीं कहीं कोई वस्तु गिर पड़ी थी, इन्हीं के सहारे शिकारी के माल का पता लगाया गया तो एक ग्लटन के भाँटे में लगभग सारी वस्तुएँ मिल गईं।*

ग्लटन का एक विलक्षण ढङ्ग यह होता है कि मनुष्य को देखकर भागता नहीं वरन् कुत्ते के समान टिककर बैठ जाता है और अगले पंजे से आँखों पर छाया कर लेता है, ठीक जैसे मनुष्य किसी दूर की वस्तु को धूप में देखते समय अपने हाथ से आँखों पर छाया कर लेता है। यह अद्भुत ढँग किसी अन्य जन्तु में नहीं देखा जाता।

स्कंक

(THE SKUNK—MEPHITIS MEPHITICA)

स्कंक को मांसभोजी-श्रेणी के मस्टिलिडे-वंश में स्थान दिया जाता है। कद तथा बाह्यरूप में यह जन्तु मार्टेन की बड़ी उपजातियों

* "Fur-bearing Animals of North America," by Mr. Cowes.

से मिलता-जुलता है किन्तु दंत-रचना में वह मार्टेन से बहुत भिन्न होता है। स्कंक के पञ्जों में लम्बे लम्बे खनित् नख होते हैं। क़द में स्कंक लगभग बिल्ली के बराबर होता है किन्तु उसका शरीर बिल्ली से कुछ भारी होता है। उसके शरीर पर चमकते हुए, रेशम से कोमल काले बाल होते हैं और दो सफ़ेद चौड़ी धारियाँ लम्बाई में पड़ी होती हैं। उसकी दुम पर बहुत बड़े बड़े सफ़ेद या भूरे रङ्ग के बाल होते हैं। स्कंक प्राय: अपनी चँवर सी पूछ को ऊपर उठाये रहता है अथवा उठाकर पीठ पर रख लेता है।

स्कंक उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में होता है। वह चूहे, मेंढक, कीड़े-मकोड़े, इत्यादि खाकर जीवन-निर्वाह किया करता है। स्कंक कुणपभुक् भी है और बड़े बड़े जन्तुओं के मृत शरीर भी खा जाया करता है।

जन्तुशास्त्रवित् डाक्टर मेरियम बतलाते हैं कि अन्य जन्तुओं के समान स्कंक मनुष्य को देखकर डरता नहीं, न मनुष्य से भेंट हो जाने पर भागता ही है। उसकी चाल ढाल में शान्ति, और सब कामों में सावधानता पाई जाती है। साधारणत: वह तुले नपे पग रख रखकर चलता है। स्कंक को भयभीत करना बहुत कठिन है, किन्तु कभी वह भयभीत हो जाता तो तेज़ भाग भी लेता है। स्कंक एक सुन्दर पालने योग्य जन्तु होता है और अपने पालक से स्नेह भी करता है। उसका मांस श्वेत, कोमल, मधुर और स्वादिष्ठ होता है।*

किन्तु इस सुन्दर, साफ़-सुथरे जन्तु में एक बड़ा दोष भी होता है। हमने देखा है कि मस्टिलिडे-वंश के कतिपय जन्तुओं की दुम के नीचे ग्रन्थियाँ हुआ करती हैं। स्कंक के शरीर में ये विशेष रूप से बड़ी होती हैं और उनमें एक पीला द्रव पदार्थ उत्पन्न होता है

* "Mammals of the Adirondack Region" by Dr. C. H. Merriam.

जिसको स्कंक पिचकारी के समान कई फुट दूर तक फेंक सकता है। इस द्रव की दुर्गन्ध ऐसी तीक्ष्ण, प्रबल, कष्टकर और घृणाजनक होती है कि न कोई जीवधारी ही उसको सहन कर सकता है और न कोई प्राणी बहुत समय तक उस दुर्गन्ध में जीवित ही रह सकता है। आश्चर्ययुक्त बात यह है कि साधारणतः स्कंक का शरीर गन्धरहित होता है। इस असह्य दुर्गन्ध को वह इच्छानुसार जब चाहता है अपने शरीर से निकालता है। विशेषकर वह क्रोधित होने पर या अपनी रक्षा के लिए इस विलक्षण हथियार का प्रयोग किया करता है। इस दुर्गन्ध के कारण स्कंक एक ऐसा निकृष्ट जन्तु समझा जाता है कि अमेरिका की सभ्य समाज में उसका नाम भी लेना सभ्यता के विरुद्ध माना जाता है।

एक यात्री एक स्वानुभूत घटना का वर्णन देते हुए लिखता है— "मैं जिस स्थान में ठहरा हुआ था वहाँ एक स्कंक आगया। रात्रि का समय था और शरद्-ऋतु थी। कुत्ते जाग गये और स्कंक के पीछे दौड़े। क्षणमात्र में उसने ऐसी सड़ी दुर्गन्ध फैलाई कि यद्यपि मैं सो रहा था तथापि मुझे यह जान पड़ा कि साँस घुटकर मैं मर जाऊँगा। गंध ऐसी असह्य थी कि गायें तक चिल्लाने लगी थीं। उस वर्ष के समाप्त होने से पूर्व एक स्कंक हमारे भाण्डार में घुस गया। एक नौकरानी ने उसकी चमकती हुई आँखें देख उसको पहिचान लिया और मार डाला। तत्क्षण सारा भांडार ऐसी दुर्गन्ध से भर गया कि वह नौकरानी कई दिन तक अस्वस्थ रही। रोटी, मांस और अन्य खाद्य सामग्री जो भांडार में रक्खी थीं सब दुर्गन्धमय होगईं और सब निकाल के फेंक देनी पड़ीं।"

उक्त डाक्टर मेरियम बतलाते हैं कि एक बार एक स्कंक घर से १०० गज़ के अन्तर पर मारा गया था। यद्यपि सारे किवाड़ बन्द कर लिये गये थे तथापि सारे घर में दुर्गन्ध पाँच मिनट के भीतर भर गई।

बिज्जू

(MELLIVORA)

बिज्जू और उसके सदृश अन्य जन्तुओं को मेलिने-उपवंश में स्थान दिया जाता है। मस्टिलिने-उपवंश से इन जन्तुओं की पहिचान सहज ही की जा सकती है। मस्टिलिने-उपवँश के सब जन्तु छरहरे शरीर के और फुरतीले होते हैं। इसके विरुद्ध मेलिने-उपवंश के अन्तर्गत जितने प्राणी हैं वे सब भारी शरीर के हैं। उनकी टाँगें मोटी मोटी और चाल धीमी और भद्दी होती है। उनके पुष्ट पञ्जे बहुधा खनितृ होते हैं। कतिपय के शरीर की लंबाई में धारियाँ होती हैं। मस्टिलिने-उपवंश के अधिकतर जन्तुओं के बाल कोमल, चिकने, और चमकदार होते हैं किन्तु मेलिने-उपवंश के प्राणियों के बाल मोटे, और खुरखुरे होते हैं।

हिन्द का साधारण बिज्जू (Mellivora Indica) उत्तर से धुर दक्षिण तक सर्वत्र मिलता है विशेषकर पहाड़ी प्रदेशों में जहाँ ढाल पर भाँटें खोदने के लिए उसको उपयुक्त स्थान बहुतायत से मिलते हैं। उत्तरी हिन्द में प्राय: नदियों और तालाबों के ढालू पार्श्वों में भी उसके भाँटें बहुत देखने में आते हैं।

बिज्जू के शरीर के ऊपरी भाग का रंग भूरा होता है किन्तु शरीर के पार्श्वभाग और पेट काले रंग के होते हैं। इस प्रकार का रंग एक विलक्षण सी बात है क्योंकि बहुधा देखा जाता है कि जन्तुओं के शरीर का ऊपरी भाग निम्नभाग से अधिक गहरे रंग का होता है। उसके माथे पर एक चौड़ी सी सफ़ेद धारी पड़ी होती है। पैरों में पाँच पाँच अत्यन्त पुष्ट और खनितृ नख होते हैं। बिज्जू के पञ्जे खुदाई के काम के लिए अत्यन्त उपयुक्त हैं। अगले पैरों से खोदी हुई मिट्टी वह पिछले पैरों से पीछे फेंकता जाता है। कुदाल और

बिज्जू (The Badger)
पृष्ठ ३६२

ऊदबिलाव (The Otter) पृष्ठ ३६६

लकड़बग्घा (The Hyena)
पृष्ठ ३७८

आर्ड-भेड़िया (The Aard Wolf)
पृष्ठ ३७३

सिवेट बिल्लियाँ (Civets)
पृष्ठ ३७६

गेनेट (Genetta Vulgaris) पृष्ठ ३७६

फावड़ा दोनों ही उसके पैरों में मौजूद होते हैं और उनके द्वारा वह बड़े बड़े और विस्तृत भाँटें खोद लिया करता है। क़बरें खोदने के निकृष्ट काम में भी वे सहायक होते हैं। बिज्जू के शरीर पर अति मोटे और लंबे बाल होते हैं जो सुअर के बालों के समान सीधे खड़े नहीं रहते वरन् शरीर पर इस प्रकार पड़े रहते हैं मानो कंघे से काढ़ दिये गये हों।

बिज्जू के माथे पर की चौड़ी सफ़ेद धारी निरर्थक नहीं होती। सामने से आता हुआ बिज्जू इसी धारी के कारण दूर से दिखाई नहीं पड़ता। रक्षार्थ और घातार्थ वर्ण-साम्य का कैसा सहज प्रबन्ध प्रकृति ने कर दिया है।

भारी भद्दा बिज्जू पदतलचर जीव है, उसमें दौड़ने, भागने की तेज़ी नहीं होती। फिर भी उसको भोजनों का अभाव नहीं होता क्योंकि बिज्जू पूरा सर्वभक्षी है। फल, जड़ें, कीड़े-मकोड़े, साँप, गिरगट, अण्डे इत्यादि जो कुछ मिल जाता है उसी पर निर्वाह कर लेता है। बिज्जू के दाँतों की रचना को देखने ही से प्रमाण मिल जाता है कि वह सर्वभक्षी है। उत्तरी हिन्द में बिज्जू कभी कभी क़बरें खोद डालते हैं और विशेषकर बालकों के मृत शरीर को खोद ले जाते हैं। इस लिये वह घृणित समझा जाने लगा है। यह आश्चर्य्य की बात है कि बिज्जू, जो मुर्दे तक उखाड़ के खा जाता है, स्वभावतः अत्यन्त स्वच्छ रहनेवाला जन्तु है। अपने शरीर और वासस्थान दोनों ही को वह साफ़-सुथरा रखता है। अपने भाँटे के मुख्य भाग में जिसमें वह रहता है, पत्तियों, घास आदि को बड़ी सफ़ाई से बिछौने के समान बिछाये रहता है। स्वच्छ वायु के लिए वह अपने पुष्ट, खनित्र नखों से कई सुरंग ऊपर तक खोद लेता है। भीतर ही भीतर भाँटे में कई और सुरंग भी रहते हैं जो कभी कभी २५ या ३० फ़ुट तक लंबे होते हैं। इनमें बिज्जू अपनी भोजन-सामग्री एकत्रित करता

है। बिज्जू को अशुद्ध वासस्थान से इतनी घृणा है कि यदि कभी मैली कुचैली रहनेवाली लोमड़ी उसके भाँटे में ज़बरदस्ती रहने लगती है तो बेचारा अपना भाँटा छोड़ देता हैं।

बिज्जू एक भीरु और डरपोक जन्तु होता है और सारे दिन उसके कभी दर्शन नहीं हो सकते। रात्रि में बाहर आता है और भोजन की खोज में भ्रमण करता है। यदि कभी कुत्ते उसका पीछा करते हैं तो यथासंभव भाग के भाँटे में घुस जाना चाहता है, किन्तु यदि भाँटा दूर होता है तो चित लेटकर अपने पुष्ट पञ्जों और दाँतों से कुत्तों का सामना करता है।

योरप का बिज्जू (Meles Taxus)—यह उपजाति योरप, एशिया, और उत्तरी अमेरिका के उत्तरी प्रदेशों में मिलती है। जो भोजन उसको मिल जाता है उसी पर सहर्ष जीवन-निर्वाह कर लेता है। साइबेरिया में वह ऐसा पक्का मांसभोजी होता है कि चौपायों के बच्चों को मारने के लिए उनके झुण्ड पर आक्रमण किया करता है। जर्मनी में वसन्त-ऋतु में वह चूहे, छछूंदर, चींटियों और मधु-मक्खियों की खोज में फिरा करता है। सुअर के समान खर्राटे करता हुआ वह भूमि को खोदता फिरता है। चींटियों एवं मधु-मक्खियों के काटने का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता। केवल खाल को हिलाहिला के उनको उड़ा दिया करता है। शरद्-ऋतु के आरम्भ होने पर वह शाकभोजी हो जाता है और दिन-प्रति-दिन मुटाता जाता है। इस काल में वह नाना भाँति के फल, जड़ें, अंगूर इत्यादि बड़े चाव से खाता है।*

शरद्-काल में ठंडे प्रदेशों में बिज्जू भी, भालू के समान, चिर-स्थायी विश्राम (Hybernates) करने को सो रहता है। ज्योंही चारों

* Vogt's "Natural History of Mammals."

श्रोर बरफ़ जम जाता है और किसी प्रकार के भोजन मिलने का ठिकाना नहीं रह जाता, तो मोटा ताज़ा बिज्जू अपने भाँटे में, टाँगें समेट के, लेट रहता और प्रगाढ़ निद्रा में सोता रहता है। कई मास तक वह इसी प्रकार पड़ा रहता है, न खाता है न पीता, न हाथ हिलाता है न पैर। जब बरफ़ गल जाता है और पशु-पक्षी आनन्द-मंगल मनाने लगते हैं तो बिज्जू भी अपनी लंबी नींद त्यागकर लड़खड़ाता हुआ उठता है और अपने दुर्बल शरीर के पालन-पोषण में पुनः लग जाता है।

मधुबिज्जू (Mellivora Capensis)—बिज्जू की यह उपजाति अफ़्रीक़ा के अनेक भूभागों में, विशेषकर केप आव गुड होप के आस पास मिलती है। रचना में बहुत कुछ हिन्दुस्तान के बिज्जू के समान होता है किन्तु उसका शरीर लगभग एक गज़ लंबा होता है। शहद का वह इतना शौकीन है कि दिन का अधिकांश भाग उसी की खोज में व्यतीत करता है और इसी से उनका नाम मधुबिज्जू (Honey-badger) पड़ गया है।

भालू-सुअर

(THE HOG BADGER—ARCTONYX COLLARIS)

मेलिने-उपवंश की यह एक जाति है जो नैपाल तथा शिकिम की तराई में, एवं आसाम, सिलहट और अराकान में मिलती है। उसके ऊपरी शरीर का रंग पीलापन लिये श्वेत होता है। छाती पर कालर के समान एक धारी होती है जिसका रंग कुछ कालिमा लिये होता है। शरीर की लंबाई लगभग दो फ़ुट और दुम आधे फ़ुट की होती है।

भालू-सुअर का शरीर भारी, भद्दा और चाल मंद होती है। भालू के समान यह जन्तु भी सुविधा से पिछले पैरों पर खड़ा हो

सकता है। दिन भर भालू-सुअर पड़ा सोता है, रात्रि में भोजन की खोज में निकलता है।

ऊदबिलाव

(THE OTTER—LUTRA)

मस्टिलिडे-वंश के लटरीने (Lutrinæ) उपवंश में ऊदबिलाव और उसके भाई-बन्धुओं को स्थान दिया जाता है। ऊदबिलाव और उसके कुटुम्बियों का एक ऐसा समूह है जो अपने लम्बे और चपटे शरीर, छोटी मोटी टाँगें और झिल्ली से मढ़े हुए पञ्जों के द्वारा अन्य जन्तुओं से सहज पृथक् किया जा सकता है। उसकी लम्बी दुम का बाहरी भाग गोल और भीतरी भाग चपटा होता है। ऊद जल के जीव हैं अतः उनका सारा शरीर, तथा दुम वा पञ्जे, सब तैरने के लिए उपयुक्त रचे गये हैं। पलकों के भीतर एक झिल्ली होती है जो जल में प्रवेश करते ही आँखों पर आ जाती है। यह झिल्ली जल को आँख के भीतर जाने से रोक देती है किन्तु इतनी पतली होती है कि कुछ रोशनी आँखों को मिलती रहती है। ऊद के दाँत पुष्ट और नुकीले होते हैं और डाढ़ों पर भी नुकीली गाँठें होती हैं। कीलों की नोकें भीतर को मुड़ी होती हैं। ऊद अपना निर्वाह मछलियों पर किया करता है। चिकनी, फिसलनेवाली मछली, फड़फड़ा के उसके दाँतों से कदापि नहीं छूट सकती।

ऊद नदियों के किनारे या तो पत्थरों, चट्टानों में छिपा रहता है या अपने पुष्ट पञ्जों से भाँटा खोद लिया करता है जिसमें प्रवेश करने के लिए वह कई रास्ते बनाता है। ऊद बहुधा अकेला नहीं रहता वरन् ५-६ या अधिक के छोटे छोटे दल देखे जाते हैं।

वसन्त-ऋतु के आरम्भ में मादा ३-४ बच्चे देती है। ऊदनी बड़ी स्नेहमयी माता होती है। यदि कभी उसके बच्चे पकड़ लिये

जाते हैं तो अतिशय दु:ख से उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है जिससे वह कभी कभी मर तक जाती है।

ऊद के शरीर पर दो तहें बालों की होती हैं और उसका समूर उपयोगी होता है। जल में ऊद बड़ी फुर्ती से तैरता है। जल में तैरते और क्रीड़ा करते हुए वह मछलियों की बड़ी हत्या किया करता है। मछली को पकड़कर एक मुँह मारता और फेंक देता है। किन्तु यदि भूखा होता है तो मछली को पकड़कर किनारे पर ले आता है और सिर की तरफ़ से खाना आरम्भ करता है।

हिन्दुस्तान में ऊद की एक उपजाति सर्वत्र मिलती है जिसके शरीर के ऊपरी भाग पर भूरे अथवा हलके कत्थई बाल होते हैं और निम्न भाग पर पीलापन लिये सफ़ेद। उसके शरीर की लम्बाई लगभग २½ फुट होती है और दुम १½ फुट की। यह उपजाति (Lutra Indica) ब्रह्मा एवं मलय प्रायद्वीप में भी होती है।

इस जन्तु के प्राय: छोटे छोटे दल नदियों में या समुद्र-तट पर देखे जाते हैं। बहुधा वे रात्रि ही में बाहर आते हैं किन्तु कभी कभी दिन में भी जल में उछलते कूदते देखे जाते हैं। ऊद के बच्चे सहज पालतू हो जाते हैं। बंगाल में मछली पकड़नेवाले ऊद को प्राय: पालते हैं। ये पालतू ऊद मछलियों को जाल की ओर घेर लाते हैं या मछली को पकड़कर बाहर ले आते और अपने पालक को दे देते हैं। डाक्टर जॉर्डन बतलाते हैं कि उन्होंने ऊद का एक बच्चा कुत्तों के बच्चों के संग पाला था। "यह ऊद मेरे सङ्ग घूमने को कुत्ते के समान जाया करता था और अवसर मिल जाने पर तुरन्त जल में कूद पड़ता और खेल-कूद करता था। कभी कभी वह मेंढक अथवा छोटी छोटी मछलियाँ पकड़ लिया करता था। बड़ा हो जाने पर वह अकेला भी चल देता था। एक दिन वह बाज़ार में जा निकला और एक मोपला से एक बड़ी सी मछली छीन ली। मोपले ने उसको

मारकर भगाना चाहा तो वह लड़ने को तैयार हो गया। इसके पश्चात् वह इसी प्रकार की लूट मार करने लगा और मुझे अनेक बार मछलियों के दाम देने पड़े। तब मैंने निश्चय कर लिया कि मैं उससे अपना पीछा छुड़ा लूँगा। मैंने उसको एक बन्द बक्स में रखा और समुद्र-तट पर ७-८ मील दूर ले जाकर छोड़ दिया। जब वह धान के खेतों में घुस के अदृश्य होगया तो मैं एक दूसरे रास्ते से लौट आया। उसी दिन संध्या-समय जब मैं अपने घर से लगभग १½ मील पर मुहर्रम का तमाशा देख रहा था तो ऊद वहीं पहुँच गया और मेरे पैरों के पास आकर लेट रहा।"

ऊद की एक उपजाति हिमालय पर्वत पर मिलती है (Lutra Leptonyx)। इस जन्तु के पञ्जे बहुत छोटे होते हैं। यही उसकी रचना की मुख्य विशेषता है।

पैसिफ़िक महासागर के तटों पर ऊद की एक बहुत बड़ी उपजाति मिलती है (Lutra Enhydra) जिसके शरीर की लम्बाई लगभग तीन फ़ुट की होती है। इसके शरीर के बाल अन्य सब उपजातियों से बड़े और कोमल होते हैं और उसकी खाल बड़े बड़े मूल्य में बिका करती थी। कामछटका (Kamchatka) प्रायद्वीप में सहस्रों मनुष्यों ने इसी ऊद को मारने और उसकी खाल बेचने का व्यवसाय कर लिया था। परिणाम यह हुआ कि अब इस जन्तु के दर्शन भी दुर्लभ होगये हैं। हर स्किलिंड्स बतलाते हैं कि अब इस जन्तु की खाल के दाम १०० पौंड से भी अधिक हैं।

ऊदबिलाव की बहुत सी और उपजातियाँ भी योरप, अफ़्रीक़ा और एशिया में मिलती हैं।

लकड़बघा-वंश

(The Hyenidæ)

साधारण विवरण

लकड़बघा को मांसभोजी श्रेणी के किस वंश में स्थान दिया जाना चाहिए, इस विषय पर मतभेद है। बाह्यरूप में वह कुत्ता-वंश के जन्तुओं के समान होता है अतः जन्तुशास्त्र-विशारद लिनी (Linne) ने उसको कुत्ता-वंश में स्थान दिया था। अन्यान्य का मत है कि लकड़बघा 'सिवेट-वंश' के जन्तुओं से अपने शारीरिक गठन में मिलता-जुलता है और उसको उक्त वंश ही में स्थान देना चाहिए। यदि दंतरचना पर विचार किया जाय तो लकड़बघा बिल्ली-वंश के जन्तुओं से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। बिल्ली-वंश के दाँतों की संख्या ३२ होती है। लकड़बघा की ३४, अर्थात्—

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{३-३}$, डाढ़ें $\frac{१-१}{१-१}$

इन सारे मतभेदों के कारण लकड़बघा को अब एक पृथक् वंश ही में स्थान दिया जाने लगा है।

लकड़बघा का कपाल भारी और चौड़ा और जबड़े अत्यन्त बलिष्ठ होते हैं। बिल्ली-वंश के जन्तुओं के समान उसकी जीभ भी अति खुरखुरी होती है। पञ्जों पर छोटे, पुष्ट और भुथरे नख होते हैं। इनके पञ्जे स्पष्टतः जीवित शिकार को पकड़ने के लिए नहीं रचे गये हैं वरन् खुदाई के काम के लिये वे उपयुक्त होते हैं। इनके नख संकुचनशील भी नहीं होते। अगले और पिछले सब पञ्जों में ४-४ नख होते हैं। लकड़बघा के नखों की संख्या सभी मांसभोजियों से विभिन्न है। यह अंगुलचर जीव है।

लकड़बघा-वंश में केवल दो जातियाँ (Genera) मानी जाती हैं, अर्थात्—

(१) लकड़बघा (Hyæna),
(२) आर्ड भेड़िया (Aard-Wolf).

लकड़बघा

(The Hyæna)

लकड़बघा एक नीच और म्लेच्छ जन्तु है, यही उसका प्रधान जातिलक्षण है। शिकार का कोई भाग उसके लिए अभक्ष्य नहीं होता। कूड़े-करकट में मिली हुई, सड़ी-गली वस्तुएँ जो हाथ लग जाती हैं वह सब चट कर जाता है। भूख में तो चमड़े के जूते तक खा जाता है और पचा भी लेता है। प्रायः वह अपने पुष्ट पञ्जों से क़बरें खोदकर मृत शरीर निकालकर भी खा जाता है। हड्डी तोड़ने में उसके जबड़े का बल सारे प्राणिवर्ग में अद्वितीय है। जबड़े और गरदन के पुट्ठे बहुत बड़े और बलवान् होते हैं। जिस हड्डी को बिल्ली-वंश के शेर बबर और बाघ जैसे दानव तोड़ने में असमर्थ रह जाते हैं उसको लकड़बघा सहज ही तोड़कर दो टुकड़े कर देता है। उसकी पाचन-शक्ति का भी सीमा नहीं। जोड़ पर की हड्डियाँ वह बिना चबाये हुए साबित ही निगल जाता है। जंगली भैंसे की जाँघ की हड्डी, दाँतों से दाब के तोड़ लेता है और तुरन्त ही हड्डी के दोनों टुकड़े निगल जाता है।

लकड़बघे की खोपड़ी बहुत बड़ी और चौड़ी व आकृति कुछ डरावनी सी होती है। उसकी पिछली टाँगें बहुत झुकी हुई होती हैं इस लिये पिछला धड़ अगले की अपेक्षा नीचा होता है और देह बहुत ढालू जान पड़ती है। शरीर पर घने बाल होते हैं जो रीढ़ पर आगे से पीछे तक बड़े और झबरे होते हैं।

लकड़बघा स्वभाव का अत्यन्त डरपोक होता है और जब तक उसको सड़ा-गला मांस, खाल, चमड़ा, हड्डियाँ इत्यादि उदर में झोंकने को मिलती जाती हैं तब तक वह किसी जीवित जन्तु से नहीं बोलता। यदि कहीं अकाल पड़ जाता है तो लकड़बघों के झुण्ड वहीं उपस्थित हो जाते हैं क्योंकि भूख से मरे हुए जन्तुओं के मृत शरीर वहाँ बहुतायत से मिलने लगते हैं। अपनी तीव्र घ्राणशक्ति के द्वारा वह तुरन्त उन स्थानों पर भी पहुँच जाता है जहाँ बड़े हिंसक जन्तु शिकार का कुछ भाग छोड़ जाते हैं। मनुष्य से लकड़बघा बहुत डरता है और घिर जाने पर भी मनुष्य पर घात करने का साहस नहीं करता। सुप्रसिद्ध शिकारी मिस्टर सेलूस बतलाते हैं अफ़्रीक़ा के निर्जन भूभागों में जहाँ लकड़बघे मनुष्य से परिचित नहीं होते वे मनुष्य के शव से भी डरते हैं। आप लिखते हैं कि "अफ़्रीक़ा की हॉटेन्टॉट जाति के एक आदमी को मौत का दण्ड दिया गया। उसका मृत शरीर घसीटकर कुछ दूर फेंक दिया गया। रात्रि में लकड़बघे आये और घण्टों तक मृत शरीर के चारों ओर हँसते और चिल्लाते रहे किन्तु शव को किसी ने छुआ तक नहीं। दूसरी रात्रि को भी यही हुआ किन्तु तीसरी रात में उन सबों ने मृत शरीर को खा डाला। ये लकड़बघे एक निर्जन प्रान्त के थे और मनुष्य के मृत शरीर को खाने का उनको कभी अवकाश नहीं हुआ था। मनुष्य से जो स्वाभाविक भय उनके हृदय में था वह निकला नहीं था। इसके विरुद्ध मटाबली प्रदेश में जब किसी मनुष्य को जादू टोना करने के अभियोग में मृत्यु का दण्ड दिया जाता है तो वहाँ के रीत्य-नुसार उसके शव को लकड़बघों को खिला दिया जाता है। अतएव उक्त देश में मनुष्य के शरीर को लकड़बघे तुरन्त घसीट ले जाते हैं।"

लकड़बघे का स्वभाव जैसा घृणित है वैसी ही उसकी प्रकृति भी नीच है। भेड़ बकरी के से निर्बल, निस्सहाय जन्तुओं पर, अथवा

मनुष्य के बालकों को, अकेला पाकर, तुरन्त आक्रमण कर बैठता है।

लकड़बघों के झुण्ड भी जब किसी जन्तु पर आक्रमण करते हैं तो ऐसे प्रयत्न से काम लेते हैं कि सामने से घात न करना पड़े। इस लिये वे किसी खड़े हुए जन्तु पर कभी घात नहीं करते वरन् अद्भुत चतुराई से काम लेते हैं। एक व्यक्ति दबे पाँव जाकर शिकार के सामने सहसा उछल पड़ता है जिससे कि जन्तु चौंककर भाग पड़ता है। दौड़ते हुए जन्तु के पीछे तब उनका दल लग जाता है और वे उछल उछल के टाँगें और पिछला धड़ चीरते फाड़ते हैं। रक्त बहते बहते जब जन्तु गिर पड़ता है तब उसको सब मिलकर मार लेते हैं।

लकड़बघे की बोली बड़ी विचित्र और अलौकिक होती है। कभी कभी उसको सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई हँस रहा हो। इसी लिये इस जन्तु को प्राय: हँसनेवाला लकड़बघा का नाम दिया जाता है (The laughing hyæna)।

लकड़बघा जाति की दो उपजाति हैं :—

धारीदार लकड़बघा (Hyæna striata)—यह उपजाति अफ़्रीक़ा के उत्तरी अर्द्धभाग में होती है। अफ़्रीक़ा के सिवाय वह हिन्दुस्तान, फ़ारस, अरब और एशियाई टर्की में भी मिलता है। उसका क़द बड़े कुत्ते का सा और रङ्ग पीलापन लिये भूरा होता है। शरीर पर लम्बी लम्बी बादामी धारियाँ होती हैं, पीठ पर बड़े बड़े बाल, और दुम झबरी होती है। हिन्दुस्तान में यह जन्तु बहुधा खुले मैदानों में वास किया करता है और प्राय: कुत्तों को उठा ले जाता है।

गुलदार लकड़बघा (Hyæna Maculata)—इस उपजाति के जन्तु अफ़्रीका के दक्षिणी अर्द्धभाग में होते हैं। धारीदार लकड़बघे से ये बड़े भी होते हैं और उतने डरपोक नहीं होते। इस उपजाति की पीठ

पर झबरे बाल नहीं होते। एक शिकारी बतलाते हैं कि गुलदार लकड़बघे के शरीर में इतना बल होता है कि गधे के मृत शरीर को वह सहज घसीट ले जाता है।

पागल होने का रोग कुत्ते के अतिरिक्त स्यार, भेड़िया और लकड़बघे को भी होता है। सन् १९२६-२७ ई० की कसौली अस्पताल की वार्षिक रिपोर्ट से विदित होता है कि उक्त वर्ष में १७ आदमियों को लकड़बघों ने काटा और उनकी चिकित्सा उक्त अस्पताल में की गई। यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये सब लकड़बघे पागल ही थे। संभव है कि भूख में कोई कोई लकड़बघे भी मनुष्य पर आक्रमण कर बैठते हों। उनके द्वारा घायल किये हुए मनुष्यों में से दो ने अपनी दुर्घटना का वृत्तान्त इस प्रकार दिया था। इटावे के ज़िले में दो भाई एक झोपड़ी में सो रहे थे। बड़े भाई की सहसा आँख खुली तो उसने देखा कि छोटे भाई को एक लकड़बघा टाँग पकड़कर झोपड़ी के बाहर घसीटे लिये जा रहा है। बिना संकोच बड़े भाई ने उठकर हाथों से घूँसे मारने शुरू किये और दोनों में भीषण लड़ाई आधे घंटे तक होती रही। अंत में उसने लाठी से उस भीषण जन्तु को मारा। एक दूसरे अवसर पर एक मनुष्य और उसका बेटा दोनों चले जा रहे थे। लकड़बघे ने बाप पर घात किया। बेटा तुरन्त बाप की सहायता को पहुँच गया और निहत्थे ही पशु का सामना किया। उसने पशु को पकड़ लिया और टाँगें बाँधकर उन्नाव शहर में ज़िन्दा ही ले गया।

आर्ड-भेड़िया

(THE AARD-WOLF—PROTELES BALANDI)

डच भाषा में 'आर्ड' का अर्थ है 'भूमि'। यह जन्तु भूमि के भीतर रहता है और भाँटे में रहने के कारण उसका नाम 'आर्ड भेड़िया' पड़ गया है। आर्ड दक्षिणी अफ्रीका का निवासी है। उसके शरीर की

लम्बाई लगभग ३$\frac{१}{२}$ फुट होती है। रङ्ग पीलापन लिये भूरा और शरीर पर गहरे काले रङ्ग की लम्बी लम्बी धारियाँ होती हैं।

आर्ड के वंश का भी निर्णय करना कठिन है। कोई तो उसको लकड़बघा-वंश में स्थान देते हैं और कोई सिवेट (Civet) वंश में।

चाल-ढाल में आर्ड भेड़िया और लकड़बघा में बहुत कुछ समानता है। कम से कम इतना तो पता चलता ही है कि आर्ड के पूर्वज, शारीरिक संगठन और स्वभावों में, बहुत कुछ लकड़बघे के समान रहे होंगे।

आर्ड के दाँतों की रचना बड़ी विचित्र और लकड़बघा से विभिन्न होती है। आर्ड की डाढ़ें सब नुकीली और एक ही आकार की होती हैं। ये अन्य जन्तुओं की डाढ़ों के समान पास पास और एक दूसरे से मिली हुई नहीं होतीं वरन् सब अलग अलग थोड़े थोड़े अन्तर पर होती हैं। डाढ़ों की ऐसी रचना मांसभोजी-श्रेणी के किसी प्राणी में नहीं देखी जाती। आर्ड कुणपभुक् है किन्तु उसका निर्वाह अधिकतर दीमक पर होता है। तदनुसार उसकी डाढ़ों की रचना में परिवर्तन होगया है।

किन्तु विचारणीय बात यह कि आर्ड के बच्चों के जो दूधदाँत निकलते हैं उनमें दूधडाढ़ों में और डाढ़ों में प्रत्यक्ष भेद होता है। सब का आकार भी एक सा नहीं होता और उनमें मांसभोजियों की कैंची डाढ़ या 'मांसडाढ़' भी उपस्थित होती है (Carnassial-tooth) इससे प्रमाणित होता है कि आर्ड के पूर्वजों की डाढ़ें अन्य मांस-भोजियों की सी भिन्न भिन्न आकार की होती होंगी। प्राणिशास्त्र का यह एक सिद्धान्त है कि जीव-जन्तुओं के पूर्वजों की वह जातिलक्षण जो विकृत होने के कारण अब उनमें विद्यमान नहीं रह गई हैं उनके जीवन की किसी न किसी अवस्था में दर्शन दे जाती हैं (Law of Recapitulation)।

विवराइडे-वंश

अर्थात्

सिवेट बिल्लियाँ

(VIVERRIDÆ)

साधारण विवरण

मांसभुक्-श्रेणी के विवराइडे-वंश के जन्तु छोटे छोटे जीव हैं। इनका शरीर लम्बा, थूथन पतला और नुकीला, और पूँछ बहुत लम्बी और गावदुम होती है अर्थात् ऊपर से नीचे को पतली होती जाती है। अधिकांश की दुम के नीचे ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें उत्पन्न होने-वाले द्रव पदार्थ से सुगन्धित वस्तुएँ बनाई जाती हैं। शरीर पर बाल अधिकतर मोटे, कड़े और रूखे होते हैं। सिवेट बिल्लियाँ अधिकतर अंगुलचर जीव हैं, किन्तु किसी किसी के पिछले पैरों के तलवे का कुछ भाग भूमि पर पड़ता है। उनकी जीभ पर कड़े काँटें होते हैं जिनकी नोकें पीछे को मुड़ी होती हैं। दाँतों की संख्या निम्न-लिखित है :—

कृंतक दंत $\frac{३\text{-}३}{३\text{-}३}$, कीले $\frac{१\text{-}१}{१\text{-}१}$, दूधडाढ़ें $\frac{३\text{-}३}{४\text{-}४}$, डाढ़ें $\frac{३\text{-}३}{२\text{-}२}$ = ४०

विवराइडे-वंश के अन्तर्गत चार जातियाँ हैं :—

(१) सिवेट बिल्लियाँ (Civets-Viverra)

(२) पेड़ की बिल्लियाँ (Paradoxures)

(३) गेनेट (Genet)

(४) न्योला (Ichneumon)

सिवेट बिल्लियाँ

(THE CIVETS)

सिवेट बिल्लियाँ इस वंश के सबसे बड़े प्राणी हैं। क़द बिल्ली का सा किन्तु दुम बहुत लंबी होती है। शरीर पर गहरे रंग के धब्बे होते हैं। जीभ पर बिल्ली-वंश के जन्तुओं के समान काँटे होते हैं। उनके नख कुछ कुछ संकुचनशील होते हैं। पूँछ के नीचे की थैली बहुत बड़ी होती है और दो भागों में विभक्त होती है। उसमें जो द्रव पदार्थ बनता है उसको भी सिवेट ही का नाम दिया जाता है। प्राकृतिक दशा में सिवेट की गन्ध अत्यन्त तीक्ष्ण वा असह्य होती है, किन्तु जब अन्य वस्तुओं के संग मिलाकर तैयार की जाती है तो उसमें कस्तूरी की सी सुगन्ध आने लगती है। अफ़्रीक़ा में सिवेट को पालते हैं और एबीसीनिया प्रदेश में उसके सुगन्ध को बेचकर बहुतेरे जीविका कमाते हैं। कोई कोई विशेष खाद्य ऐसे हैं जिनके दिये जाने पर यह गन्धमय द्रव अधिक मात्रा में उत्पन्न होने लगता है। सिवेट को एक तंग पिँजरे में खड़ा कर देते हैं और थैली में से द्रव पदार्थ को निचोड़ लेते हैं।

इन बिल्लियों की तीन मुख्य उपजाति हैं :—

मालाबार की सिवेट—(Civetta Viverra) मालाबार के समुद्रतट पर यह जन्तु मिलता है। कुर्ग और त्रावनकोर में भी होता है। रंग गहरा भूरा, पीठ और शरीर के पार्श्व भाग में काले काले धब्बे होते हैं। गरदन और गला सफ़ेद होता है। दुम पर काले रंग के छल्ले होते हैं। पक्षी, मुर्ग़े और अन्य छोटे छोटे जन्तुओं पर इसका निर्वाह होता है। उसकी प्रकृति भीषण और स्वभाव सुलभकोपी होता है।

इसकी एक नसल अफ़्रीक़ा में भी होती है।

भ्रान (Viverra Zibetha)—यह जन्तु एशिया महाद्वीप में अरब से हिन्दुस्तान तक मिलता है। हिन्द में वह नैपाल, शिकिम, उड़ीसा, मध्यहिन्द और बंगाल में पाया जाता है। हिन्द से पूरब में यह जन्तु सुमात्रा, जावा और बोरनियो के द्वीपों में भी होता है। रंग पीलापन लिये भूरा और शरीर पर काली धारियाँ और धब्बे होते हैं। टाँगें धुमैले भूरे रंग की होती हैं।

एक साहब कप्तान विलियमसन उसके स्वभावों का वृत्तान्त देते हुए लिखते हैं :—

"भेड़िये की सी अपहरणशीलता के संग उसमें बिल्ली की सी फुरती और लोमड़ी की सी चतुराई भी होती है। शिकार किये जाने पर वह दृढ़ता से सामना करता है और ऐसी तीक्ष्ण दुर्गन्ध अपने शरीर से निकालता है कि कुत्ते तक अस्वस्थ हो जाते हैं।" सिवेट-गन्ध इस जन्तु के शरीर से भी बहुत निकलती है। नैपाल में इसको भ्रान कहते हैं।

मुश्क बिल्ली (Viverra Malaccensis)—सिवेट जाति (Genus) की यह तीसरी उपजाति हिन्द में मुश्क बिल्ली के नाम से प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र में इसको "कस्तूरी" और बंगाल में "गन्धगोकुल" कहते हैं। यह जन्तु समस्त हिन्द में उत्तर से दक्षिण तक मिलता है। ब्रह्मा, मलय और उसके निकटवर्ती द्वीपों में भी होता है। रंग बादामी भूरा, पीठ पर काली लंबी लंबी धारियाँ और शरीर के पार्श्व भाग में धब्बे होते हैं। उसकी लंबी दुम पर भी गहरे रंग के काले धब्बे होते हैं। यह जन्तु सर्वथा अकेला ही रहता है। कहीं कहीं इसको पालते हैं और उसका गन्धमय द्रव निकालते हैं।

पेड़ की बिल्ली (Paradoxurus)—मांसभुक्-श्रेणी के विवराइडे-वंश की यह एक जाति है जिसकी कई उपजाति हिन्दुस्तान

में पाई जाती है और भिन्न भिन्न स्थानों में उनको 'मीनूरी', 'लखाटी', 'झाड़ का कुत्ता' आदि नाम दिये जाते हैं। इनके पैरों की उँगलियाँ झिल्ली से मढ़ी होती हैं। पञ्जे पूर्णतया संकुचनशील नहीं होते। ये पदतलचर जीव हैं और उनकी दंत-रचना बहुत कुछ कुत्ते के समान होती है।

ताड़ की बिल्ली (Paradoxurus Musanga) जिस जाति को हमने "पेड़ की बिल्ली" का नाम दिया है उसकी एक प्रसिद्ध उपजाति 'ताड़ की बिल्ली' है। इसको ताड़ की बिल्ली का नाम क्यों दिया जाता है? यह जन्तु पालमायरा ताड़ एवं नारियल के ताड़ों पर प्रायः वास किया करता है और ताड़ी भी पीता है। प्रायः उन हाँड़ियों को जो ताड़ी एकत्रित करने को ताड़ों में लटका दी जाती हैं यह बिल्ली चाटकर साफ़ कर दिया करती है और नशे के कारण झूमती फिरती है।

यह जन्तु हिन्दुस्तान के अनेक स्थानों में घने जंगलों में, विशेषकर कर्नाटक तथा मलाबार के तट पर, बहुतायत से हैं। रंग भूरा कुछ कालिमा लिये हुए होता है और किसी किसी के शरीर पर कुछ धुँधली पीली धारियाँ भी पड़ी होती हैं। यह जन्तु प्रायः वृक्षों ही पर रहता है और ताड़ के से सीधे पेड़ पर भी अद्भुत फुरती से चढ़ सकता है।

चिंघार (Paradoxurus Bondar)—पेड़ की बिल्ली की एक उपजाति नैपाल की तराई में मिलती है जिसका नैपाली नाम चिंघार है। उसका रंग पीला होता है किन्तु बालों के सिरे काले होते हैं। यह जन्तु ग्रामबस्तियों के पास वास किया करता है। मांस के अतिरिक्त फलादि भी खाता है। उसका स्वभाव जंगली और असभ्य होता है किन्तु बच्चे पल जाते हैं।

गेनेट (Genetta Vulgaris)—विवराइडे-वंश की यह तीसरी जाति है। इस जन्तु की कई उपजातियाँ अफ़्रीक़ा में मिलती हैं। गेनेट लंबी बिल्ली के समान होती है और मुँह न्योले के समान नुकीला होता है। रंग गहरा भूरा जिस पर काले धब्बे होते हैं। पंजे, बिल्ली-वंश के समान, पूर्णरूप से संकुचनशील होते हैं। यह जन्तु टर्की में घरों के चूहे मारने के लिए पाला जाती है।

न्योला

(HERPESTES)

न्योला विवराइडे-वंश की सबसे छोटी जाति है। न्योला अफ़्रीक़ा और एशिया के गरम प्रदेशों में होता है। वह एक साहसी जन्तु है और उसकी प्रकृति भीषण और रक्तप्रिय होती है। यदि कभी, मुर्ग़ा, मुर्ग़ियों अथवा कबूतरों के घर में घुस जाता है तो एक दो को मार के संतुष्ट नहीं होता वरन् सभी का गला कुतर डालता है। शिकार मारकर न्योला उसका मांस नहीं खाता वरन् केवल भेजा खा लेता है और रक्त चूस लेता है। न्योला सर्वभक्षी है और मांस के अतिरिक्त वह अण्डे, कीड़े, फलादि भी खाने को तैयार रहता है। तीतर, बटेर आदि के अण्डे खोजता और खाता है और चूहे, साँप, गिरगिट आदि भी मारा करता है। बहुत से हानिकारक जन्तुओं का नाश करने के कारण न्योला बड़ा उपयोगी होता है।

किन्तु कभी कभी न्योला, छोटे छोटे हानिकर जन्तुओं की नाश करने के पश्चात्, स्वयं हानिकर हो जाता है। जमेका द्वीप में इसका बड़ा अच्छा दृष्टान्त मिल चुका है। जमेका में गन्ने की बहुत बड़ी खेती होती है। वहाँ चूहे इतने ज़्यादा थे कि गन्ने को बड़ी हानि पहुँचाते थे। सब उपाय किये गये किन्तु चूहों ने किसी

प्रकार पीछा न छोड़ा। तब यह निश्चित हुआ कि कुछ न्योले बाहर से मँगवाकर छोड़े जायँ। न्योले छोड़े गये और उन्होंने शीघ्र ही चूहों की संख्या घटा दी। चूहों का विध्वंस करने पर जब न्योलों को छुट्टी मिली तो उन्होंने द्वीप के अन्य जीवों की ओर दृष्टि डाली। पहिले मुर्ग़-मुर्ग़ियों पर घात आरम्भ किया। तत्पश्चात् सुअर, भेड़, कुत्ता, बिल्ली आदि के छोटे छोटे बच्चों की बारी आई, साँप, गिरगट, मेंडक, कछुओं आदि के वध पर ये प्राणघातक जन्तु ऐसे उतारू हुए कि उक्त जन्तुओं की कतिपय जातियाँ द्वीप पर से लुप्त होगईं। विशेषकर द्वीप के कीटभोजी प्राणियों का उन सबोंने सर्वनाश कर डाला। कीटभोजियों के न रहने का परिणाम यह हुआ कि नाना प्रकार के कीड़े-मकोड़ों, भुनगों आदि की दिनदूनी वृद्धि होने लगी। मनुष्यों और चौपायों के शरीरों में कीड़े भर गये। तब वही मसल चरितार्थ हुई कि कूआं खोदनेवाले ही के सामने कुआं आता है। कीड़े मकोड़ों ने उलटा न्योलों ही पर हाथ साफ़ किया। न्योले के शरीर भी कीड़ों से भर गये और उनकी संख्या अब कम होने लगी। तब फिर कीटभोजियों की वृद्धि हुई और द्वीप के जन्तुजगत् की पूर्वदशा फिर लौट आई।

जमेका की यह घटना शिक्षाप्रद और विचारणीय है। सृष्टिसञ्चालन के लिए प्रकृति के जो नियम हैं उनमें हस्तक्षेप करना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर है। जो जन्तु जहाँ उत्पन्न किया गया है वहाँ उसकी कुछ उपयोगिता है। प्रत्येक जीव-जन्तु की आवश्यकताओं की पूर्त्ति का प्रबन्ध प्रकृति ने कर दिया है परन्तु साथ ही साथ उसकी अनुचित वृद्धि को रोकने के भी प्रयत्न कर दिये हैं। न किसी जाति का विध्वंस होने पाता है न किसी की गणना एक निर्दिष्ट संख्या से बढ़ने पाती है। प्रकृति के तराज़ू के पल्ले सर्वथा बराबर तुले रहते हैं।

मिस्र का न्योला (Herpestes Ichneumon) पृष्ठ ३८१

हिन्द का काला भालू (U. Labiatus) पृष्ठ ३८६

भूरा भालू (Ursus Arctos) पृष्ठ ३९१

ग्रिज़ली भालू (Ursus Ferox) पृष्ठ ३६३

ध्रुव का भालू (U. Maritimus) पृष्ठ ३६४

किनकाजू (Cercoleptus Caedivolvulus) पृष्ठ ३६६

न्योला साँप का बड़ा शत्रु है और यही उसका सबसे बड़ा गुण है। साँप के सामने उसमें विद्युत् की सी तीव्रता आ जाती है। वायुवेग से वह इधर-उधर उछलता कूदता है, आक्रमण का अवसर ढूँढ़ता है और साँप की चोटों से बचता है। साँप और न्योले की लड़ाई में एक बार देखा गया कि साँप फन उठाकर खड़ा होगया। निर्भयरूप से न्योला भी उसके फन के नीचे पिछली टाँगों पर तुरन्त खड़ा होगया। दृश्य देखने योग्य था। दोनों समझते थे कि जो कोई किञ्चिन्मात्र चूका उसी का काल आया। ज्यों ज्यों साँप लहराता था न्योला भी संग संग हिलता था। प्रतिद्वन्द्वियों में से किसी को वार करने का साहस नहीं होता था। अन्त में ज्योंही साँप ने मुँह चलाया न्योले ने उसका गला पकड़ लिया और अपने तीक्ष्ण दाँतों से, आँख झपकते उसको चबा डाला।

न्योले और साँप की लड़ाई का सर्वथा यही अन्त होता है, न्योला कभी परास्त नहीं होता। हिन्दुस्तान में प्रायः यह कहावत है कि यदि लड़ाई में साँप न्योले को काट लेता है तो न्योला 'मंगूस-बेल' नामक एक पौधे की पत्ती खाकर विष को नष्ट कर डालता है। परन्तु यह बात निर्मूल ही जान पड़ती है। वस्तुतः न्योले की फुरती के कारण साँप उसको कभी काट नहीं पाता।

न्योले की कई उपजाति मिलती है:—

मिस्र का न्योला (Herpestes Ichneumon)—यह उपजाति मिस्र में होती है। शरीर की लंबाई दुम छोड़ १$\frac{1}{8}$ फुट होती है। प्राचीन काल से उक्त देश में यह किंवदंती चली आती है कि यह न्योला नाके के पेट में घुसकर उसकी आँतें खा जाता है।

मद्रास का न्योला (Herpestes Griseus)—यह दक्षिणी हिन्द में होता है। रंग कुछ पीलापन लिये बादामी होता है। शरीर लगभग १६ इंच का और दुम १४ इंच की होती है।

उत्तरी हिन्द का न्योला (Herpestus Melaccensis)—उत्तरा हिन्द, बंगाल, आसाम, ब्रह्मा और मलय में यह उपजाति होती है। इसका रंग भूरा, अथवा कुछ हलकी सुर्खी लिये होता है। शरीर १५ इंच का और दुम १० इंच की होती है।

सुनहला न्योला (Herpestus Nipalensis)—यह उपजाति काश्मीर, अफ़ग़ानिस्तान, आसाम और ब्रह्मा में पाई जाती है।

भालू-वंश

(THE URSIDÆ)

साधारण विवरण

भालू-वंश की मुख्य जाति भालू है जो पृथ्वी के दीर्घकाय और बलवान् जन्तुओं में से है। भालू-वंश की अन्य जातियों के भी शरीर, यद्यपि छोटे होते हैं तथापि कुछ भारी और भद्दे होते हैं। इस वंश के सभी जन्तु पूर्णतया पदतलचर हैं अर्थात् चलने में वे अपने पैरों का पूरा तलवा भूमि पर रखते हैं। इसी कारण मांसभुक्-श्रेणी के अंगुलचर प्राणियों की अपेक्षा उनकी चाल मंद और धीमी होती है। बहुधा उनके शरीर पर लंबे लंबे बाल होते हैं। अधिकांश वृक्षों पर चढ़ने में कुशल होते हैं।

यद्यपि इस वंश के जन्तुओं को मांसभुक्-श्रेणी में स्थान दिया जाता है तथापि उनमें से अधिकांश सर्वभक्षी (Omnivorous) हैं, और कोई कोई बिलकुल मांस नहीं खाते, जैसे हिन्द का काला भालू।

वंश के सब जन्तुओं के नख बड़े, पुष्ट, और खनित्र होते हैं। भालू के भयंकर, मुड़े हुए नख तीन इंच लंबे होते हैं और उसकी प्रत्येक उँगली अन्य उँगलियों से स्वतंत्र होती है। मनुष्य के समान वह जिस उँगली को चाहे मोड़ सकता है।

दाँतों की संख्या निम्न-लिखित है:—

कृंतकदंत $\frac{३-३}{३-३}$, कीले $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{४-४}$, डाढ़ें $\frac{२-२}{३-३}$ = ४२

भालू-वंश के अनेक जन्तु जो शीत-प्रधान देशों में रहते हैं, बहुधा शीतकाल में, जब भोजनों का अभाव हो जाता है, चिरस्थायी विश्राम

(Hybernation) किया करते हैं, अर्थात् बिना खाये पिये किसी निरापद शून्य स्थान में पड़े सोते रहते हैं।

भालू-वंश की मुख्य जातियाँ ये हैं:—

(१) भालू (Ursus)

(२) रेकून (Procyon)

(३) किनकाजू (Cercoleptes)

(४) कोटी (Nasua)

आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त पृथ्वी के अन्य सब भूभागों में भालू-वंश के जीव मिलते हैं।

भालू

(The Ursus)

भालू से हिन्द में सभी परिचित होंगे। जंगल के इस भयानक और बलवान् जन्तु को मनुष्य ने ऐसा वशीभूत किया है कि गली गली नचाकर उसका तमाशा बना लिया है। किन्तु जङ्गल में भालू को मनुष्य का एक भयंकर शत्रु ही समझना चाहिए। भालू न डरपोक होता है न अपने बड़े बल से अनभिज्ञ। छेड़-छाड़ किये जाने पर वह बिना सोचे समझे घात करने को तैयार हो जाता है और फिर उससे बुरा कोई शत्रु नहीं। सीधा खड़ा हो जिस समय वह मनुष्य से लड़ाई करने को अग्रसर होता है तो साक्षात् काल ही के दर्शन होते हैं। एक भयंकर बात यह है कि पहिले भालू मनुष्य के मुँह पर ही चिपटता है और अपने पुष्ट पञ्जों और दाँतों से ऐसी चीरफाड़ करता है कि क्षण भर में आदमी पहिचाना भी नहीं जा सकता। यदि कभी मनुष्य की खोपड़ी उसके भीषण दाँतों की पकड़ में आ जाती है तो उसको वह ऐसा साफ़ अलग कर ले जाता है जैसे कि सिर पर से टोपी उतार ली गई हो।

देखने में भालू एक भद्दा सा जन्तु प्रतीत होता है। उसका कल्ला पेड़ के तने के समान मोटा होता है। शिर गोल, थूथन लम्बा, आँखें छोटी और टाँगें मोटी और पुष्ट होती हैं। चलने में वह मनुष्य के समान भूमि पर पूरा तलवा रखता है। बहुधा उनके तलवों पर बाल नहीं होते, इससे उनके पदचिह्न बिलकुल आदमी के से पड़ते हैं। प्रत्येक पैर पाँच भागों में विभक्त होता है जिन पर ३ या ४ इंच लम्बे नख होते हैं। खुदाई के लिए भालू के पञ्जों में बड़ा बल होता है। जिस कड़ी भूमि में फावड़ा भी कठिनाई से घुसता है उसको भालू सहज खोद डालता है।

भालू की चाल कुछ भद्दी और लड़खड़ाती हुई सी प्रतीत होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि भालू भी ऊँट के समान प्रत्येक ओर की दोनों टाँगें संग संग आगे बढ़ाता है। किन्तु भालू की भद्दी चाल ढाल से किसी को धोखा नहीं खाना चाहिए। जब वह किसी शत्रु का सामना करने को खड़ा होता है तो अपने बृहत् पंजों के थप्पड़ अद्भुत फुरती से चलाता है।

भालू हमेशा सरपट भागता है और तेज़ से तेज़ आदमी को दौड़ में पकड़ सकता है।

भालू के शरीर पर लम्बे लम्बे बाल होते हैं किन्तु उनके भीतर कोई तह छोटे घने बालों की नहीं होती। अधिकतर उपजातियों के रङ्ग काले होते हैं। स्तनपोषित जीवों में बहुत कम का रङ्ग काला होता है।

पृथ्वी पर भालू की बहुत सी उपजाति मिलती हैं जिनकी रचना में थोड़ा बहुत भेद होता है। किन्तु प्राणिशास्त्रवित् मिस्टर लिडेकर (Mr. Lyddekar) का मत है कि उनमें से बहुत सी योरप के भूरे भालू ही की नसलें हैं।

हिन्द का काला भालू (Ursus Labiatus)—भालू की यह उपजाति हिन्द के जंगलों और पहाड़ों पर उत्तर से दक्षिण तक सब जगह मिलती है और लंका टापू में भी पाई जाती है। इस उपजाति के बालों का रङ्ग बिलकुल काला होता है, केवल छाती पर श्वेत या भूरे रङ्ग का एक अर्द्धचन्द्राकार चिह्न पड़ा होता है। शरीर की लम्बाई लगभग ५½ फ़ुट और ऊँचाई कोई ३ फ़ुट की होती है। बोझ लगभग ३½ मन का होता है। उसकी खाल अत्यन्त मोटी और भारी होती है और पीठ पर बालों का एक गुच्छा होता है जिसके बाल ६-७ इंच लम्बे होते हैं।

हिन्द का काला भालू मांसभुक् नहीं होता। वह नाना प्रकार के फल, जड़ें और कीड़े-मकोड़े खाया करता है। किसी किसी ऋतु में पहाड़ों पर बड़े बड़े कीड़ों के झुंड के झुंड निकला करते हैं तब भालू उनकी खोज में चोटियों तक चढ़ जाते हैं और भूमि तक खोद डाला करते हैं। शहद खाने का तो भालू बड़ा शौकीन होता है और उसकी खोज में दूर दूर के चक्कर लगाया करता है। मधुमक्खियों का छत्ता देख वह तुरन्त पेड़ पर चढ़ जाता है। मधुमक्खियाँ उसके चारों ओर उड़ती रहती हैं किन्तु इस भयानक शत्रु के सामने उनका कुछ वश नहीं चलता और भालू के झबरे बालों के कारण वे उसको कुछ हानि नहीं पहुँचा सकतीं। महीनों का संग्रह किया हुआ शहद भालू क्षण भर में चूसकर पेड़ से उतर आता है। मधुमक्खियाँ यदि उसका पीछा करती हैं तो भालू तंग होकर किसी घनी झाड़ी में घुस पड़ता है।

हिन्द का काला भालू महुवे के फल और फूल बहुत खाया करता है। डाक्टर जॉर्डन लिखते हैं "भालू को महुवे के फलों से अधिक प्रिय कोई चीज़ नहीं होती। उसके फल और फूल रात में वृक्षों पर से बहुतायत से नीचे गिर पड़ा करते हैं और प्रातःकाल शिकार

खेलनेवाले को भालू किसी न किसी वृक्ष के नीचे इस स्वादिष्ट भोजन को खाता हुआ अवश्य ही मिलता है।" महुआ में नशा होता है अत: उसको खाकर भालू के चरित्र बिलकुल नशेबाज़ों के से हो जाते हैं। उसके लड़खड़ाने और झूमने का दृश्य बड़ा हास्यजनक होता है।

भालू से किसी प्रकार के कीड़े मकोड़े नहीं छूटते। वह बिच्छू तक को खा जाता है। प्राय: देखा जाता है कि मादा अपने बच्चों को संग लिये कीड़े-मकोड़े खोजकर खिलाती फिरती है। चलते-फिरते किसी बड़ी चट्टान के नीचे कीड़ों के छत्ते का बच्चों को पता चलता है तो वे अपने थूथनों से चट्टान को उठाने की सब प्रकार चेष्टा करते हैं किन्तु पत्थर हिलता तक नहीं। तब स्नेहमयी माता तुरन्त अपने अपूर्व बल से चट्टान को दोनों हाथों से खड़ा करके उसको पकड़े खड़ी रहती है और बच्चे कीड़ों को खोद खोदकर खा जाते हैं।

दीमक भालू के लिए अमृत के समान होती है। उसका खट्टा स्वाद भालू को बहुत पसन्द है। दीमक की प्राप्ति के लिए वह कड़ी भूमि में भी गहरे गहरे गड्ढे खोद डालता है। पहिले वह दीमक के छत्ते पर के मिट्टी के ढेर को खोदना आरम्भ करता है यहाँ तक कि छतने की तली जहाँ दीमक और उनके अण्डों का मुख्य कोष होता है निकल आती है। तब वह बड़े वेग से श्वास निकालकर फुफकारें मारता है। इस प्रकार वह धूल को तथा छत्ते के टूटे-फूटे टुकड़ों को उड़ा देता है। तब वह दीर्घ श्वासें भीतर को खींचता है और दीमक और उनके अण्डे बच्चे सब मुँह में सूँत लेता है। वह श्वास ऐसे बल से खींचता है कि उसका शब्द कम से कम २०० गज़ पर सुनाई पड़ सकता है। जहाँ भालू रहते हैं वहाँ दीमक की प्राप्ति के लिए खोदे हुए गड्ढे चारों ओर दिखाई पड़ा करते हैं और भालुओं की उपस्थिति का उनसे पता भी चल जाता है।

मादा के प्रति बार दो या तीन बच्चे होते हैं जो जन्म के समय अत्यन्त कुरूप होते हैं क्योंकि वे अन्धे और पूर्णतया लोमहीन उत्पन्न होते हैं। किन्तु सबसे विलक्षण बात यह है कि भालू के से दीर्घकाय जीव के बच्चे जन्म के समय केवल बड़े चूहे के बराबर होते हैं। माता उनको बड़े प्रेम से पालती है और शत्रु को देखकर अपने निस्सहाय बच्चों को पीठ पर बिठाकर भागती है। बच्चे भी आश्चर्य-जनक दृढ़ता से पीठ पर जमे रहते हैं। मिस्टर वाल्टर एलिट बतलाते हैं कि एक मादा अपनी पीठ पर बच्चों को बिठाये तीन मील तक भागती गई तब मारी गई।

भालू में एक विलक्षण स्वभाव होता है कि विश्राम के समय, और विशेषकर भोजन करने के पश्चात्, अपने पंजे को मुँह से चूसा करता है और ढोल की गड़गड़ाहट का सा एक विचित्र शब्द करता जाता है। अनेक विद्वानों ने इस स्वभाव के कारण पर विचार किया है किन्तु समझ में नहीं आया। भालू केवल अपने ही पञ्जे को नहीं वरन् दूसरे भालुओं के पञ्जों को अथवा मनुष्य के हाथ को भी इसी प्रकार चूसने को तैयार रहता है।

हिन्द का भालू वृक्षों पर चढ़ने में बड़ा कुशल होता है अत: भालू से आदमी को पेड़ों पर भी शरण नहीं मिलती। पेड़ पर से भालू मुँह नीचे करके नहीं उतरता वरन् सिर ऊपर ही को किये, हाथ पैरों से तने को पकड़कर, धीरे धीरे नीचे खिसक आता है।

यद्यपि देखने में भालू भारी और भद्दा जान पड़ता है तथापि वह बड़ा चलनेवाला जन्तु होता है और रात ही रात में दस पाँच मील का चक्कर लगाकर प्रभात-समय से पूर्व ही अपने भाँटे में पहुँच जाना उसके लिए कोई असाधारण बात नहीं है।

हिन्द का काला भालू प्रकृति का अत्यन्त दुष्ट होता है। साधारणतया वह भी सब भालुओं के समान भीरु होता है किन्तु

कभी कभी वह निष्कारण ही मनुष्य पर आक्रमण कर बैठता है। अनुभवी शिकारियों का मत है कि ऐसी दुष्टता भी वह अपनी भीरुता के कारण ही प्रकट करता है स्वाभाविक भीषणता से नहीं। अस्तु। परन्तु हिन्द के काले भालू का कोई भरोसा नहीं होता। सर सैम्युअल बेकर बतलाते हैं कि उन्होंने दो बार भालू को हाथी तक पर आक्रमण करते देखा है। एक बार तो वह बिना किसी छेड़-छाड़ किये दौड़ पड़ा था। आप लिखते हैं—"हम बालाघाट के ज़िले में साँभर का शिकार खेलने के लिए जंगल का हाँका कर रहे थे। मेरा हाथी एक झाड़ी के पीछे खड़ा था और मैं यही राह देख रहा था कि कोई जानवर जंगल से बाहर निकले। थोड़ी देर में एक बड़ा भालू कोई १०० गज़ के अन्तर पर निकला। खुले मैदान में निकलकर क्षण दो क्षण खड़ा रहा मानो भागने से पहिले देख-भाल कर रहा हो। सहसा उसकी दृष्टि हाथी पर पड़ी और बिना सोचे-समझे वह भरपूर तीव्रता से सीधा हाथी पर दौड़ा। ज्योंही भालू १० गज़ पर रह गया था तो मैंने बन्दूक़ चला दी। तत्क्षण हाथी घूमकर भाग पड़ा।"

जिन स्थानों में हिन्द का काला भालू वास करता है वहाँ आसपास के ग्रामों में बहुधा ऐसे आदमी मिलते हैं कि जिनको भालू ने घायल करके सदा के लिए कुरूप कर डाला है और जिनके मुखमण्डल पर मनुष्य की आकृति के कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं रह जाते। कान-नाक सब चीर-फाड़कर वह बराबर कर देता है।

मेजर वालटर कैम्बल लिखते हैं कि एक बार उनके घोड़े एक पड़ाव से दूसरे को भेजे जा रहे थे। मार्ग में भालू मिल गये। भालुओं ने अकारण ही उन पर आक्रमण किया। साईसों तथा घोड़ों को ऐसा घायल कर डाला कि एक घोड़े के प्राण बचने की भी आशा न रह गई।

हिन्द का काला भालू कुछ झुँझलानेवाली प्रकृति का और कलहप्रिय तथा हठी स्वभाव का जीव होता है। पहाड़ों के तंग रास्तों पर चलते हुए यदि उसकी भेंट किसी मनुष्य अथवा अन्य जन्तु से हो जाती है तो वह कदापि अपना रास्ता छोड़कर नहीं हटता। हिन्द के काले भालू से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह कतराकर कोई दूसरा मार्ग पकड़ ले। प्रत्युत वह तुरन्त खड़ा हो लड़ाई करने को तैयार हो जाता है। एक साहब एक बार अँधेरा हो जाने पर पहाड़ के एक ६ फ़ुट चौड़े रास्ते पर घोड़े पर आ रहे थे। एक मोड़ पर उनकी भेंट एक भालू से होगई। भालू ने खड़े होकर भयभीत घोड़े को ऐसा प्रचण्ड धक्का दिया कि वह खड्ड में लुढ़क गया। भाग्यवश खड्ड बहुत ढालू न था, तो भी सवार और घोड़ा कोई ५० फ़ुट तक लुढ़कते चले गये। दूसरे दिन सबेरे भालू के पैरों के चिह्न देखने से ज्ञात हुआ कि घोड़े को लुढ़का देने के पश्चात् भालू ने बड़े आराम से धीरे धीरे अपनी राह ली थी जैसे कि कोई असाधारण बात हुई ही न हो।*

भालू के बड़े देहबल के सामने निहत्था मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। मिस्टर हिक्स बतलाते हैं कि उन्होंने भालू को कीड़ों-मकोड़ों की खोज करते हुए ऐसे भारी पत्थर उलटते देखा है जिनको दस आदमी भी मिलकर हिला नहीं सकते थे और जिनका व्यास पाँच फ़ुट से कम नहीं था।

भालू की पिछली टाँगें अगली टाँगों की अपेक्षा बड़ी होती हैं इस लिये वह पहाड़ों के ढाल पर उतर नहीं सकता। यदि कभी भयभीत होकर ढाल पर जल्दी जल्दी उतरने की आवश्यकता पड़ जाती है तो भालू हाथ-पैर समेटकर गोल गेंद सा बन जाता है और

---

* "Jungle Bye-Ways in India" by Mr. E. P. Stebbing.

गेंद ही के समान लुढ़कता हुआ नीचे पहुँच जाता है । यह प्रयत्न करते हुए अनेक बार शिकारियों ने भालुओं को देखा है ।

हिन्द के काले भालू की दन्तरचना अन्य भालुओं से विभिन्न होती है क्योंकि उसके प्रत्येक जबड़े में केवल चार कृंतक दन्त होते हैं और उसका थूथन भी अन्य उपजातियों से अधिक लम्बा होता है । इस लिये प्राय: जन्तुशास्त्रवित् हिन्द के काले भालू को एक अलग जाति का जन्तु मानते हैं ।

हिमालय का काला भालू (Ursus Tibetanus)—भालू की यह उपजाति हिमालय पर्वत पर तथा भूटान और आसाम में मिलती है । ग्रीष्मऋतु में वह बरफ़ से ढकी चोटियों पर १० या १२ हज़ार फ़ुट ऊँचा चढ़ जाता है । जाड़े में ४ या ५ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर उतर आता है । उसकी खोपड़ी चपटी और थूथन से उठी नहीं होती है । कान बड़े और टाँगें मोटी तथा भद्दी होती हैं । हिन्द के काले भालू के समान यह उपजाति भी शाकभोजी है किन्तु भूख में वह कभी कभी भेड़-बकरी को मारकर भी खा लेता है । स्वभावों में यह भालू हिन्द के भालू से मिलता-जुलता है ।

मलय का काला भालू (Ursus Malayanus)—यह उपजाति ब्रह्मा से मलय प्रायद्वीप तक मिलती है और क़द में हिन्द के भालू से कुछ छोटा होता है । मलय का भालू भी शाकभोजी है और सहज पल जाता है ।

भूरा भालू (Ursus Arctos)—भूरा भालू भालू-जाति की सबसे प्रधान उपजाति है क्योंकि वह पृथ्वी के अनेक भूभागों में मिलती है । योरप, उत्तरी अमेरिका तथा साइबेरिया में इस उपजाति के जन्तु मिलते हैं । दूर दूर देशों में फैले होने के कारण भूरे भालू के रंग में कुछ भेद पाये जाते हैं । किसी का

रंग गहरा भूरा, किसी का हलका भूरा, अन्यान्य का पीला होता है। किन्तु जन्तुशास्त्रविशारद मिस्टर लिडिकर का मत है कि ये सब एक ही उपजाति के जीव हैं।

भूरे भालू का सिर बड़ा, और माथा आँखों से ऊँचा उठा होता है। कन्धे तक ऊँचाई लगभग ३½ फ़ुट और शरीर की लंबाई ५ फ़ुट से ७ फ़ुट तक होती है। चीड़ के निविड़ वनों में, गहरे खड्डों में, अथवा पर्वतों की ऊँची ऊँची चोटियों पर भूरा भालू एकान्तवास किया करता है। प्रायः वह रात्रि ही में बाहर निकला करता है।

भूरा भालू सर्वभक्षी प्राणी है। ग्रीष्म काल में फल, जड़ें और नाना प्रकार के बीज खाकर निर्वाह करता है। शहद तथा दीमक भी बड़ी रुचि से खाता है। किन्तु शरद् ऋतु में जब बरफ़ के कारण हरे भोजन का अभाव हो जाता है तो उदरपालन के लिए वह मांस-भोजी हो जाता है। यथासंभव भेड़-बकरियों के गल्लों पर वह टैक्स लगाया करता है किन्तु कभी कभी गाय-बैल पर भी हाथ साफ़ करता है।

ध्रुव के भालू के समान भूरा भालू भी जल का प्रेमी होता है और अच्छा तैराक भी होता है। वृक्षों पर भी वह सुविधा से चढ़ जाता है।

भूरे भालू के शरीर में अद्भुत बल होता है। मनुष्य को दबाकर एक ही बार में हड्डी-पसली तक चूर कर डालता है।

हिमालय का भूरा भालू (Ursus Isabellinus)—

संभवतः यह जन्तु उपरोक्त भूरे भालू ही की एक नसल (Variety) है। इसका रंग कुछ पीलापन लिये भूरा होता है। ग्रीष्मकाल में वह हिममय चोटियों के पास पहुँच जाता है, शरद्-काल में नीचे उतर आता है। किसी किसी का मत है कि सिरिया

का प्रसिद्ध भूरा भालू भी इसी नसल का होता है। यह भालू मांस नहीं खाता।

ग्रिज़ली भालू (URSUS FEROX)

भालू की यह स्थूलाकार उपजाति अमेरिका में रॉकी (Rockies) पर्वतश्रेणी पर होती है। ग्रिज़ली के एक पूरे नर का बोझ १५-१६ मन का होता है। उसका देहबल और साहस आश्चर्य्यजनक होता है। भालुओं में ग्रिज़ली की सी भयंकर और भीषण प्रकृति किसी की नहीं होती। अमेरिका के बिसन भैंसे के दल पर वह बेधड़क आक्रमण करता है। ग्रिज़ली मनुष्य से भी नहीं डरता। एक यात्री बतलाते हैं कि एक ग्रिज़ली भालू ने ३० मील तक उनका पीछा किया और यदि वह एक नदी को पार न कर जाते तो संभवतः इतनी ही दूर और पीछा करता। रेडइण्डियन्स (अमेरिका के आदिमनिवासी) में जो व्यक्ति कि ग्रिज़ली भालू को मार लेता है वह शूरवीर माना जाता है।

ग्रिज़ली का रंग हलका पीला या भूरा होता है, बालों के सिरे कुछ हलके रंग के होते हैं।

अलास्का का भूरा भालू (URSUS GYAS)

यह उपजाति अमेरिका के अलास्का प्रायद्वीप में मिलती है और कहा जाता है कि वह भालू की सबसे बड़ी उपजाति है। आश्चर्य्य की बात यह है कि सन् १८९६ ई० से पूर्व उसके अस्तित्व का कुछ पता न था। परन्तु यद्यपि वह एक दीर्घकाय जन्तु है तथापि उसका स्वभाव भीषण नहीं होता। मनुष्य से वह डरता है और देखते ही भागता है। यह दीर्घकाय भालू चूहे, गिलहरी आदि छोटे छोटे जन्तुओं को मारकर खाया करता है। नदियों में जब सामन मछली आ जाती हैं तो उन्हीं को पकड़कर अपना निर्वाह किया करता है।

ग्रीष्म ऋतु में जब घास और वनस्पति मिलने लगती हैं तो वह गाय बैलों के समान घास पात चरने लगता है।

ध्रुव का भालू (URSUS MARITIMUS)

उत्तरी ध्रुव के हिमाच्छादित जनशून्य मैदानों में ध्रुव का श्वेत भालू मनमाना राज्य करता है। उसके प्रभुत्व में भाग बटानेवाला वहाँ कोई नहीं होता।

इस दीर्घकाय जन्तु के शरीर की लंबाई ८ या ९ फ़ुट होती है। ऊँचाई में वह एक अच्छे घोड़े के बराबर होता है। उसके शरीर का बोझ १५०० पौंड के क़रीब होता है। हिन्द के काले भालू का बोझ २५०-३०० पौंड से अधिक नहीं होता, और दोनों के बोझ की तुलना करने से अनुमान हो सकता है कि ध्रुव का भालू कितना सुविशाल जन्तु होता है। एक सज्जन ने, अपने मारे हुए एक भालू के नाप-तौल का ब्योरा देते हुए लिखा है कि उसके शरीर की लंबाई ८ फ़ुट से अधिक थी और देह का घेरा भी इतना ही था। कन्धों तक ऊँचाई ४½ फ़ुट थी और अगले पञ्जे का घेरा ३४ इंच का था। उसके शरीर में से ४०० पौंड चर्बी निकली थी और अकेली खाल का बोझ १०० पौंड का था। उन्होंने अनुमान किया था कि उस जन्तु का बोझ १६०० पौंड से कम नहीं हो सकता था।

ध्रुव के भालू की प्रकृति भी ग्रिज़ली भालू से कम दारुण और भीषण नहीं होती। भोजनों के अभाव के कारण उसकी क्षुधा का निवारण बड़ी कठिनाई से होता है अतः प्रकृति में क्रूरता और भीषणता का आ जाना अनिवार्य्य है। दूसरी बात यह भी है कि भालू के वासस्थानों में कोई जीव-जन्तु उसका सामना करनेवाला नहीं होता, निर्बल और निर्दोषी जन्तुओं पर मनमाना अत्याचार

करने का भालू अभ्यस्त हो जाता है। ऊँट पहाड़ तले कभी नहीं आता, इससे भालू के स्वभाव और भी बिगड़ जाते हैं। यही कारण है कि जब ध्रुव का भालू आदमी को देखता है तो उसको भी अन्य जीवों के समान निस्सहाय और निर्बल जानकर बेधड़क आक्रमण करता है।

ध्रुव के अत्यधिक शीत सहन करने के लिए प्रकृति ने भालू की रचना में कोई कमी नहीं छोड़ी है। सारा शरीर अत्यन्त घने और कोमल बालों से ढका होता है। तलवे तक बड़े बड़े बालों से रक्षित कर दिये गये हैं नहीं तो बरफ़ पर चलना फिरना भी कठिन हो जाता। और चिकनी बरफ़ पर दौड़ने में इन्हीं बालों के कारण वह फिसलने से बचता है और बिना आहट के शिकार के पास तक भी पहुँच सकता है।

दूरदर्शिता से ध्रुव के भालू का रंग भी सफ़ेद रक्खा गया है जो बरफ़ के सफ़ेद रंग में बिलकुल मिल जाता है। घातार्थ वर्ण-साम्य (Aggressive General Resemblance) की इस जन्तु को आवश्यकता भी बहुत थी। ध्रुव में जीवधारी बहुत नहीं होते। घंटों तक परिभ्रमण करने पर कहीं कोई सील अथवा वालरस दृष्टिगोचर होता है। यदि भालू का रंग काला होता तो वह दूर ही से दिखाई पड़ जाता और बेचारे को पेट पालना भी कठिन हो जाता।

ध्रुव के भालू के लंबे, घने, चिकटे हुए बालों में वायु भरे रहने के लिए बहुत से स्थान होते हैं। वायु के कारण शरीर की गरमी निकलने नहीं पाती, उसके शरीर पर एक मोटी तह चर्बी की भी होती है। इस चर्बी से उसकी गरमी भी रक्षित रहती है और जल में तैरने के लिए शरीर भी हलका हो जाता है। उसकी खाल में

से तेल निकल के बालों को चिकना करता रहता है और वे भीगने नहीं पाते।

ध्रुव के भालू को अपना निर्वाह बहुधा मांस पर करना होता है। हिमाच्छादित प्रदेशों में वनस्पति तो प्राप्त होती नहीं। सील और वालरस दो ही बड़े जीव बरफ़ में होते हैं और ध्रुव का भालू अपने समय का अधिकांश उन्हीं की खोज में व्यतीत किया करता है। दिन रात्रि में चार घंटे से अधिक विश्राम नहीं करता। धैर्य और चतुराई से काम लेता है तभी अपने भाड़ सरीखे पेट को भर सकता है। शिकार ढूँढ़ने में उसको रात्रि में भी उतनी ही सुविधा होती है जितनी कि दिन में क्योंकि बरफ़ की चमक का उजाला बहुत होता है।

ध्रुव के भालू के जीवन-वृत्तान्त में सबसे अद्भुत बात उसका शरद्काल का चिरस्थायी विश्राम (Hybernation) होता है। जाड़े में जब समुद्र तक जम जाता है और थर्मामीटर का पारा शून्य से भी १०-२० डिग्री नीचे गिर जाता है तो भालू को सब प्रकार का भोजन दुर्लभ हो जाता है। तब भालू किसी निरापद गुफा में लेट-कर सो रहता है। कई मासपर्यन्त वह निराहार पड़ा सोता रहता है। ग्रीष्मकाल में ख़ूब खा पीकर भालू मोटा हो जाता है और चर्बी की मोटी मोटी तहें उस पर चढ़ जाती हैं। चिरस्थायी विश्राम में यही सञ्चित चर्बी उसके जीवन का आधार होता है। भालू भली-भाँति समझता है कि छोटे से छोटे शारीरिक श्रम के लिए भी उसको शरीर की गरमी का व्यय करना पड़ता है और उसको पूरा करने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। इस लिये वह न हाथ हिलाता है न पैर, न उठता है न बैठता है। उसकी केवल साँस चलती रहती है, अन्य कोई चिह्न जीवित होने का उसमें नहीं रह जाता। क्रमशः उसकी चर्बी घुल चलती है और देह सूखने

लगती है। अन्त में हड्डी और चमड़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता। वसन्तऋतु आने पर जब बरफ़ गलने लगती है तो भालू एक रोगी के समान लड़खड़ाता हुआ उठता है और सूखे हुए शरीर को फिर से पालना और मोटा करना आरम्भ करता है। मादाओं के इसी काल में बच्चे उत्पन्न होते हैं।

माँ अपने बच्चों को साथ रखकर जल में तैरना सिखाती है और उनकी रक्षा बड़े साहस से करती है। स्कोर्सबी एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि एक माँ और उसके दो छोटे बच्चों का पीछा एक बार कुछ नाविक कर रहे थे। बच्चों को उत्साहित करने के लिए माँ उनके आगे भागती थी। थोड़ी थोड़ी दूर पर घूमकर एक विशेष शब्द करती थी मानो अपनी चिन्ता बच्चों पर प्रकट कर रही हो। ज्यों ज्यों उसको पता चलता था कि अनुधावक पास आते जाते हैं त्यों वह बच्चों को कभी धक्का देती थी, कभी आगे को उछालती थी, कभी अपने शरीर से ढकेलती थी। बच्चे भी बारंबार बैठकर दुबक जाते थे जिससे कि माँ उनको धक्का दे दे, जब वह उनको कुछ गज़ आगे फेक देती थी तो भूमि पर गिरते ही बच्चे फिर भागते थे। यहाँ तक कि माँ पीछे से आ पहुँचती थी और फिर धक्का देती थी।*

रेकून

(Procyon Lotor)

छोटा सा रेकून भालू-वंश की एक जाति है। वह केवल उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में मिलती है। मुँह लोमड़ी का सा और शरीर कुछ कुछ बिज्जू का सा होता है। रेकून भी अपना पूरा

---

* Scorceby's "Account of the Arctic Regions."

तलवा भूमि पर रखता है। शरीर पर झबरे बाल होते हैं। दुम झबरी होती है जिस पर काले काले छल्ले पड़े होते हैं।

रेकून भी सर्वभक्षी है। पक्षी, चूहे, अण्डों के अतिरिक्त वह फल, नाज आदि भी रुचि से खा लेता है।

स्वभाव ही से रेकून अत्यन्त शुद्ध और स्वच्छ रहनेवाला जन्तु है। अपने भोजन की शुद्धता पर इतना ध्यान देता है कि यथासंभव वह उसको धोकर खाता है। एक जन्तुशास्त्रवित् लिखते हैं—"सारे मांसभोजियों में कदाचित् रेकून अपने अगले पञ्जों से काम लेने में सबसे अधिक चतुराई प्रकट करता है। वह उड़ते हुए कीड़ों को पञ्जों से पकड़ लेता है और अगले पञ्जों से कीड़ों को दबाकर कुचल लेता है। मुँह में भोजन ले जाने में वह अपने पञ्जों से बिलकुल हाथों का सा काम लेता है। यदि कहीं आसपास जल होता है तो वह अवश्य ही अपने भोजन को जल में डुबोता है और उसको बिना स्वच्छ किये खाना आरम्भ नहीं करता।*

बहुधा यह देखा जाता है कि जिन जन्तुओं में भोजन को हाथ से पकड़कर मुँह में पहुँचाने की समझ होती है उनकी बुद्धि तीक्ष्ण हुआ करती है। बन्दर, तोता, रेकून इसके उदाहरण हैं। हाथी हाथ का काम सूँड़ से लेता है।

शरद्-ऋतु में भालू के समान रेकून भी चिरस्थायी विश्राम (hybernation) करता और लंबी नींद में पड़ा सोता रहता है। प्रायः एक ही स्थान में कई कई रेकून मिलकर लेट रहते हैं और एक दूसरे को गरम रखते हैं।

---

*Vogt's "Natural History of An imals."

किनकाजू

(CERCOLEPTES CAUDIVOLVULUS)

यह छोटा सा जीव भी भालू का भाई-बन्धु माना जाता है। किनकाजू मध्य और दक्षिणी अमेरिका में मिलता है। क़द में वह बिल्ली से कुछ छोटा किन्तु भारी होता है। उसके बाल ऊनी होते हैं और रंग पीलापन लिये भूरा। किनकाजू की लंबी दुम उसका सबसे उपयोगी अंग होता है। वह अधिकतर वृक्षों ही पर अपना जीवन व्यतीत किया करता है। पेड़ की डाल में किनकाजू अपनी पुष्ट दुम को लपेटकर लटक जाता है और एक डाल से दूसरी पर उछलने में भी वह दुम का सहारा लेता है। किनकाजू भी पूर्णतया पदतलचर है।

दिन में वह पेड़ों पर छिपा सोता रहता है, रात में उनके दल खाने की खोज में एक पेड़ से दूसरे पर बड़ी बड़ी छलाँगें ले, उछलते कूदते फिरते हैं। पक्षी, अण्डे, छोटे छोटे जन्तु, शहद और फलों पर उसका निर्वाह होता है।

कोटी

(NASUA FUSCA)

भालू-वंश का यह छोटा सा जीव भी मध्य अमेरिका में मिलता है। क़द में वह लगभग बिल्ली के बराबर होता है। थूथन अति लंबा, पञ्जे पुष्ट और मुड़े हुए, दुम बहुत लंबी और मोटी होती है जिस पर काले रंग के छल्ले-से पड़े होते हैं। यह भी वृक्षों पर रहनेवाला जीव है। उसके रूखे बालों में से एक प्रकार की दुर्गन्ध आया करती है।

कोटी दल में रहते हैं। वे पालतू तो सहज ही हो जाते हैं किन्तु उनका पकड़ा जाना कठिन है।

कुतरनेवाले जन्तु

(THE RODENTIA)

साधारण विवरण

कुतरनेवाली-श्रेणी की, पृथ्वी पर, बहुत जातियाँ मिलती हैं। उनके दाँत कठोर वस्तुओं को कुतर कुतर के काटने के लिए विशेषरूप से उपयुक्त रचे गये हैं और इसी जाति-लक्षण के कारण उनको कुतरनेवालों का नाम दिया गया है।

इस श्रेणी के प्राणियों के मुँह में केवल दो प्रकार के दाँत होते हैं अर्थात् कृंतक दंत और डाढ़ें। उनके कृंतक दंत बड़ी युक्ति से रचे गये हैं। इनके कृंतक दाँत लंबे, झुके हुए और पुष्ट होते हैं। इन दाँतों के बाहरी ओर इनामिल की एक तह चढ़ी होती है किन्तु भीतर को नहीं होती। इनामिल चीनी के समान एक अति कठोर पदार्थ है। इस इनामिल के कारण कुतरनेवाले प्राणियों के कृंतक दाँत सामने की ओर घिसने नहीं पाते। ऊपर और नीचे के कृंतक दंत एक दूसरे से रगड़ खाते रहते हैं जिसके कारण दाँतों का भीतरी भाग घिसता रहता है। इस प्रकार उनकी धार अत्यन्त तीक्ष्ण और कठोर बनी रहती है।

कुतरनेवाले प्राणियों के कृंतक दाँत आजीवन बढ़ते रहते हैं परन्तु रगड़ के कारण जितने बढ़ते हैं उतने ही घिस भी जाते हैं। कभी कभी यह देखा जाता है कि किसी दुर्घटना के कारण यदि एक जबड़े का कोई कृंतक दाँत टूट जाता है तो दूसरे जबड़े का दाँत, जो उसके सामने होता है, निर्विघ्न बढ़ता चला जाता है। ऐसे जन्तु को

शीघ्र ही मुँह चलाना भी कठिन हो जाता है और अंत में दाँत बढ़ते बढ़ते दूसरे जबड़े में घुस जाता है और जन्तु की मृत्यु हो जाती है।

इस श्रेणी के प्राणी अपना निर्वाह फल, फूल, नाना प्रकार के बीज, जड़ों और वृक्षों की छाल पर किया करते हैं। किन्तु उनमें से कोई कोई पक्के सर्वभक्षी हैं जैसे चूहा।

कुतरनेवाले जन्तुओं के डील डौल बहुत भिन्न भिन्न हैं और उनकी टाँगें, हाथ पैर और दुम, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार दौड़ने, उछलने, वृक्षों पर चढ़ने, तैरने आदि के लिए उपयुक्त रचे गये हैं। कुछ की पिछली टाँगें अगली टाँगों की अपेक्षा बड़ी होती हैं।

अधिकांश के शरीर पर कोमल बाल होते हैं किन्तु किसी किसी के काँटे होते हैं। उनके हाथ-पैर बहुधा पाँच भागों में विभक्त होते हैं जिन पर तीक्ष्ण नख होते हैं।

इस श्रेणी के अनेक जन्तु घोंसला बनाते हैं और किसी किसी में गृहनिर्माण की उत्तम शक्ति होती है।

कुतरनेवाले जन्तु बहुसंतति प्राणी हैं और प्रायः उनकी मादायें वर्ष में दो तीन बार प्रसव करती हैं। उनके बच्चे भी पूर्ण वृद्धि को शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं।

कुतरनेवाले जन्तुओं के वंश-विभागों में विद्वान् सहमत नहीं हैं और नाना प्रकार से उनके विभाग किये गये हैं।

हम उनको निम्न-लिखित वंशों में विभाजित करेंगे:—

(१) चूहावंश (Muridæ)

(२) गिलहरीवंश (Sciuridæ)

(३) ख़रगोशवंश (Leporidæ)

(४) साहीवंश (Hystricidæ)

(५) बीवरवंश (Castoridæ)

चूहा

(Mus)

म्युराइडे-वंश की सबसे प्रसिद्ध जाति चूहा है। यद्यपि सृष्टि में इतने अधिक शत्रु किसी जीव के न होंगे जितने कि चूहे के तो भी यह हानिकारक जन्तु सब जगह फलता फूलता ही दिखाई देता है। अस्तित्व के संघर्ष में उसकी विजय ही विजय है। पृथ्वी का शायद ही कोई देश होगा जहाँ चूहे न हों।

चूहा जाति की सबसे प्रसिद्ध उपजाति घरेलू भूरा चूहा (Mus Decumanus) है। निश्चितरूप से यह नहीं कहा जा सकता कि यह जन्तु प्रथमतः किस देश का निवासी था। मिस्टर फ्रैंक बकलैण्ड लिखते हैं कि "अनेक जन्तुशास्त्रवित् सहमत हैं कि भूरा चूहा हिन्दुस्तान और ईरान का आदिनिवासी है। इन देशों से वह योरपीय रूस की ओर बढ़ा था, और व्यापारी जहाज़ों के द्वारा वह इँगलैण्ड तथा अन्य देशों में पहुँचा।"

जन्तुशास्त्रवित् ब्लाइथ का मत है कि भूरा चूहा साइबेरिया देश में बैकाल झील के पास प्रथमतः रहता था और वहाँ से संसार में फैला है। कतिपय विद्वान् उसको चीन का निवासी बतलाते हैं। सारांश यह है कि चूहे को उत्पन्न करने और फैलाने का कलंक योरप के विद्वान् किसी न किसी एशियाई देश ही को लगाते हैं।

केवल दो शताब्दी में भूरे चूहों ने अपना साम्राज्य सारी पृथ्वी पर फैला लिया है। जैसे कोई यशस्वी और बलवान् मनुष्य-जाति पृथ्वी पर चतुर्दिक् फैलकर प्रतिपत्ति लाभ करती, और अन्य जातियों का पतन कर स्थान स्थान पर अपने उपनिवेश स्थापित कर लेती है ठीक उसी प्रकार भूरे चूहे का भी उत्थान हुआ है। उसने अन्य उपजातियों का विध्वंस कर सर्वत्र अपना ऐश्वर्य्य जमा लिया

है। अनुमान किया जाता है कि इँगलैण्ड में भूरा चूहा अट्ठारहवीं शताब्दी के मध्य में पहुँचा था और शीघ्र ही उसने घरेलू काले चूहे का सर्वनाश कर दिया। अस्तित्व के संग्राम में काला चूहा उसके सामने न ठहर सका और प्रकृति के नियमानुसार काले चूहे की संख्या प्रतिदिन घटने लगी।

भूरा चूहा बहुसन्तानी जीव है। केवल ३ मास की आयु होने पर मादा बच्चे देने लगती है और प्रतिवर्ष कम से कम तीन बार प्रसव करती है और कोई कोई ५ या ६ बार तक। मादा के दस या बारह स्तन होते हैं और प्रत्येक प्रसव में इतने ही बच्चे भी उत्पन्न होते हैं। इस हिसाब से चूहे की वंशवृद्धि विस्मयकर ही होनी चाहिए। अनुमान किया गया है कि यदि एक जोड़े के वर्ष में ३ बार बच्चे हों तो उसकी संतान की संख्या तीन वर्ष में २,०१,५५,३९२ तक पहुँच जायगी।

ऐसे बहुसंतानी जीव से मनुष्य को कितनी हानि पहुँच सकती है इसका अनुमान करना भी कठिन है। प्रत्येक चूहा अपने निर्वाह के लिए मनुष्योपयोगी भोजनसामग्री में से हिस्सा लेता है। यदि एक चूहा प्रतिवर्ष केवल एक सेर नाज खा डाले तो एक करोड़ चूहों के लिए प्रति वर्ष २,५०,००० मन नाज अपेक्षित होगा। आठ सेर प्रति रुपया की दर से यह ५०,०००) रु० का माल हुआ। हिसाब लगाया गया है कि फ्रांस में इस छोटे जन्तु के द्वारा प्रतिवर्ष अस्सी लाख पौंड अर्थात् लगभग १२ करोड़ रुपये का नुक़सान होता है।

हम भारतवासी अहिंसा के उपासक हैं और भारतवर्ष में चूहे मनमाना अत्याचार किया करते हैं, अतः भारत की हानि का ब्योरा हमारे लिए उपदेशजनक होगा। कुछ समय हुआ एक सुप्रसिद्ध डाक्टरी पत्र में डाक्टर मेजर कुन्हार्ड ने अनुमान करके दिखाया था कि भारत में चूहे के द्वारा कितनी हानि होती है। आपने लिखा था कि गत बीस वर्ष में भारतवर्ष को चूहों के द्वारा

१२,४२,५०,००,०००) रु० की आर्थिक हानि हुई। इसका व्योरा उक्त डाकृर इस प्रकार बतलाते हैं कि—

(१) मूल्य खाद्य वस्तुओं का, जो चूहों ने खा डाली या नष्ट कर दी ६,००,००,००,०००) रु०।

(२) प्लेग महामारी से लाखों मनुष्यों की अकाल-मृत्यु होने से, तथा रोगी होकर काम के अयोग्य हो जाने से आर्थिक हानि, ६,०३,००,००,०००) रु०।

(३) प्लेग से जनता को बचाने के उपायों में व्यय हुआ ३९,५०,००,०००) रु०।

सारांश यह है कि २० वर्ष में जितना व्यय भारत की सारी सेना पर हुआ उससे दूना चूहों पर करना पड़ा।*

छोटा कद, फुरतीला शरीर, और भूमि के भीतर रहना, इन सब कारणों से चूहे की वृद्धि को रोकना सहज काम नहीं है। इसके अतिरिक्त चूहा पूरा चतुर भी होता है और उसकी तीक्ष्ण बुद्धि के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक घटनायें सुनाई जा सकती हैं। एक पिँजरे में जब एक दो बार चूहे फँस जाते हैं तदनन्तर कोई चूहा उसके पास नहीं फटकता। पिँजरे में चूहे की गन्ध बस जाती है जिससे चूहे समझ जाते हैं कि उसके द्वारा किसी न किसी अभागे भाई के प्राण जा चुके हैं। किन्तु यदि वही पिँजरा धोकर लगाया जाता है तो फिर चूहे फँसने लगते हैं।

भारी वस्तुओं को उठा ले जाने में चूहे अद्भुत चतुराई प्रकट करते हैं और बड़ी युक्ति से काम लेते हैं। जन्तुशास्त्रवित् मिस्टर रॉडवेल एक घटना का उल्लेख करते हैं कि दो चूहे मिलकर कई अण्डे सीढ़ियों पर से नीचे उतारकर ले गये। एक चूहा एक सीढ़ी

* Major Kunhardt, in the *Indian Journal of Medical Research.*

नीचे उतर जाता था और पिछले पैरों पर खड़ा हो जाता था, तब ऊपरवाला चूहा अण्डे को उसके हाथ में दे देता था। तत्पश्चात् ऊपरवाला चूहा नीचे उतरकर अण्डा ले लेता था। इस प्रकार बारी बारी से उतारते हुए वे अण्डे को नीचे तक उतार ले गये।*

प्रायः देखा जाता है कि चूहे बोतल में रखा हुआ तेल पी जाते हैं। एक चूहा बोतल पर चढ़कर अपनी लम्बी दुम बोतल के भीतर डाल देता है और तब दुम को निकालकर दूसरों को चूसने को दे देता है। इस प्रकार बारी बारी चढ़कर सारा तेल पी जाते हैं।†

चूहे एक दूसरे से प्रशंसनीय सहानुभूति प्रकट करते हैं। अन्धों को राह दिखाते हैं, बूढ़ों तथा निर्बलों को सहायता देते हैं। लकड़ी का एक छोर मुँह में दबाकर और दूसरा छोर एक अन्धे चूहे के मुँह में पकड़ाकर वे रास्ता बताते देखे गये हैं। मिस्टर रोमानीज़ अपने सुविख्यात ग्रन्थ में लिखते हैं कि यह घटना इतने लोगों ने देखी है कि उसकी सत्यता पर सन्देह नहीं किया जा सकता।‡

जब किसी स्थान में भोजनों का अभाव हो जाता है तो चूहों के दल के दल उस स्थान को छोड़ जाते हैं और किसी अनुकूल देश में जा बसते हैं। कर्नल साइक्स लिखते हैं कि उन्होंने चूहों के दलों को देशान्तरगमन करते देखा है। मार्ग में नाज के खेतों को वे नष्ट करते चलते हैं। कहते हैं कि इन लम्बी यात्राओं में चूहे वृद्ध तथा निर्बलों को कभी छोड़ नहीं जाते वरन् उनको सब प्रकार से सहायता देकर साथ ले चलते हैं।

हिन्दुस्तान में भूरा चूहा सब जगह मिलता है किन्तु बहुधा बस्तियों ही में उसकी अगणित संख्या मिलती है, जहाँ उसका निर्वाह सहज से होता रहता है।

---

* Rodwell : "The Rat—Its Natural History."
† Watson's "Reasoning Power in Animals."
‡ Romanes, "Animal Intelligence."

काला चूहा

(Mus Rattus)

काले चूहे ने भी कभी अच्छे दिन देखे थे किन्तु भूरे चूहे की शक्तियों के सामने अब उसकी दुर्दशा है और उसकी संख्या दिन प्रतिदिन घटती जाती है। यह बात रोचक है कि काली जाति का उत्थान भी किसी काल में ठीक उसी प्रकार हुआ था जैसे कि अब भूरे चूहे का हो रहा है। उसने भी चूहों की अन्य जातियों को नष्ट करके पृथ्वी पर कभी अपना साम्राज्य फैलाया था। प्रकृति का सर्वथा यही कठोर नियम रहा है।

योरप के देशों में काला चूहा अब भी बहुत मिलता है। भूरे चूहे की अपेक्षा इसका मुँह पतला होता है, कान अंडे के आकार के, और बाल बड़े बड़े होते हैं। शरीर के ऊपरी भाग का रंग धुमैला अथवा काला होता है। भूरे चूहे से यह छोटा होता है।

योरप का काला चूहा हिन्दुस्तान में भी जहाँ तहाँ मिलता है, विशेषकर समुद्रतट पर। अनुमान किया जाता है कि वह जहाज़ों ही के द्वारा भारत में पहुँच गया है।

काले चूहे की रचना में एक विशेषता होती है कि उसके पिछले पैर घूमकर पीछे लौट जाते हैं, इससे यह जन्तु सीधी दीवालों पर चढ़ सकता है और ऊपर से नीचे भी उतर सकता है।

घरेलू छोटा चूहा

(Mus Musculus)

भूरे चूहे से इसमें मुख्य भेद केवल डील का है। भारत में यह चूहा घरों में बहुतायत से होता है। इस जाति की एक सुन्दर नसल सफ़ेद होती है जो प्राय: पाली जाती है।

घरेलू छोटा चूहा (Mus Musculus)
पृष्ठ ४०६

खेत का वोल
(Arvicola
Arvalis)
पृष्ठ ४०९

जल का वोल (Arvicola Amphibius)
पृष्ठ ४०९

हैम्सटर्स (Cricetus
Frumentarius) पृष्ठ ४१०

हिरना मूसा (Gerbillus)
पृष्ठ ४१३

लेमिंग (Myodes) पृष्ठ ४१५

साही (Hystrix lencura) पृष्ठ ४१७

पेड़ का चूहा

(MUS BRUNNEUS)

यह उपजाति समस्त हिन्द में और लङ्का टापू में भी मिलती है। शरीर का ऊपरी भाग हलका लाल होता है, नीचे धुमैला श्वेत। कान बड़े, और लम्बाई ८-९ इंच की होती है। यह पेड़ों पर रहता है, भूमि के भीतर नहीं, और अपना घोंसला झाड़ियों में अथवा आम के पेड़ों पर बनाया करता है।

घूँस

(MUS BANDICOTA)

चूहे की यह एक बहुत बड़ी जाति है जो हिन्दुस्तान में सर्वत्र मिलती है। दक्षिणी हिन्द में यह जन्तु बहुतायत से होते हैं। लंका और मलय प्रायद्वीप में भी घूँस मिलती हैं।

घूँस के शरीर की लम्बाई बहुधा १० इंच के क़रीब होती है किन्तु कोई कोई जन्तु १५ इंच तक के मिलते हैं। दुम दस बारह इंच लम्बी होती है और उस पर कड़े छिलके चढ़े होते हैं। बोझ में घूँस १½ सेर तक की होती है।

घूँस घरों की दिवालों अथवा नाज की खत्तियों के नीचे अपने बड़े बिल खोद लिया करती है और नीव को कमज़ोर कर देती है। नाज की खत्तियों तक पहुँच जाने पर बहुत नाज चट कर जाती है। आलू के खेतों को भी उससे बड़ी हानि पहुँचती है।

भूरा काँटेदार चूहा

(LEGGADA PLATYTHRIX)

यह काँटेदार चूहा केवल हिन्द के दक्षिणी भाग में मिलता है। रङ्ग ऊपरी भाग का भूरा और नीचे को श्वेत होता है। काँटे चपटे होते हैं। इसके शरीर की लम्बाई ३-४ फ़ुट की और दुम लगभग २½

फ़ुट की होती है। यह चूहा भूमि में छोटे छोटे बिल खोद लेता है और जब बिल के भीतर घुस जाता है तो उसके छिद्र को सर्वथा छोटे छोटे कंकड़ों से बन्द कर देता है।

काँटेदार चूहों की कई और उपजातियाँ भी दक्षिणी हिन्द में मिलती हैं और एक उपजाति हिमालय पर्वत पर भी मिलती है।

दक्खिन के खेत का चूहा

(GOLUNDA MELTADA)

यह चूहा दक्षिणी हिन्द में मिलता है। उसका रङ्ग कुछ हलका लाल-सा होता है। थूथन पतला, कान बड़े और दुम की लम्बाई शरीर से छोटी होती है। शरीर की लम्बाई लगभग ५½ इंच की होती है। यह चूहा झाड़ियों की जड़ों में छोटा सा बिल खोद लेता है या कभी कभी दक्षिण के मैदानों की काली मिट्टी में जो दरारें गर्मी की ऋतु में पड़ जाती हैं उन्हीं में रहने लगता है। वर्षा होने पर जब यह दरारें बन्द होती हैं तो सहस्रों चूहे उन्हीं के भीतर मरकर रह जाते हैं और उनकी संख्या कम हो जाती है। मिस्टर इलियट लिखते हैं कि "सन् १८२६ ई० में वर्षा कम होने के कारण उनकी ऐसी वृद्धि हुई थी कि उन्होंने कृषि का सर्वनाश कर डाला। खेत में बीज डालते ही वे एक एक चुनकर खा जाते थे। जब नाज के खेत पकने पर पहुँचे तो उन्होंने ऊपर चढ़ चढ़कर बालें काटना शुरू कीं। सुविधा से खाने के लिए वे बालों को कुतर के पहिले नीचे गिरा लेते थे। मैंने स्वयं ऐसे खेत देखे जिनका सर्वनाश होगया था और कृषकों ने खेत का लगान तक न दे पाया। कृषकों ने बद्दुर लोगों को चूहे मारने पर नियत किया। एक एक बद्दुर ने हज़ारों चूहे मारे किन्तु उनकी संख्या में कोई कमी न दिखाई पड़ी।"

वोल चूहे

(The Vole or Arvicola)

म्युरिडे-वंश की 'आरविकोला' एक जाति है जिसके जन्तु वोल के नाम से प्रसिद्ध हैं। वोल भारी शरीर के चूहे हैं जिनकी देह कुछ चौड़ी चपटी-सी प्रतीत होती है। इन चूहों की चाल धीमी और भद्दी होती है। थूथन चौड़ा, कान, आँखें, टाँगें और दुम छोटी होती हैं। वोल की डाढ़ें आजीवन बढ़ा करती हैं, जितनी ऊपर को घिसती जाती हैं उतनी ही नीचे से बढ़ती जाती हैं।

जल का वोल (Arvicola Amphibious)—वोल की यह एक प्रसिद्ध उपजाति है जो समस्त योरप में और उत्तरी एशिया में होती है। इसका शरीर घरेलू चूहे के बराबर होता है। रंग भूरा और दुम शरीर की लंबाई से लगभग आधी होती है। पिछले पैर बहुत पुष्ट भी होते हैं और उनकी लंबाई भी असाधारण होती है।

जल का वोल नदियों के ढालू किनारों में बिल खोद लिया करता है और दिन में प्रायः बाहर दिखाई देता है।

जल का वोल जल के पौधे और जड़ें खाया करता है किन्तु भूख में छोटे छोटे चूहों और कीड़े-मकोड़ों को भी खा जाता है।

खेत का वोल (Arvicola Arvalis)—इटली के अतिरिक्त यह छोटा सा वोल समस्त योरप में होता है। नाज के खेतों को उसके द्वारा बड़ी हानि पहुँचती है।

सायबेरिया का वोल (Arvicola Œconomus)—यह उपजाति सायबेरिया में मिलती है जहाँ शरदृतु में भूमि बरफ़ से ढक जाती है, और भोजनों का अभाव हो जाता है। वोल शरद्काल के लिए बहुत सी भोजन-सामग्री इकट्ठा कर लिया करता है।

हिमालय का वोल (Arvicola Roylei)—**इसका शरीर लगभग ३½ इंच का होता है और दुम दो इंच की। काशमीर में और हिमालय पर्वत पर यह जन्तु १०-१२ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर मिलता है।**

हैम्सटर

अर्थात्

थैलीवाले चूहे

(THE HAMSTER OR CRICETUS FRUMENTARIUS)

हैम्सटर चूहे-वंश की एक जाति है जिसके जन्तु सायबेरिया, रूस, पोलैण्ड और जर्मनी में मिलते हैं। इनका शरीर लगभग काले चूहे के बराबर होता है। गालों में बहुत बड़ी बड़ी थैलियाँ होती हैं और यही उनकी रचना की मुख्य विशेषता है। हैम्सटर का शरीर भारी होता है और घने कोमल बालों से ढका होता है। शरीर का ऊपरी भाग हलकी लालिमा लिये भूरा, किन्तु नीचे का भाग काला होता है। शरीर के पार्श्व भाग में कुछ श्वेत धब्बे भी होते हैं।

हैम्सटर भूमि के भीतर बिलों में रहा करता है। उसके बिल में कई सुरंगें होती हैं जिनमें फ़सल पर वह नाज और अन्य प्रकार की खाद्य-वस्तुएँ जमा कर लिया करता है। बिल के मुख्य भाग को वह अपने रहने के काम में लाता है और उसमें घास पत्तियों का कोमल बिछौना बिछा रहता है। बिल से बाहर जाने के लिए हैम्सटर सर्वथा दो मार्ग बनाता है जिनमें से एक ढालू और घूमा हुआ होता है और दूसरा सीधा।

भविष्य के लिए प्रबन्ध करने में हैम्सटर से अधिक बुद्धि और विवेक शायद ही कोई जन्तु प्रकट करता हो। उसकी दूरदर्शिता

श्रौर श्रम दोनों ही सराहनीय हैं। उसके बिल की सुरंग नाज के भाण्डार बन जाते हैं। कोई ऐसा नाज नहीं है जो उसके भाण्डार में मौजूद न हो। श्रौर श्राश्चर्य्य की बात यह है कि सब प्रकार के नाजों के वह अलग अलग ढेर लगाता है, कोई नाज एक दूसरे से मिलने नहीं पाते। एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार लिखते हैं कि "हैम्सटर दो ऐसी युक्तियों से काम लेता है जो किसी अन्य जीव में नहीं पाई जातीं। एक तो यह कि वह नाज की बालों में से केवल उतना ही भाग लाता है जितना कि खाने के काम का होता है श्रौर दूसरे यह कि वह भाण्डारों को अपने वासगृह से बिलकुल अलग रखता है। प्रत्येक हैम्सटर का एक बिल होता है। जिसके मुख्य भाग को वह अपने निवास के लिए रखता है। इस भाग के पार्श्व में दो एक बिल श्रौर हुआ करते हैं जिनको कि वह नाज जमा करने के लिए खोद लिया करता है। हैम्सटर के झुण्ड नाज के खेतों में पेड़ों को अगले पञ्जों से पकड़कर झुका लेते हैं श्रौर नाज की बाल को दाँतों से कुतर लेते हैं। तब वे बाल को दोनों पञ्जों से रगड़ते हैं श्रौर नाज के दानों को भूसे तथा तिनकों से अलग कर लेते हैं। नाज के दाने अलग करके वे उनको गालों की थैलियों में भर भरकर बिल में पहुँचाते हैं श्रौर मुँह से निकाल के भाण्डार में जमा करते हैं।*

धैर्य्य श्रौर परिश्रम दो ऐसे साधन हैं जिनसे दुस्तर काम भी सिद्ध हो जाते हैं श्रौर प्रकृति ने हैम्सटर को इन दोनों गुणों से पूर्णतया भूषित कर दिया है। दाना दाना बीन के वह अपने नाज के कोष को ऐसा भर लेता है कि हैम्सटर के एक एक बिल में से दो बुशल (१ मन २४ सेर) नाज तक निकलते देखा गया है।

---

* "The Industries of Animals," by Frederick Houssay.

इसके कहने की आवश्यकता नहीं कि कृषक लोग हैम्सटर के बड़े शत्रु होते हैं और उसका नाश करने में कोई बात उठा नहीं रखते।

चूहे की अन्य जातियों के समान हैम्सटर भी बहुसन्तानी होता है, मादा प्रतिवर्ष कई बार बच्चे देती है और प्रत्येक बार ८ या १० बच्चे उत्पन्न होते हैं। दो तीन ही सप्ताह में बच्चे स्वयं अपना निर्वाह करने के योग्य हो जाते हैं और अपने लिए बिल अलग खोदने लगते हैं।

हैम्सटर में एक बड़ा दोष भी होता है। शायद पशु-संसार में इतना क्रोधी कोई जीव नहीं होता। क्रोधाग्नि से उसका शरीर सर्वथा दहकता रहता है और उसका क्रोधावेश भयानक होता है। क्रोध में न उसको किसी का डर रह जाता है न अपने प्राणों का भय। हैम्सटर के क्रोध का वर्णन देते हुए मिस्टर टॉमसन लिखते हैं :—

"अपने जीवन में उसको दो कामों के अतिरिक्त और कोई काम ही नहीं होता, अर्थात् एक तो उदरपालन और दूसरे क्रोध करना। जो जीव-जन्तु उसके सामने पड़ जाता है उसी पर घात कर बैठता है। शत्रु के बलवान् होने का उसको कोई भय नहीं होता न कभी अपने प्राणों की रक्षा करने को भागता ही है। यदि कभी किसी मनुष्य का हाथ पकड़ लेता है तो जीते जी नहीं छोड़ता...कुत्ते उसका शिकार करने के बड़े उत्सुक होते हैं। जब हैम्सटर कुत्ते को दूर से देखता है तो, यदि उसके मुँह की थैलियों में नाज भरा होता है, तो वह उनको पहिले ख़ाली करता है। तत्पश्चात् थैलियों को इतना फुला लेता है कि उसका मुँह और गरदन शरीर से बहुत बड़ा प्रतीत होने लगता है। तब पिछली टाँगों पर खड़ा होकर

शत्रु पर आक्रमण करता है। यदि दाँतों से पकड़ पाता है तो जब तक श्वास रहती है कभी नहीं छोड़ता।

अपने स्वभावों की भीषणता के कारण हैम्सटर किसी दूसरे पशु के संग मेलमिलाप से नहीं रह सकता। जब कभी दो हैम्सटरों की भेंट हो जाती है तो बिना एक दूसरे पर घात किये नहीं मानते और जिसकी देह में अधिक बल होता है वह निर्बल को मारकर खा जाता है।"*

हिरना मूसा

(THE JERBOA OR GERBILLUS)

हिरना मूसा की गणना भी म्युरिडे अर्थात् चूहा-वंश में की जाती है। बड़ी बड़ी छलाँगें भरने के कारण उसको भारत में हिरना मूसा का नाम दिया गया है। हिरना मूसा की उपजाति मध्य एशिया, भारतवर्ष, लंका, पूर्वी-दक्षिणी योरप और अफ्रीका में मिलती है।

हिरना मूसा की पिछली टाँगें बेडौल लंबी होती हैं। पिछले पैरों की लम्बाई लगभग ६ इंच की होती है, अगले पैर बहुत छोटे लगभग एक एक इंच के होते हैं। कूदते समय वह पिछले पैरों पर खड़ा होकर थोड़ा सा दुम का सहारा लेकर छलाँग भरता है। एक पर एक छलाँगें वह इतनी शीघ्रता से भरता है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों उड़ा चला जा रहा हो। छलाँगें भरता हुआ, हिरना मूसा तेज़ घोड़े के बराबर जा सकता है।

हिन्द का हिरना मूसा (Gerbillus Indicus)—इस उपजाति के जन्तु हिन्द में सब जगह मिलते हैं। इसकी देह ६-७ इंच की

* Thompson's "Passions of Animals."

और दुम लगभग ८ इंच की होती है। रंग कुछ पीलापन लिये भूरा और दुम के अन्त पर काले बालों का एक गुच्छा होता है। हिरना मूसा मैदानों में बहुत गहरे गहरे बिल खोद लेता है। उनमें कई कई सुरंगें होती हैं और प्रत्येक सुरंग के अन्त पर एक छोटा सा गोल कमरा होता है।

हिरना मूसा भी आस्ट्रेलिया के कांगरू के समान पिछले पैरों पर बैठा करता है और सन्ध्या-समय बिल से निकलकर भोजनों की खोज में उछलता-कूदता फिरता है। घास, जड़ें, और नाज खाया करता है।

मादा के प्रति बार १०-१२ बच्चे होते हैं और कभी कभी इससे भी अधिक।

हिरना मूसा की एक उपजाति (Gerbillus Erythrourus) पञ्जाब, सिन्ध और राजपूताने में भी होती है। इस उपजाति के जन्तु बहुत छोटे होते हैं और उनका शरीर पाँच इंच से अधिक नहीं होता।

हिरना मूसा की उपजाति अफ़्रीक़ा के बीहड़ मैदानों में भी मिलती है। एक अद्भुत बात यह है कि अफ़्रीक़ा का हिरना मूसा प्रायः ऐसे भूभागों में वास करता है जहाँ दूर दूर तक जल का पता नहीं होता। परन्तु सभी जीव-जन्तु अपने स्वाभाविक ज्ञान से अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति का प्रबन्ध कर लेते हैं। अफ़्रीक़ा के शुष्क मैदानों में एक प्रकार का कड़वा ख़रबूज़ा होता है जिसमें रस भरा होता है। हिरना मूसा इन्हीं फलों को बालू में ८-१० इंच गहरा गाड़ रखता है और ग्रीष्मकाल में उन्हीं के रस को पानी की जगह पीता है।

लेमिंग

(THE LEMMING OR MYODES)

लेमिंग भी म्युरिडे-वंश की एक जाति है। यह छोटा जन्तु डीलडौल में चूहे के समान ही होता है, किन्तु उसका थूथन गोल और दुम बहुत छोटी सी होती है। लेमिंग योरप में नॉर्वे और स्वीडन के पहाड़ों पर होता है। लेमिंग शाकभोजी है और उसकी प्रकृति साहसी तथा कलहप्रिय होती है।

लेमिंग दिन में छिपे रहते हैं। कई कई वर्ष के उपरान्त उनके दल एक भूभाग को छोड़कर किसी दूसरे स्थान को चल दिया करते हैं, तभी उनकी असंख्य गणना का पता चलता है। दस बीस वर्ष में कभी कभी यह अद्भुत दृश्य देखने में आया करता है। मैदान और खेत उनके दलों से भर जाते हैं और विचित्र बात यह होती है कि लेमिंग नाक की सीध पर चला करता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी प्रबल शक्ति से उनके दल नाक की सीध पर खिँचे चले जा रहे हों। खाई-खन्दक, नदी-नाले, रास्ते में पड़ते जाते हैं किन्तु वे अपना सीधा पथ बाल बराबर भी नहीं छोड़ते। उदाहरणार्थ यदि कोई घास का ढेर मार्ग में पड़ जाता है तो लेमिंग का दल उससे बचकर कभी नहीं निकलता वरन् घास के ढेर को फोड़ ही के रास्ता बनाकर निकलता है। सहस्रों मांसभोजी जन्तु और शिकारी पक्षी दल के साथ लग लेते हैं। भेड़िये, लोमड़ियाँ, बिल्ली, भालू, वीज़ल, उल्लू इत्यादि सबके आनन्द हो जाते हैं। एक विलक्षण बात यह होती है कि दल की यात्रा का कहीं अन्त नहीं होता, न लेमिंग किसी विशेष स्थान पर पहुँच जाने के उद्देश्य से ही अपना देश त्यागते हैं। परिणाम यह होता है कि चलते चलते वे समुद्र के किनारे जा निकलते हैं। किन्तु लेमिंग धुन के पक्के होते हैं, समुद्र

भी उनको नहीं रोक सकता। एक पर एक जल में प्रवेश करते जाते हैं और शीघ्र ही डूब जाते हैं।

छछुन्दर-चूहा

(NESOKIA INDICA)

खेतों का यह बड़ा चूहा हिन्दुस्तान में सर्वत्र मिलता है। दक्षिण में इसको कोक कहते हैं। इसका शरीर ६-७ इंच का होता है और दुम लगभग ४ इंच की। रंग हलका भूरा, बाल लम्बे और कड़े, कान छोटे और गोल होते हैं। मिस्टर इलियट बतलाते हैं कि यह चूहा स्वभाव से ही एकान्तवासी होता है और बड़े बड़े बिलों में अकेला रहता है। जिसमें वह फ़सल पर बहुत सा नाज जमाकर लेता है। जब नाज नहीं रह जाता तो घास और जड़ों पर निर्वाह करता है। मादा प्रति बार ८ या दस तक बच्चे देती है। ज्यों ही बच्चे अपना निर्वाह करने के योग्य हो जाते हैं तभी माँ उनको खदेड़ देती है।...बद्दुर जाति के लोग इस जन्तु को बहुत पकड़ते और खाते हैं और कोक के बिलों से नाज निकाल लेते हैं। किसी किसी अनुकूल स्थान में इनको इतना नाज प्राप्त हो जाता है कि उसी पर उनकी फ़सल कट जाती है।

साही-वंश

(THE HYSTRICIDÆ OR PORCUPINE)

इस वंश के जन्तुओं की मुख्य विशेषता उनके शरीर पर के काँटे होते हैं। साही की रक्षा का उत्तम उपाय प्रकृति ने कर दिया है क्योंकि जब साही अपने नुकीले काँटे खड़े कर लेती है तो मांसभोजी जन्तु सहज ही उस पर मुँह मारने का साहस नहीं करते। साही-वंश की कई जातियाँ वृक्षों पर रहनेवाली भी हैं।

हिन्द की साही (Hystrix Leucura)—इसके शरीर की लम्बाई ३०-३२ इंच की और दुम कोई ६ इंच की होती है। बंगाल के कुछ भाग के सिवाय यह उपजाति हिन्दुस्तान में सब जगह मिलती है। उसके गोल थूथन पर मोटे मोटे बाल होते हैं। शरीर पर दो प्रकार के काँटे होते हैं, कुछ लम्बे और मोटे जिन पर सफ़ेद घेरे पड़े होते हैं; और दूसरे प्रकार के पतले होते हैं जिनकी केवल नोकें श्वेत होती हैं।

साही प्रायः नदियों और तालाबों के ढालू किनारों में भाँटा खोद लिया करती है। दिन में भाँटे के भीतर रहती है, केवल रात में बाहर आती है। डाकृर जॉर्डन साहब बतलाते हैं कि साही उलटी हो के दुम की ओर से शत्रु का सामना करती है और शरीर के सारे काँटे बरछियों के समान खड़े कर लेती है। उसके काँटे कभी कभी कुत्तों के मांस में गहरे घुस जाते हैं।

योरप की साही (Hystrix Cristata)—इस उपजाति के जन्तु दक्षिणी योरप में तथा उत्तरी अफ्रीका में मिलते हैं। इस जन्तु की गरदन पर लम्बे लम्बे बालों की चोटी सी होती है। योरप की साही भी भालू के समान मे चिर-विश्राम किया करती है।

कनाडा की साही (Erethizon Dorsatus)—साही की यह जाति कनाडा तथा अमेरिका के संयुक्त देश में पाई जाती है। वृक्षों पर चढ़ने में कुशल होती है और अधिकांश समय वृक्षों ही पर व्यतीत किया करती है। इसके काँटे बहुत छोटे छोटे होते हैं जो शरीर पर के लम्बे बालों में ढके रहते हैं।

यह साही जिस पेड़ पर दो चार बार पदार्पण कर देती है उसी का नाश कर डालती है। आश्चर्य्य की बात यह है कि जो पतली टहनियाँ उसका बोझ सह नहीं सकतीं उनकी पत्तियाँ भी वह खा डालती है।

आर्कटॉमिने-वंश

(FAMILY-ARCTOMYNÆ)

इस वंश के जन्तुओं के शरीर चौड़े चकरे, भारी और भद्दे होते हैं। इनकी टाँगें छोटी, और पञ्जे पुष्ट होते हैं जिनको देखकर स्पष्टतः विदित होता है कि ये खोदनेवाले जीव हैं। वंश के सब जन्तुओं का ऊपरी ओठ दो भागों में विभाजित होता है।

इस वंश में तीन मुख्य जातियाँ हैं, अर्थात्—

(१) **आर्कटोमिस**—Arctomys.

(२) **सिनोमिस**—Cynomys.

(३) **स्परमोफ़िलस**—Spermophilus.

आर्कटॉमिस, वंश की मुख्य जाति है। इस जाति के जन्तु साधारण बोलचाल में मार्मॉट (Marmot) कहलाते हैं।

मार्मॉट एक छोटा सा जीव है जिसकी एक प्रसिद्ध उपजाति एल्प्स पर्वत की हिमाच्छादित चोटियों पर मिलती है।

मार्मॉट के दल के दल मिलकर एक ही स्थान में रहा करते हैं। जब भाँटों से निकलके धूप में बैठते हैं तो अत्यन्त चौकन्ने रहते हैं। किसी प्रकार का खटका होते ही उनमें से एक पतली सीटी का-सा शब्द कर देता है और दल का दल क्षणमात्र में बिलों में घुस जाता है।

मार्मॉट के पञ्जे पुष्ट होते हैं और वे गहरे गहरे भाँटे खोदा करते हैं। उनके भाँटे में कई कमरे और सुरंगें होती हैं।

मार्मॉट शाकभोजी जीव है और स्वभाव का सीधा होता है। उसका मांस खाया जाता है।

कनाडा का साही
(Erethizon
Dorsatus)
पृष्ठ ४१७

आर्क्टॉमिस (Arctomys)
पृष्ठ ४१८

उड़नेवाली भूरी गिलहरी (P. Petaurista) पृष्ठ ४२२

उड़नेवाली गिलहरी (Pteromys) पृष्ठ ४२२

ख़रगोश (Lepus) पृष्ठ ४२४

शीतकाल आरम्भ होने से पूर्व मार्माट लम्बी लम्बी घास काट काटके धूप में सुखाते हैं और सूख जाने पर उसको भाँटे में ले जाके बिछा लेते हैं। जाड़ा आरम्भ होते ही कई कई मार्माट मिलके लेट रहते हैं और भालू के समान चिरविश्राम (Hybernation) किया करते हैं। कई महीनों तक वे बिना खाये पिये पड़े सोते रहते हैं। वसंत ऋतु में जब बरफ़ गलने लगती है और हरियाली उपजने लगती है तब फिर मार्माट अपनी लम्बी नींद से जागते और बाहर आते हैं।

यद्यपि मार्माट के बड़े बड़े बाल कुछ मोटे होते हैं तथापि उसकी खाल काम की होती है और सहस्रों मार्माट पकड़े और मारे जाया करते हैं। शिकारी शीतकाल में उनके भाँटे खोज लेते हैं और सबको निकालके मार डालते हैं।

सिनोमिस

या

घास के कुत्ते

(The Cynomys or Prairie Dog)

सिनोमिस जाति के जन्तु मार्माट से मिलते-जुलते हैं और उत्तरी अमेरिका के विस्तीर्ण घास के मैदानों में मिलते हैं। उनको घास का कुत्ता कहने का कारण यह है कि भयभीत होने पर वे कुत्ते के भूँकने का-सा शब्द करते हैं। इनके झुण्ड के झुण्ड संग संग रहते हैं और जहाँ कहीं इनके बिल होते हैं वहाँ भूमि चलनी हो जाती है। ऐसे स्थान घास के कुत्तों के नगर कहलाते हैं। नगर-निवासी जब बाहर निकलकर बैठते हैं तो उनके झुण्डों का दृश्य देखने योग्य होता है।

घास के कुत्ते बेचारे सीधे और निस्सहाय जीव होते हैं और प्रायः साँप, उल्लू और भयानक वीज़ल घुसके भाँटों में से उनके बच्चों को निकाल ले जाते हैं।

स्पर्मोफीलस

(SPERMOPHILUS)

आर्क टॉ मिने-वंश की स्पर्मोफीलस तीसरी जाति है। क़द में ये पहली दोनों जातियों के जन्तुओं से छोटे होते हैं। इस जन्तु की कई उपजाति उत्तरी अमेरिका, उत्तरी एशिया और योरप में मिलती हैं। यह जन्तु अपना एकान्त जीवन अपने गहरे भाँटों में व्यतीत किया करता है जिसमें वह नाना प्रकार के नाज इकट्ठे किये रहता है।

गिलहरी-वंश

(THE SCUYRIDÆ)

गिलहरी-वंश के जन्तु पृथ्वी के लगभग सभी भूभागों में मिलते हैं। स्वभाव की चंचलता और शरीर की फुर्ती, यही इनके प्रधान जातिलक्षण हैं। गिलहरी क्षणमात्र को एक ठिकाने विश्राम नहीं कर सकती। एक डाल से दूसरी पर और एक वृक्ष से दूसरे पर, सम्पूर्ण दिन बस उसका यही काम है। और कुछ नहीं तो चिट, चिट, चिट, चूक, चूक, चूक ही कर मन को बहलाती है। कैसा अचूक निशाना ले वह एक डाल से दूसरी को उछलती है कि कभी धोखा नहीं खाती। कभी कभी ऐसे ऊँचे स्थानों से कूद पड़ती है कि उसके प्राण बच जाना ही आश्चर्य्ययुक्त होता है, किन्तु वह तुरन्त ही उठ कर फिर कूदने उछलने लगती है।

गिलहरी की सभी जातियों की दुम लंबी और झबरी होती है और उनके शरीर पर भी घने, अत्यन्त कोमल, स्वच्छ और चमकते हुए बाल होते हैं।

गिलहरी-वंश में कई जातियाँ हैं। उनमें से छोटी चूहे के बराबर और बड़ी जातियाँ छोटी बिल्ली तक के बराबर होती हैं।

गिलहरी अपना निर्वाह बीज, फल, नाज आदि पर किया करती है, किन्तु कभी कभी पक्षियों के अण्डे भी खा जाया करती है। गिलहरी के कृंतक दाँत इतने तीक्ष्ण होते हैं और वह उनसे ऐसी प्रवीणता से काम लेती है कि कड़े से कड़े फलों के छिलकों को क्षणमात्र में कुतर डालती है। भोजन को वह अपने अगले पञ्जों से पकड़के बड़ी सफ़ाई से मुँह तक ले जाती है।

गिलहरी स्वच्छ-स्वभाववाली होती है और उसका शरीर कभी अशुद्ध नहीं रहता। अपने मुँह और जीभ से शरीर के रेशम से कोमल बालों की सुधार सँभाल करते प्राय: देखी जाती है। उसकी दूरदर्शिता और बुद्धि भी सराहनीय है। जिस ऋतु में खाद्य-सामग्री बहुतायत से प्राप्त होती है वह बड़े श्रम से उसको इकट्ठा करती है, इस लिये भोजनों के अभाव का कष्ट उसको कभी नहीं होता। बड़ी चतुराई से वह अपनी खाद्य-सामग्री को कई अलग अलग स्थानों में जमा करती है अत: यदि कोई एक भाण्डार लुट जाता है तो भी उसको कोई बड़ी हानि नहीं होती। और स्मरणशक्ति उसकी ऐसी अच्छी होती है कि प्रत्येक भाण्डार का स्थान उसको याद रहता है।

छोटी छोटी टहनियों से गिलहरी सुदृढ़ घोंसला बना लेती है और उसी में अपने बच्चों को जन्म देती है। प्रत्येक बार मादा के ३ से ८ बच्चे तक होते हैं।

जंगली गिलहरी (Sciurus Malabari)—यह उपजाति मलाबार और ट्रावनकोर में एवं नीलगिरि पर्वत पर मिलती है। इसका शरीर लगभग १६ से १८ इंच तक का और दुम २० इंच की होती है। शरीर का ऊपरी भाग कत्थई और नीचे की ओर धुमैला पीला होता है।

कराट (Sciurus Maximus)—इस उपजाति के जन्तु मध्य हिन्द में मिलते हैं। रूप-रंग में यह भी जंगली गिलहरी के समान होते हैं।

धारीदार गिलहरी (Scuirus Palmarum)—इस उपजाति के जन्तु सारे हिन्द में बहुत मिलते हैं। हिन्दुस्तान के सिवाय यह जन्तु और कहीं नहीं होता।

गिलहरी-वंश की एक प्रसिद्ध जाति टिरॉमिस है (Pteromys) जो उड़नेवाली गिलहरी कहलाती है। इस जाति के जन्तुओं के शरीर के पार्श्व में, अगली टाँगों से पिछली तक लटकती हुई खाल होती है। यद्यपि इस खाल की सहायता से ये गिलहरियाँ पक्षियों के समान उड़ नहीं सकतीं तथापि वे बहुत बड़ी बड़ी छलाँगें भर सकती हैं और हवा में तैरती हुई बहुत धीरे धीरे नीचे को उतर सकती हैं। प्रकृति और स्वभावों में ये गिलहरियाँ भी साधारण जातियों के समान होती हैं।

उड़नेवाली भूरी गिलहरी (Pteromys Petaurista)—यह जन्तु दक्षिणी और मध्य हिन्द में पुराने जंगलों में जिनमें ऊँचे ऊँचे वृक्ष होते हैं मिलता है। और वे जंगल के घने से घने भाग में सबसे ऊँचे वृक्षों पर वास किया करते हैं। इस बड़ी गिलहरी का शरीर लगभग २० इंच का और दुम भी इतनी ही बड़ी होती है।

इस जन्तु के शरीर पर काले, श्वेत और धुमैले रंग के बाल मिले हुए होते हैं और इन सबके मेल के कारण उसका रंग भूरा सा प्रतीत होता है। गिलहरियों की अन्य जातियों के समान यह फुर्तीली नहीं होती। भूमि पर तो वह उछल उछलके चला करती है। वृक्षों पर भी उसकी चाल धीमी होती है क्योंकि उड़ान की खाल इधर-उधर को हिलती है और डालों में उलझती है। जब वह एक पेड़ से दूसरे पर जाना चाहती है तो भूमि पर कभी नहीं उतरती वरन् पेड़ की सबसे ऊँची शाखा पर चढ़ जाती है और वहाँ से कूदके तैरती

हुई दूसरे पेड़ की किसी नीची शाखा पर जा गिरती है। इनकी विस्मयकर उड़ान के विषय में डाक्टर जॉर्डन लिखते हैं:—

"मैंने अनेक बार उनको उड़ते देखा है। एक बार एक गिलहरी एक पेड़ से दूसरे को उड़ी और उसने ६० गज़ से कुछ अधिक अन्तर पार कर लिया। दूसरे पेड़ के पास पहुँचते पहुँचते वह भूमि से कुछ ही ऊँची रह गई थी और उसकी एक नीची शाखा पर पहुँचने के लिए उसको उड़ान के अन्त में कुछ ऊपर को उठना पड़ा था। इस प्रकार ऊपर को उठते हुए मैंने इन गिलहरियों को अन्य अवसरों पर भी देखा है"।

उड़नेवाली गिलहरियों की उपजाति हिमालय पर्वत पर, उत्तरी अमेरिका, रूस और सायबेरिया में भी मिलती हैं।

ख़रगोश-वंश

(THE LEPORIDÆ)

साधारण विवरण

ख़रगोश-वंश के जन्तुओं की रचना की मुख्य विशेषता यह है कि उनके ऊपरवाले जबड़े में दो जोड़ी दाँतों की आगे-पीछे होती हैं। आगेवाली जोड़ी से पिछली जोड़ी बिलकुल छिपी रहती है। कुतरनेवाली श्रेणी के जन्तुओं में अन्य किसी जाति के जन्तुओं के इस प्रकार के दाँत नहीं होते। इन दाँतों की पिछली जोड़ी ख़रगोश के असली कृंतक दाँत माने जाते हैं, अगली जोड़ी कीलों के बदले होती है।

ख़रगोश के अगले पैरों में ५ और पिछले में ४ उँगलियाँ होती हैं। दुम बहुत छोटी सी होती है।

ख़रगोश-वंश में केवल दो जातियाँ हैं:—

(१) ख़रगोश (Lepus)

(२) लेगोमिस (Lagomys)

ख़रगोश

(LEPUS)

ख़रगोश-जाति की अनेक उपजाति पृथ्वी पर मिलती हैं। इनके कान बहुत बड़े होते हैं। अगली टाँगें पिछली टाँगों की अपेक्षा बहुत लंबी होती हैं। ख़रगोश-जाति के जन्तुओं की दंत-रचना इस प्रकार है:—

कृंतक $\frac{२-२}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{३-३}{२-२}$, डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$ = २८

इस अत्यन्त भीरु और चौकन्ने जन्तु की उपजातियाँ, आस्ट्रेलिया महाद्वीप के अतिरिक्त, अन्य सभी देशों में मिलती हैं। प्राय: सब उपजातियों के रंग उनके वासस्थान से मिलते-जुलते होते हैं। भीरु और साहाय्यहीन ख़रगोश को अपनी रक्षा के लिए रक्षार्थ वर्ण-साम्य पर बहुत कुछ सहारा रहता है क्योंकि चारों ओर उसको शत्रु ही शत्रु दिखाई पड़ते हैं।

ख़रगोश भाँटा नहीं खोदता वरन् बहुधा भूमि के ऊपर ही किसी गुप्त सुरक्षित झाड़ी में छिपा रहता है और अन्धकार होने से पूर्व बाहर नहीं निकलता।

अपनी रक्षा के लिए निर्बल ख़रगोश को कोई हथियार नहीं मिला है। उसको अपनी तीक्ष्ण श्रवणेन्द्रिय ही का अवलम्बन करना होता है। उसके लम्बे लम्बे कान अविश्रान्त चारों ओर को घूमते रहते हैं और मन्द से मन्द शब्द का भी पता लगाते रहते हैं। भागने पर ख़रगोश अपनी रक्षा के लिए बड़े प्रयत्नों से काम लेता है। कभी तो इस प्रकार चक्कर लगाता है कि जहाँ से चलता है वहीं फिर आ पहुँचता है। कभी दौड़ते हुए सहसा छलाँग भरके मार्ग बदलता है कि जिससे कुत्तों को उसकी गन्ध मार्ग में न मिले और पैरों के चिह्न भी न दिखाई पड़े। प्राण बचाने का अन्य कोई उपाय न देखके ख़रगोश पानी में भी कूद पड़ता है और नथुने ऊपर निकालके छिपा बैठा रहता है।

ख़रगोश की भी वंश-वृद्धि बड़ी शीघ्रता से होती है। लगभग एक वर्ष की अवस्था होने पर उसके बच्चे होने लगते हैं और प्रत्येक बार ४-५ बच्चे होते हैं।

ध्रुव का ख़रगोश (Lepus Glacialus)—यह उपजाति अमेरिका से उत्तरी शीतमेखला की बरफ़ से ढके भूभागों तक मिलती है। इसका रङ्ग सफ़ेद होता है। ध्रुव का ख़रगोश भूमि के ऊपर

नहीं रहता वरन् बरफ़ में भाँटा खोद लेता है। इस उपजाति के जन्तु अन्य ख़रगोशों के समान भीरु नहीं होते।

हिन्द का ख़रगोश (Lepus Ruficaudatus)—यह उपजाति हिन्दुस्तान में हिमालय से गोदावरी नदी तक और पञ्जाब से आसाम तक मिलती है।

काला ख़रगोश (Lepus Hispidus) हिमालय की तराई में गोरखपुर से आसाम तक मिलता है। इसका रंग कुछ काला, कान छोटे और चौड़े, शरीर भारी, और टाँगें छोटी और मोटी होती हैं।

रैबिट

(Lepus Cuniculus)

बाह्यरूप में रैबिट भी ख़रगोश के समान होते हैं, किन्तु उनका क़द कुछ छोटा होता है। रैबिट के कान और टाँगें भी उतनी बड़ी नहीं होतीं। किन्तु रैबिट भाँटा खोद के भूमि के भीतर रहता है और ख़रगोशों के स्वभाव के विपरीत रैबिट अकेला नहीं रहता वरन् दल में।

ख़रगोश के बच्चों की आँखें जन्म के समय से खुली होती हैं किन्तु रैबिट के बच्चे कुत्तों के बच्चों के समान अन्धे उत्पन्न होते हैं अतः रैबिट के बच्चों को किसी सुरक्षित स्थान की अधिक आवश्यकता होती है।

रैबिट ख़रगोश से भी अधिक बहुसंतानी होता है। मादा के प्रतिवर्ष ४ से ८ बार तक बच्चे होते हैं। तीन सप्ताह में बच्चे स्वयं अपना निर्वाह करने के योग्य हो जाते हैं और अपना भाँटा भी अलग खोद लेते हैं।

रैबिट योरप के दक्षिणी देशों में और अफ़्रीक़ा के उत्तर में मिलता है किन्तु क्रमशः वह पृथ्वी के अन्य भागों में भी फैलता जाता है।

रैबिट (The Rabbit)
पृष्ठ ४२६

लेगोमिस (Lagomys Roylei)
पृष्ठ ४२७

बीवर (Castoridæ) पृष्ठ ४२८

मोल (Talpa) पृष्ठ ४३८

हेजहॉग (The Hedgehog) पृष्ठ ४४१

आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड के द्वीप में पहले न ख़रगोश थे न रैबिट। इन देशों में, मांस के लिए, रैबिट जंगलों में छोड़े गये हैं। वहाँ रैबिट की इतनी अत्यधिक वृद्धि हुई कि उनके द्वारा कृषि और उद्यानों को बड़ी हानि पहुँचने लगी। आस्ट्रेलिया में मांसभोजी जातियों की कमी होने के कारण उनकी वृद्धि कम करने के कोई उपाय न थे। अन्त में निर्दयी होकर कृषकों को उनकी संख्या कम करने के उपाय सोचने पड़े। समय समय पर अब उनका खेदा करके सहस्रों रैबिट बाड़ों में घुसाके बन्द कर लिये जाते हैं और सब के प्राण ले डाले जाते हैं।

मांस के लिए रैबिट प्रायः पाले भी जाते हैं और उनकी कई नसलें भी उत्पन्न कर ली गई हैं। शरद्-ऋतु में लण्डन को बेलजियम आदि देशों से सहस्रों मन रैबिट का मांस भेजा जाता है। रैबिट पालनेवालों को अच्छा मुनाफ़ा हो जाता है। प्रत्येक मादा के कम से कम ३० बच्चे वर्ष में हो जाते हैं और हिसाब लगाया जाता है कि इनको खिलाने-पिलाने का ख़र्च निकालके १५-१६ शिलिंग का मुनाफ़ा बेचे जाने पर हो जाता है।

लेगोमिस

(LAGOMYS ROYLEI)

यह छोटा सा ख़रगोश हिमालय पर्वत पर १०-११ हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर मिलता है।

लेगोमिस के दाँतों की रचना ख़रगोश के समान होती है, कान छोटे और अण्डाकार होते हैं। लेगोमिस का शरीर केवल ६-७ इंच का होता है और दुम बिलकुल नहीं होती। उसका कण्ठस्वर सीटी के समान होता है। लेगोमिस गहरे गहरे भाँटे खोद लेता है और पथरीली भूमि में वास किया करता है। इनके झुण्ड संग संग रहा

करते हैं और ज़रा सा भी आहट होते ही अपने अपने बिलों में घुस जाते हैं।

लेगोमिस की कई उपजाति सायबेरिया और अमेरिका में भी मिलती हैं। इसकी कोई कोई उपजाति जो शीतप्रधान देशों में वास करती हैं शीतकाल के आरम्भ होने से पूर्व अपने भोजनों के लिए घास एकत्रित कर लिया करती हैं। घास को पहले ये परिश्रमी जीव धूप में ख़ूब सुखा लेते हैं और तब अपने बिलों के सामने उसके दो दो गज़ ऊँचे ढेर लगा लेते हैं। इन बेचारे छोटे जन्तुओं के द्वारा जमा की हुई भोजन-सामग्री पर यदि कभी किसी बड़े शाकभोजी की आँख पड़ जाती है तो वह ज़रा सी देर ही में चट कर डालता है।

बीवर-वंश

(THE CASTORIDÆ)

केस्टोराइडे-वंश में बीवर नामक जन्तु को स्थान दिया जाता है। बीवर की दो उपजाति पृथ्वी पर मिलती हैं एक योरप में और दूसरी अमेरिका में।

बीवर एक अद्भुत जन्तु है। उसकी रचना, स्वभाव, परिश्रम, सहयोग और सहकारिता सब ध्यान देने योग्य हैं।

बीवर का शरीर लगभग दो फ़ुट का होता है और दुम की लम्बाई लगभग एक फ़ुट की होती है। कुतरनेवाली श्रेणी का बीवर सबसे बड़ा प्राणी है। उसका बोझ प्रायः ३५ पौंड का होता है किन्तु कोई कोई बड़े बड़े नर इससे भी अधिक बोझ के होते हैं।

बाह्यरूप में बीवर सुन्दर प्रतीत होनेवाला जन्तु नहीं है। उसका शरीर भारी और कुछ चपटा सा प्रतीत होता है। शिर बड़ा और आँखें छोटी होती हैं। ऊपरी ओठ दो भागों में विभक्त होता है जिसके कारण बीवर के सामनेवाले कृंतक दन्त बाहर से दिखाई

पड़ते हैं और उसकी आकृति कुछ कुरूप-सी प्रतीत होती है। उसकी चौड़ी दुम बहुत चपटी होती है। पिछले पैर आगे की अपेक्षा बहुत बड़े होते हैं। फैली हुई उँगलियाँ सब एक खाल से मढ़ी होती हैं। बीवर का अधिकांश समय जल में व्यतीत होता है और उसकी चपटी दुम और मढ़े हुए पञ्जे उसको तैरने में बड़ी सहायता देते हैं। बीवर पक्का तैराक भी होता है और गोता लगाके प्राय: दो दो मिनट तक ऊपर नहीं आता। उसके कान छोटे छोटे होते हैं। शरीर का ऊपरी भाग कत्थई बालों से ढका होता है। अधोभाग में भूरे बाल होते हैं। बीवर का समूर अत्यन्त कोमल और उपयोगी होता है। शरीर पर पहले एक तह घने, छोटे, ऊनी बालों की होती है जो जल में भीगती नहीं। बाहरी तह लम्बी और चमकदार बालों की होती है।

स्वभावत: बीवर अत्यन्त स्वच्छ रहनेवाला प्राणी है और अपने वासस्थान को भी स्वच्छ और शुद्ध रखता है। एक सुप्रसिद्ध जन्तुशास्त्रवित् बतलाते हैं कि एक बन्दी बीवर अपने कटहरे के केवल उसी भाग को मल और मूत्र से गन्दा किया करता था जो खिड़की के समीप था। और ज्योंही खिड़की खोली जाती थी वह अपने पञ्जों से सारे मल को बाहर फेंक दिया करता था।

बीवर सहवासप्रिय है और एक ही घर में कई बीवर मिलके रहा करते हैं। प्राय: एक ही स्थान में बहुत से घर हुआ करते हैं और बीवरों का दल का दल उनमें वास करता है।

कुछ समय पहले बीवर के समूर की बहुत बड़ी माँग थी। १७ वीं तथा १८ वीं शताब्दी में किसी अन्य जन्तु की खाल का इतना बड़ा व्यवसाय नहीं था जितना कि बीवर की खाल का था, क्योंकि काले रेशमी कपड़े के टोप जब तक प्रचलित नहीं हुए थे बीवर की खाल ही के टोप बनाये जाते थे। बीवर

की खाल टोप बनाने के काम में इतनी अधिकता से आती थी कि प्राय: "बीवर" शब्द का अर्थ ही 'टोप' होगया था। एक ग्रन्थकार बतलाते हैं कि १६० वर्ष हुए अकेले किबिक नगर से १,२७,००० बीवर की खालें बाहर भेजी जाती थीं। खाल के लिए बीवर जाति का मनुष्य के हाथ से ऐसा विध्वंस हुआ जिससे बहुत बड़ा भय हो रहा है कि शायद किसी दिन बीवर भी पृथ्वी पर से लुप्त न हो जाय। केनाडा एवं अमेरिका की संयुक्त रियासतों ने अब क़ानून के द्वारा उनको रक्षित कर रखा है। किसी को बीवर मारने की आज्ञा नहीं है।

अमेरिका का बीवर अपने गृह-निर्माण-कौशल के लिए प्रसिद्ध है। सारे प्राणिवर्ग में कदाचित् ऐसा निपुण इंजीनियर कोई जीव-जन्तु नहीं होता। बीवर का परिश्रम तथा धैर्य्य आश्चर्यजनक है। जब तक स्वयं न देखा जावे यह विश्वास करना कठिन है कि बीवर नदियों के आर पार बड़े बड़े बाँध बनाके नदियों का प्रवाह रोक देता है।

बीवर सर्वथा अपना घर नदी के किनारे बनाता है। घर का बाहरी आकार मन्दिर के गुंबद के समान होता है और उसके निर्माण के लिए वह वृक्षों की लकड़ियाँ, टहनियाँ आदि काम में लाता है। गुंबद के ऊपर बीवर मिट्टी, काई आदि का पलस्तर ऐसे उत्तम रूप से कर देता है कि उसमें वृष्टि का जल एक बूँद भी नहीं जाता। टहनियों को वह इस प्रकार गूँधता है कि गुंबद सुदृढ़ बन जाता है। गुंबद के नीचे उसके वासस्थान का व्यास ६-७ फ़ुट या कभी इससे भी अधिक होता है।

घर से बाहर जाने के लिए वह दो मार्ग बनाता है और बीवर ऐसा प्रयत्न करता है कि इनमें से कम से कम एक द्वार सर्वथा जल के भीतर डूबा रहे। इसी मार्ग से भागकर, यदि कभी

आवश्यकता पड़ जाय, वह जल में शरण लेता है और इसी मार्ग के द्वारा वह अपनी भोजन-सामग्री घर में पहुँचाता है।

इस मार्ग की उपयोगिता के लिए परमावश्यक यह है कि उसके द्वार के सामने सम्पूर्ण वर्ष गहरा जल भरा रहे। ग्रीष्म ऋतु में द्वार के सामने जल इतना कम न होने पावे कि वह जल से ऊपर निकल जाय और शरद्-काल में जब बरफ़ जमे तो जल इतना गहरा रहे कि बरफ़ की तह द्वार को बन्द न करने पावे।

द्वार के सामने गहरा जल एकत्रित रखने के उद्देश्य से बीवर, अपने घर के समीप ही एक या दो बाँध नदी के आर पार बना देता है। इन बाँधों के द्वारा नदी के प्रवाह में रुकावट पड़ जाती है और बीवर के द्वार के सामने सम्पूर्ण वर्ष गहरा जल भरा रहता है।

बीवर के बनाये हुए किसी किसी बाँध में लकड़ी और पतली टहनियाँ गुँधी होती हैं और बाहर की ओर पलस्तर किया हुआ होता है किन्तु कोई कोई बाँध मिट्टी के ठोस बने होते हैं। बाँधों में जहाँ तहाँ पत्थर भी लगे होते हैं जो बोझ में एक पौंड से छः पौंड तक के होते हैं। पत्थर वा मिट्टी बीवर खड़े होके हाथों पर ले जाते हैं।

मिट्टी के ठोस बाँध अत्यन्त सुदृढ़ होते हैं और उन पर घोड़ा चला जा सकता है। जिस नदी का प्रवाह तेज़ होता है उसमें प्रायः मिट्टी के ठोस बाँध बनाये जाते हैं, अन्य नदियों में टहनियों के बाँध काम दे जाते हैं।

मिस्टर मॉर्गन लिखते हैं कि "बीवर के गृह-निर्माण में सबसे मुख्य, बड़ा, और महत्त्व का काम बाँध का बनाना होता है। असीम परिश्रम और धैर्य्य के बिना उसका निर्माण करना और बनाके सुरक्षित रखना संभव नहीं हो सकता। घर बनाने से पहले बीवर को बाँध का बना लेना आवश्यक होता है क्योंकि घर की भूमि की और घर

में प्रवेश करने के रास्तों की ऊँचाई उस जल की ऊँचाई के अनुसार रखनी होती है जो बाँध के कारण रुक के भरा रहता है।"*

बाँध के बनाने में बीवर ऐसी चतुराई से काम लेता है कि हमको स्वीकार करना पड़ता है कि विज्ञान के सिद्धान्तों से भी वह परिचय रखता है। जन्तुशास्त्रवित् मिस्टर हज़े हमारा ध्यान इस सम्बन्ध में अनेक विषयों की ओर आकर्षित करते हैं—"नदी के प्रवाह की ओर बाँध का पार्श्वभाग बीवर ढालू रखता है और दूसरा पार्श्व सीधा। जल के वेग को तोड़ने के लिए इससे उत्तम और कोई उपाय नहीं है। जल-विज्ञान (Hydraulic Science) का इससे भी अधिक ज्ञान किसी किसी विषय में बीवर दिखाता है। साधारण नदियों में बाँध को वे एक सीधी रेखा में बना लेते हैं, किन्तु यदि बाँध किसी ऐसे स्थान में बनाने हैं जहाँ ढाल के कारण नदी का जल सवेग बहता है तो बीवर बाँध में थोड़ी गोलाई दे देते हैं और जल के वेग को तोड़ देते हैं।†

बाँध बनाने के लिए कोई उपयुक्त स्थान चुनके बीवर प्रथमत: लकड़ियों की प्राप्ति के लिए पेड़ गिराना आरम्भ करते हैं। पिछली टाँगों पर खड़े होके वे, अपने छेनी के-से तीक्ष्ण दाँतों से पेड़ को चारों ओर कुतरने लगते हैं। लकड़ी को कुतरने में वे ऐसे कुशल होते हैं कि दो तीन रात ही के काम में बीवर का केवल एक जोड़ा छोटे मोटे पेड़ गिरा लेता है।

किसी किसी का मत है कि बीवर सर्वथा वृक्षों को इस प्रकार कुतरते हैं कि वे जल ही में गिरें। वृक्ष को गिराके वे उसके तने एवं शाखाओं में से छोटी छोटी लकड़ियाँ काटते हैं। यदि वृक्ष तटस्थ नहीं होता तो वे इन छोटी छोटी टहनियों को घसीट के किनारे

---

* "The American Beaver and His Work," by L. H. Morgan.
† Frederick Houssay, "The Industries of Animals."

ले जाते हैं और जल में गिराके उनको उस स्थान तक पहुँचाते हैं जहाँ बाँध का निर्माण करना निश्चित हुआ होता है। उस स्थान पर पहुँच के वे इन लकड़ियों को गढ़ना, चुनना, दबाना, खड़ा करना, या एक दूसरे में पिरोना आरम्भ करते हैं। बीच बीच में मिट्टी, पत्थर आदि भी लगाते जाते हैं।

प्रत्येक बाँध के निर्माण में सैकड़ों बीवरों को अविश्रान्त परिश्रम करना होता है। दल का प्रत्येक जन्तु अपना अपना कर्तव्य निबाहता है, कोई त्रुटि नहीं करता, किसी को किसी की निरीक्षणता की आवश्यकता नहीं होती। कमी केवल इतनी ही होती है कि उनके काम में कोई क्रम अथवा नियम नहीं होता। जिसको जो सूझता है सो वह करता चलता है।

किसी किसी वृक्ष की टहनियों में जड़ें फूट आती हैं और शनैः शनैः वह बढ़के बड़े बड़े वृक्ष हो जाते हैं। पुराने बाँधों पर प्रायः वृक्ष देखे जाते हैं।

यदि वृक्ष किनारे से दूर होते हैं तो बीवर और भी अधिक चमत्कार दिखाते हैं। भूमि पर लकड़ी घसीटने में बीवरों को उतनी सुविधा नहीं होती जितनी कि जल में। अतः लकड़ियाँ पहुँचाने के लिए लम्बी लम्बी नहरें खोद डालते हैं। ये नहरें ३-४ फ़ुट चौड़ी और इतनी ही गहरी होती हैं। चार या पाँच सौ फ़ुट लम्बी नहर खोद लेना बीवर के लिए मामूली बात है।

उपरोक्त मिस्टर मॉर्गन ने एक बाँध की लम्बाई नापी थी। वह २६० फ़ुट लम्बा था। किन्तु कोई कोई बाँध ४०० या ५०० फ़ुट लम्बे भी मिले हैं।

बाँध तैयार हो जाने पर जब गहरा जल भर जाता है तो बीवर अपना वासस्थान बनाना आरम्भ कर देता है।

बीवर अपने घर की मरम्मत भी करता रहता है। जब जब घर की कोई लकड़ी सड़ती है बीवर उसके बाहर की ओर नई लगाते जाते हैं और सड़ी हुई लकड़ी को निकालते जाते हैं। अतएव निरन्तर घर की मरम्मत होती रहने के कारण उसका विस्तार भी बढ़ता जाता है।

कीटभुक्-श्रेणी

(THE INSECTIVORA)

साधारण विवरण

कीटभुक्-श्रेणी में कुछ छोटे छोटे स्तनपोषित जन्तु हैं, जिनकी जातियाँ, आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमेरिका को छोड़कर, पृथ्वी के अन्य सब भागों में मिलती हैं। नाम ही से ज्ञात हो जाता है कि उनका निर्वाह कीड़े-मकोड़े पर हुआ करता है, परन्तु कोई कोई बड़ी जातियाँ अन्य छोटे छोटे प्राणियों को भी मारके खा लेती हैं।

इनकी दंत-रचना कीड़ों को पकड़ने और कुचलने के लिए विशेष-रूप से उपयुक्त है। सामनेवाले दाँतों की संख्या दोनों जबड़ों में ८-८ होती हैं, किन्तु इनमें से बीच के ६ दाँत कृन्तक माने जाते हैं, और इधर-उधर को दो कीले होते हैं। अधिकांश जन्तुओं में कीले कृंतक दाँतों से बड़े होते हैं किन्तु कीटभोजियों के कीले प्रायः कृंतक दाँतों से छोटे होते हैं। ये दोनों प्रकार के दाँत आकार में नुकीले होते हैं। प्रायः कीटभोजियों के ऊपर और नीचे के जबड़ों के सामनेवाले दाँतों की संख्या असमान होती है। कीटभोजियों की डाढ़ों के ऊपर छोटी छोटी गाँठें उठी होती हैं जो कड़े छिलकेवाले कीड़ों को कुचलने के लिए उपयोगी होती हैं।

कीटभोजियों का कपाल छोटा किन्तु थूथन पतला और लम्बा होता है। प्रोथ में सामने को नथुने होते हैं जिससे प्रमाणित होता है कि ये जन्तु अपने शिकार की खोज घ्राणेन्द्रिय के द्वारा करते होंगे। बहुधा उनकी आँखें और कान बहुत छोटे होते हैं।

कतिपय भूमि के भीतर के रहनेवाले हैं। उनके हाथ पैर प्राय: पाँच भाग में विभक्त होते हैं जिन पर पुष्ट नख होते हैं। चाल में सभी कीटभोजी पदतलचर जन्तु (Plantigrade) हैं।

कीटभोजी प्राणी बहुधा भीरु और मंदगामी जन्तु होते हैं। उनकी बुद्धि भी निर्बल होती है।

कतिपय जातियों के शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाली ग्रन्थियाँ होती हैं। इस दुर्गन्ध के द्वारा उनकी हिंस्र जन्तुओं से रक्षा होती है क्योंकि उसके कारण कोई मांसभोजी उनको नहीं खाता।

कीटभोजी-कक्षा के अंतर्गत नीचे लिखे वंश हैं :—

१ छछूँदर-वंश (Sorcedæ)

२ मोल-वंश (Talpidæ)

३ काँटेदार-चूहे (Erinacidæ)

४ पेड़ों की छछूँदर (Tupaiadæ)

छछूँदर-वंश

(Sorcidæ)

छछूँदर-वंश के छोटे छोटे जन्तु रचना में चूहों के समान होते हैं किन्तु उनका थूथन बहुत लम्बा होता है। शरीर पर कोमल बाल होते हैं। आँखें छोटी और दृष्टि बहुत निर्बल होती है। सूर्य्य की चमक में छछूँदर अपनी आँखें नहीं खोल सकता। इस लिये ये जन्तु दिन में अपने बिलों से कभी बाहर नहीं आते।

ऊपरवाले जबड़े में बीच के दोनों कृंतक दाँत बड़े, और हुक के समान झुके, होते हैं। डाढ़ों पर गाँठें होती हैं। पैरों में पाँच पाँच उँगलियाँ होती हैं। शरीर के दोनों पार्श्व में एक एक ग्रन्थि होती है जिसमें उत्पन्न होनेवाले द्रव के कारण छछूँदर के शरीर से तीव्र दुर्गन्ध निकला करती है।

हिन्द का साधारण छछूँदर (Sorex Cærulescens)—इस उपजाति का छछूँदर हिन्द के सभी स्थानों में मिलता है। रात्रि में नालियों में होके घरों में घुसता फिरता है और खटका होते ही "चिट, चिट, चिट" करके चीखता और भागता है।

शरीर की लम्बाई ६-७ इंच और दुम लगभग ४ इंच की होती है।

हिन्द के छछूँदर का दुर्गन्ध विशेषरूप से तीक्ष्ण होता है। बिल्ली उसका पीछा करती है किन्तु मुँह मारते ही छोड़ देती है और कहते हैं कि साँप भी उसके दुर्गन्ध के कारण भाग जाता है। साँप और छछूँदर का सामना हो जाने की एक घटना एक साहब इस प्रकार वर्णित करते हैं। "पानी के एक छोटे से कुण्ड में एक साँप लिपटा पड़ा था और एक छछूँदर भी किसी प्रकार कुण्ड में पहुँच गया था। छछूँदर इतस्ततः चलता फिरता था और कभी कभी साँप पर मुँह मारता था। एक बार साँप भी चौंका और दोनों एक दूसरे से भिड़ पड़े। जब दोनों छूटे तो साँप के शरीर से रक्त बह रहा था किन्तु छछूँदर को कोई हानि न पहुँची थी। सहसा साँप ने एक मेढक पेट से उगल दिया और छछूँदर ने उसको तुरन्त खाना शुरू कर दिया। सम्भवतः इसी मेढक पर लड़ाई हुई थी।"

छछूँदर यदि काग लगी बोतल पर से निकल जाता है तो उसकी गन्ध शराब में भर जाती है। हिन्दुस्तान में प्रायः शराब की बोतलें ऐसी मिलती हैं जिनके भीतर भरी हुई शराब में छछूँदर की बू आती है, किन्तु संभवतः यह बू काग में से शराब में पहुँचती है, न कि काँच में हो के।

योरप का छछूँदर (Sorex Vulgaris)—यह उपजाति योरप के मध्य और दक्षिण में होती है। इसकी छोटी छोटी आँखें

बालों से ढकी होती हैं। कान बड़े किन्तु ऐसे चपटे होते हैं कि बालों में छिपे रहते हैं। ये जन्तु ऐसे कलहप्रिय होते हैं कि जब कभी दो या अधिक व्यक्ति किसी स्थान में इकट्ठे हो जाते हैं तो बिना लड़े नहीं रहते और जो जीतता है वह दूसरे को सर्वथा खा डालता है।

मोल-वंश

(TALPIDÆ)

मोल भी एक प्रकार का छछूँदर है जो विशेषकर योरप में होता है। हिन्द में मोल केवल पूर्वी हिमालय और आसाम में खासिया पहाड़ियों पर मिलता है। इनका शरीर मोटा और छोटा होता है। अगले पैरों में अति पुष्ट खोदनेवाले नख होते हैं। पिछले पैर अगले पैरों की अपेक्षा निर्बल और छोटे होते हैं। आँखें बहुत छोटी छोटी होती हैं। किसी किसी की आँखों पर खाल चढ़ी होती है जिसमें कोई छिद्र ही नहीं होता। बाहरी कान बिलकुल नहीं होते किन्तु मोल की श्रवणेन्द्रिय बहुत अच्छी होती है। छछूँदर के समान मोल भी भूमि के भीतर रहता है।

मोल

(THE MOLE—TALPA)

मोल का शरीर मांस के लोथड़े के समान प्रतीत होता है क्योंकि उसके शरीर में गरदन का पता नहीं होता। उसके पुष्ट हाथ-पैरों की रचना देखकर प्रत्यक्ष-रूप से विदित हो जाता है कि वह भूमि के भीतर रहनेवाला जन्तु है। अगले पैर चौड़े चौड़े, फावड़े के समान होते हैं और उन पर ५-५ चपटे, खनित्र नख होते हैं। तलवे

बाहर को मुड़े होते हैं जिससे वह खोदी हुई मिट्टी को दायें-बायें बड़ी सुविधा से फेंक सकता है।

अपने वासस्थान के बनाने में मोल अद्भुत चतुराई से काम लेता है। उसमें बिलों का एक जाल सा पुरा रहता है और बाहर निकलने के कई रास्ते होते हैं। कोई मोल किसी दूसरे मोल को अपने घर में प्रवेश नहीं करने देता। किन्तु कभी कभी ऐसा होता है कि बहुत से मोलों के बिल पास पास होते हैं और सबके रास्ते एक दूसरे से मिल जाते हैं। ऐसे रास्तों पर आने-जाने का सबको अधिकार होता है। हाँ इतना अवश्य होता है कि जब दो मोल आमने सामने से आ जाते हैं तो उनमें से जो छोटा होता है वह हटके बड़े मोल को रास्ता दे देता है।

मोल एक बहुभोजी जन्तु है और भूख उससे बिलकुल सहन नहीं की जाती। क्षुधा-पीड़ित होते ही वह पागल सा हो जाता है। शिकार मारके वह पहले उसका पेट फाड़ डालता है और गरम गरम रक्त और मांस में अपना थूथन घुसा देता है। यदि ८-१० घण्टों तक उसको कुछ भोजन प्राप्त नहीं होता तो उसकी मृत्यु हो जाती है। भूख में वह अपने से बड़े जन्तुओं पर भी आँख मूँदके आक्रमण कर बैठता है। यदि दो भूखे मोल किसी स्थान में बन्दकर दिये जायँ तो शीघ्र ही एक रह जाता है, जो बलवान् होता है वह दूसरे को मारके तुरन्त खा लेता है।

मोल जल में भी तैर सकता है और अहला आ जाने पर तैरके ऊँचे ऊँचे स्थानों में जा पहुँचता है और अपने प्राण बचा लेता है।

सुनहरा मोल (The Golden Mole or Chrysochloris)—मोल की यह जाति केवल दक्षिणी अफ्रीका में मिलती है और उसके ७-८ उपजातियाँ पाये जाते हैं। उसके धूपछाँह के से रङ्ग में सुनहरा, हरा और बैंजनी रङ्ग मिश्रित होता है।

काँटेदार चूहे या हेजहॉग-वंश

(THE ERANICIDŒ)

इस वंश की मुख्य जाति हेजहॉग है जिसकी पीठ पर बालों की जगह छोटे छोटे काँटे होते हैं। उसका शरीर छोटा सा कोई ८ या ९ इंच का होता है। टाँगें छोटी और पञ्जों में लम्बे नख होते हैं, किन्तु ये नख खनितृ नहीं होते। कीटभोजियों का थूथन लम्बा हुआ करता है परन्तु हेजहॉग का छोटा सा होता है।

हेजहॉग के शरीर पर काँटों के नीचे मोटे मोटे बाल भी होते हैं। उसकी पीठ पर कुछ ऐसे पुट्ठे होते हैं जिनके द्वारा वह काँटों को खड़ा कर सकता है और अपने शरीर को गेंद के समान गोल लपेट लेता है। थूथन, मुँह, पञ्जे सब पेट के नीचे छिप जाते हैं और चारों ओर काँटे ही काँटे देख पड़ते हैं। दुम बहुत छोटी सी होती है। दाँतों की रचना निम्न-लिखित होती है :—

कृंतक दंत $\frac{३-३}{३-३}$, दूधडाढ़ें $\frac{४-४}{२-२}$, डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$ = ३६

हेजहॉग के मुँह में कीले नहीं होते। डाढ़ें आकार में चौखूँटी होती हैं और उन पर सभी कीटभोजियों के समान गाँठें उठी होती हैं। हेजहॉग की घ्राणेन्द्रिय तीक्ष्ण किन्तु दृष्टि निर्बल होती है।

हेजहॉग एक सुस्त और आलस्यशील जन्तु होता है और उसकी चाल धीमी, भद्दी और लड़खड़ाती हुई सी होती है। किन्तु चूहों के पकड़ने में वह बिल्ली से भी ज़्यादा दक्ष होता है। जिस घर में हेजहाँग का गुज़र हो जाता है वहाँ चूहों का नाम भी नहीं रह जाता।

हेजहाँग में एक बड़ा गुण सर्पनाशक होने का है। उसको साँप के विष से कोई हानि नहीं होती। बहुधा जब साँप मुँह मारता है तब हेजहाँग आँख झपकते अपने काँटे खड़े कर लपट जाता है। एक

बार एक साँप और हेजहॉग एक बक्स में परीक्षार्थ छोड़े गये। साँप गोल गोल लपट के लेट रहा। थोड़ी देर में हेजहॉग धीरे से साँप के पास आया तो साँप ने उसकी नाक में काट लिया और एक बूँद रक्त का भी निकल आया। हेजहॉग हट गया और घाव को चाटता रहा। शीघ्र ही वह फिर लौटा तो साँप ने उसकी जीभ में काट लिया। किन्तु हेजहॉग ज़रा भी न डरा और साँप को मुँह से पकड़ लिया। दोनों क्रोध में भर गये। साँप बारम्बार उसको काटता था और हेजहॉग साँप को झकझोरता था। सहसा हेजहॉग ने साँप को दबा लिया और क्षणमात्र में उसको चबा डाला। तब शान्तरूप से बैठकर उसने साँप का अगला धड़ खा डाला।

अपनी रक्षा के लिए हेजहॉग अपने काँटों ही पर आश्रित रहता है। शत्रु को देखते ही वह काँटों को खड़ा करके गोल गेंद सा बन जाता है और शरीर के सारे कोमल अंगों को छिपा लेता है। उसके काँटों के कारण फिर उस पर कोई जन्तु मुँह नहीं मारता। हेजहॉग मारे पीटे जाने पर, अथवा उछाले जाने पर भी मुँह नहीं निकालता। केवल जल में डाल दिये जाने पर वह मुँह निकालता है क्योंकि पानी में डूब जाने का उसको भय होता है।

हेजहॉग भाँटा नहीं खोदता वरन् झाड़ियों में घास, पत्ते आदि एकत्रित कर, उन्हीं पर पड़ा रहता है।

हेजहॉग की बहुत सी उपजाति पृथ्वी पर मिलती हैं।

योरप का हेजहॉग (Erinaceous Europeus) योरप में सर्वत्र मिलता है।

उत्तरी हिन्द का हेजहॉग (Erinaceous Collaris) सिन्ध, पञ्जाब और संयुक्त-प्रान्त में मिलता है। इसके कान कुछ लम्बे होते हैं और काँटों का रङ्ग काला और सफ़ेद होता है।

दक्षिणी हिन्द में भी हेजहॉग की एक उपजाति (Erinaceous Micropus) नीलगिर पहाड़ पर मिलती है।

टेनरेक

(THE TENRECS—CENTETES)

हेजहॉग-वंश की एक प्रसिद्ध जाति (genus) टेनरेक है जिसकी कई उपजातियाँ केवल मैडेगास्कर द्वीप पर मिलती हैं।

टेनरेक हेजहॉग के भाई-बन्धु हैं किन्तु उनका थूथन बहुत लम्बा होता है और भिन्न भिन्न उपजाति के शरीर पर छोटे या बड़े काँटे होते हैं किन्तु किसी किसी उपजाति के शरीर पर बिलकुल काँटे नहीं होते।

टेनरेक में अपना शरीर बिलकुल गोल लपेट लेने की शक्ति नहीं होती वरन् उसके शरीर का कुछ भाग खुला रह जाता है।

कोई कोई टेनरेक ऐसे बहुसन्तानी होते हैं कि उनकी मादायें प्रत्येक बार १५-१६ बच्चे देती हैं और २१ बच्चे तक एक बार में एक माँ के देखे गये हैं।

पेड़ों का छछूँदर

(TUPAIA)

इस वंश में कुछ कीटभोजी जन्तु सम्मिलित हैं जो वृक्षों पर रहते हैं और जो बाह्यरूप और स्वभावों में गिलहरियों के समान होते हैं। इनके थूथन लम्बे, कान अण्डाकार, दुम लम्बी और झबरे बालों से ढकी होती है। ये जन्तु अपना निर्वाह कीड़े-मकोड़ों और फलों पर किया करते हैं। गिलहरी के समान ये जन्तु भी भोजन को अगले पैरों से पकड़कर खाते हैं। इनकी बहुत सी उपजाति हिन्द, ब्रह्मा, मलय और निकटवर्ती द्वीपों में मिलती है।

श्यिकिम का वृक्षवासी छछूँदर (Tupaia Peguana)—इसका शरीर लगभग आधे फुट का और दुम भी इतनी ही बड़ी होती है। रङ्ग धुमैला भूरा कुछ हरापन लिये हुए होता है।

मलय का वृक्षवासी छछूँदर (Tupaia Ferruginea)—ये अति चञ्चल स्वभाव के प्राणी हैं। सम्पूर्ण दिन वृक्षों पर, विलक्षण फुर्ती से, अद्भुत छलाँगें भरते रहते हैं। पिँजरे में बन्द कर दिये जाने पर भी वे क्षणमात्र को चुप नहीं बैठ सकते वरन् निरन्तर उछलते कूदते रहते हैं।

चमगादड़-श्रेणी

(CHEIROPTERA)

साधारण विवरण

स्तनपोषित-समुदाय में चमगादड़-श्रेणी के जन्तु सबसे विभिन्न और अनोखे हैं, क्योंकि सारे समुदाय में इन्हीं को प्रकृति ने उड़ने के लिए अङ्ग दिये हैं। यह बात ध्यान में रखना है कि चमगादड़ पक्षी नहीं है। स्तनपोषित-समुदाय का मुख्य जातिलक्षण उनमें मैजूद है अर्थात् उनके बच्चों का पालन स्तनों के दूध से होता है। मादा के दो स्तन होते हैं। सिवाय इसके कि चमगादड़ नभोमण्डल में उड़ सकता है, उसमें और पक्षियों में कोई समानता नहीं होती– उदाहरणतः चमगादड़ों की हड्डियाँ पक्षियों की हड्डियों के समान पोली नहीं होतीं।

चमगादड़ के शरीर के दोनों पार्श्व भागों की खाल बढ़कर उसकी भुजाओं और हाथों की उंगलियों पर मढ़ी होती है। हाथों की उंगलियाँ अत्यन्त लम्बी होती हैं और छाते की तीलियों के समान प्रतीत होती हैं। परन्तु हाथों के अँगूठे छोटे छोटे होते हैं और उन पर उड़ान की झिल्ली मढ़ी नहीं होती।

उड़ान की खाल झिल्ली के समान होती है और उसमें दो तहें होती हैं। एक तह पीठ की खाल से बढ़कर आती है और दूसरी तह पेट की खाल से। ये झिल्लियाँ लोमहीन होती हैं।

झिल्लियाँ पिछली टाँगों पर भी कुछ दूर तक मढ़ी होती हैं किन्तु वे पैरों की उंगलियों तक कभी नहीं पहुँचतीं।

चमगादड़ (Cheiroptera)
पृष्ठ ४४४

उड़नेवाली लोमड़ी (The Flying Fox) पृष्ठ ४४७

आई-आई (The Aye-Aye) पृष्ठ ४५६

मारमोसट (Mar-
moset)
पृष्ठ ४५७

मकड़ी बन्दर (Ateles)
पृष्ठ ४६०

गिलहरी बन्दर (Chrysothrix)
पृष्ठ ४६२

उड़ान समाप्त करने पर जब चमगादड़ विश्राम करता है तो उड़ान की झिल्ली छाते के समान बन्द होके उसके शरीर पर लिपट जाती है।

भूमि पर चमगादड़ बड़ी कठिनाई से थोड़ा बहुत घसिट सकता है, और भूमि पर बैठ जाने पर फिर उसको उड़ने में बड़ी कठिनाई होती है। भूमि पर से बहुधा वह, अपने हाथों के अंगूठों और पैरों की उंगलियों की सहायता से, किसी वृक्ष, भीति आदि पर चढ़ जाता है और कुछ ऊपर पहुँच जाने पर उछल के वायु में अपने पंख खोल लेता है। इसी कठिनाई के कारण चमगादड़ यथासंभव भूमि पर कभी नहीं उतरता वरन् विश्राम करने के लिए अँधेरी गुफाओं में या पेड़ के खोखलों अथवा जनशून्य घरों की छतों से उलटा लटका रहता है।

सम्पूर्ण दिन चमगादड़ किसी अँधेरे स्थान में लटका सोता रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि चमगादड़ की आँखें अत्यन्त निर्बल होती हैं और सूर्य्य के प्रकाश में खुल नहीं सकतीं।

चमगादड़ की उड़ान की झिल्लियाँ स्पर्शेन्द्रिय का काम देती हैं। सारे प्राणिवर्ग में चमगादड़ की स्पर्शेन्द्रिय के समान किसी अन्य जन्तु की स्पर्शेन्द्रिय तीक्ष्ण और सचेत नहीं होती। अंधकारमय गुफाओं में चमगादड़ उतनी ही सुविधा से उड़ते रहते हैं जैसे पक्षी दिन के प्रकाश में। अद्भुत चतुराई से वे कोनों, पत्थरों, और चट्टानों से टकराने से बचते रहते हैं। घोर अंधकार में चमगादड़ की आँखें तो काम दे नहीं सकतीं, वरन् उसकी स्पर्शेन्द्रिय ही पथप्रदर्शक होती है। इस सम्बन्ध में अनेक परीक्षायें की जा चुकी हैं। एक बार एक कमरे में कुछ पतले धागे आरपार बाँध दिये गये थे और उसमें कुछ चमगादड़ छोड़े गये जिनकी आँखें एक लसदार पदार्थ से चिपका दी गई थीं। चमगादड़ कमरे में उड़ते फिरे किन्तु वे किसी धागे से

न टकराये। शरीर-रचना-शास्त्र के विद्वान् स्पेलानज़ानी (Spallanzani) ने कुछ चमगादड़ों की आँखें फोड़ के एक कमरे में छोड़कर देखे। दृष्टि-शक्ति न रहने से चमगादड़ों की उड़ान पर कोई प्रभाव न पड़ा। वे निःसंकोच कमरे में उड़ते फिरे और किसी वस्तु से न टकराये।

स्पेलानज़ानी तो यह देख के ऐसे आश्चर्यान्वित हुए कि उनकी सम्मति हुई थी कि शायद प्रकृति ने चमगादड़ों को कोई छठी इन्द्रिय दी है जो दृष्टि न रहते हुए भी उनको पता दे देती है कि कौन वस्तु उनसे कितनी दूर है।

किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से चमगादड़ों में यह शक्ति केवल उनकी सूक्ष्म स्पर्शेन्द्रिय के कारण होती है। जब चमगादड़ उड़ते हैं तो उनके पंखों से वायु में लहरें उठती हैं। ये लहरें चारों ओर फैलकर पदार्थों से टकराती हैं और टक्कर खाकर लौटती हैं। ये लौटती हुई लहरें चमगादड़ के पंखों से फिर टकराती हैं और उन्हीं के द्वारा उसको पता लग जाता है कि वह किसी विशेष पदार्थ के पास है या दूर और कितने अंतर पर है। इसी प्रकार जब कोई कीड़ा उड़ता हुआ चमगादड़ के पास से निकलता है तो कीड़े की उड़ान से जो लहरें वायु में उत्पन्न होती हैं उनके द्वारा चमगादड़ को तुरन्त ज्ञात हो जाता है कि कीड़ा किस दिशा में और कितनी दूर पर उड़ रहा है।

चमगादड़ की श्रवणेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय भी उत्तम होती हैं। कतिपय जातियों के नथुनों के ऊपर, पत्ती के आकार की, एक झिल्ली लगी होती है। इन झिल्लीवाले चमगादड़ों की घ्राणशक्ति विशेषरूप से तीक्ष्ण होती है।

पृथ्वी के शरद् भूभागों में रहनेवाले चमगादड़ चिरस्थायी विश्राम (Hybernation) किया करते हैं। किसी निरापद अँधेरे

स्थान में, उलटे लटक कर, वे कई मास तक निराहार सोते रहते हैं। इस अवधि में वे पूर्णरूप से चेष्टा-रहित रहते हैं। हाथ में लेने से, अथवा उछाल दिये जाने पर भी वे चैतन्य नहीं होते। उनकी शक्तियाँ ऐसी मन्द हो जाती हैं कि एक प्राणिशास्त्रवित् बतलाते हैं कि उनकी नाड़ी प्रति तीन मिनट में केवल एक बार चलती है, और वे श्वास इतनी देर देर में और इतने धीरे से लेते हैं कि उसका पता तक नहीं चलता। जितनी चर्बी वह ग्रीष्म ऋतु में एकत्रित कर लेता है वह सब घुल घुलकर उसके शरीर को जीवित रखता है।

मादा के प्रति बार एक बच्चा होता है जो अपने पिछले पैरों से माता की खाल पकड़के लटका रहता है।

चमगादड़-श्रेणी के जन्तु दो वंशों में विभाजित किये जा सकते हैं, अर्थात्—

(१) फलाहारी चमगादड़

(२) कीटभोजी चमगादड़

फलाहारी वंश का चमगादड़

(PTEROPODIDÆ)

चमगादड़-श्रेणी के सब बड़े जीव फलाहारी हैं। इनका थूथन लोमड़ी के समान लंबा और पतला होता है। अँगरेज़ी भाषा में इसी से इनका नाम उड़नेवाली लोमड़ियाँ पड़ गया है।

फलाहारी वंश के चमगादड़ों के कान बहुत छोटे छोटे होते हैं और दुम या तो होती ही नहीं या बहुत छोटी सी होती है।

फलाहारी चमगादड़ एशिया के उष्ण प्रदेशों में, ईस्ट इण्डीज़ द्वीपों में एवं आस्ट्रेलिया में मिलते हैं।

बादून (Pteropus Edwardsi)

फलाहारी वंश की टीरोपस जाति की यह उपजाति हिन्दुस्तान, ब्रह्मा, और लंका में मिलती है। इसको उत्तरी हिन्द में बादून और दक्षिणी हिन्द में गदल कहते हैं। चमगादड़-श्रेणी में यह सबसे बड़ा जीव है। उसके शरीर की लंबाई १४ इंच तक होती है और पंखों के फैलाये जाने पर एक सिरे से दूसरे तक की लंबाई पूरी ४½ फ़ुट होती है।

दिन में बादून पेड़ों पर उलटे लटके रहते हैं। जिस पेड़ पर ये बसेरा लेते हैं वह उनसे भर जाता है और वे उसको छोड़के किसी दूसरे पेड़ पर विश्राम नहीं करते। मार मारकर भगाये जाने पर भी वे अपने पेड़ को बड़ी कठिनाई से छोड़ते हैं। सारे दिन आँखें मूँदें लटकते रहते हैं, संध्या होते ही वृक्ष पर कुछ चहल पहल आरम्भ हो जाती है और वे एक डाल से दूसरी पर उड़ने लगते हैं। अँधेरा होते ही एक एक करके उड़कर चल देते हैं। फिर सम्पूर्ण रात्रि उदरभरण की चिन्ता में निमग्न रहते हैं। जामुन, गूलर, बेर आदि सब प्रकार के फल खाने के शौकीन होते हैं। फलों के बाग़ों में उनके द्वारा बड़ी हानि होती है।

प्रभात से पूर्व लौटकर अपने पेड़ पर फिर पहुँच जाते हैं और जो कोलाहल उस समय मचता है वह देखने और सुनने के योग्य होता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसी को सबसे ऊँचा स्थान मिल जाय, और उसके पास कोई दूसरा व्यक्ति न लटके। इन पारस्परिक झगड़ों में वे एक दूसरे को ख़ूब काटते और अँगूठे के लंबे नख से नोचते खसोटते हैं। सभी गला फाड़ फाड़ के कर्कश स्वर से चीख़ते चिल्लाते हैं।

यदि कोई जलाशय समीप होता है तो ये चमगादड़ प्रायः जल के बराबर उड़ते देखे जाते हैं। बादून के शरीर से तीक्ष्ण दुर्गन्ध निकलती है।

कीटभोजी चमगादड़-वंश—

चमगादड़ की अधिकांश जातियाँ कीटभोजी हैं, और पृथ्वी के प्रायः सभी भागों में पाई जाती हैं।

फाईलास्टोमा (Phyllostoma)—इस जाति के चमगादड़ों की रचना की यह विशेषता है कि उनकी नाक पर खाल अथवा झिल्ली की एक पत्ती सी खड़ी होती है। इनका मुँह बहुत चौड़ा खुलता है और जीभ पर काँटे होते हैं। ऊपरी जबड़े के पुष्ट कीले मुँह के बाहर निकले होते हैं। इस जाति के जीव केवल मध्य और दक्षिणी अमेरिका में मिलते हैं, और उनके स्वभावों के विषय में यात्रीगण और जन्तुशास्त्र के विद्वान् बड़ी भयंकर बातें सुनाते हैं। इन चमगादड़ों का संतोष केवल कीड़ों-मकोड़ों पर नहीं होता वरन् वे पशुओं का रक्त भी पिया करते हैं। गाय, बैल, घोड़ों के वे चिपट जाते हैं और खाल काटके रक्त को चूसते और पेट भर लेते हैं। सुप्रसिद्ध जन्तुशास्त्रवित् अज़ारा (Azara) बतलाते हैं कि मौक़ा पा जाने पर ये चमगादड़ आदमी के भी चिपट जाते हैं। स्वयं अज़ारा को कई बार इन रक्त के प्यासे चमगादड़ों का अनुभव हुआ। जंगलों में खुले सोते हुए ये चमगादड़ अज़ारा के पैर के अँगूठे में चि .ट जाते थे और ख़ून चूस लेते थे। किन्तु उनके काटने से इतनी कम पीड़ा होती है कि प्रायः मनुष्य की नींद भी नहीं टूटती।

वेस्परटीलियो (Vespertillio)— इस जाति में लगभग ४३ उपजाति मानी जाती हैं जिनमें बहुत सूक्ष्म पारस्परिक भेद होते हैं।

मूछदार चमगादड़ (Vespertillio Caliginosus)—इस छोटे से चमगादड़ का शरीर दुमसहित लगभग २½ इंच का होता है। ऊपरी ओंठ के दोनों ओर, बाहर को निकले हुए; मूछों के समान बाल होते हैं। इस जाति के जन्तु हिन्दुस्तान में पाये जाते हैं किन्तु बहुत कम।

रंगदार चमगादड़—(Kerivoula Picta)—इसका शरीर लगभग ३½ इंच का होता है। इस जाति के जीव हिन्दुस्तान में प्राय: सब जगह मिलते हैं। इसके शरीर के ऊपरी भाग का रंग नारंगी का सा होता है। नीचे भाग का रंग पीला होता है और चमकदार नहीं होता। उड़नेवाली झिल्ली का रंग बिलकुल काला होता है और उस पर नारंगी के रंग की धारियाँ पड़ी होती हैं। अपने सुन्दर रंग के कारण उड़ने में वह तितली के समान जान पड़ता है। केले के गोल, लिपटे हुए, नये पत्तों के भीतर प्राय: छिपा बैठा रहता है।

पीला चमगादड़ (Nycticejus Luteus)—इस जाति के शरीर की लम्बाई दुमसहित ५ इंच से कुछ अधिक होती है। वह कर्नाटक, उत्तरी हिन्द और बंगाल में होता है। हिन्दुस्तान से बाहर ब्रह्मा और आसाम में भी पाया जाता है।

बड़े कानवाला चमगादड़ (Magaderma Lyra)—इस जाति के भी नाक के ऊपर झिल्ली की एक पत्ती सी लगी होती है। यह छोटा सा चमगादड़ हिन्दुस्तान में सब जगह उत्तर में हिमालय से धुर दक्षिण तक मिलता है। पुराने घरों, गुफाओं आदि में वे वास किया करते हैं। एक जन्तुशास्त्रवित् लिखते हैं कि इस बात की पूरी परीक्षा कर ली गई है कि यह जन्तु अन्य जातियों के चमगादड़ों का ख़ून पिया करता है। उड़ते हुए चमगादड़ों के कान के पीछे वह चिपट जाता है और रक्त

चूस जाता है। ख़ून चूस जाने के उपरान्त वह अपने शिकार को खा भी जाता है।*

इस जाति के जन्तुओं का रंग हलका नीला स्लेट का-सा होता है। शरीर की लंबाई ३-४ इंच की होती है और कान विशेषरूप से बड़े होते हैं।

---

* Dobson's "Monograph of the Asiatic Cheiroptera."

चौदस्ते-श्रेणी

(ORDER OF QUADRUMANA)

साधारण विवरण

चौदस्ते-श्रेणी के जन्तु पशु-संसार के शिरोमणि हैं और जन्तु-जगत् में उनकी रचना सर्वोत्कृष्ट है। किसी अन्य श्रेणी के प्राणियों की रचना मनुष्य के शरीर की रचना से इतनी मिलती-जुलती नहीं होती जितनी कि चौदस्तों की।

चौदस्तों के शरीर की हड्डियों की संख्या ठीक वही होती है जो मनुष्य के शरीर में होती है।

उनके दाँतों की रचना भी मनुष्य के दाँतों की-सी होती है और संख्या भी समान है:—

कृंतक दंत $\frac{२-२}{२-२}$, कील $\frac{१-१}{१-१}$, दूधडाढ़ें $\frac{२-२}{२-२}$, डाढ़ें $\frac{३-३}{३-३}$ = ३२

चौदस्तों के मुखमण्डल और हाथ मनुष्य के समान ही लोमहीन होते हैं, और उनके हाथ पैर के अँगूठे, मनुष्य के अँगूठों के समान ही, उँगलियों से मिल सकते हैं। हाथों की उपयोगिता बहुत कुछ इसी शक्ति पर निर्भर होती है।

चौदस्तों की आँतें मनुष्य की आँतों के समान होती हैं। उनकी लिंगेन्द्रिय की रचना भी मनुष्य के समान है। मादायें स्त्रियों के समान रजस्वला होती हैं और उनके वक्षःस्थल ही पर स्तन होते हैं।

मनुष्य की रचना से उनके किसी किसी अङ्ग में भेद भी होते हैं। चौदस्तों की भुजायें बहुत लंबी होती हैं। उनका बस्तिदेश

उतना चौड़ा नहीं होता जितना कि मनुष्य का होता है अतः उनको सीधे खड़े होने में उतनी सुविधा नहीं होती जितनी कि मनुष्य को।

चौदस्तों के पैरों के अँगूठे भी उँगलियों से मिल सकते हैं। वृक्षों पर रहनेवाले प्राणियों के लिए इसमें सुविधा है क्योंकि वे पैरों से भी वृक्षों की शाखाओं को पकड़ सकते हैं। किन्तु चौदस्ते जब पैरों पर खड़े होते हैं तो उनका पूरा तलवा मनुष्य के तलवों के समान भूमि पर नहीं जमता वरन् तलवे के किनारे ही भूमि को छूते हैं।

इसके अतिरिक्त चौदस्तों के हाथ-पैर के अँगूठे उँगलियों से बहुत हट के होते हैं और छोटे भी होते हैं अतः वे मनुष्य के अँगूठों के समान उत्तम रूप से काम नहीं देते।

चौदस्ते-श्रेणी के अधिकांश जन्तु शाक-भोजी और फलाहारी हैं किन्तु कोई कोई फलादि के अतिरिक्त कीटभोजी भी होते हैं और मांस भी खा लेते हैं।

अधिकांश जातियाँ सहवासप्रिय होती हैं और वृक्षों पर रहा करती हैं। उनकी बुद्धि जन्तुजगत् में सबसे उत्कृष्ट होती है।

चौदस्ते-श्रेणी के प्राणी प्रथमतः दो भागों में विभाजित किये जाते हैं। अर्थात्—

प्राज़िमिडे (Prosimidæ)
सिमाइडे (Simiadæ)

प्राज़िमिडे भाग में चौदस्ते-श्रेणी के नीची श्रेणी के जन्तुओं को स्थान दिया जाता है और इसके अंतर्गत लीमर (Lemuridæ) वंश की अनेक जातियाँ हैं।

सिमाइडे भाग के जन्तु अपनी नाक की बनावट के आधार पर फिर दो विभागों में बाँटे जाते हैं। अर्थात्—

केटेराइन (Catarrihnes)

प्लेटेराइन (Platarrihnes)

केटेराइन की नाक के नथुने पास पास होते हैं और नथुनों का मुँह नीचे को होता है। प्लेटेराइनों के नथुने एक दूसरे से कुछ अंतर पर होते हैं और नथुनों का मुँह सामने को होता है।

केटेराइन प्राणी पूर्वी गोलार्द्ध में होते हैं। प्लेटेराइन अमेरिका में होते हैं।

———

प्राज़िमिडे भाग

लीमर-वंश

(THE LEMURIDÆ)

लीमर-वंश के अधिकांश प्राणी मेडेगास्कर द्वीप पर मिलते हैं। केवल दो या तीन जातियाँ भारतवर्ष और मलय में पाई जाती हैं। चौदस्ते-वर्ग के ये सबसे नीचे जन्तु हैं। उनका थूथन नुकीला और लोमड़ी के समान होता है और मनुष्य की आकृति के चिह्न, जो चौदस्ते-वर्ग के उच्च प्राणियों की आकृति में विद्यमान होते हैं, लीमर-वंश के जन्तुओं में नहीं पाये जाते।

मेडेगास्कर के लीमरों की पिछली टाँगें अगली टाँगों की अपेक्षा बड़ी होती हैं। अँगूठे उँगलियों से पूर्णरूप से नहीं मिलते और सब उँगलियाँ एक झिल्ली में मढ़ी होती हैं। पिछले पैरों के अँगूठों के पासवाली उँगली पर लंबा, झुका हुआ तीक्ष्ण नख होता है, अन्य सब नख मनुष्य के नखों के समान चपटे होते हैं। मेडेगास्कर के लीमर सीधे खड़े होके पैरों पर चल सकते हैं किन्तु शरीर को साधने के लिए उनको अपनी भुजायें ऊपर को उठाये रखना पड़ता है।

मेडेगास्कर के आदिम निवासी उनसे बहुत डरते हैं क्योंकि वहाँ एक चिरकालीन मूढ़ कहावत चली आती है कि मनुष्य मरने पर लीमर का जन्म पाता है। वे लीमर को मारने का कभी साहस नहीं करते और इसी से लीमर की जातियाँ मेडेगास्कर में ज्यादा हैं। लीमर का कण्ठस्वर भी बड़ा दु:खपूर्ण प्रतीत होता है।

लीमर की मुख्य जातियों का वृत्तान्त आगे दिया जाता है।

आई आई (Chiromys Madagascariensis)

यह विचित्र जन्तु केवल मेडेगास्कर द्वीप में होता है और वहाँ भी इतना कम कि उसका पता कुछ ही समय हुआ चला है।

मेडेगास्कर के आदिम-निवासी तक उससे अनभिज्ञ थे और जब उसको उन्होंने पहले पहल देखा तो "आई आई" शब्द करके अपना आश्चर्य्य प्रकट करने लगे। इसी से योरपवालों ने उसका नाम आई आई रख लिया। आई आई किस वंश का जीव है इस विषय में बहुत दिन मतभेद रहा। उसके दाँतों की रचना कुतरने-वाले जन्तुओं से मिलती-जुलती है और बाह्यरूप में वह गिलहरी के समान प्रतीत होता है। किन्तु विचार दृष्टि से देखने से ज्ञात हो जाता है कि चौदस्ते-वर्ग के मुख्य जातिलक्षण सब उसमें उपस्थित होते हैं अतएव जन्तुशास्त्रवेत्ताओं ने अब स्थिररूप से निश्चित कर लिया है कि उसको चौदस्तों के वर्ग में ही स्थान दिया जाना चाहिए।

आई आई के स्वभावों से बहुत कम परिचय है किन्तु उसके दाँतों की बनावट से विदित होता है कि वह कीड़े-मकोड़ों और फलों पर अपना निर्वाह करता है। आई आई वृक्षों पर रहता और दिन में खोखलों में छिपा रहता है।

शर्मीली बिल्ली (Nycticebus Tardigradus)—यह छोटा सा जन्तु केवल पूर्वी बंगाल में होता है। इसका रंग धुमैला, दुम छोटी सी, और शरीर छरहरा होता है। आँखें बड़ी, अँगूठे उँगलियों से हटके, और अँगूठों के पासवाली उँगलियाँ अन्य उँगलियों से बहुत छोटी होती हैं। नथुने थूथन से आगे निकले होते हैं। जीभ लंबी, पतली, और खुरखुरी होती है।

बंगाल में उसको "लज्जावती बानर" भी कहते हैं। मलय प्रायद्वीप और जावाद्वीप में भी इसकी उपजाति मिलती है।

शर्मीली बिल्ली बस्तियों से दूर घने जंगलों में घुसी रहती है। सारे दिन वृक्षों में छिपी पड़ी रहती है। रात्रि में बाहर निकलती और फल, पत्ती, कीड़े-मकोड़े आदि खाया करती है।

देवांत्सी पिल्ली (Loris Gracilis)

देवांत्सी पिल्ली लोरिस जाति का एक जन्तु है। लीमर-वंश की लोरिस जाति के जन्तु छोटे, छरहरे शरीर के जन्तु होते हैं। उनके दुम बिलकुल नहीं होती। आँखें बड़ी और बहुत ही पास पास होती हैं।

देवांत्सी पिल्ली दक्षिणी हिन्द और लङ्का में होती है। उसका रंग धुमैला भूरा और शरीर पर छोटे, घने, कोमल बाल होते हैं। उसके शरीर की लंबाई लगभग ८ इंच की होती है। पूर्वी घाट पर ये जन्तु बहुत मिलते हैं और डाक्टर जॉर्डन लिखते हैं कि मद्रास में ये जन्तु जीवित पकड़ के लाये जाते हैं और बेचे जाते हैं। उनकी आँखों का बना हुआ सुर्मा नेत्र के रोगों के लिए बहुत उत्तम समझा जाता है।

देवांत्सी पिल्ली केवल रात्रि में बाहर निकलती है, दिन भर गेंद के समान लपटी पड़ी सोती रहती है। उसका निर्वाह रसीली पत्तियों, कीड़े-मकोड़े, अण्डों आदि पर होता है।

मारमोसट—लीमर-वंश के जितने जन्तुओं से अब तक हमने परिचय प्राप्त किया है वे सब पूर्वी गोलार्द्ध के निवासी हैं किन्तु मारमोसट अमेरिका में होते हैं। रचना में ये जन्तु लीमर और बन्दरों के बीच में हैं।

मध्य अमेरिका में और दक्षिणी अमेरिका में मारमोसट जन्तु की बहुत सी उपजातियाँ मिलती हैं। मारमोसट के अँगूठे उँगलियों

से मिलाये नहीं जा सकते। उनकी उँगलियों पर चपटे नाख़ून नहीं होते वरन् लंबे लंबे तीक्ष्ण नख मांसभोजी जन्तुओं के समान होते हैं। इनका सिर गोल, थूथन छोटा, नथुने अलग अलग और कान बड़े होते हैं। कानों के पीछे बहुत बड़े बड़े बाल होते हैं जो उनकी आकृति को बड़ी विचित्र बना देती हैं। दुम बहुत लंबी और मोटी होती है जिस पर काले और श्वेत छल्ले पड़े होते हैं।

मारमोसट बहुत कुछ गिलहरी के समान होते हैं। गिलहरियों ही के समान वे वृक्षों पर कूदते उछलते और लटकते हैं। मारमोसट का खाद्य मुख्यरूप से कीड़े-मकोड़े हैं। इसके अतिरिक्त वे फल, अण्डे और छोटे पक्षी भी खा लेते हैं।

सिमाइडे वर्ग

अर्थात्

बन्दर-वंश

सिमाइडे वर्ग के जन्तु वास्तविक बन्दर हैं और पूर्वोक्त प्राज़िमिडे भाग के प्राणियों से ऊँची श्रेणी के जन्तु हैं। मनुष्य-सदृश बन्दर सब इसी भाग के प्राणी हैं। कतिपय की दुम बहुत छोटी होती है और किसी किसी के बिलकुल नहीं होती। अधिकांश में अनुकरण या नक़ल करने की अद्वितीय शक्ति होती है। उनकी सभी इन्द्रियों की शक्तियाँ उत्कृष्ट हैं।

सिमाइडे भाग के जन्तु दो भागों में विभाजित किये जाते हैं, अर्थात्—

(१) अमेरिका के बन्दर अर्थात् प्लेटेराइन
(२) पूर्वी गोलार्द्ध के बन्दर अर्थात् केटेराइन

अमेरिका के बन्दर

इनके नथुने एक दूसरे से कुछ अन्तर पर होते हैं और नथुनों के छिद्रों का मुँह सामने को होता है। इनके मुँह में ३६ दाँत होते हैं और अधिकांश की दुम लंबी होती है और शरीर दुर्बल तथा छरहरे होते हैं। इनकी कुछ जातियों से हम नीचे परिचय प्राप्त करेंगे।

चिल्लानेवाले बन्दर (Mycetes)

ये अपने भारी, गंभीर, डरावने कण्ठस्वर के लिए प्रसिद्ध हैं। क़द में ये बन्दर छोटे से होते हैं किन्तु जब उनका दल मिलके

बोलता है तो सारा जंगल गूँज उठता है। ऐसे अलौकिक और भारी शब्द शायद ही किसी दूसरे जन्तु के होते हों। उनको सुनके मनुष्य का हृदय सहम जाता है।

चिल्लानेवाले बन्दरों की दुम का छोर कुछ घूमा हुआ होता है और उनकी दुम में अद्भुत ग्रासक शक्ति होती है।

इस जाति की ४ या ५ उपजातियाँ दक्षिणी अमेरिका में मिलती हैं।

मकड़ी बन्दर (Ateles or the Spider Monkeys) अपने दुर्बल शरीर, लंबी भुजाओं और लंबी टाँगों के कारण एटिलीज़ जाति के बन्दर मकड़ी के समान प्रतीत होते हैं। उनकी रचना में यह विचित्रता है कि हाथ में अँगूठा नहीं होता। किसी किसी के अँगूठे के स्थान पर एक छोटी सी गाँठ होती है जिस पर नख नहीं होता। इन बन्दरों की दुम में अद्भुत ग्रासक शक्ति होती है और वह ऐसा काम देती है मानों एक तीसरा हाथ हो। आँखों से देखे बिना वे दुम ही से टटोल के पता लगा लेते हैं कि वृक्ष की कौन सी शाखा उनका बोझ सहने के योग्य है और उसी शाखा में वे, निःसंकोच, दुम लपेटके उलटे लटक जाते और छलाँग भरने के लिए झूलने लगते हैं।

यदि उनको कभी कोई नदी पार करनी होती है तो वे अपनी दुम की ग्रासक शक्ति ही के द्वारा उसे पार करते हैं। उनमें से एक तटस्थ किसी वृक्ष से लटक जाता है। तब कोई दूसरा व्यक्ति अपनी दुम को पहिले व्यक्ति के शरीर में लपेटके लटक जाता है। इसी प्रकार एक पर एक लटक के एक लंबी सी शृंखला बना लेते हैं। तब यह सारी जीवित शृंखला झोंके लेती है और शृंखला का सबसे नीचेवाला व्यक्ति दूसरे तट के किसी वृक्ष को पकड़ लेता है। तब सारा दल इस शृंखला पर से पार कर जाता है।

सीबस (Cebus)—अमेरिका के बन्दरों में सीबस एक प्रसिद्ध जाति है। सीबस दक्षिणी अमेरिका में सर्वत्र मिलता है। सीबस सहज पालतू हो जाता है और बड़ा स्नेही जीव है। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण होती है और प्रकृति का वह सीधा होता है। जन्तुशास्त्र-वित् मिस्टर रोमानीज़ के पास एक पालतू भूरा सीबस (Cebus Fatuellas) था, इस बन्दर की दिन प्रतिदिन की करतूतों की एक मनोरञ्जक दिन-चर्य्या उनकी बहन ने तैयार की थी जिसका कुछ भाग नीचे उद्धृत किया जाता है :—

मैंने आज देखा कि जिन अख़रोटों को वह अपने दाँत से नहीं तोड़ पाता है उनको अपनी पानी पीने की रकाबी से तोड़ लेता है। समस्त दिन वह चञ्चल रहता है, रात्रि में बड़ी चतुराई से ऊनी गरम शाल ओढ़कर सोता है।

आज मैंने उसको एक हथौड़ा अख़रोट तोड़ने को दिया तो उसने बड़ी प्रवीणता से उससे काम लिया।

आज मैंने देखा कि यदि कोई अख़रोट अथवा अन्य वस्तु उसकी पहुँच से बाहर होती है तो वह लकड़ी से उसको अपनी ओर घसीट लेता है, यदि इसमें उसको सफलता नहीं होती तो वह सीधा खड़ा हो जाता है और शाल के दो कोने हाथ में पकड़ के शाल को अपने पीछे फेंक देता है। तब पूरे बल से झोंका देकर शाल को सामने को फेंकता है और उससे अख़रोट को घसीट लेता है।

आज उसको झाड़ू का ब्रुश मिल गया जिसके हत्थे में पेच था। हत्थे को घुमाके पेच खोल लेने की युक्ति उसने शीघ्र ही सीख ली। इसके उपरान्त वह हत्थे को फिर से कस देने का प्रयत्न करने लगा। पहले उसने हत्थे का उलटा सिरा छिद्र में डालके घुमाना आरम्भ किया, किन्तु घुमाता उसी तरफ़ को था जिस तरफ़ कि

वह घुमाया जाना जाहिए था। कृतकार्य्य न होने पर उसने हत्थे का दूसरा सिरा पेच में डालके घुमाना आरम्भ किया। इस काम में उसको बड़ी कठिनाई हुई, क्योंकि हत्थे को सीधा रखने के लिए उसको दोनों हाथों से पकड़ना आवश्यक था। तब ब्रुश को उसने अपनी टाँगों से पकड़ा और बड़े धैर्य्य से इस काम में प्रवृत्त रहा। अन्त में पेच का पहला घेरा कस लेने में उसको सफलता हो गई।...सफल होने पर उसने पेच को कसने और खोलने का कई बार अभ्यास किया।

एक दिन मैंने उसको कुञ्जी दे दी, तो उसने एक बक्स का ताला खोलने का दो घण्टे तक प्रयत्न किया। उस ताले का खुलना कठिन था क्योंकि वह बिगड़ा हुआ था और जब तक बक्स का ढकना ऊपर से दबाया नहीं जाता था ताला नहीं खुलता था। थोड़ी ही देर में उसने कुञ्जी डालना सीख लिया और उसको उलटा सीधा घुमाने लगा, और प्रत्येक बार कुञ्जी घुमाके बकस का ढकना उठा के देखता था कि ताला खुल गया या नहीं।

ताला खोलने की तरकीब उसने देखके सीखी थी, इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता था क्योंकि छिद्र में कुञ्जी डालने से पहिले वह कुञ्जी को कई बार छिद्र के चारों ओर फेरता था। इसका कारण यह था कि मेरी माता, जिनको साफ़ दिखाई नहीं पड़ा करता था कुञ्जी को चारों ओर को फेर फेरके छिद्र को ढूँढा करती थीं। बन्दर उनको ताला खोलते देखा करता था और समझता था कि ताला खोलने के लिए कुञ्जी को इस प्रकार फिराया जाना आवश्यक है।

गिलहरी बन्दर (Chrysothrix)—बन्दर की जातियों में इस छोटे से जन्तु का सा सुन्दर कोई नहीं होता। क़द, स्वभाव और फुरती में यह जन्तु गिलहरी ही के समान होता है

और उसकी बुद्धि उच्च कोटि की होती है। दुम बहुत लम्बी होती है किन्तु उसमें वस्तुओं को पकड़ने की शक्ति नहीं होती। इस जन्तु की आकृति बालकों के समान निर्दोष होती है और यदि वह किसी बात पर दुखित होता है तो बालकों के समान ही रोने लगता है। जन्तुशास्त्रवित् हम्बोल्ट लिखते हैं कि भयभीत होने पर अथवा सताये जाने पर उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं किन्तु मिस्टर डार्विन इसका निषेध करते हुए लिखते हैं कि उन्होंने उसकी आँखों में अश्रुजल भर आते कभी नहीं देखा।

गिलहरी-बन्दर मांसभोजी होते हैं और कीड़े-मकोड़े पकड़ने के लिए वृक्षों पर समस्त दिन उछलते-कूदते हैं।

पूर्वी गोलार्द्ध के बन्दर

पूर्वी गोलार्द्ध के बन्दरों की पहिचान बताई जा चुकी है कि उनके नथुने पास पास होते हैं और नीचे को खुलते हैं। लगभग सभी जातियों के गालों में थैलियाँ होती हैं और दुम के पास बड़े बड़े ढट्टे होते हैं। इन्हीं ढट्टों पर ये बन्दर बैठा करते हैं। इनकी दुम अमेरिका के बन्दरों के समान लम्बी नहीं होती, और किसी किसी के दुम होती ही नहीं। इनके दाँतों की रचना और संख्या बिलकुल मनुष्य के समान होती है।

मुख्य जातियों का वर्णन नीचे दिया जाता है।

सिनोसिफ़ेलिस (Cynocephalus) जाति के सब बन्दर अफ्रीक़ा महाद्वीप के निवासी हैं। सिनोसिफ़ेलिस का अर्थ है "कुत्ते के से मुँहवाले"। इनका मुँह कुत्ते के समान लम्बा होता है और क़द बड़ा होता है। स्वभाव के वे क्रूर और भयंकर होते हैं। उनके मुँह और ढट्टे प्रायः चमकीले रंग के होते हैं। साधारण बोल चाल में ये बन्दर बेबून कहलाते हैं।

बेबून सर्वथा झुण्ड में रहते हैं और कभी कभी फलादि के बागों में बड़ी हानि करते हैं। आदमी का साहस उन्हें भगाने को सहज नहीं पड़ता, बेबून बहुधा पथरीले चट्टाना स्थानों में रहते हैं। उनके दल का सर्वथा एक नेता होता है। नेता का शब्द सुनते ही सब दौड़ पड़ते हैं। एक ग्रन्थकार बतलाते हैं कि जब बेबून के झुण्ड भागते हैं तो अपने अनुधावकों पर बड़े बड़े पत्थर पहाड़ पर से नीचे लुढ़काते जाते हैं, या छोटे छोटे पत्थर उठा के मारते जाते हैं। उनके एक एक दल में १००-१५० व्यक्ति तक होते हैं अतएव पत्थरों की बौछार ओलों की-सी होने लगती है। दल का नेता सबसे आगे आगे चलता है, और थोड़ी थोड़ी देर पर किसी वृक्ष पर चढ़के चारों ओर का पता लगाता रहता है। बेबून की बहुत सी उपजातियाँ मिलती हैं।

साधारण बेबून (Cynocephalus Babouin)—यह उपजाति एबिसीनिया आदि में मिलती है।

चकमा (C. Porcarius)—यह उपजाति केवल दक्षिणी अफ्रीका में होती है विशेषकर टेबुल पर्वत पर। इनके छोटे छोटे झुण्ड होते हैं जिनमें बहुधा २०-३० व्यक्ति हुआ करते हैं। चकमा बड़ा साहसी होता और मनुष्य को अकेला देखकर उसको प्रायः लूट लेता है।

गिनी बेबून (C. Sphinx) पश्चिमी अफ्रीका में होता है।

मैनड्रिल (C. Mormon)--मैनड्रिल पृथ्वी के विचित्र जन्तुओं में से है। उसकी नाक के दोनों ओर बहुत सी झुर्रियाँ होतीं हैं और इन स्थानों की खाल पर चमकदार लाल और नीला रंग होता है। उसके बड़े बड़े ढट्टों पर अत्यन्त चमकीले रंग होते हैं।

मैनड्रिल बहुत बड़ा बन्दर होता है और पालतू हो जाने पर भी उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कभी कभी निष्कारण ही अकस्मात् वह भयंकर हो जाता है। एक जन्तुशास्त्रवित् उसके विषय

बेबून (C. Babouin)
पृष्ठ ४६४

गिबन (Hylobates)
पृष्ठ ४६७

चिम्पानज़ी (Troglodytes niger)
पृष्ठ ४७२

गोरिल्ला (Gorilla) पृष्ठ ४७५

में एक विचित्र बात बतलाते हैं कि युवती स्त्रियों को देखके वह उन्मत्त सा हो जाता है और इसमें सन्देह नहीं कि यदि उसका वश चले तो वह उनको अवश्य हानि पहुँचावे।

मैनड्रिल पश्चिमी अफ्रीका का रहनेवाला है।

लंगूर (Presbytis)—काला मुँह और लंबी, पतली, सीधी दुम से इनकी तुरन्त पहिचान की जा सकती है। इनका सिर गोल और शरीर छरहरा होता है। पैरों की उँगलियाँ लंबी, हाथों के अँगूठे छोटे और पिछले शरीर पर ठट्ठे होते हैं। लंगूर की बहुत सी उप-जातियां भारतवर्ष के जंगलों में मिलती हैं। वे अद्भुत छलाँगें भरते हैं और २५-३० फ़ुट पार करके जिस डाल पर चाहते हैं जा गिरते हैं और कभी धोखा नहीं खाते। लंगूर केवल भारतवर्ष में होता है।

बंगाल का लंगूर (Presbytis Entellus)—यह उपजाति बंगाल एवं उत्तरी और मध्य हिन्द में मिलती है। मुँह और हाथ पैर सब काले होते हैं। किसी किसी की दुम सवा गज़ तक की होती है। बहुधा ये जन्तु जंगलों में रहते हैं और नाना प्रकार के फल खाया करते हैं। विशेषकर वे पीपल और गूलर के बहुत शौक़ीन होते हैं। डाक्टर जॉर्डन बतलाते हैं कि नर और मादायें अलग अलग दलों में रहते हैं। मादाओं के दल के संग केवल एक दो वृद्ध नर होते हैं। कहा जाता है कि नये नरों को ये भगा देते हैं या मार डालते हैं। एक विशेष ऋतु में सारे नर मादाओं के दलों के पास जाते हैं और तब घोर लड़ाई होती है। जो नर हारते हैं वे बच्चों को मादाओं से ले के जंगल को भाग जाते हैं।

हिमालय पर्वत पर, नीलगिरि पर और मलाबार तट पर भी लंगूर की उपजाति मिलती है।

इन्यूज (Inuus)—हमारा उत्तरी हिन्द का साधारण बन्दर इन्यूज जाति का जीव है। इनका मुँह आगे को बहुत कम निकला

होता है। नथुने मुँह से ऊपर ही कुछ अन्तर पर खुलते हैं। कीलें बड़े बड़े होते हैं। दुम छोटी और ढट्टे भी मौजूद होते हैं। बचपन में इनका स्वभाव शान्त होता है किन्तु आयु बढ़ने पर वे अत्यन्त क्रूर और उद्दण्ड हो जाते हैं।

उत्तरी हिन्द का बन्दर (Inuus Rhesus)—यही बंगाल का बानर और उत्तरी हिन्द का बन्दर है। हिमालय पर्वत पर भी ४-५ हज़ार फुट की ऊँचाई तक होता है। यह बन्दर जंगलों में भी रहता है और ग्राम और बस्तियों में भी।

नील बन्दर (Inuus silenus)—यह पश्चिमी घाट पर होता है। रंग काला, किन्तु सिर और गर्दन के चारों तरफ़ बड़े बड़े हलके लाल रंग के बाल होते हैं। नील बन्दर का स्वभाव बहुत जंगली और भीषण होता है और वह कभी पालतू नहीं किया जा सकता।

मैगट (Inuus Sylvanus)—मैगट उत्तरी अफ्रीका में एलजीरिया तथा मुराको प्रदेश में होता है। इसी उपजाति के कुछ थोड़े से जन्तु योरप में जिब्राल्टर बन्दरगाह की पहाड़ियों पर हैं। अफ्रीका में इनके दल के दल संग संग रहते हैं और बड़े साहस से फलों के बाग़ों में लूट-मार किया करते हैं।

ग्युनन (Cercopithecus)—ग्युनन जाति के बन्दर अफ्रीका में होते हैं और उनकी २५-३० उपजातियाँ मिलती हैं। इनके कपाल की हड्डी और आँखों के बीच में बहुत कम अंतर होता है। ग्युनन के भी दल फलों के पेड़ों को बहुत हानि पहुँचाते हैं और इनका स्वभाव ऐसा जंगली होता है कि वे कभी पालतू नहीं किये जा सकते।

बड़ी नाक का बन्दर (Semnopithecus Nasalis)—यह बोर्नियो का निवासी है। उसकी विचित्र नाक आदमी की नाक

के समान उठी हुई और मुँह से आगे निकली होती है। गाल और ठोड़ी पर लंबे लंबे बालों की डाढ़ी होती है।

मनुष्य-सदृश बन्दर (Anthropomorphous Monkeys)—अब जो जातियाँ बन्दरों की वर्णित की जाने को हैं वे पशु-संसार के शिखर पर हैं और रचना में सभी जातियों से अधिक मनुष्य से मिलती-जुलती हैं। इस भाग में चार जातियाँ हैं अर्थात्

(१) गिबन
(२) ओरैंग ओटान
(३) चिम्पानज़ी
(४) गोरिल्ला

गिबन (Hylobates)—सिमाइडे-वंश के मनुष्य-सदृश भाग में केवल गिबन बन्दर छोटे क़द के हैं। इनका शरीर छरहरा, टाँगें पतली, और उँगलियाँ बहुत लंबी होती हैं। मनुष्य-सदृश भाग के बन्दरों में ये सबसे छोटे ही नहीं वरन् बुद्धि में भी सबसे निर्बल होते हैं।

गिबन के बहुत से दल सुमात्रा, जावा और बोर्नियो के द्वीपों में मिलते हैं। वे शान्त स्वभाव के और भीरु जन्तु होते हैं। बन्दर-वंश के सभी जन्तु फुर्तीले और बड़ी बड़ी छलाँगें भरनेवाले होते हैं किन्तु गिबन सबमें अद्वितीय है। किसी लचकती हुई डाल को पकड़कर वह तीन चार बार झूलता है और, इस प्रकार शरीर को झोका दे के, वह तड़प के उछलता है और ३०-४० फ़ुट पार करके किसी दूसरे वृक्ष की डाल पर अचूक निशाने से जा गिरता है।

गिबन जाति के सबसे बड़े जन्तुओं का भी शरीर ३ फ़ुट से अधिक नहीं होता। वे वृक्षों पर रहा करते हैं किन्तु भूमि पर भी सीधे खड़े होके चल सकते हैं। इनका रंग गहरा भूरा या कुछ कालिमा लिये होता है।

ओरैंग ओटान

या

बनमानुस

(Orang Outan—Simia Satyrus)

सिमाइडे-वंश की यह प्रसिद्ध जाति केवल सुमात्रा तथा बोरनियो के टापुओं में मिलती है। उक्त द्वीपों के अधिवासी उसको ओरैंग ओटान कहते हैं जिसका अर्थ है "बन का आदमी"। उसके नाम ही से प्रकट है कि बाह्यरूप में वह मनुष्य से मिलता-जुलता होगा। यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रथम तो ओरैंग की संख्या ही बहुत कम है और दूसरे वे अति निविड़ वनों के भीतर नीचे और तर स्थानों में छिपे रहते हैं। इसी से उनके प्राकृतिक जीवन से हम बहुत कुछ अनभिज्ञ हैं।

खड़े होने पर ओरैंग की ऊँचाई लगभग ४ फ़ुट ४ इंच होती है। शरीर बड़े बड़े और मोटे बालों से ढका होता है जिनका रंग कुछ सुर्ख़ी लिये भूरा होता है। कन्धों और भुजाओं के ऊपरी भाग पर उसके बाल सवा फ़ुट की लंबाई के होते हैं।

ओरैंग की टाँगें छोटी किन्तु भुजायें बहुत लंबी होती हैं और सीधा खड़े होने पर वे पैरों के पास तक पहुँचती हैं। उसके हाथ मनुष्य के हाथ के सदृश होते हैं, केवल इतना भेद होता है कि उँगलियाँ लंबी और अँगूठा छोटा सा होता है। ओरैंग के पैरों के अँगूठे भी बड़े उपयोगी होते हैं क्योंकि वे हाथों के अँगूठों के समान उँगलियों से मिलाये जा सकते हैं। पेड़ों पर जीवन व्यतीत

करने में इससे उसको दुगुनी सुविधा होती है क्योंकि उसके हाथ और पैर दोनों डालों को दृढ़ता से पकड़ सकते हैं।

ओरैंग सीधा बहुत कम खड़ा होता है। वह थोड़ा झुक के चलता है। और सहारे के लिए उसके हाथ भी भूमि तक पहुँच जाते हैं। हाथों की उँगलियाँ भीतर को मोड़ के वह मुट्ठी टेकता चलता है। उसके तलवे भी भूमि पर पूरे नहीं पड़ते, वरन् केवल उनका बाहरी भाग भूमि को छूता है। इन सब कारणों से ओरैंग को भूमि पर चलने में बड़ी कठिनाई होती है और उसकी चाल भी भोंडी और भद्दी सी होती है। परन्तु पेड़ों पर वह विहार करता है और आश्चर्य्यजनक फुर्ती से उछलता-कूदता है।

अन्य बन्दरों के समान उसके शरीर के पश्चाद्भाग पर ढट्टे नहीं होते। युवावस्था में पहुँचने पर ओरैंग के बड़ी सी डाढ़ी निकल आती है। उसके दुम बिलकुल नहीं होती और यह भी रचना की उत्कृष्टता का चिह्न है।

साधारणरूप से ओरैंग सीधा जन्तु होता है और बिना छेड़-छाड़ के मनुष्य पर घात नहीं करता। किन्तु ओरैंग कोई कायर जन्तु नहीं है, आत्मरक्षा के लिए वह अपने अद्भुत देह-बल से पूरा काम लेता है। सुप्रसिद्ध डाक्टर वालेस एक मादा का उल्लेख करते हैं। "वह एक पेड़ पर चढ़ी कोई दस मिनट तक डालें और काँटेदार फल, जो लगभग ३२ पौंड के गोले के बराबर थे, फेंक फेंक के ऐसी वर्षा करती रही कि हम लोगों को उसने उस वृक्ष से दूर ही रोक दिया।"*

ओरैंग में भी, बन्दर की अन्य जातियों के समान यह विशेषता पाई जाती है कि ज्यों ज्यों उसकी आयु बढ़ती जाती है उसकी

---

* "The Malay Archipelago," by Dr. A. R. Wallace.

प्रकृति और स्वभाव भीषण और असभ्य होते जाते हैं। वृद्ध होने पर उनके स्वभावों में ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि कुछ लोग पहिले ओरँग के बच्चों को और बड़े व्यक्तियों को भिन्न भिन्न उपजाति के जन्तु मानते थे।

ओरँग उटान शाकभोजी और फलाहारी जीव है। उसके देश के हरे भरे वनों में फल फूल और कोमल पत्तियों की कमी नहीं होती। वृक्षों पर से पानी पीने को भी वह बहुत कम उतरता है क्योंकि रसभरे फलों से उसकी प्यास बुझती रहती है।

सम्पूर्ण दिन की दौड़ भाग और श्रम के उपरान्त, सन्ध्या होने पर ओरँग रात्रि के विश्राम के लिए नित्य नया स्थान तैयार किया करता है और केवल एक ही रात उस शय्या में सो के उसको त्याग देता है। यह तो सिद्ध नहीं हो सका है कि सोने के लिए प्रति दिन वह एक नया स्थान किस कारण खोजता है। संभव है कि स्वच्छता के विचार से वह इतना कष्ट उठाता हो, अथवा यह भी हो सकता है कि इसके द्वारा वह अपने रक्षा का उपाय करता हो। जो कुछ हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि एक पशुमात्र के लिए नित्य नया स्थान बनाना एक अद्भुत और रोचक बात है। जिस वन में ओरँग वास करते हैं उसमें वृक्षों पर उनके शयनगृह बहुत दिखाई पड़ा करते हैं। एक साहब डाक्टर मोबिन्स ओरँग के एक घोंसले का वृत्तान्त देते हुए बताते हैं कि "उसकी लम्बाई १·४२ मीटर थी और चौड़ाई ·८० मीटर थी। उसमें लगभग २५ टूटी हुई शाखायें लगी थीं, जो चुनकर समानान्तर पर रक्खी गई थीं। लकड़ियों के इस ढाँचे के ऊपर पत्तियाँ बिछी हुई थीं। ऐसे शयन-गृह के तैयार करने में न कोई कारीगरी चाहिए न बहुत श्रम।"

मादा के प्रत्येक वर्ष एक बच्चा उत्पन्न होता है जिसका पालन-पोषण वह बड़े प्रेम से करती है। डाक्टर वालेस ने एक मादा को

मारा था और उसका छोटा सा बच्चा पकड़ लिया था। उन्होंने उस बच्चे को पालने के बहुत उपाय किये किन्तु वह बहुत दिन जीवित न रह सका। उसके स्वभावादि के विषय में उक्त डाक्टर ने लिखा है कि "जब मैं उसको घर ला रहा था उसने अपने हाथ मेरी डाढ़ी में डाल दिये और ऐसे ज़ोर से पकड़ ली कि डाढ़ी छुड़ाने में मुझे बड़ी कठिनाई हुई।......अभी तक उसके एक भी दाँत नहीं निकला था, किन्तु कुछ ही दिन में उसके सामने के दो दाँत निकल आये। जब मैं उसके मुँह में अपनी उँगली देता था तो वह बड़े बल से उसको चूसता था और गाल सिकोड़ के भरपूर बल से उसमें से दूध निकालने की चेष्टा करता था। बहुत देर के बाद थक के उसको छोड़ देता था और चीख़ मारके इस प्रकार रोता था मानो मनुष्य का बालक रो रहा हो।

"शीघ्र ही मुझे उसको स्नान कराने की आवश्यकता जान पड़ी। कुछ बार स्नान कराये जाने पर उसको नहाने का आनन्द आने लगा। जब उसका शरीर मैला हो जाता था तो वह रोने-चिल्लाने लगता था और जब तक मैं उसको पानी के नल के पास नहीं ले जाता था वह रोना-चिल्लाना बन्द नहीं करता था। नल के पास पहुँचते ही वह तुरन्त चुप हो जाता था।......जो भोजन उसको दिये जाते थे उनसे रुचि अथवा अरुचि प्रकट करने के लिए वह ऐसा विचित्र मुँह बनाता था कि देख के हँसी आती थी।"

पालतू ओरँग मनुष्य के संग रहके बड़े चतुर और समझ-दार हो जाते हैं। डाक्टर क्लार्क, एक ओरँग को जावा द्वीप से लाये थे। जहाज़ पर यह बुद्धिमान् जन्तु पाल ओढ़ के सोया करता था। अपना बिछौना बिछाने में वह बड़ी मिहनत करता था, कोई भी कड़ी अथवा गड़नेवाली चीज़ बिछौने के नीचे नहीं रहने देता था। बिछौने पर चित लेट के वह पाल ओढ़ लिया

करता था। यदि कभी कोई पाल नहीं मिलता था तो वह नाविकों के कपड़े उठा लाता था या उनके बिछौनों पर हाथ मारता था। वह मांस खा लेता था और चाय तथा काफ़ी भी बहुत पसन्द करता था।

एक साहब एक पालतू ओरैंग के विषय में लिखते हैं कि दस्ताने मिल जाने पर वह उनको अपने हाथ में पहिरने की चेष्टा करने लगा। यद्यपि उसको इस बात का ज्ञान तो नहीं था कि कौन सा सीधे हाथ का है और कौन सा उलटे हाथ का तथापि वह यह भली भाँति समझता था कि दस्ताने हाथों पर चढ़ाये जाते हैं।

सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्रवित् कुवे एक ओरैंग के विषय में लिखते हैं कि वह एक कमरे में अकेला बन्द कर दिया गया था। उसने बाहर निकलना चाहा किन्तु किवाड़ की चटख़नी बहुत ऊँची थी। चारोंओर देख-भाल करके वह अन्त में दरवाज़े के पास एक कुर्सी घसीट लाया और उस पर चढ़के चटख़नी खोल ली।

डाक्टर कार्लग्रूस लिखते हैं कि एक मादा ओरैंग कठिन से कठिन गाँठ अपने दाँतों और उँगलियों से खोल लेती थी। गाँठ खोलने में उसको ऐसा आनन्द आता था कि जो कोई उसके पास जाता था उसी के जूतों के फ़ीते खोल डाला करती थी।

चिम्पानज़ी

(THE CHIMPANZEE OR TROGLODYTES NIGER)

अपने वंश का गोरिल्ला सबसे बड़ा बलवान् जन्तु है और चिम्पानज़ी सबसे बुद्धिमान् है। चिम्पानज़ी की प्रकृति सभ्य और नम्र होती है और उसके बच्चे सहज पालतू होके मनुष्य के संग बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

पृष्ठ ४७२]

शिम्पान्ज़ी

चिम्पानज़ी के कान बड़े और बाहर को निकले होते हैं। उसकी खाल का रङ्ग उतना गहरा नहीं होता जितना कि गोरिल्ला का होता है। नाक भी उतनी उठी नहीं होती जितनी कि गोरिल्ला की। हाथ और पैर बड़े बड़े होते हैं क्योंकि चिम्पानज़ी अधिकांश समय वृक्षों पर व्यतीत किया करता है। उसके जबड़े बलिष्ठ और गालों पर डाढ़ी होती है जिसके कारण उसकी आकृति कुछ हास्यप्रद सी प्रतीत होती है। चिम्पानज़ी की भुजायें गोरिल्ला के समान लम्बी नहीं होतीं वरन् केवल घुटनों ही तक पहुँचती हैं। चिम्पानज़ी की ऊँचाई खड़े होने पर लगभग ४ फ़ुट की होती है।

चिम्पानज़ी में गोरिल्ला का सा शारीरिक बल नहीं होता किन्तु गोरिल्ला के मुँह पर जितने भीषणता के चिह्न चमकते हैं, चिम्पानज़ी की आकृति में उतनी ही सभ्यता और बुद्धिमानी पाई जाती है। मनुष्य को देखके चिम्पानज़ी अन्य सभी जन्तुओं के समान भागता है, गोरिल्ला के समान युद्ध करने को डटकर खड़ा नहीं हो जाता।

चिम्पानज़ी भी उन्हीं भूभागों में मिलता है जिनमें कि गोरिल्ला। वह पेड़ों पर ही रहा करता है और फलाहारी है, किन्तु पालतू हो के चिम्पानज़ी मांस भी रुचि से खाने लगता है। यदि पास-पड़ोस में कहीं नाज के खेत अथवा फलों के बाग़ होते हैं तो कभी कभी चिम्पानज़ी के झुंड टूट पड़ते और उनको बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

अल्पावस्था में पकड़ लिये जाने पर चिम्पानज़ी बड़ी आसानी से पल जाते हैं। वे बहुत से काम सीख लेते हैं और पालक से बड़ा स्नेह करने लगते हैं। सुविख्यात पादरी डाक्टर लिविंगसटन के पास एक चिम्पानज़ी था जो नित्य उनके संग टहलने जाया करता था। ज्यों ही वे चलने को तैयार होते थे चिम्पानज़ी उनका हाथ पकड़ लेता था और साथ लग लेता था। यदि किसी दिन वे उसको नहीं ले जाते थे तो वह बालकों के समान रोता-चिल्लाता था।

फ्रांसीसी यात्री डुशेल्यू ने चिम्पानज़ी का एक बच्चा पाला था जिसकी समझ प्रशंसनीय थी। यह छोटा सा चिम्पानज़ी पक्का चोर हो गया था। प्रात:काल वह अपने स्वामी के कमरे के द्वार पर पहुँच जाता था और पर्दे का एक कोना उठाके देखता था कि वह सो रहे हैं अथवा नहीं। यदि स्वामी सोते जान पड़ते थे तो वह दबे पाँव उनके पलँग के पास पहुँचता था और झाँकके देखता था कि उनकी आँखें बन्द हैं कि नहीं। अपना पूरा संतोष कर लेने पर वह मेज़ पर से केले उठा के भागता था।

अँगरेज़ी यात्री सर हैरी जॉन्सटन एक बार अफ़्रीका से एक चिम्पानज़ी ला रहे थे। जहाज़ के सभी यात्रियों का वह स्नेह-भाजन बन गया था। कुछ दिन में जहाज़ किसी बन्दर में ठहरा और वहाँ एक नया यात्री अपनी स्त्री और बालक सहित जहाज़ पर सवार हुआ। अब सारे यात्री उस बालक से प्रेम करने और जी बहलाने लगे। यह देख चिम्पानज़ी के हृदय में डाह उत्पन्न हुआ। एक दिन जब सब यात्री भोजन कर रहे थे तो चिम्पानज़ी ने बालक को अकेला सोते पा लिया और तुरन्त उसको उठा के समुद्र में फेकने को ले चला। भाग्यवश सर हैरी जॉन्सटन स्वयं इतने में ऊपर आये। उनको देखते ही चिम्पानज़ी, बालक को तुरन्त छोड़के भाग गया।

चिम्पानज़ी मेज़ कुर्सी पर बैठ छुरी काँटे से खाना सीख लेते हैं। चीनी और काँच के प्यालों अथवा गिलासों के विषय में समझते हैं कि वे टूटनेवाली वस्तुएँ हैं और उनको वे दोनों हाथों से पकड़के बड़ी सावधानी से उठाते रखते हैं। चाय और शराब पीना सीख लेते हैं। चाय स्वयं छान लेते हैं और दूध शक्कर मिलाके चाय का प्याला तैयार कर लेते हैं।

गोरिल्ला

(THE GORILLA OR TROGLODYTES GORILLA)

मनुष्य-सदृश बन्दरों में गोरिल्ला सबसे बड़ा और भयानक जन्तु है। बाह्यरूप में वह मनुष्य से बहुत मिलता है। कार्थेज का यात्री, हैनो, ईसा से ३५० वर्ष पूर्व अफ़्रीक़ा में पहुँचा था। उसने जब गोरिल्ला के दर्शन पाये तो उसको किसी असभ्य जाति का मनुष्य समझा। हैनो ने लिखा है--"हमने उनका पीछा किया, किन्तु पुरुषों में से किसी को न पकड़ पाया। हमने तीन स्त्रियों को पकड़ लिया।" पाठकों को इस घटना से अनुमान होगा कि गोरिल्ला की रचना मनुष्य से कितनी मिलती होगी।

गोरिल्ला अत्यन्त सघन और दुर्गम वनों में वास किया करता है, अतः उसके स्वभावादि से बहुत परिचय न मिल सका है। एक फ़्रांसीसी यात्री, पाल डु शेल्यू, ने अपनी यात्रा का वृत्तान्त देते हुए गोरिल्ला का उत्तम और रोचक वर्णन दिया है।

गोरिल्ला की ऊँचाई ५ फ़ुट से ५½ फ़ुट तक होती है, किन्तु शारीरिक बल में वह शेर से कम नहीं होता। उसका बृहत् वक्षःस्थल और विशाल कन्धे उसके देह-बल के साक्षी हैं।

गोरिल्ला की भी भुजायें टाँगों की अपेक्षा बहुत बड़ी होती हैं। साधारणतया गोरिल्ला भी चारों हाथ पैरों ही पर चला करता है। तो भी वह अन्य सब बन्दरों की अपेक्षा टाँगों पर अधिक सुविधा से खड़ा हो सकता है और देर तक खड़ा भी रह सकता है। उसका सिर बड़ा, माथा पीछे को ढालू, कान छोटे और गर्दन बहुत मोटी होती है। गोरिल्ला की गर्दन इतनी छोटी होती है कि उसका सिर कन्धों पर रक्खा हुआ प्रतीत होता है और इससे वह अत्यन्त कुरूप और भयानक जान पड़ता है। आँखें गहरे गड्ढे में घुसी होती हैं।

नाक चपटी किन्तु अन्य बन्दरों की अपेक्षा उठी हुई होती है। गोरिल्ला के भी हाथों और पैरों का आकार एक सा होता है। दोनों के अँगूठे उँगलियों से मिलाये जा सकते हैं और वस्तुओं को पकड़ने की शक्ति पैरों में भी उतनी ही उत्तम होती है जितनी कि हाथों में।

गोरिल्ला की खाल बिलकुल काली होती है और उस पर गहरे भूरे बाल होते हैं। केवल सिर पर बालों का रंग कुछ हलका लाल होता है। यद्यपि गोरिल्ला वृक्षों पर वास नहीं करता तथापि वह उन पर बड़ी कुशलता से चढ़ सकता है और फलों की खोज में प्राय: पेड़ों पर चढ़ा दिखाई पड़ता है। दीर्घकाय गोरिल्ला देखने में भारी और भद्दा जान पड़ता है किन्तु वास्तव में उसके शरीर में तेज़ी और फुर्ती की कमी नहीं होती।

सर रिचर्ड अवन का मत है कि शरीर की रचना में, मनुष्य-सदृश बन्दरों में गोरिल्ला आदमी से सबसे अधिक मिलता है। फ्रांसीसी यात्री शेल्यू लिखते हैं कि गोरिल्ला की हत्या करने पर उनके मन में सर्वथा शोक और संताप के भाव उत्पन्न होते थे। गोरिल्ला का मांस चखने को भी-उनकी कभी रुचि न हुई। शिकारी को शिकार मार लेने पर निस्सन्देह गर्व और हर्ष होता है, किन्तु उक्त यात्री का कथन है कि गोरिल्ला के मृत-शरीर के पास खड़े होके उनके मन में कभी गर्व अथवा हर्ष के भाव उत्पन्न न हो सके। इसके विपरीत ऐसा जान पड़ता था मानों "मैंने किसी स्वजातीय व्यक्ति की हत्या कर डाली हो।"

बाह्यरूप में मनुष्य के समान होते हुए भी गोरिल्ला की बुद्धि उतनी उत्तम नहीं होती जितनी कि बन्दरों के अन्य जातियों की। चिम्पानज़ी की बुद्धि उससे निस्सन्देह उच्चतर होती है। गोरिल्ला की बुद्धि के विषय में जो बहुत सी कहानियाँ हैं वे कल्पित और मनगढ़न्त सी जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ यह बात निर्मूल प्रमाणित

हुई है कि गोरिल्ला जंगल के बड़े बड़े जन्तुओं को डंडे से मारके भगाता है। यथार्थ में गोरिल्ला भी शत्रु से युद्ध करने के लिए अपने प्रबल हाथ पैरों और भीषण दाँतों ही से काम लेता है।

बहुधा गोरिल्ला का जोड़ा साथ रहके जीवन व्यतीत करता है। शत्रु की गन्ध सर्वथा पहिले मादा को मिलती है और वह तुरन्त अपने बच्चे को उठा, चीख़ती-चिल्लाती, भागती है। नर नहीं भागता, किन्तु क्रोध में भर, अत्यन्त दुष्ट आकृति धारण कर, भीषण रूप से गरजता है। नर गोरिल्ला का कण्ठस्वर अत्यन्त गंभीर और गूँजता हुआ होता है और बड़े बड़े वीरों के दिल दहल जाते हैं। शत्रु को देखके वह खड़ा हो जाता है। क्रोधाग्नि में जलके पहिले वह अपने वक्षःस्थल को बलवान् हाथों से पीटता है। तत्पश्चात् आँधी तूफ़ान के वेग से शत्रु पर टूटता है। शिकारी की कुशल फिर इसी में है कि अचूक निशाने से गोरिल्ला के गोली मार दे। एक बार एक शिकारी ने एक गोरिल्ला के गोली मारी। निशाना चूक गया। पशु ने दौड़के बन्दूक़ पकड़ ली और उसकी नली मुँह में दे ली और अपने भीषण दाँतों से दबाके नली को इस प्रकार टेढ़ा कर दिया मानो वह टीन की बनी हो।

गोरिल्ला फलाहारी जीव है, विशेष कर जंगली गन्ने का बड़ा शौकीन होता है। फलाहारी होने के कारण उसको अपना वास-स्थान समय समय पर बदलना पड़ता है। जब एक जगह भोजन-सामग्री का अभाव हो जाता है तो उसको त्याग के जंगल के किसी दूसरे भाग में वह रहने लगता है।

गोरिल्ला पश्चिमी अफ़्रीक़ा के घने, अँधेरे जंगलों में पाया जाता है और उसके दर्शन भी दुर्लभ होते हैं। गोरिल्ला के बच्चे, अपने प्राकृतिक जीवन से वञ्चित कर दिये जाने पर जीवित नहीं रहते।

अनुक्रमणिका

जन्तु-जगत्

अर्थात्

पृथ्वी के स्तनपोषित प्राणियों का
वैज्ञानिक वर्णन

लेखक

श्रीयुत ब्रजेशबहादुर, बी० ए०, एल्-एल० बी०

प्रयाग

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त-प्रांत

१९३० ई०